विन्ध्य-भूमि

(प्रदेश-परिचय अंक)

[त्रैमासिक पत्र]

सम्पादक
अम्बाप्रसाद श्रीवास्तव, एम० ए०,
सूचना एवं प्रचार-पदाधिकारी, विन्ध्य-प्रदेश

अक्तूबर, १९५६

सम्पादक और प्रकाशक
श्री अम्बाप्रसाद श्रीवास्तव
सूचना एवं प्रचार-पदाधिकारी,
विन्ध्य-प्रदेश

..र्षिक मूल्य २)
इस अंक का २)

मुद्रक—
विन्दा प्रसाद ठाकुर,
लीडर प्रेस, इलाहाबाद

विषय-सूची

अ भूगोल-खण्ड

ब इतिहास-खण्ड

स पुरातत्व खण्ड

द. संस्कृति तथा साहित्य-खण्ड

ई. अर्थ-खण्ड

फ प्रशासन-खण्ड

क. कौन क्या है ?

चचाई जल-प्रपात

भूगोल-खण्ड

विन्ध्य प्रदेश

उत्तर प्रदेश
मध्य प्रदेश
मिरजापुर
जबलपुर
झाँसी
ओरछा
बसई
ललितपुर
टीकमगढ़
जतारा
महोबा
बाँदा
छतरपुर
बिजावर
बजनी
अजयगढ़
पन्ना
खजुराहो
अमानगंज
नचना कुठरा
उचेहरा
मैहर
कटनी
उमरिया
बीरसिंहपुर
सोहागपुर
शहडोल
अमरकंटक
रीवा
गोविन्दगढ़
सीधी
बहुती
सुहागी
क्योटी
सतना
भरहुत
रामनगर
दतिया
सेवढ़ा
नदी
उ
द
पू
प
संकेत
राज्य प्रदेश की सीमा
ज़िला
पहाड़
नदी
तालाब
दर्शनीय स्थान
प्रपात
रेलवे लाइन
कच्ची पक्की सड़कें

भगवानदास श्रीवास्तव
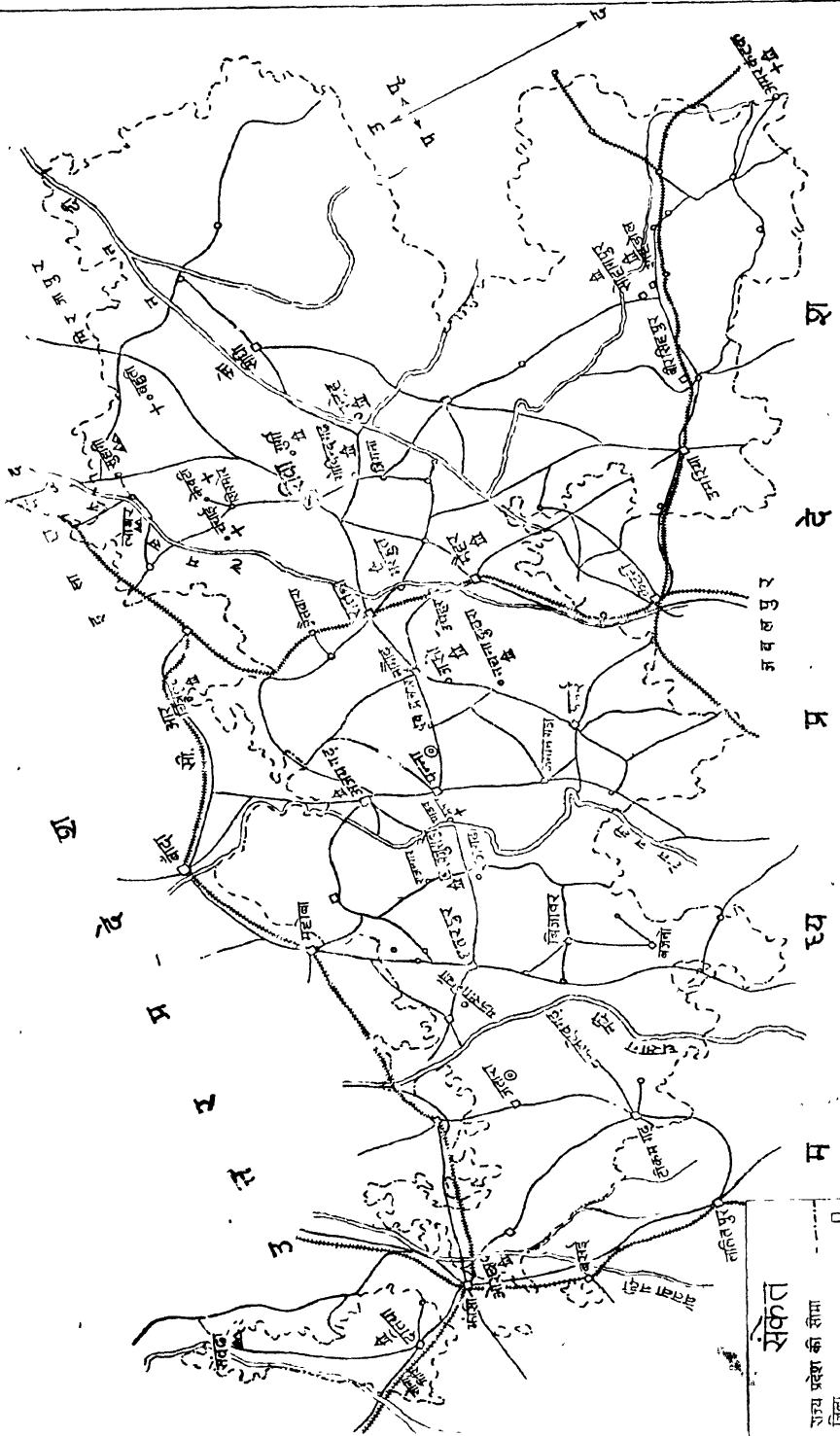
विन्ध्य-प्रदेश का भौगोलिक परिचय

किसी भी देश अथवा प्रान्त की पूर्ण जानकारी प्राप्त करने के पूर्व इतिहासज्ञ, अर्थ-वेत्ता, पर्यटक आदि पहले उसकी भौगोलिक जानकारी प्राप्त करना चाहते हैं। जब तक भौगोलिक स्थिति का ज्ञान न हो, तब तक अपने काम मे आगे बढ़ना कठिन होता है; क्योकि भौगोलिक परिचय से उस देश, प्रान्त अथवा नगर की स्थिति, अवस्था, जलवायु आदि का ज्ञान हो जाने से वे अपने-अपने कार्य-क्रम की रूप-रेखा निश्चित कर लेते हैं। इस दृष्टि से विन्ध्य प्रदेश के सम्बन्ध में अन्य जानकारी कराने के पूर्व इसका भौगोलिक परिचय देना अत्यावश्यक है।

सीमा तथा स्थिति

यह प्रदेश उत्तर से दक्षिण मे २२°, ३६' से २६°, १८' उत्तरी अक्षांश तथा पूर्व से पश्चिम मे ७८°,४' से ८२°, ५१' पूर्वी देशान्तर के मध्य स्थित है। विन्ध्य प्रदेश की उत्तरी सीमा पर उत्तर प्रदेश, पश्चिमी सीमा पर उत्तर प्रदेश तथा मध्य भारत, दक्षिण मे मध्य प्रदेश तथा पूर्व मे उत्तर प्रदेश तथा मध्य प्रदेश अवस्थित है।

प्राकृतिक अवस्था

यह प्रदेश विन्ध्य-गिरि की उपत्यकाओ मे अवस्थित है। इसी से इस प्रदेश का नाम 'विन्ध्य-प्रदेश' हुआ। इसके दक्षिण भाग में मेकल, पूर्व में कैमोर, उत्तर-पूर्व में केहजुआं, मध्य में पन्ना श्रेणी और सारंग, पश्चिम मे भीमटोर तथा पीर-जैसी बड़ी-बड़ी गिरि-शाखायें हैं। दक्षिणी पूर्वी भाग बहुत ही ऊंचा है और उत्तर-पूर्व का भाग चौरस होता गया है। प्रदेश का दक्षिण-पूर्वी भाग विन्ध्याचल के सर्वोच्च शिखर अमरकंटक पर बसा हुआ है। इस भाग की ऊंचाई ३००० फीट है।

प्रदेश की मुख्य नदियों में सोन, टमस, केन, धसान, बेतवा तथा सिन्धु हैं। ये नदियां दक्षिण से आकर उत्तर की ओर बहती हैं और अपनी-अपनी सहायक नदियो का पानी बटोरती हुई यमुना, गंगा में मिल जाती हैं। अब आप जान सकते हैं कि इस प्रदेश का ढाल उत्तर की ओर है। हां, दक्षिण मे केवल एक नदी नर्मदा है, जो पूर्व से पश्चिम की ओर ब कर मध्य प्रदेश की ओर चली जाती है।

इन नदियों मे गर्मी के दिनो में पानी कम रह जाता है, फिर भी ये नदियां सुन्दर तथा ऊंचे प्रपात बनाने के लिये सजग रहती हैं। प्रपात तो पहाड़ी नदियां ही बनाती हैं; अतएव विन्ध्य-प्रदेश को 'प्रपातों का प्रदेश' कहा जाय, तो अत्युक्ति न होगी। नर्मदा के 'कपिलधारा' और 'दुग्धधारा', टमस की सहायक बीहर का 'चचाई', मुहाना का क्योंटी, ओड्डा का बहुती, केन का पांडव प्रपात और रनेह, केन की सहायक किलकिला का 'कौआ सेहा' और समुआ का 'छोटे पांडव', जामुने की सहायक जमड़ार का कुडेश्वर तथा सिन्धु का 'सनकुआ' मनोमुग्धकारी प्रपातों में से हैं।

जलवायु

विन्ध्य-प्रदेश के मध्य मे कर्क रेखा निकलती है, अतः गर्मी के दिनों मे यहां का तापक्रम ११२° फारनहाइट तक बढ़ जाता है और जाड़े के दिनों में ४९° फारनहाइट तक आ जाता है। अतएव यहां पर वर्ष में ८ माह गर्मी पड़ती है। यहां पर गर्मी के दिनों में ही तीन-चार माह तक वर्षा होती है और वह भी दक्षिण-पश्चिम मानसून से। दक्षिण-पूर्वी भाग मे ५१ इंच वर्षा होती है और उत्तर-

पश्चिमी भाग मे वर्षा कम होती जाती है। वर्षा का औसत ३० इंच का ही रहता है।

जाड़े के दिनों मे ३ इंच के लगभग वर्षा हो जाती है; लेकिन उससे विशेष लाभ नही होता, क्योंकि वह असामयिक होती है।

गर्मी के दिनों मे बड़े-बड़े तथा धनी-मानी पुरुष दक्षिण के पहाड़ों पर चले जाते है। अमरकण्टक के पठार पर मई-जून मे भी गर्मी का तापक्रम ८०° फारनहाइट तक रहता है।

वनस्पति

किसी भी प्रान्त तथा देश की वनस्पति वहा की भूमि की बनावट तथा जलवायु पर निर्भर होती है। जहां तक भूमि की बनावट का प्रश्न है, यहां की चट्टानें परतदार है और उन चट्टानों तथा पठारो की भूमि, जहां पर मिट्टी की तह गहरी है, कृषि के उपयुक्त होती है। ज्यों-ज्यों जनसंख्या बढ़ रही है और महुआ, चार और तेंदू को त्याग कर दीन-देहाती आगे बढ़ रहे है, कृषि-योग्य भूमि पर कृषि की जा रही है। इस प्रकार वन का क्षेत्रफल कम हो रहा है। नीचे की सारिणी में वन का क्षेत्रफल देखिए :—

क्षेत्र	(वर्गमील)
रीवा-सीधी	८०८६
उमरिया	५३७४
पन्ना	३३६८
छतरपुर	३३८८
टीकमगढ़	२९७०
योग	२३,१८६

जलवायु के हिसाब से इन जंगलो मे कई तरह के पेड़-पौधे पाये जाते है। इनमें से कुछ तो ऐसे है, जो हमेशा हरे रहते है और कुछ बसंत के स्वागत के लिये अपने पत्ते बिछा देते है। ये पतझड़वाले जंगल मैदानी भागों मे मिलते है। दूसरे प्रकार के जंगल पहाड़ी ढालों पर पाये जाते है। जिन स्थानों में जंगल अधिक होते है, वृक्षों की संख्या काफी होती है, वहां अन्य स्थानों की अपेक्षा वर्षा अधिक होती है। इन जंगलों में मूल्यवान लकड़ी तो मिलती है, इसके अतिरिक्त पलाश के वृक्षों पर लाख के कीड़े पाले जाते है, जिससे लाह प्राप्त की जाती है। उमरिया-सीधी के जगलों से लाह काफी मात्रा मे प्राप्त की जाती है। टीकमगढ़ जिलान्तर्गत बड़ागांव क्षेत्र से भी लाह प्राप्त की जाती है। भविष्य मे लाह की उपज के बढ़ने की अधिक संभावना है। अभी ४५,००० मन लाह प्रति वर्ष पैदा की जाती है तथा और बढ़ने की संभावना है। दक्षिण के जंगलों में सरई, सागौन तथा बांस के जंगल है। उनकी लकड़ी काफी मूल्यवान होती है।

मध्य तथा पश्चिम के पठारी क्षेत्र में महुए, चार, खैर एवं तेंदू के वृक्ष अधिक हैं, किन्तु इस ओर घने जंगल नही मिलते। धसान के दक्षिणी किनारे पर भगुवाँ तथा किशनगढ़ वन-क्षेत्रों में सागौन मिलता है, किन्तु उस ओर यातायात के सुलभ साधन न होने से वन का विकास नही हो सका है। सीधी-शहडोल का वन-मंडल सागौन और बांस के लिए विख्यात है। बुढ़ार के आसपास के जंगल मे 'सवाई' घास मिलती है, जिससे कागज की लुगदी तैयार की जा सकती है। रीवा के आसपास 'दुद्धी' की मुलायम लकड़ी होती है, जिससे खिलौने बनाये जा सकते है।

उत्तर तथा दक्षिण के वन जंगली जानवरों से भरे पड़े है। इनमें शेर, चीते, रीछ, सांभर आदि वन्य पशु काफी है। दक्षिण मे उमरिया मंडल मे तो जंगली भैसे भी मिलते है। हिरण, नीलगाय, तेंदुवा, गुरइया, सांभर, बारहसिंगे, सुअर आदि वन्य पशु हर वन-मंडल मे मिलते है।

सिंचाई के साधन

पहाड़ी प्रदेश में सिचाई के बहुत ही सीमित साधन होते है। यहां की नदियाँ समतल भूमि पर नही बहतीं और न बारहों माह जलपूर्ण ही रहती है, जिससे सरलता से नहरों का निर्माण नही कराया जा सकता। पहाड़ी भूमि मे तालाब तथा झीले ही सिचाई के अच्छे साधन है। उपभोक्ताओ के बीच मे, जहां चारो ओर से पहाड़ी हो, एक ओर बांध बनाने से तालाब का सरलता से निर्माण किया जा सकता है और होता ही ऐसा है; इसीलिए इस प्रदेश में तालाब अधिक है। इन तालाबों से छोटी-छोटी नहरें निकालकर खेतों तक पानी पहुंचाया जाता है। विन्ध्य-प्रदेश के पश्चिमी भाग मे तालाब अधिक है और उनमे तीन-चौथाई तो चंदेलकालीन है। पश्चिम का प्रमुख जिला टीकमगढ़ बड़े-बड़े तालाबों से भरा पड़ा है। यहां का नदनवारा ताल विन्ध्य-प्रदेश में सबसे बडा ताल है।

तालाबों के अतिरिक्त यहां कुआं खोदकर सिंचाई की जाती है। इन साधनों से २,१५,६५० एकड़ भूमि सिंचित होती है। यहाँ की फ़सल बरसात के पानी पर ही निर्भर करती है। केवल रबी की फसल के लिये ही सिंचाई की आवश्यकता रहती है। यहाँ के किसान खरीफ की फसल को अपने लिए रख छोड़ते हैं और रबी की फ़सल को बेचकर दूसरे काम चलाते हैं। जिस साल वर्षा कम होती है, खरीफ की फसल सूख जाती है और प्रदेश के दीन किसानों का मरण होता है।

कृषि

उत्तर तथा उत्तर-पश्चिमी भाग मे, जहां की भूमि समतल है, गेहूं, चना, ज्वार की काफी उपज होती है और पहाड़ी क्षेत्र में बंधियाँ या बांध बनाकर धान की खेती की जाती है। दक्षिण के समतल मैदान पर गेहू की उपज बढ़ाने का प्रयत्न किया जा रहा है। शहडोल जिले के पुष्पराजगढ़ के मैदान पर ऐसी ही योजना चालू की गयी है। इसी प्रकार पश्चिमी जिलों में, जहां सिचाई की अच्छी व्यवस्था है, अर्थात् जहां तालाबों से पानी अक्तूबर से जून तक मिल सकता है, गन्ना की फसल तैयार की जाती है। टीकमगढ़-छतरपुर जिलों मे गन्ना काफी पैदा किया जाता है। यहां उत्पन्न होनेवाली फसलों का विवरण निम्न प्रकार है :

खरीफ की फसल	कृषि-क्षेत्र (एकड)	रबी की फसल	कृषि-क्षेत्र (एकड)
चावल	११,१४,४६६	गेहूं	८,९६,७४४
ज्वार	३,७८,४७९	चना	५,४१,५७४
कोदो	७,५४,६४७	अलसी	२,५२,११२
तिल	३,८९,८२४	जौ	२,७६,६४१

कृषि पर यहा की ८५ प्रति शत जनता का जीवन निर्भर है। अभी तक कृषि के लिये पुराने ही यंत्रों का प्रयोग किया जाता है। गत तीन-चार वर्षों से धनी-मानी व्यक्ति ट्रैक्टर का प्रयोग करने लगे हैं। अशिक्षित किसानों को ज्यों-ज्यों वैज्ञानिक कृषि-प्रणाली का ज्ञान होता जायगा, कृषि की उन्नति होगी। अभी केवल ३९ लाख एकड़ भूमि ही खेती के काम मे लायी जाती है। इस प्रदेश मे गुढ़, महाराजपुर, मलेहरा, सलेहा, जतारा और बल्देवगढ़ मे पान की खेती होती है।

खनिज-पदार्थ

यहां कोयला-जैसे खनिज-पदार्थ बहुतायत से पाये जाते है। यातायात के अच्छे साधन न होने के कारण तथा देशी राजाओं की स्वार्थी प्रवृत्तियों के कारण इस प्रदेश के खनिज-पदार्थो का विकास नही हो सका है। पूर्वी जिलों के पहाड़ी क्षेत्र मे कोयला प्रचुर मात्रा में पाया जाता है। मध्य के पठार "पन्ना श्रेणी" पर 'हीरा' मिलता है। इसके अतिरिक्त यहा के भूगर्भ मे लोहा, खड़िया, गेरु, रामरज, नमक आदि धातुयें भी भरी पड़ी हैं। इनका विवरण निम्न प्रकार है :

खनिज-पदार्थ	जिला	स्थान-जहां मिलता है या मिलने की संभावना है
(१) कोयला	शहडोल	उमरिया, नौरोजाबाद, धनपुरी, कोतमा, बुढार
	सीधी	सिंगरौली, चितौली, धुरौली
(२) लोहा	शहडोल	लोधा, भरौली
	सीधी	भरौली, चिलहरी
	टीकमगढ	टीकमगढ़, मोहनगढ़, पृथ्वीपुर
	छतरपुर	किशनगढ, देवरा
(३) तांबा, सीसा	शहडोल	ब्यौहारी,
	सीधी	बिरिया, गुजरा
	दतिया	सेंवढ़ा
(४) चूना	सतना	सतना, मैहर,
	रीवा	रीवा
(५) रामरज, गेरु, खडिया	सतना	जैतवारा, सरभंगा, प्रतापपुर
	दतिया	सेंवढ़ा
(६) हीरा	पन्ना	पन्ना, मझगवां, रमखिरिया, सहीदन
(७) अभ्रक	सीधी	सिंगरौली, पिपरा

यातायात के साधन

विन्ध्य-प्रदेश देशी राज्यों का एक समूह है तथा यह क्षेत्र पहाडी है, इस कारण इस प्रदेश में यातायात के साधन रेल-मार्ग तथा मोटर-मार्ग बहुत ही कम थे। लोकप्रिय सरकार

को इस ओर बहुत अधिक ध्यान देना पड़ा है और अब अधिकांश भागो मे पक्की सड़कें बना दी गयी है, जिन पर मोटरें चलती हैं। प्रदेश के भीतरी भागों में बैलगाड़ियां ही चलती हैं। पूर्वी भाग अधिक पहाड़ी है, जिससे टट्टू ही अधिक काम मे लाये जाते है या मजदूर ही माल को अपने कंधों पर ढोते है। प्रदेश मे आजकल प्रमुख रेल-मार्ग निम्नलिखित है :

(१) झांसी-मानिकपुर——इस मार्ग से टीकमगढ, छतरपुर तथा सतना जिलों के उत्तरी भाग का ही काम चलता है।

(२) झांसी-देहली——दतिया जिले का थोड़ा-सा पश्चिमी भाग आता है।

(३) झांसी-बीना——दतिया जिले के बगई क्षेत्र का कुछ भाग आता है।

(४) प्रयाग-जबलपुर——इसमे सतना जिले का पश्चिमी भाग आता है। सतना इस मार्ग पर प्रमुख स्टेशन है। इस मार्ग से रामरज, चूने तथा वन-सम्पत्ति की अधिक ढुलाई होती है।

(५) कटनी-बिलासपुर

(६) अनूपपुर-चिरमिरी

पांचवां तथा छठा रेल-मार्ग शहडोल जिले के दक्षिणी भाग के व्यापार में मदद देता है। वन-सम्पत्ति (लकड़ी, लाह), हड्डी तथा कोयला बाहर भेजने मे इस मार्ग से काफी मदद मिलती है। अनूपपुर रेल-मार्ग विशेषतया कोयला की ढुलाई के लिये ही है।

प्रदेश की पक्की सडकों मे से प्रमुख सड़के निम्न-लिखित है :

(१) हरपालपुर से रीवा वाया छतरपुर, पन्ना, सतना
(२) रीवा से शहडोल वाया ब्यौहारी
(३) रीवा से सीधी
(४) नौगाँव से टीकमगढ़ वाया मऊरानीपुर
(५) झांसी से ग्वालियर वाया दतिया
(६) ललितपुर से मऊरानीपुर वाया टीकमगढ
(७) रीवा से प्रयाग वाया चाक
(८) रीवा से मिर्जापुर वाया हनुमना
(९) पन्ना से बाँदा वाया अजयगढ
(१०) छतरपुर से बिजावर वाया गुलगज
(११) छतरपुर से सागर वाया हीरापुर

उद्योग-धंधे तथा जन-संख्या

इस प्रदेश की ८५ प्रति शत जनता कृषि तथा उससे संबंधित कामों पर अवलम्बित है। प्रदेश की कुल जन-संख्या ३५·७१ लाख है, जिसमें १८·३३ लाख पुरुष तथा १७·४२ लाख स्त्रिया है। इसमे परिगणित जातियों की संख्या ४,१८,२८२ है, जिसमें आधे से भी अधिक आबादी २,२९,९८७ शहडोल में है।

विभिन्न उद्योगों में लगे हुए मनुष्यों की संख्या निम्न-लिखित है :

कृषि——	३१,१४,३६४
अन्य उत्पादन——	१,६४,२३१
व्यवसाय——	१,००,०३६ (इनमे ९८८५ खदानों मे नौकर है।)
संवहन——	१५,४६५
अन्य सेवाये——	१,८०,५९४
योग	३५,७४,६९०

विन्ध्य-प्रदेश मे खेती के अलावा दूसरा प्रमुख उद्योग जंगल मे काम करने का है। इसके अन्तर्गत लकड़ी का काटना, लाह तैयार करना आदि है। अधिकतर इस कार्य में परिगणित जाति के व्यक्ति लगे रहते है।

यहाँ बड़े-बड़े उद्योगों की कमी है। अधिक व्यक्ति इस ओर आकर्षित नही होते है। अन्य उद्योगों में इस प्रकार लगाये व्यक्ति निम्न प्रकार है (१९५२ की जन-गणना के अनुसार) :

शराब की भट्ठिया	रोलिंग मिले	बीड़ी
१२८	२१	७८६
साबुन	मिट्टी के बर्तन	चूना-उत्पादन
५	६४	१२६५
तेल-मिल	चावल-मिले	छापाखाने
३७	७०	३४
लाह-फैक्टरी	आटा-चक्की	लोहा-फौलाद के कारखाने
१५५	१६	९

रहन-सहन तथा वेश-भूषा

इस प्रदेश में अभी केवल ८.२ प्रति शत ही जनता शिक्षित है; अतएव अपनी पुरानी संस्कृति पर रहनेवाले मनुष्य अधिक है। इस भू-भाग के गर्म प्रदेश में अवस्थित होने के

कारण यहाँ के निवासियो की पोशाक सीधी-सादी और सूती कपड़ों की होती है। गाँवो के मनुष्य घुटनों तक पहनी जानेवाली धोती और बन्डी पहनते हैं। इसी प्रकार स्त्रियाँ मोटे सूत की धोती तथा कुर्त्ती अथवा कतइया पहनती है। अच्छे अवसरों पर धनी-मानी व्यक्ति बन्डा या कुर्त्ता, मिर्जई अथवा चूड़ीदार पाजामा पहनते है। सिर पर साफा बाँधना जरूरी है, चाहे गरीब हो या अमीर। स्त्रियाँ भी बड़े अवसरों पर चुनरी, लहँगा, चोली पहनती हैं। शूद्र वर्ण की स्त्रियाँ अपने पैरो मे गहना नही पहनतं। वे अपनी शोभा को बनाये रखने के लिए शरीर पर 'गुदना' गुदवाती है। यही प्रथा परिगणित जातियो मे भी है। गरीब व्यक्ति वर्षा के दिनों मे घास के 'मोइया' या कम्बल के 'खोई' बनाकर पानी से रक्षा करते हैं। पूर्वी भाग के व्यक्ति बास तथा पत्तो से टोप बनाकर पहनते हैं। प्रदेश के मडलीय क्षेत्र तथा कुछ तहसीलों के क्षेत्र नवीन सभ्यता की ओर अब बहुत तेजी से बढ़ रहे हैं। उच्च शिक्षा तथा उन्नतिशील वातावरण का प्रभाव भी लोगो पर पड़ रहा है, जिससे उनके रहन-सहन तथा वेश-भूषा में बहुत शीघ्रता से अन्तर आ रहा है और लोग नवीन सभ्यता की ओर बढ़ रहे हैं।

शादी-विवाह की पद्धति सवर्णो मे प्राय एक ही है। शूद्रों तथा परिगणित जाति मे विवाह की प्रथा भिन्न-भिन्न क्षेत्रो में विभिन्न प्रकार की है और इसी प्रकार से खान-पान की प्रथाये भी भिन्न है।

ज्यो-ज्यों शिक्षा का प्रचार हो रहा है और व्यवहार-कुशलता बढ़ रही है, त्यो-त्यो पुरानी प्रथाओ का अंत हो रहा है, पुरानी वेश-भूषा भी जा रही है तथा अब सामान्य खान-पान, रहन-सहन का बोल बाला हो रहा है।

व्यापार

इस प्रदेश से अधिकतर निर्यात उसी पदार्थ का होता है, जिसकी बचत रहती है अथवा जिसका उपयोग नही हो सकता। कोयला, हीरा, लोहा, अभ्रक, रामरज आदि ज्यों के त्यों निर्यात कर दिये जाते है। इसी प्रकार हड्डी, चमड़ा तथा लकड़ी का भी हाल है। लाह को इकट्ठा कर कारखाने में शुद्ध कर बाहर भेज दिया जाता है। घी-चावल का भी निर्यात किया जाता है। यद्यपि गेहूं-चना आवश्यकता मे कम होता है, फिर भी दतिया जिले मे, जहाँ उपज अधिक होती है, इ का निर्यात किया जाता है। महुआ के फूल, महुआ के फलों का तेल, तेदू की पत्ती, चिरौंजी, आम (रीवा जिले मे), पान (छतरपुर तथा रीवा जिलो मे), सिंघाड़ा कमल के फूल (टीकमगढ जिले मे), मछली (टीकमगढ तथा रीवा से) आदि बाहर के प्रदेशो को भेजा जाता है।

जहाँ तक आयात का प्रश्न है, वे सभी वस्तुये बाहर से आती है, जिनकी हमे आवश्यकता रहती है।

प्रदेश के मुख्य नगरो को निम्न प्रकार श्रेणीबद्ध किया जा सकता है :

औद्योगिक नगर --सतना (सीमेंट, चूना),
उमरिया (लाह, कागज)
छतरपुर (पीतल के बर्तन)
पन्ना (हीरा)
टीकमगढ़ (मिट्टी के खिलौने)
दतिया (लकड़ी-मिट्टी के खिलौने)

व्यापारिक नगर--सतना, छतरपुर, दतिया, कोतमा
शहडोल, अमरपाटन, नागौद,
महराजपुर, चाक, हनुमना

ऐतिहासिक स्थान--खजुराहा, सोहागपुर, भरहुत,
महेवा, ओरछा, दतिया, देवरा
माँडा, नचना, कुठरा

धार्मिक स्थान--चित्रकूट, ओरछा, मैहर, पन्ना, उन्नाव
सोनागिरि, पपौरा, अमरकण्टक

शासन-व्यवस्था

प्रशासन-व्यवस्था की दृष्टि मे विन्ध्य-प्रदेश निम्नलिखित आठ जिलो मे विभक्त है :

(१) रीवा, (२) सतना, (३) शहडोल, (४) सीधी (५) छतरपुर, (६) टीकमगढ, (७) पन्ना, (८) दतिया।

प्रदेश की राजधानी रीवा में है तथा नौगांव में भी बहुत-से मुख्य कार्यालय है। प्रत्येक जिले मे एक कलक्टर रहता है। उसकी देख-रेख में तहसील में तहसीलदारों और गिर्दावरों के माध्यम से प्रदेश का शासन चलता है। प्रदेश की न्याय-व्यवस्था इससे बिल्कुल अलग है।

प्राकृतिक साधन, खनिज तथा वन-सम्पत्ति से भरा पूरा प्रदेश आनेवाले युग मे पिछड़ा नही रहेगा। इधर की प्रगति को देखते हुए यही आशा की जाती है कि दस वर्षो बाद विन्ध्य-प्रदेश का औद्योगिक, राजनीतिक तथा सास्कृतिक भूगोल दूसरा ही होगा।

रामाश्रय शास्त्री

विन्ध्य की प्रमुख सरिताएँ

संस्कृत साहित्य मे नदियों का विभिन्न स्वरूपों मे वर्णन किया गया है। वस्तुत: सरिताएँ सदा आगे की ओर बढ़ना जानती है, पीछे कभी नही लौटती और लौटे भी क्यो ? शाश्वत प्रवाहित होना तो उनका धर्म है। ये सरिताएँ केवल प्रवाहित ही नहीं होती, अपितु अपनी तरलता से मानव-समाज तथा अनेक जीव-जन्तुओं की सहायता भी करती है।

प्रत्येक मानव जन्म से लेकर मरणपर्यन्त समय-समय पर इन नदियों का सहयोग पाकर अपने उद्देश्यों की पूर्ति करता है। धीमान् पुरुष भले ही अपने कर्त्तव्यों में असफल हो जायँ, लेकिन इन नदियों ने न जाने कब से कठोरतम वस्तुओ को तरल बनाने का ही काम सीखा है। वे सदा अपने स्वाभाविक गुणों के अनुरूप ही कार्य करती रहती है। उन्हें संसार के व्यवसायों से कोई मतलब नही, चाहे कोई उन्हे नष्ट करे, जाने से रोके और अन्य प्रकार से बाधा पहुंचाये; पर शाश्वत प्रवाहित होना ही इन नदियों का धर्म है। इनमें द्वेष नही है, अपकार की भावना नही है और वर्गवाद को प्रश्रय देने का निकृष्टतम प्रयास भी नहीं है। सरिताओं का केवल एक रूप है--सब के साथ समान व्यवहार करना और अपनी गति मे निशि-दिन चलना, कभी विश्राम का नाम न लेना। उनके मधुर प्रवाह में सरसता है, लोकरंजन की मधुर ध्वनि है और जीवन को गतिवान बनाने का अमर सदेश है।

नर्मदा

नर्मदा भारतवर्ष की उन पुण्य-सलिलाओं मे से है, जिन्हे वैदिक काल से लेकर अब तक समान सम्मान प्राप्त है। विभिन्न पुराणों में इसका विस्तृत वर्णन किया गया है। ऋषियों ने नर्मदा की अनेक रूपों में प्रार्थना की है। नर्मदा नदी को किसी ने शंकर भगवान के तेज से आविर्भूत माना है, किसी ने शंकर जी के शरीर से और यहाँ तक कि स्कन्द-पुराणकार ने तो इसे शिव का स्वरूप ही मान लिया है। भारतवर्ष की पुण्यतम नदियों मे बड़े-बड़े नगरों की गंदी नालियाँ गिरने लगी है, जिसमें उनके जल मे भी दूषित पदार्थों की अधिकता होती जा रही है ; किन्तु नर्मदा अब तक प्राय. इस प्रकार के दोषो से मुक्त है।

शास्त्रों में श्रेष्ठतम वे ही नदियाँ मानी गयी है, जो अपने उद्गम स्थान से सीधे समुद्र में विश्राम लेती है। इस प्रकार की नदियों में गंगा, नर्मदा आदि नदियाँ आती हैं। इनके अतिरिक्त पुराणकारों ने समुद्र मे सीधे न मिलनेवाली नदियों मे यमुना को भी उसी कोटि में माना है। ये नदिय. चारों वेदों की मूर्ति है। गंगा ऋग्वेद-मूर्ति, यमुना यजुर्वेद-मूर्ति, नर्मदा सामवेद-मूर्ति और सरस्वती अथर्ववेद-स्वरूपा है। नर्मदा ने सैकड़ों वर्षों तक ब्रह्माजी की आराधना और तपस्या कर उन्हें प्रसन्न किया और जब वे वर देने लगे, तब नर्मदा ने प्रार्थना की कि मुझे गंगा के समान बना दीजिए। इसपर ब्रह्मा जी मुस्कराये और बोले--'एक दूसरे के समान कोई नही हो सकता। शिव, विष्णु, पार्वती तथा काशीपुरी की यदि कोई समानता करना चाहता है, तो उसका स्वप्न निरर्थक है।' ब्रह्माजी की निराशापूर्ण बातें सुनकर नर्मदा काशीपुरी में जाकर तप करने लगीं। कालान्तर मे शंकरजी प्रसन्न हुए और वरदान दिया कि "तुम्हारे तट पर जितने पाषाण-खण्ड पड़े हुए है, वे सब शिवलिंग-स्वरूप हो जायँगे और गंगा, यमुना तथा सरस्वती के स्नान मे जिन पापों की निवृत्ति होती है, वे सब तुम्हारे दर्शनमात्र मे नष्ट हो जायँगे। **यथा**--

"स्मरणाज्जन्मज पाप, दर्शनेन त्रिजन्मजम्।
स्नानाज्जन्मसहस्राख्यं, हन्ति रेवा कलौयुगे॥"

नर्मदा के जल मे शक्तिशाली जड़ी-बूटियो का सम्मिश्रण है, जिसमे हिस्टीरिया, अपस्मार आदि रोगों का नाश होता है। इसके अतिरिक्त सबसे बड़ी विशेषता यह है कि नर्मदा का जल हड्डियों को पत्थर बना देता है। नर्मदा जी से निकली हुई 'नर्मदेश्वर' मूर्तियों का धार्मिक जगत में बड़ा सम्मान है। भारतवर्ष की अन्य प्रमुख नदियां पूर्व की ओर बहती हैं, लेकिन नर्मदा और ताप्ती पश्चिम की ओर, अर्थात् प्रवाह के समान ही इनके गुण आदि मे भी विशेषता है। स्कन्दपुराण में नर्मदा जी के अवतरण की कथा संक्षेप में इस प्रकार है:

"चन्द्रवंश के चक्रवर्ती राजा पुरुरवा को वेद-विद ब्राह्मणो से ज्ञात हुआ कि नर्मदा नदी सम्पूर्ण लोक को पवित्र करनेवाली है और भू-मण्डल के पापो को हरण करने मे समर्थ है। अतः राजा ने नर्मदा जी को भू-मण्डल पर उतारने के लिए दृढ़प्रतिज्ञ हो कन्द, मूल, फल और जल का आहार करके अंतःकरण से भगवान शंकर की आराधना की। वे प्रसन्न होकर बोल उठे--'वरं ब्रूहि।' राजा पुरुरवा ने अपने आराध्य देव की वाणी सुनकर गद्गद हृदय से कहा--"हे महादेव, आप समस्त संसार के हित के लिए पुण्य-सलिला नर्मदा को भू-मण्डल पर उतारिये।"

शंकर जी ने अयाच्य वस्तु की याचना पर बहुत आश्चर्य करते हुए कहा--"हे राजन्! ऐसा वर देवताओं के लिए भी सुलभ नही है; इसलिए इसको छोड़कर दूसरा वर माँगो।" किन्तु राजा अपनी याचना मे परिवर्तन नही चाहते थे, और प्राण विसर्जित करने को प्रस्तुत हो गये। राजा की दृढ़ता एवं कठिन तपस्या को देखते हुए महादेव ने नर्मदा को पृथ्वी पर उतरने के लिए आदेश दिया। बिना किसी आधार के नर्मदा जी का पृथ्वी पर आना सम्भव न था; इसलिए शंकर जी ने आठों प्रमुख पर्वतों को आवाहन करके कहा--'तुम लोगो में से कौन इतना समर्थवान है, जो समस्त पापों को हरण करनेवाली नर्मदा जी को धारण कर सके?' इस प्रश्न के उत्तर में विन्ध्य-गिरि ने अपने प्रथम पुत्र 'पर्यक' का नाम प्रस्तावित किया। महादेव जी के आज्ञानुसार नर्मदा जी पर्यक गिरि में स्थित होकर अवतरित हुई। नर्मदा जी के प्रबल तेज से वन, पर्वत तथा सम्पूर्ण पृथ्वीतल जलमग्न हो गया। महाप्रलय की-सी स्थिति हो गयी, चारो ओर हाहाकार मच गया। देश को इस विपत्ति से बचाने के लिए सभी देवी-देवतागण एक स्वर से नर्मदा जी की स्तुति करने लगे। शंकर जी ने भू-मण्डल की शोचनीय स्थिति देखकर नर्मदा जी को अपना रूप संकुचित करने की आज्ञा दी; अतः वह सामान्य रूप से बहने लगी।

महाकवि कालिदास ने रघुवंश तथा मेघदूत मे नर्मदा का वर्णन इस प्रकार किया है:

"स नर्मदारोधसि सीकरार्द्रै र्मरुद्भिरानर्तितनक्तमाले।
निवेशयामास विलंघिताध्वा क्लान्तं रजोधूसरकेतुसैन्यम्।"
(--रघुवंश)

मार्ग को पूरा करके युवराज 'अज' ने नर्मदा नदी के किनारे जहाँ जलकणो से सिक्त शीतल वायु के झोको मे 'चिरबिल्व' नामक वृक्ष हिल रहे है, ऐसे रम्य स्थान मे अपनी सेना को, जो थकी हुई है और जिसकी पताकाये धूलि-धूसरित हो गयी है, ठहराया।

"रेवा द्रक्ष्यस्युपलविषये विन्ध्यपादे विशीर्णाम्।
भक्तिच्छेदैरिव विरचितां भूतिमंगे गजस्य॥"
(--मेघदूत)

हे मेघ, विन्ध्याचल के नीचे के भाग मे कल-कल निनाद करती हुई चारो ओर से बहनेवाली नर्मदा नदी को बड़े हाथियों के अंग मे बनायी गयी चित्र-विचित्र रेखाओ के समान देखोगे।

यह पुण्य-सलिला नर्मदा विन्ध्य प्रदेश के पावन तीर्थ अमरकण्टक से निकलकर विविध खेल करती करीब ७०० मील की लम्बी यात्रा करके समुद्र मे मिलती है। मार्ग मे अनेक दृश्य दर्शनीय है।

सोन

सोन का उद्गम-स्थान वही दिव्यस्थली अमरकण्टक है, जहाँ से नर्मदा प्रवाहित हुई हैं। अमरकण्टक में स्थित मन्दिर एवं कुंड से करीब डेढ़ मील दूर आग्नेय कोण मे सोन का उद्गम है। एक पतली-सी धारा झर-झर बहती रहती है। उसे देखकर यह कोई कल्पना नही कर सकता कि यह उसी विशाल नद का उद्गम है, जिसने पटना के समीप पहुँचकर अपना पूर्ण यौवन दिखलाया है।

शिकारगंज (जिला सीधी) से कुछ आगे गोपद नदी इसमें आकर मिलती है, जो भँवरसेन घाट कहलाता है। कहा जाता है कि यहाँ पहले भमरक नाम का एक राक्षस

रहता था, जिसके अत्याचारों से आस-पास की जनता त्रस्त थी। उस राक्षस का वध भगवान श्रीकृष्ण के बड़े भाई बलराम ने किया था, तभी से इसका नाम भंवरसेन पड़ा। इसके अतिरिक्त मधु-मक्खियाँ भी यहाँ बहुत अधिक हैं। यह भी एक कारण भंवरसेन नाम पड़ने का हो सकता है।

सीधी से उत्तर करीब ९ मील की दूरी पर गौ घाट है। यहाँ मकर-संक्रान्ति के दिन बहुत बड़ा मेला लगता है। लाखों की भीड़ लगती है। गौ घाट नाम पड़ने के सम्बन्ध मे जनश्रुति है कि एक बार एक गौ सोन की धारा मे बही जा रही थी। गौ घाट मे पहुंचने पर भगवान आये और उन्होने उस गाय को किनारे लगा दिया। तभी से इसका नाम 'गौ घाट' पड़ा। जो हो, नाम पड़ने का कुछ न कुछ इतिहास तो रहता ही है।

तात्पर्य यह कि सोन के सम्बन्ध मे न जाने कितनी किवदन्तियाँ हैं और उनका अस्तित्व भी है। किवदन्तियो के प्रमाण मे कोई शिलालेख मिलें या नहीं मिले, किसी-न-किसी आधार से ही वे प्रचलित हुई हैं। किन्ही महत्वपूर्ण कार्यों के पश्चात् ही लोकवाणी गूंजती है ; इसलिए जन-श्रुतियो का भी अपना अस्तित्व होता है।

सोन अमरकण्टक से निकलकर शनैः-शनैः अपना विशाल रूप धारण करती गयी। पटना के समीप पहुंचते-पहुंचते गंगाजी से मिलने के लिए उसका हृदय फूल उठा और उसने अपनी भुजायें पसार दी। कई मीलो का लम्बा पाट देखकर लोग आश्चर्य-चकित हो जाते हैं। सोन का बाल-जीवन अमरकण्टक मे, किशोर-जीवन भंवरसेन मे और पूर्ण यौवन पटना के समीप दर्शनीय है।

बेतवा

विन्ध्य-प्रदेश की नदियो में बेतवा का तीसरा स्थान है। उसके प्रति श्री बनारसीदास चतुर्वेदी ने लिखा है--"बेतवा के उद्गम-स्थान पर पहुंचकर निस्सन्देह बड़ा आत्मिक सन्तोष हुआ। सघन वृक्षों की छाया, शीतल जल, शान्त, एकान्त पक्षियों का कलरव और प्रकृति की गोद में चारों ओर पहाड़ी दृश्यो के बीच बेतवा की वह जन्मभूमि। वस्तुतः मेरे-जैसे श्रान्त पथिक के लिए एक अद्भुत आनन्दप्रद दृश्य था। स्नायु-तन्तुओं को अभीष्ट विश्राम मिला और दिल को एक अजीब राहत हुई। मन मे बार-बार यही खयाल आता था कि साहित्य-सेवियो की मण्डली कभी-कभी ऐसे स्थानों की यात्रा क्यों नहीं करती?

माता बेत्रवती के दर्शन हमने तीन रूपों में किये हैं--उसके मायके मे यानी भोपाल मे, उसके उद्गम-स्थान पर चिरगाँव के निकट बांध पर संयत जीवन बिताते हुए और फिर ओरछा मे अपने सर्व रूप मे। जब-जब हमने बेतवा को देखा है, उसके विचित्र प्रभाव से हम प्रभावित हुए है। इस प्रभाव के पीछे कौन-सी शक्ति है, इसपर ध्यान करते-करते हमारे मन में नाना प्रकार के विचार उत्पन्न हुए हैं। वस्तुतः 'विन्ध्य पर्वत' ने ही इन नदियों को यह सुन्दरता प्रदान की है। यदि बेतवा के सुन्दर स्थलों की रक्षा की गयी, तो उसका महत्त्व जर्मनी की राइन नदी से किसी हालत मे कम न होगा।"

पुराणों मे भी कथा है--"सिन्धु द्वीप नामक राजा ने देवराज (इन्द्र) से शत्रुता का बदला लेने के लिए कठिन तप किया। राजा की तपस्या से प्रसन्न होकर वरुण की स्त्री बेत्रवती नदी मानुषी का रूप धारण कर उपस्थित हुई और बोली :

"अहं जलपते पत्नी, वरुणस्य महात्मनः।
नाम्ना बेत्रवती पुण्या, त्वामिच्छन्तीह चागता॥
साभिलाषा परस्त्री यो, भागमाना विसर्जयेत्।
स पापपुरुषो ज्ञेयो, ब्रह्महत्या च विन्दति॥
एवं ज्ञात्वा महाराज, भजमाना भजस्वमाम्।"

अर्थात् मैं वरुण की स्त्री बेत्रवती आपको प्राप्त करने के लिए आई हूं। स्वयं भोगार्थ अभिलषित आयी हुई स्त्री को जो पुरुष स्वीकार नहीं करता, वह नरकगामी और ब्रह्म-पातकी होता है। इसलिए हे महाराज, कृपया मुझे स्वीकार कीजिये।

"तस्य सद्यो भवत्पुत्रो द्वादशार्क समप्रभ।
बेत्रवत्युदरे जातो नाम्ना बेत्रासुरो भवत्॥"

राजा ने बेत्रवती की प्रार्थना स्वीकार कर ली और उसके उदर से शीघ्र ही बारह सूर्यों के समान तेजस्वी पुत्र उत्पन्न हुआ, जो बेत्रासुर नाम से सम्बोधित किया गया। उसी बेत्रासुर ने इन्द्र को परास्त कर सिन्धु द्वीप राजा के मनोरथ को पूर्ण किया है।

इस नदी के वर्णन मे महाकवि बाणभट्ट ने संस्कृत के सर्वोत्तम कथाकाव्य कादम्बरी मे लिखा है--"मज्जन

मालवविलासिनीकुचतटस्फालन जर्ज्जरितोर्मि मालया जलावगाहनावतारित जय कुजरकुभसिन्दूर सन्ध्यायमान सलिलया उन्मद कलहंस कुल कोलाहल मुखरित कूलया''—— अर्थात् विदिशा के चारों ओर बेत्रवती नदी है। स्नान के समय मालव-विलासिनियों के कुच-तट के स्फालन (हिलने) से उसकी तरंग-श्रेणी चूर्ण-विचूर्ण हो जाती थी और रक्षकों द्वारा स्नानार्थ आनीत विजाता स्त्रियों के अग्रभाग में लिप्त सिन्दूर के फैलने से सान्ध्य-आकाश की भाँति उसका पानी लाल हो जाया करता था और उसका तट-देश उन्मत्तकल-हंस मण्डली के कोलाहल से सदा मुखरित रहता था।

इसके अतिरिक्त महाकवि कालिदास ने भी 'मेघदूत' में इस नदी का वर्णन किया है :

'तेषां दिक्षु प्रथित विदिशालक्षणां राजधानीम्,
गत्वा सद्यः फलमविकलं कामुकत्वस्य लब्ध्वा।
तीरोपान्तस्तनितसुभगं पस्यासि स्वादु यस्मात्,
सभ्रूभंगमुखमिव पयो बेत्रवत्याश्चलोर्मि ॥'

हे मेघ ! तुम विदिशा नामक राजधानी मे पहुंचकर शीघ्र ही रमण-विलास का सुख प्राप्त करोगे, क्योंकि वहाँ बेत्रवती नदी बह रही है। उसके तट के उपान्त भाग में गर्जन-पूर्वक मन-हरण करके उसका चंचल तरंगशाली सुस्वादु जल प्रेयसी के भ्रूभंग मुख के समान पान करोगे।

विन्ध्य-प्रदेश की सरिताओं ने पर्वत तथा वन-खण्डों के साथ खूब अठखेलियाँ की है। नदियों के केवल आकार से उनकी उपयोगिता तथा महत्व का मूल्यांकन नही किया जा सकता। छोटी-छोटी नदियों ने अद्भुत जल-प्रपातों की सृष्टि की है, किन्तु बड़ी-बड़ी नदियों ने प्रपात-रचना की ओर कम ध्यान दिया है। उन्होंने अपार जल-राशि प्रदान कर देश को सुखी बनाने का ही कार्य किया है। कहा नर्मदा का उद्गम और कहाँ जबलपुर के निकट भेडाघाट का वह विराट दृश्य ? कहाँ सोनभद्र की अमरकण्टक में वह पतली धारा और कहाँ पटना के पास महान् बलशाली भीषण प्रवाह तथा कहाँ भोपाल मे बेतवा का लघु रूप और कहाँ ओरछा की उत्ताल तरंगें ? कैसी विचित्र प्रतिभा है ? पग-पग पर नवीनता और मनोहर दृश्यों के दर्शन होते हैं। अपनी महान् उदारता से आज ये पवित्र नदियाँ न जाने कितनी आत्माओं को प्रति दिन सुखी बना रही है।

पंडित बनारसीदास चतुर्वेदी के शब्दों में 'हमारा तो यह विश्वास दृढ़ से दृढ़तर होता जाता है कि जो नदियों की तरह स्वयं गतिशील नही है, वह उनकी ध्वनि को सुन ही नही सकता; जिनमे निरन्तर दान देने की प्रवृत्ति नही, परिग्रहों को छोड़कर आगे बढ़ने का साहस नहीं और खतरे मे पड़कर प्रगतिशील बनने का दम नही, वे निरन्तर चलनेवाली नदियों की पुकार को भला क्या सुनेंगे ?

टमस

टमस नदी पुराणों में 'तमसा' नाम से विख्यात है। इसी पुण्य-सलिला के तट पर महर्षि वाल्मीकि को प्रथम आलोक मिला था। यह नदी मैहर तहसील के झुकेही कस्बे के पास से निकलकर रघुराजनगर, सिरमौर तथा त्योंथर तहसीलों मे बहती हुई इलाहाबाद जिले में 'सिरसा' के समीप गंगा मे मिल जाती है। यह नदी माधवगढ़ पहुँचते-पहुँचते वृहदाकार हो जाती है उसमे भी जब त्योंथर तहसील में पहाड़ छोड़कर मैदानी भूमि पर बहती है, तब नदी का आकार तो बढ़ ही जाता है, साथ ही उसकी गहराई भी अत्यधिक हो जाती है। रीवा जिले के अन्तर्गत पैरा गाँव से त्योंथर तक नदी की गहराई बहुत अधिक है। गर्मी के दिनों में भी ७० फुट के करीब पानी रहता है। त्योंथर में इस नदी द्वारा आंशिक रूप से सिंचाई भी होती है। इस नदी की मुख्य सहायक नदी 'बेलन' है।

केन

केन नदी सस्कृत साहित्य में 'किलकिला' नाम से प्रसिद्ध है। यह नदी अजयगढ़ तहसील के सरहदी स्थान मध्य-प्रदेश से निकलती है और पन्ना जिले के पश्चिमी भाग में बहती हुई बांदा के समीप यमुना नदी में मिल जाती है। यह घनघोर जंगलों के मध्य होकर बहती है, इसलिए नदी मे बड़ी-बड़ी चट्टाने है, जिसके कारण नाव चलने में बड़ी कठिनाई होती है। केवल बाँदा के समीप ही ऐसा है, जह सुगमता से नाव चलायी जा सकती है। इस नदी के किनारे-किनारे जंगल की शोभा दर्शनीय है। नदी के बीच में काली-काली बड़ी चट्टानें एकाएक दूर से देखने में ऐसी लगती हैं, जैसे मध्य नदी मे हाथी मस्ती मे झूम रहा हो। केन नदी आकार में बहुत बड़ी नदी है। वर्षा के अतिरिक्त अन्य ऋतुओं में सूखी पड़ी रहती है। विंध्य-प्रदेश के सरहदी स्थान में इस नदी का एक बाँध है, जिसके द्वारा बाँदा के पहले काफी सिंचाई का कार्य होता है। वर्षा में तो इस नदी का विकराल

रूप देखते ही बनता है। एक लोकोक्ति भी है—"बरसै कहूं, बाढ़े केन।" अर्थात् बाढ़ आने मे देरी नही लगती। बादल घिरे कि कुछ घंटों बाद ही केन मे बाढ़ आ गयी। यह नदी युद्धकालीन संकट मे महाराज छत्रसाल की बड़ी सहायता करती थी।

जुहिला

अमरकंटक मे तीन नदिया निकलती हैं—सोन पूर्व की ओर बहती है, नर्मदा पश्चिम की ओर बहती है और जुहिला कुछ दूर दक्षिण की ओर बहकर फिर पूर्व की ओर बहने लगती है। यह मानपुर (शहडोल) छादा, निपनिया आदि गाँवों मे होती हुई बान्धवगढ़ तहसील के "ओवरा" गांव के समीप सोन मे मिल जाती है। अमरकंटक की तीन नदियों में सोन और नर्मदा का विशेष महत्त्व है, किन्तु जुहिला नदी भी अपना अलग स्थान रखती है। यह नदी पहले तो दक्षिण की ओर जाना चाहती थी, किन्तु बाद मे इसने सोननद का साथ दिया है।

गोपद

यह नदी झिलमिली (राजकोल, चांगभखार) के पास से निकलकर सरहदी स्थान चूड़ी के पास से बहती हुई बरदी के पास सोन में मिल जाती है। इस नदी के किनारे-किनारे मुख्यतः बसाखी, उमरी, अगहत, हुर्रा आदि गाँव पड़ते है। सोन की सहायक नदियों मे से यह नदी प्रमुख है। गोपद और बनास के नाम पर सीधी जिले मे एक तहसील का नाम गोपद-बनास रखा गया है।

बनास

बनास नदी चांगभखार के सरहदी स्थान मे रीधी गंगा के पास से निकलकर बनास, कली, सरकही, जनकपुर, दुर्गापुर होते हुए रेहुनुआ (चन्द्रेह) के पास सोन मे मिल जाती है। जिस स्थान मे सोन और बनास का संगम होता है, उसे 'भँवरसेन' कहते है। संगम के उत्तर ओर नदी के किनारे भूतपूर्व रीवा-नरेश महाराज गुलाब सिह की बनवाई हुई 'शिकारगंज' नामक एक कोठी है। सोन इस स्थान में एक बड़ी पर्वत-शाखा को काटकर आगे बढ़ी है। बनास और सोन का संगम देखकर प्रयाग की त्रिवेणी का संगम याद आ जाता है। बनास का पानी सफेद और सोन का पानी काला दिखायी देता है। साथ ही सोन यमुना के समान खब गहरी है और बनास गंगा के समान उथली। वस्तुतः त्रिवेणी संगम का दृश्य यहां उपस्थित है। संगम के पूर्व करीब आध मील की दूरी पर चन्द्रेह नामक प्रसिद्ध ऐतिहासिक स्थान है। विंध्य-प्रदेश मे सोन की सहायक नदियों में गोपद और बनास दो ही प्रमुख है।

महानदी

महानदी विंध्य-प्रदेश के सरहदी गांव अखडार जिला जबलपुर के पास से निकलकर बान्धवगढ़ तहसील की पश्चिमी सीमा बनाती हुई पथरहटा गांव के समीप से जबलपुर जिले में बहने लगती है और ब्यौहारी तहसील के सरसी गांव के समीप सोन मे मिल जाती है। सोन नदी की सहायक नदियों मे महानदी भी है।

ओड्डा

यह नदी मऊगंज तहसील के सीतापुर गाँव के पास से निकलकर खैरा, बहेरा गाँवों के पास से बहती हुई गोहटा (त्योंथर) के पास टमस नदी मे मिल जाती है। बहुती के पास यह नदी ४६५ फीट गहरा जल-प्रपात भी बनाती है। नदी बड़ी नही है; लेकिन इसने सब से बड़ा प्रपात बनाया है।

बीहर

बीहर नदी अमरपाटन तहसील के खरमसेड़ा नामक गाँव के पास से निकलकर विभिन्न सरिता-सहेलियों को भेंटती हुई रीवा होकर चचाई पहुंचती है और वही ३७२ फीट गहरा एक सुन्दर जल-प्रपात बनाती है। यह मरैला के पास चचाई प्रपात के आगे जंगल के बीच में टमस में मिल जाती है। टमस और बीहर नदी का संगम एकान्त निर्जन वन में हुआ है, जहाँ का प्राकृतिक सौन्दर्य दर्शनीय है।

बिछिया

यह नदी मऊगंज तहसील के उँचेहरा गाँव के समीप से निकलकर बिछियान गाँव से होती हुई हिनौती, गुर्गी, डीहा गाँवों को सींचती हुई रीवा मे पहुंचकर बीहर में मिल जाती है। बिछियान गाँव के पास से निकलने के कारण इस नदी का नाम बिछिया पड़ा है। रीवा मे बीहर और बिछिया का संगम है, इसलिए इन दोनों नदियों का रीवा-निवासियों के लिए बड़ा महत्त्व है। यह नदी बीहर की मुख्य सहायक नदी है।

धसान

यह नदी मध्य-प्रदेश से निकलकर उत्तर-प्रदेश की सीमा पार करती हुई टीकमगढ़ जिले में बहती है और हमीरपुर के पास बेतवा में मिल जाती है। यह नदी बेतवा की मुख्य सहायक नदी है। टीकमगढ़ जिले में मुख्य रूप से बेतवा और धसान दो ही बड़ी नदियाँ बहती है, जिनसे सिंचाई का भी कार्य होता है।

जमड़ार

यह नदी झाँसी जिले के एक तालाब से निकलकर टीकमगढ़ जिले में बहती है। जिस तालाब से नदी निकलती है, उस तालाब में अब लोगों ने खेती करना आरम्भ कर दिया है। यह नदी जामनेर के साथ बेतवा में मिल जाती है।

जामनेर

यह नदी झाँसी जिले से निकलकर टीकमगढ़ मे बहती है। जामनेर को पुराणों में जम्बुला कहा गया है। कुंडेश्वर के समीप ऊषा-विहार का दृश्य दर्शनीय है। यह नदी तुंगारण्य में बड़ी बहिन बेत्रवती से मिलती है।

पहूज

पहूज नदी झांसी के पास सिमरदा बांध से निकलती और दतिया जिले में बहती हुई हमीरपुर के आगे यमुना में मिलती है। इस नदी के किनारे उनाव में बालाजी का मंदिर प्रसिद्ध है। यहाँ कुष्ट के रोगियों की भीड़ लगी रहती है।

सिन्धु

यह नदी भोपाल के निकट से निकलकर दतिया जिले में बहती है। इसने सेंवढ़ा में एक सुन्दर प्रपात का निर्माण किया है। यह नदी दतिया से आगे चम्बल मे मिल जाती है।

जामिनी

यह नदी मध्य-प्रदेश से निकलकर ललितपुर और टीकमगढ़ के बीच विध्य-प्रदेश की पश्चिमी सीमा बनाती हुई झासी के समीप बेतवा मे मिल जाती है।

रामसागर शास्त्री
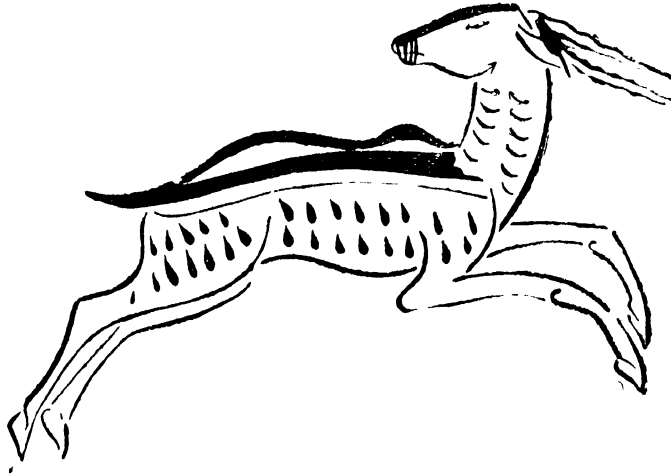
विन्ध्य के मनोहर जल-प्रपात

विंध्य-प्रदेश भारतवर्ष के अन्य प्रदेशों की अपेक्षा विशेष मनोरम है। यहां की वनस्थली एवं जल-प्रपातों का अनुपम सौन्दर्य स्थान-स्थान पर बिखरा पड़ा है। इस पावन प्रदेश के कोने-कोने में प्रकृति-सुषमा किल्लोल कर रही है, सुरम्य जल-प्रपातों के समक्ष प्रकृति-नटी उमंग के साथ नर्तन करती हुई विंध्य की गौरव-गरिमा को बढ़ा रही है और उसके दर्शन के लिए अड़ोस-पड़ोस एवं दूर-दूर के निवासी आकर नत-मस्तक होते हैं। वस्तुतः इस प्रदेश के सुरम्य जल-प्रपातों को देखकर सहसा कविवर 'प्रसाद' की निम्न पंक्तियां स्मरण हो आती हैं:

'मधुर है स्रोत मधुर है लहरी,
न है उत्पात छटा है छहरी।
कठिन गिर कही विदारित करना,
बात कुछ छिपी हुई है गहरी।।
मधुर है स्रोत मधुर है लहरी।'

शान्त, गंभीर एवं शक्तिशाली शाश्वत प्रवाहित होने वाले जल-प्रपातों की यहाँ कमी नही है। धन्य है विंध्य-भूमि, जिसने अपार सौन्दर्य बिखेरकर मानव-समाज का बड़ा उपकार किया है।

बहुती प्रपात

इस प्रपात का निर्माण 'ओड्डा' नदी से हुआ है। यह नदी सीतापुर (तहसील मऊगंज, रीवा) के समीप से निकलकर विभिन्न सरिता-सहेलियों के साथ क्रीड़ा करती हुई करीब ३५ मील की यात्रा कर 'बहुती' ग्राम के समीप ४६५ फीट नीचे गिरती है। इस प्रपात का नामकरण अन्य कुंडों की भांति 'बहुती' ग्राम के नाम पर ही आधारित है। प्रपात के एक मील पूर्व से ही उत्तर-वाहिनी 'ओड्डा' नदी धनुषाकार होकर पूर्वा-भिमुख बहने लगती है। इस स्थान पर नदी का पाट एक फर्लांग से अधिक चौड़ा होगा। पानी की धारा कभी बन्द नहीं होती। सभी ऋतुओं में 'हर-हर' की ध्वनि सुनाई पड़ती है। कूड़ें का दृश्य बड़ा भयावह है। विंध्य के अन्य प्रपातों में जल-धारा सीधे नीचे पहुंचती है; किन्तु इस प्रपात की जलधारा चट्टानों से टकराकर नीचे गिरती है। चट्टानों के कठोर आघात से पानी रुई के समान दिखाई पड़ता है।

प्रपात का विकसित सौन्दर्य पूर्वी भाग से देखने योग्य है। प्रपात के भयावह दृश्य और आर्तनाद करती हुई चट्टानों से चिपटी जलधारा का करुण दृश्य देखकर ऐसा लगता है, जैसे वह यहीं प्राण देना चाहती हो। किन्तु पानी की गति को रोकना तो दूर रहा, स्वयं चट्टानें अपनी जाति से बिछुड़कर न जाने कहां-से-कहां भटकने लगती है। चट्टानों की यह दशा देखकर वृक्षावली भी भयभीत होने लगती है कि कहीं नदी का प्रवाह हमें भी न उखाड़कर फेंक दे; क्योंकि यदा-कदा वृक्ष-समुदाय भी जलधारा में विलीन होते ही रहते है। प्रपात के दर्शन से नयी उमंग, नवीन कल्पनाएं एवं निराश जीवन में नवीन गति-विधि का संचार होने लगता है, चित्त की सारी अशांति दूर हो जाती है।

प्रपात के उत्तरी भाग से कुछ दूर पर नीचे जाने का मार्ग है, जो अधिक परिमार्जित नहीं है। ऊबड़-खाबड़ मार्ग के कारण कठिनता से दर्शक नीचे पहुंच पाते है। कूड़े की लम्बाई-चौड़ाई एक मील के लगभग होगी। कुंड की आकृति गोल नहीं है--उत्तर-दक्षिण अधिक लम्बा है और पूर्व-पश्चिम कम। हरे रंग का जल दिखायी पड़ने से कुंड के अति गहरा होने का आभास होता है। नीचे जंगली जानवरों के भय से अधिक देर तक रुकना असम्भव हो जाता है। एक-दो आदमी तो सामान्यतः जा ही नहीं सकते। बीस-पचीस आदमियों का गिरोह प्रायः निर्भीकता से अधोभागीय दृश्यों

क्योंटी जल-प्रपात : रीवा

सनकुआ जल-प्रपात : सेंवढा
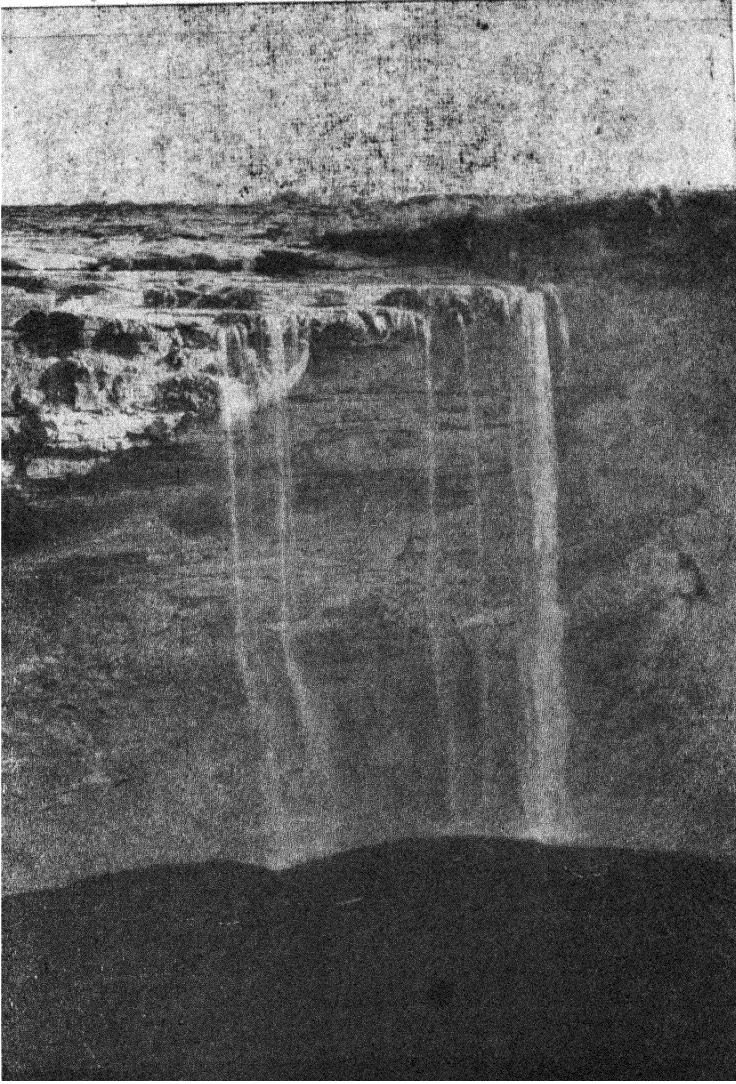
को देख सकता है। घनघोर जंगलों के दृश्य अत्यन्त भयावह है। वन्य पशुओं के विभिन्न चीत्कारों से दृढ़तम हृदय भी दहल उठता है।

प्रपात के अगल-बगल पहाड़ी भूमि है। दूर से ही काले पत्थरों की बड़ी-बड़ी चट्टानें दिखायी देती है। प्रपात के पश्चिम में करीब एक मील की दूरी पर अठभुजिनी (अष्ट-भुजी) देवी का मंदिर है। । मंदिर के मध्य में एक कृष्ण पाषाण दिखाई देता है, जिसके चारों ओर से रेखा खिंची हुई है। साथ ही और बहुत-सी देवी की मूर्तियां स्थित हैं । आश्विन एवं चैत्र की नवरात्रि में दूर-दूर के दर्शनार्थी यहाँ उपस्थित होते है।

बहुती प्रपात के दर्शनार्थ आने-जाने के लिए रीवा से १२ मील देवतालाब तक पक्की सड़क है। इसके आगे ८ मील नई गढ़ी तक कच्ची सड़क है। यहां से ३ मील पूर्व कच्ची सड़क पर जाने पर प्रपात तक पहुंचते है। मऊगंज से प्रपात तक करीब ८ मील कच्ची सड़क राज्य की ओर से बनवा दी गयी है, जो शीघ्र ही पक्की होनेवाली है। बरसात के अतिरिक्त अन्य सभी ऋतुओं में मोटर-लारी की सुविधा हो गयी है। यहाँ एक छोटा-सा बँगला भी है, जो खड़े होकर देखने के काम मे आता है, ठहरने के काम में नही आ सकता। अब तक आवागमन की असुविधा के कारण दूर के निवासी, प्रकृति-प्रेमी सज्जन इस प्रपात के मनोरम दृश्य का अवलोकन नहीं कर सके थे, किन्तु अब वे नवीनतम मार्ग के निर्मित हो जाने से लाभ उठाने लगे है।

चचाई प्रपात

चचाई प्रपात 'बीहर' नदी से बना है। यह नदी मैहर के समीप खरमसेड़ा, (अमरपाटन तहसील, जिला सतना) नामक स्थान से निकली है। विभिन्न स्थानों मे लोटती-पोटती विविध खेल करती रीवा नगर होते हुए करीब १०० मील की यात्रा कर उसने 'चचाई' नामक छोटे-से ग्राम में पहुंचकर महान् प्रतिभा-सम्पन्न ३७२ फीट की निचाई में इस अद्भुत सौन्दर्य-प्रतीक प्रपात का निर्माण कर डाला है। नदी का आरम्भिक स्वरूप देखने से यह आभास नहीं होता कि यही नदी चचाई प्रपात-जैसे प्रकृति-रत्न को निर्मित करेगी। बीहर नदी के उद्गम-स्थान से बहुत दूर तक एक छलांग में ही दूसरे कूल पर पहुंचा जा सकता है। प्रपात के समीप भी १०० गज के लगभग ही पाट होगा; किन्तु आश्चर्य है कि इस छोटी-सी नदी से इतना बड़ा कार्य कैसे सम्पन्न हुआ। प्रकृति की विलक्षणता से कल्पना शिथिल पड़ जाती है। प्रकृति की यह कृपा है, जो इस विन्ध्य प्रदेश में अनेक कीर्ति-वान प्रपातों के मनमोहक दृश्य बिखेरकर लोक-रंजन कर रही है।

प्रपात के आस-पास समतल भूमि है, जहाँ वृक्षों का अभाव है। पूर्व भाग में कुछ आगे 'धबई' का जंगल दिखायी देता है, वह भी गहन नहीं। जंगली ऊंची-नीची भूमि एवं छोटे वृक्षों की न्यूनता के कारण दूर से इस स्थान में प्रपात होने का आभास नहीं होता। मार्ग में विविध कल्पनाओं से पुलकित होते हुए यात्री एकाएक इस महान् प्रपात का दर्शन कर आश्चर्य में पड जाते हैं। प्रपात के पूर्वी भाग में कुछ चट्टानें कुंड की ओर बढ़ी हुई हैं और उन्हीं पर लौह-दण्ड लगे हुए है। प्रपात के सांगोपांग दृश्य का यहीं से दर्शन होता है।

दक्षिण दिशा में मंद-गति-युक्त सदा जल-धारा प्रवाहित होती रहती है। पानी अत्यधिक नीचे गिरने के कारण दूध के फेन के समान दिखायी पड़ता है और उससे धुंए के समान जल-कण उडते दिखायी पडते है, बरसात के दिनों में अधिक तथा अन्य ऋतुओं में कम। जल-प्रपात की कल-कल ध्वनि एवं रह-रहकर पक्षियों का कलरव नीरस व्यक्तियों के कठोर हृदय को भी प्रसन्न कर सहृदय बना देता है। चित्त की अशांति एवं दु:खपूर्ण वातावरण की सम्पूर्ण व्यग्रता इस पुण्यतम प्रपात के दर्शन से दूर हो जाती है और जीवन को एक नवीन चेतना, स्फूर्ति एवं विनम्रता का सन्देश मिलता है।

प्रपात के पश्चिमी भाग मे नीचे कुंड तक जाने का मार्ग है। वहां जाने पर नीचे के सुन्दरतम दृश्यों का दर्शन किया जा सकता है। वहाँ प्रायः अड़ोस पड़ोस के किसान जंगल से काष्ठ या अन्य वस्तुओं के प्राप्त करने के लिए आते-जाते यदा-कदा मिल जाते हैं। नीचे के भाग में बहुती प्रपात के समान घोर जंगल नहीं है, साथ ही वन्य पशुओं का गर्जन भी कम सुनायी पड़ता है; फिर भी भय तो लगता ही है। कभी-कभी इस महान् गर्त से निकलकर जल-चर किनारे में विश्राम करते दिखायी पड़ जाते है। जरा-सी आहट पाने पर वे हवा के समान पानी में कूद पडते है। पानी हरा-हरा दिखायी देता है। भयावने कुण्ड में स्नान करने का साहस नहीं होता। हिम्मत बांधने पर भी चट्टानों पर बैठ-कर हस्त-प्रक्षालन एवं मुख-मार्जन के अतिरिक्त पूरा स्नान

नही हो पाता। कुण्ड का जल पूर्व भाग से घूमता हुआ ईशान कोण के कगारे से टकराकर कठोर चट्टानों पर विविध नृत्य करते हुए पहाड़ से निकलकर आगे 'टमस' नदी में मिल जाता है। वर्षा-काल में नदी के अनेक कला-कौशल का सांगोपांग दृश्य देखने को यहीं उपलब्ध होता है। नदी के प्रबल प्रवाह से ऐसा लगता है,जैसे वह इस फैले हुए पहाड़ को बहाकर अपनी गति में विलीन करना चाहता है और बड़ी-बड़ी चट्टाने, विशाल वृक्ष-समूह तथा अन्य तरह-तरह के पदार्थ नदी के प्रखर प्रवाह में न जाने कहां से कहां विलीन हो जायंगे। यह प्रवाह कितना क्रोधी, कितना शक्तिवान और कितना कठोर है; किन्तु इसके विलक्षण कर्तृत्व में जीवन की एक करुण कहानी है। इतना पतन होने पर भी शांति नहीं ! वस्तुतः यह पतनावस्था का स्वरूप नहीं है। यदि पतन के कारण अत्यन्त नीचे जाकर छिपने की स्थिति होती, तो आज यह अमर कीर्तिवान विध्य-गौरव चचाई प्रपात भारत के वक्षस्थल का पुण्य प्रतीक न होता और युगों की गति-विधि देखते हुए अपने स्वरूप में अवस्थित न रहता। इस प्रपात की महानता अत्यन्त नीचे जाने पर भी नष्ट नहीं हुई, अपितु अधिक परिमार्जित हुई है। जो जितना नम्र, उदार एवं सहनशील होता है, वह उतना ही नवता है, नीचे झुकता है और सदा अपनी तरल गति से कठोरतम पाषाणों को भी कोमल बनाने का प्रयत्न करता रहता है। यह है मानव-जीवन को चचाई प्रपात की अद्भुत देन।

इस प्रपात का बड़े-बड़े कवि, विद्वान्, राजा-रंक, अमीर-गरीब, दीन-दुखी तथा पशु-पक्षी, यहां तक कि विदेशी भी दर्शन कर धन्य हुए हैं और अपने-अपने विचार व्यक्त किये है। श्री यशपाल जैन ने लिखा है—"जाने किस युग से यह प्रपात यहां विद्यमान है। उसने युगों का परिवर्तन देखा है, राजा-महाराजाओं के उत्थान-पतन का साक्षी बना है, मानव की विशालता देखी है और उसकी क्षुद्रता का भी अवलोकन किया है। उसने अमीरों का हाल सुना है और गरीबों का रुदन भी और न जाने क्या-क्या उसने देखा-सुना है; पर उसकी गति में कोई अन्तर नहीं आया, जैसे निरंतर प्रवाहित रहना ही उसका धर्म हो। मानव आता है और चला जाता है, लेकिन इस प्रपात का प्रवाह शाश्वत है। उज्वलता का परिधान पहनकर वह युगों से प्रवाहित हो रहा है और युगों तक प्रवाहित होता रहेगा।"

प्रपात के अनुपम सौदर्य एवं कल-कल निनाद से प्रभावित होकर भारत के सुप्रसिद्ध रहस्यवादी कवि श्री डाक्टर रामकुमार वर्मा ने प्रपात की महानता का वर्णन करते हुए लिखा है :

"ओ देख खोल दृग यह प्रपात, यह पतन सृष्टि का ह्रास,
जड़ बरसों तक सिखलायेगा, तुझको चेतन का रम्य हास।"

वस्तुतः यह प्रपात विन्ध्य-प्रदेश का गौरव एवं भारतवर्ष का अद्वितीय रत्न है। इसका सौदर्य शब्दों की परिधि में नहीं बांधा जा सकता। इसका अद्भुत विशाल दृश्य एवं शाश्वत प्रवाह अत्यन्त मनोरम है।

रीवा से चचाई तक ३१ मील पक्की सड़क है। सभी ऋतुओं में दूर-दूर से प्रकृति-प्रेमी सज्जन सदा दर्शनार्थ आते-जाते रहते हैं। यहाँ विन्ध्य सरकार की ओर से एक डाक बँगला भी बन गया है। इससे यात्रियों के आवास की सुविधा हो गयी है।

वेलौंहो प्रपात

यह प्रपात 'गोरमा' नामक छोटी-सी नदी से बना है। इसका पानी ३३४ फीट नीचे गिरता है। गोरमा नदी 'गोपला' ग्राम की एक नदी की नाली है। आगे चलकर यह क्रमशः फैलती गयी है और नदी का रूप धारण कर इसने इस सुन्दर प्रपात का निर्माण किया है। इस नदी की लम्बाई प्रपात तक करीब ३० मील है। यह प्रपात बिल्कुल मैदानी भूमि में है। प्रपात के आस-पास ऊंची-नीची घाटियां नही है, जंगल नहीं है और किसी तरह से प्रपात के होने के चिह्न भी दूर से नहीं दिखायी पड़ते; किन्तु समीप पहुंचने पर नयनाभिराम दृश्य मन मुग्ध कर देता है। वर्षा-काल में अधिक पानी गिरने के कारण कोहरे (पानी के कण) के समान असंख्य जल-कण आकाश-मंडल में चढ़ते हुए बादल-से दिखायी पड़ते हैं। वर्षा ऋतु में कल-कल निनाद सुनकर दूर से ही प्रपात होने का आभास हो जाता है। किन्तु अन्य ऋतुओं में आस-पास की भूमि तथा अन्य उपकरणों से प्रपात होने का अनुमान नहीं हो सकता। प्रपात से लगे हुए खेतों में किसानों की खेती लहलहाती रहती है।

प्रपात के कुण्ड की लम्बाई-चौड़ाई पौन मील के लगभग होगी। ऊपर से देखने में नीचे एक गड्ढा-सा मालूम होता है; किन्तु नीचे उतरकर देखने में प्रकृति-निर्मित एक बड़ा सरोवर-सा है, जो आकृति में गोल है।
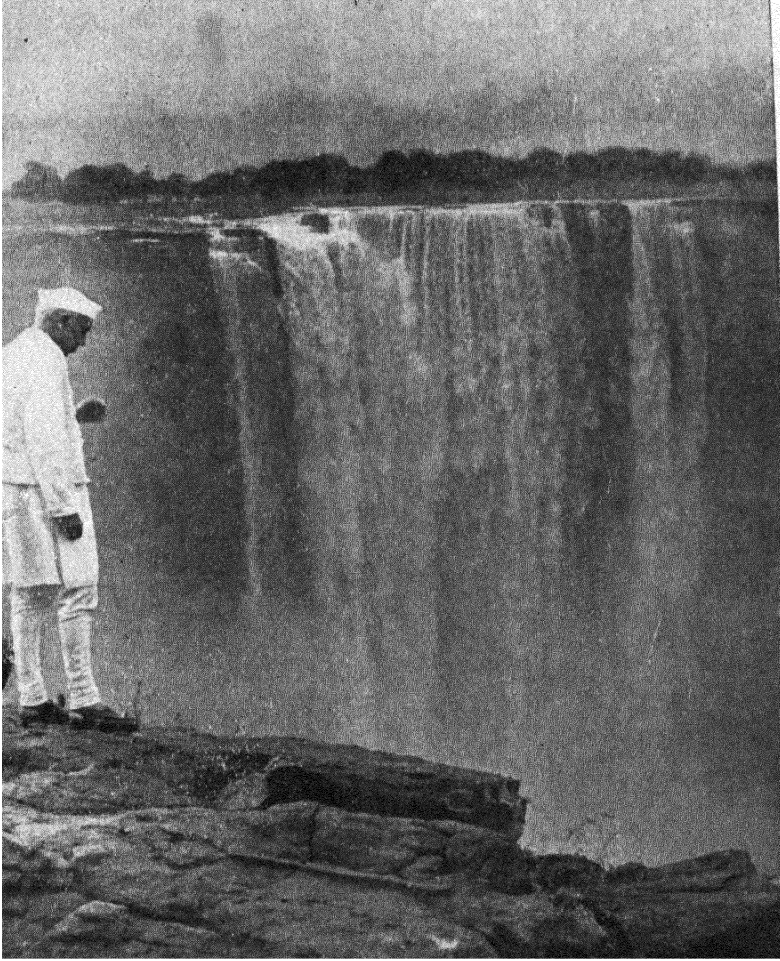
नेहरू : चचाई में

अगाध जल से आत्मा भयभीत हो जाती है। ऊपर से नीचे तक सीधे पानी गिरता है, बीच मे कही रुकने का स्थान नही है। अन्य प्रपातों के कुण्डों की परिक्रमा के लिए किसी में एक ओर, किसी में दो ओर और किसी में तीन ओर आने-जाने का मार्ग है; किन्तु इस प्रपात में सब से बड़ी विशेषता यह है कि इस कुण्ड की चारों ओर से परिक्रमा की जा सकती है। आग्नेय कोण से पानी गिरता है। उस ओर भी आने-जाने के लिये समतल चट्टानें पड़ी हुई है। नदी में पूर्ण बाढ़ होने पर भी कुण्ड की परिक्रमा में कोई बाधा उपस्थित नहीं होती। बाढ़ का पानी परिक्रमा की चट्टानों तक नहीं पहुंच पाता। कूड़े के कगारे में ऊपर तथा नीचे खड़े होने पर वायु के झोंकों से जल-सीकर दर्शकों का स्वागत करते है।

प्रपात के पश्चिम कगारे पर कुछ दूर तक पुरानी गढ़ी का खंडहर है। कहा नही जा सकता है कि इस गढ़ी का किसने निर्माण कराया था। अनुमान है कि चार-पाँच सौ वर्ष पूर्व किन्हीं आक्रमणकारियों ने युद्ध-काल में अपनी सुरक्षा के लिए उसे बनवाया होगा। पूर्व के अतिरिक्त अन्य दिशाओं मे एक घेरा ध्वस्त दशा में विद्यमान है। गढ़ी से कुछ नीचे उतरने पर एक लम्बी-चौड़ी गुफा है और उसी से लगी हुई एक खोह है, जो पश्चिम को गयी है। पता नहीं, यह कितनी लम्बी है। उसमें घोर अन्धकार रहता है। 'बहुती-प्रपात' और 'बेलौही प्रपात' मे करीब १० मील का अन्तर होगा। विंध्य-प्रदेश के प्रपातों में यह प्रपात अपनी कोटि का अकेला है। यहाँ प्रति वर्ष मकर संक्रान्ति को मेला लगता है।

आवागमन की असुविधा के कारण दूरस्थ प्रकृति-प्रेमी यहां तक नही पहुंच पाते थे। रीवा से खटखरी तक ५० मील मिर्जापुर रोड पक्की सड़क है। खटखरी से करीब ५ मील की दूरी पर नैरित्य कोण में यह प्रपात स्थित है। हनुमना से कटरा के लिए जो नयी सड़क बनी है, वह प्रपात के पास से ही जाती है; अतः वर्षा के अतिरिक्त अन्य ऋतुओं में यहां आने-जाने की सुविधा हो गयी है।

क्योंटी प्रपात

रीवा से ईशान कोण मे करीब ९ मील की दूरी पर 'पुराम' नामक एक छोटा-सा ग्राम है। उसी ग्राम के 'महाइन' तालाब से 'महाना' नदी निकलकर बिछे हुए खेतों से लिपटती हुई 'क्योंटी' ग्राम मे पहुंचकर ३३३ फीट नीचे गिरी है। यही क्योंटी प्रपात है। महाना के अधःपतन से एक सुन्दरतम प्रपात का निर्माण हुआ है। विन्ध्य-प्रपातों का नामकरण समीपवर्ती स्थानों के नाम पर ही हुआ है; अतः इस प्रपात का नामकरण भी 'क्योंटी' ग्राम के नाम पर ही है। यह नदी प्रपात से करीब आध मील पहले से ही भूमि काटकर चट्टानों को उखाड़ने लगती है और प्रपात बनाने तक लगभग २० फीट गहरी तथा डेढ़ फर्लांग के करीब चौड़ी हो जाती है। बीच में थोड़ी-सी भूमि द्वीप के समान अवस्थित है। उसमें भगवान राम तथा भैरव आदि देवताओ के दो छोटे-छोटे मंदिर बने हुए है। अगल-बगल दो मकान और है। कोई-न-कोई संत-महात्मा उस दिव्य स्थान में सदा निवास करता है। बरसात के प्रबल प्रवाह का भी कोई प्रभाव उस स्थान पर नही पड़ता। अन्य ऋतुओं मे केवल पश्चिम की ओर से पानी बहता रहता है।

प्रपात का पूर्ण सौन्दर्य वायव्य कोण की बढ़ी हुई चट्टानों मे दिखायी पड़ता है। ऊपर से पानी गिरकर नीचे अर्द्ध-चन्द्राकार पश्चिमी भाग मे घूमता हुआ ईशान कोण मे आगे बढ़ता है। नीचे की वनस्थली में विहरण करनेवाले पशु-पक्षियों की तरह-तरह की आवाज प्रपात के गुण-गान से भरी हुई सुनायी पड़ती है। प्रपात समय की गति-विधि देखता हुआ न जाने कब से अपने एक स्वरूप मे अवस्थित है। कुण्ड की सीमा ऊपर से अन्य कूड़ो की भाँति बहुत छोटी दिखायी पड़ती है, किन्तु नीचे उतरकर देखने में इसका विस्तार पर्याप्त है।

इस प्रपात के करीब ५० गज पूर्व एक दूसरा कूड़ा है, जिसमें केवल वर्षा मे ही पानी गिरता है, अन्य ऋतुओं मे नहीं; किन्तु कूड़ा मे थोड़ा-बहुत पानी सदा रहा ही करता है। जनश्रुति है कि पहले यही कूडा प्रधान रूप से महाना नदी का प्रपात था; फिर बाद में धारा बदल गयी और उसने दूसरे प्रपात का निर्माण कर डाला। मेरी दृष्टि मे ऐसा प्राकृतिक रूप से ही हो गया है। नदी की धारा बदलना, स्थानीय दृश्यों को देखते हुए, युक्ति-संगत नही प्रतीत होता। कुछ भी हो, लेकिन दोनो कूड़े एक ही नदी के अंगभूत है, इसमें सन्देह नहीं है।

इसी कूड़ा से लगी हुई उत्तर दिशा में एक प्राचीन गढ़ी है, जो रीवा-नरेश महाराज वीरसिंह देव के छोटे भाई नागलदेव की बनवायी कही जाती है,। वह खंडहर के रूप में आज

भी विद्यमान है। गढ़ी की सुरक्षा के हेतु प्रपात की ओर छोड़कर अन्य सभी दिशाओं में पत्थर का परकोटा खिचा हुआ है। केवल पूर्व के द्वार से भीतर प्रवेश करने का मार्ग है। कई आँगन है। आज भी अन्दर के बहुत-से कोठे ध्वस्त नही हो सके है। पर्याप्त दृढ़ता से इस गढ़ी का निर्माण कराया गया था। गढ़ी की लम्बाई करीब एक मील और चौड़ाई तीन फर्लांग से कम न होगी।

यह गढ़ी प्राचीन काल के युद्ध के लिए बहुत ही उपयुक्त थी; पश्चिम से फेंके हुए तोप के गोले प्रपात के आकर्षण से गढ़ी तक नही पहुंच पाते थे। दक्षिण और उत्तर में तोप लगाने के लिए समतल भूमि नही है, अर्थात् तीन दिशाओं से गढ़ी सुरक्षित है। केवल पूर्व का हिस्सा अरक्षित रह जाता है। इस मार्ग की सुरक्षा के लिए यहाँ कोई बहुत प्रबल योद्धा रहता था। यही कारण है कि स्वतंत्रता-आंदोलन के अग्रदूत बाबा रणमत सिंह ने अंग्रेजों की विशाल सेना को अपने थोड़े-से सैनिको द्वारा परास्त किया था। प्रपात से करीब एक मील की दूरी पर उन संग्राम में मारे गये सैनिको की छतरियाँ बनी हुई है।

गढ़ी से नीचे की ओर प्रपात तक जाने के लिए मार्ग है। जहाँ-तहाँ सीढ़ियाँ भी बनी हुई है। वृक्ष-पंक्तियों के सहारे उतरकर प्रपात के अद्भुत दृश्य का अवलोकन किया जा सकता है। बड़े-बड़े जलचर छलांग मारते हुए दिखायी देते है; किन्तु इस स्थान मे चलायी गयी गोली कूड़े के आकर्षण से खाली जाती है। यहाँ सभी जंगली जानवरों का भी जमघट रहता है। गर्मी के दिनों मे भी यहाँ पर्याप्त शीत रहती है। प्रायः गर्मी के दिनों में बहुत-से प्रकृति-प्रेमी सज्जन नीचे जाकर स्नान भोजनादि करते है और पूरा आनन्द उठाकर सायंकाल घर लौटते है।

'क्योंटी प्रपात' तक जाने के लिए रीवा से बैकुण्ठपुर तक १६ मील पक्की सड़क है और वहा से ७ मील कच्ची। वर्षा के अतिरिक्त अन्य सभी ऋतुओं में लारी-मोटर की सुविधा है। यहाँ राज्य सरकार की ओर से डाक बँगला भी बन गया है, जिससे यात्रियों के ठहरने की सुविधा हो गयी है।

पुरवा प्रपात

यह प्रपात 'टमस' नदी से बना है। इसकी गहराई २०० फीट है। यह चचाई प्रपात से ३ मील पश्चिम है। प्रपात की मुख्य जलधारा सीधे न गिरकर चट्टानों से लिपटती हुई नीचे गिरती है। मुख्य धारा से लगी हुई पश्चिमी कगारे से दूसरी धारा सात पत्थरो से टकराकर नीचे पहुँचती है। पानी कम होने पर जलधारा सीढ़ियों में उछलती हुई के समान दिखायी देती है। कूडा गोलाकार है। सामने धारा के समानान्तर कगारों में दो दीवालें खड़ी है। उन दोनों दीवालों का अन्तर लगभग १२० फीट होगा। इसके आगे क्रमशः नदी अपना विशाल रूप धारण करती गयी है। इस प्रपात का क्षेत्रफल अन्य कूडों से अधिक है, परन्तु गहराई कम। प्रपात के ऊपरी भाग मे दक्षिण दिशा मे करीब दो फर्लांग मे एक बड़ा बाग है, जिसमें सैकड़ों आम के पेड़ लगे हुए है। अगल-बगल जंगली वृक्ष खड़े है। प्रपात के ऊपरी भाग में ही जंगल का लघु रूप देखने को मिल जाता है। ग्रीष्म-काल मे विन्ध्य-प्रदेश के समस्त जल-प्रपातों मे अधिक पानी इस प्रपात मे गिरता है।

कपिलधारा प्रपात

'नर्मदा' के उद्गम-स्थान अमरकण्टक से तीन मील की दूरी पर यह प्रपात स्थित है। इसकी उँचाई १०० फीट है। पुण्य-सलिला नर्मदा का यह प्रथम प्रपात है। इस प्रपात के चारो ओर 'अमरकंटक' की इठलाती हुई मनोहर वनस्थली की शोभा अवर्णनीय है। प्रपात के साथ ही वन-सौन्दर्य यही देखने को मिलता है। वर्षा ऋतु में तो पानी की अधिकता के कारण एक ही धारा गिरती है; लेकिन अन्य ऋतुओं मे दो धाराएँ गिरती है। इसका पानी नीचे चट्टानों पर ही गिरता है, कोई गहरा कुड नही है। स्नानार्थी नीचे जाकर स्नान करते है और आत्मिक सुख से आनन्दित होते है। नर्मदा के दोनो ओर की पहाड़ियो को देखकर ऐसा लगता है, मानो वे आपस मे मिलकर नर्मदा को छिपा लेना चाहती है। यहाँ आने-जाने की पूर्ण सुविधा है। प्रति वर्ष हजारों दर्शनार्थी प्रकृति के अन्तःपुर अमरकंटक मे बिखरी हुई वन-सुषमा का दर्शन करते है।

पांडव प्रपात

यह प्रपात पन्ना से पश्चिम छतरपुर सड़क पर छः मील की दूरी पर सड़क के पश्चिम स्थित है। इसका निर्माण छोटे-से नाले से हुआ है। प्रपात की उँचाई करीब ५० फीट होगी। प्रपात के अगल-बगल गुफाएँ बनी हुई है, जहां-तहां सीढ़ियां भी बनी है। महाराज छत्रसाल श्रान्त-क्लान्त स्थिति में पांडव प्रपात की रम्य-स्थली में विश्राम कर सुख-

रनेह प्रपात : छतरपुर
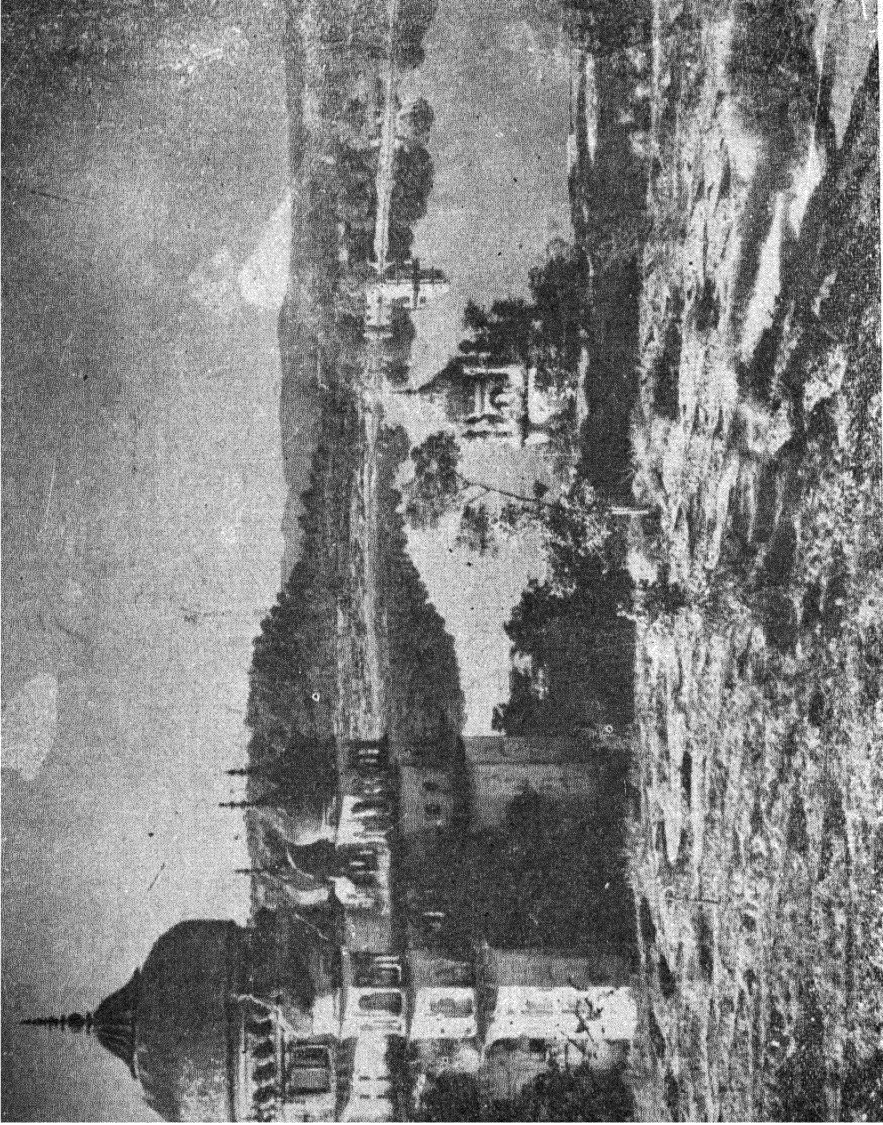
मंगल सागर . पन्ना

शान्ति का अनुभव करते थे। कहा जाता है कि पांडवों ने अपने अज्ञातवास के समय इस स्थान में भी निवास किया था। वस्तुतः विचार केन्द्रित करने का यह अनुपम स्थान है।

रनेह प्रपात

'केन' नदी जैसी ही बड़ी और घनघोर जंगलों के बीच बहनेवाली है, वैसे ही इसने रंगे-बिरंगे पाषाणों के बीच प्रस्तुत 'रनेह प्रपात' का निर्माण किया है। इस प्रपात की सब से बड़ी विशेषता यह है कि बीच में एक कुंड है, जिसमें तीन ओर से पानी गिरता है। इस कुंड मे गिरती हुई जल-धाराओं को देखकर ऐसा लगता है, मानो वे पाताल-लोक में पहुँचना चाहती हैं। जलधाराओं के बीच से काले और लाल पत्थरों की बड़ी चट्टानें अत्यन्त सुन्दर दीखती हैं। लाल चट्टानों मे मोती के समान छोटे-छोटे श्वेत कण चमकते रहते है। जल के भीतर वन, पर्वत और छोटी-बड़ी चट्टानों के हिलते हुए प्रतिविम्ब को नीला आकाश-सहित देखकर ऐसा लगता है, मानो पाताल-निवासी बिखरे हुए सौन्दर्य को समेट रहे हों। सूर्यास्त के समय इस प्रपात का सौन्दर्य अद्वितीय हो जाता है। नदी तो बहुत बड़ी है, लेकिन इसका प्रवाह ग्रीष्म ऋतु में बन्द हो जाता है। ऐसे समय में प्रपात का सौन्दर्य भी शुष्क दिखायी देता है। इस प्रपात की यात्रा शरद् और बसन्त के बीच करनी चाहिए। प्रपात की उँचाई करीब २५ फीट ही होगी। इस प्रपात की यात्रा के लिए छतरपुर-पन्ना सड़क पर चन्द्रनगर तक पक्की सड़क है। वहां से १० मील पश्चिम में रनेह प्रपात स्थित है। विन्ध्य-प्रदेश के प्रपातों मे केवल रनेह-प्रपात में ही प्राकृतिक रंगीन दृश्य दिखायी देता है।

सनकुआ प्रपात

दतिया से ४० मील दूर, ब्रह्मा-पुत्र सनकादि की तपस्थली 'सनकुआ क्षेत्र' है। यही काली सिन्धु के द्वारा इस मनोरम प्रपात का निर्माण हुआ है। यह नदी भोपाल के पड़ोस से मध्य-भारत में बहती हुई बिन्ध्य-प्रदेश के दतिया जिले में प्रवेश करती है। सेवढ़ा मे, जहां नदी ने प्रपात बनाया है, उसने अपना विशेष आकर्षक एवं मनोमुग्धकारी रूप धारण कर लिया है। विन्ध्य-गिरि की शाखाओं के बीच से बहती हुई यह नदी बहुत चौड़ी धारा के रूप मे नीचे गिरती है। प्रपात की इसी धारा को सनकादि ने अपने मस्तक पर धारण कर शान्ति प्राप्त की थी। पर्वत की जिन विशाल चट्टानो के ऊपर से जलधारा गिरती है, उनको काटकर मानवीय प्रयत्नों से उनमें दालानें बना दी गई हैं। इस प्रकार मानवीय कला ने इस सौन्दर्य में अपूर्व वृद्धि कर दी है। चट्टानों के तीन ओर से पानी गिरता है। विशाल पर्वत-चट्टानों से टकराती हुई धारा आगे बढ़ती है। प्रपात के सभी ओर मन्दिर बने हुए हैं। प्रपात का सौन्दर्य, मन्दिरों की शान्ति, स्वच्छ वारि-धारा, उसका कल-कल नाद किसी भी प्रकार की अशान्ति को फटकने नहीं देता। प्रपात का सौन्दर्य वास्तव में दर्शनीय और आकर्षक है, अन्य प्रपातों की भाँति भयावह नहीं।

कुण्डेश्वर प्रपात

यह प्रपात टीकमगढ़ से दक्षिण ४ मील की दूरी पर स्थित है। 'जमड़ार' नदी को बाँधकर १५ फीट की उँचाई का प्रपात बनाया गया है। सामान्यतया प्रपात के नीचे भाग में बैठकर लोग स्नान करते हैं और स्वयं गंगाधर बनने की भी कल्पना कर आनन्दित होते हैं। जमड़ार की तटवर्ती वनस्थली भी दर्शनीय है। यह प्रपात विन्ध्य-प्रदेश के प्रपातों में सब से छोटा है; किन्तु इसका सौन्दर्य बड़े प्रपातों के समान ही है।

रामदेव मिश्र

विन्ध्य के रम्य सरोवर

विन्ध्य-प्रदेश के सुरम्य सरोवरों और प्रमुख सरिताओं का अपना विशेष महत्व है। इस प्रदेश के सरोवरो के प्रति श्री बनारसीदास चतुर्वेदी ने लिखा है—'विन्ध्य की प्रकृति का वर्णन अधूरा ही रहेगा, यदि यहां के सरोवरों का जिक्र न किया जाय। वस्तुतः यहां के सरोवर प्राकृतिक सौन्दर्य के मुख्य अंग है।'

घोर जंगल के बीच तालाबों की शोभा अद्वितीय होती है। उनसे प्यास तो मिटती ही है, साथ ही लहराती हुई लोल लहरे देखकर श्रान्त-क्लान्त पथिकों की थकान भी दूर हो जाती है और मन प्रसन्न हो जाता है।

सरोवर और सरिताएँ जलदान के अतिरिक्त लोक-रंजन भी करती है। जलाशय के बिना जन-जीवन एक दिन भी बीतना कठिन हो जाता है।

गोविन्दगढ़ सरोवर

गोविन्दगढ़ सरोवर रीवा से दक्षिण १२ मील की दूरी पर स्थित है। सीधी तथा शहडोल जानेवाली सड़के गोविन्दगढ़ होकर ही जाती है। यह तालाब ५ मील के घेरे मे फैला हुआ है। इस तालाब का निर्माण रीवा-नरेश महाराज रघुराज सिह ने कराया था। गोविन्दगढ़ कस्बे से आगे बढते ही भव्य राजप्रासादो के साथ ही अगाध जलराशि दृष्टि-गोचर होती है। सरोवर का सौन्दर्य राजप्रासाद से ही देखने योग्य है। सडक से राजप्रासाद तक मार्ग के दोनों ओर उपवन की शोभा अत्यन्त सुहावनी है। पक्षियों का कलरव मन को मुग्ध कर लेता है।

राजप्रासाद के मध्य में संगमरमर का सभा-मंडप बना हुआ है। दक्षिण की ओर राघव महल है। यह महल राजा-महाराजाओं के निवास के लिए बनवाया गया है।

किले के पूर्वी भाग में तालाब से सटे हुए पांच मन्दिर है, जिनमें वैष्णव मूर्तियां पधारी है। तालाब की दक्षिण दिशा मे विस्तृत जंगल है। इससे सरोवर की सुन्दरता और भी बढ गयी है।

तालाब के पूर्व और दक्षिण दोनो ओर पर्वत-श्रेणियां प्राचीर की तरह घेरे है। वर्षा ऋतु मे यह दृश्य अद्वितीय हो जाता है। हरे-भरे जगल के बीच मे बहती धवल धाराएं शिव की जटा से प्रवाहित होनेवाली गगा का दृश्य उपस्थित कर देती है। इस स्थान से कुछ ही दूरी पर कठ-बॅगला है, जिसके नीचे का भाग पत्थर का और ऊपरी भाग काष्ठ का बना हुआ है। यहां बैठने पर ग्रीष्म में भी शीत का अनुभव होता है। इसी के समीप दरिया महल, बादल महल, उलटा महल आदि भव्य भवन बने हुए है। राघव महल के पूर्व वर्तमान रीवा-नरेश ने सफेद शेर पाल रखा है। राजप्रासाद मे लगा हुआ पूर्व की ओर नावघाट है, जहां नौकाएँ रहती है। आज्ञा प्राप्त कर इस सरोवर में जल-विहार किया जा सकता है।

तालाब के पश्चिमी भीट से शहडोल को सड़क गयी है, जिसके किनारे-किनारे आम्र-कटहल के वृक्ष लगे हुए है। तालाब के दक्षिण-पूर्व खखरी कोठी है, जिसमें शशि-कुज नाम का सुन्दर उपवन महाराज मार्तण्ड सिह ने निर्मित कराया है। यह कुज सौन्दर्य की दृष्टि से अद्वितीय है।

रानी तालाब

इस तालाब का निर्माण विक्रमी संवत् १६६० के लगभग रीवा-नरेश महाराज भावसिह की महारानी ने कराया था। यह रीवा किले से पूर्व नगर के मध्य में स्थित है। तालाब में खिले हुए कमल तो बहुत ही सुन्दर लगते है।

शरद् की चाँदनी रात में इस तालाब की शोभा अवर्णनीय हो जाती है ।

रानी तालाब के चारो ओर मन्दिर बने हुए है । उनमे 'कालिका देवी' का मन्दिर विशेष महत्वपूर्ण है । सामने पक्का घाट है । नर-नारियों के लिए अलग-अलग घाट बने हुए है ।

तालाब के मध्य में भी एक मन्दिर खंडहर के रूप में स्थित है । कहा जाता है कि तालाब-निर्माण के समय में ही इस मन्दिर का निर्माण हुआ था और शंकर जी की मूर्ति की स्थापना की गयी थी । किन्तु आज पूजा होने की बात तो दूर रही, मन्दिर ही शीघ्र धराशायी होने की प्रतीक्षा कर रहा है । मन्दिर की बनावट प्राचीन ढंग की है । चारो कोने मे भव्य कलश निर्मित है ।

दूसरी जनश्रुति यह है कि वर्तमान 'रानी तालाब' का निर्माण किसी महाराजा ने कराया था और किसी उत्सव के सिलसिले मे महारानी को भेट कर दिया था । मध्य मे बने हुए मन्दिर की नीव को देखने से ऐसा लगता है कि तालाब-निर्माण के पूर्व ही मन्दिर बन चुका था । कुछ भी हो, मन्दिर के कारण तालाब की शोभा चौगुनी हो गई है ।

राम सागर

रीवा नगर से पूर्व २ मील की दूरी पर 'बदराव' नामक छोटे-से गांव के समीप यह सरोवर स्थित है । इसका निर्माण रीवा के अखाड़ घाट के प्रसिद्ध तपस्वी महन्त श्री प्रेमदास जी ने कराया था और उसके उत्तर के भीट पर श्रीराम जी का मन्दिर बनवाया था । इसके बाद उसी गांव के निवासी पंडित गंगाप्रसाद जी ने तालाब तथा मन्दिर का जीर्णोद्धार कराया । देखने मे तालाब छोटा है, लेकिन महत्व-पूर्ण है । इस सरोवर के चारो ओर तालाब ही तालाब दिखायी देते है । ऐसा लगता है, जैसे राम सागर की शोभा बढ़ाने के लिए ही अलग-बगल के उनके सुन्दर सरोवरो का निर्माण किया गया है । तालाब अधिक गहरा है, जल हरा-हरा दिखायी देता है । इसमें कई तरह की मछलियां भी है । उत्तर की ओर छोटा-सा पक्का घाट है । इस स्थान से मछ-लियों की क्रीड़ा देखने योग्य है । मन्दिर में राम-लक्ष्मण-भरत-शत्रुघ्न तथा हनुमान जी की मूर्तिया है । तालाब के दक्षिण के भीट पर महन्त प्रेमदास की समाधि बनी हुई है।

पश्चिम की ओर चार फर्लांग पर 'चिरहुला' नामक गांव है, जहां हनुमान जी का प्रसिद्ध मन्दिर है । रीवा के बहुत से नागरिक प्राय. हर शनिवार और मंगलवार को दर्शन के लिए यहां पहुँचते है । आषाढ़ के प्रत्येक मंगल, शनिवार और पूर्णिमा को यहा बहुत बड़ा मेला लगता है ।

मदन सागर (जतारा)

बारहवी शताब्दी के आस-पास यशस्वी चन्देल राजा मदनवर्मन ने इस सरोवर का निर्माण कराया था । चारो ओर विशाल गिरि-मालाएं फैली हुई हैं । इस विस्तृत झील को देखकर ऐसा लगता है, जैसे स्वप्न देख रहे हों । जतारा को छोड़कर अन्यत्र कही ऐसा प्राकृतिक सौन्दर्य देखने को नही मिलता ।

इसका अपना अलग इतिहास है । बुन्देलखंड के सरोवरो मे यह सर्वश्रेष्ठ है । झील के मध्य मे 'मदन-भवन' बना हुआ है । उसे देखकर ऐसा लगता है कि महाराज मदन-वर्मन ने प्राकृतिक शोभा का आनन्द लूटने के लिए ही इस भवन का निर्माण कराया था । किन्तु आज अपार सुख प्रदान करनेवाला यह भवन धराशायी हो रहा है, उन कुशल शिल्पियों का कठिन परिश्रम सदा के लिये विलीन हो रहा है । भग्नावशेष होने पर भी तालाब की शोभा बढ़ाने में यह भवन अद्वितीय है ।

सरोवर से सटी ऊपर उठती हुई उन पर्वत-मेखलाओ को देखकर ऐसा लगता है कि वे मदन सागर के प्राकृतिक सौन्दर्य की प्रशंसा करने के लिये आकाश-मंडल मे पहुंचना चाहती हैं । मृत्यु-लोक से दूर रहनेवाले देवतागण भी ऐसे सुन्दर सरोवर के लिए तरसते है । आकाश के तारे सायंकाल से लेकर प्रात.काल तक उसी के सौन्दर्य को देखते रहते है । सचमुच इस अलौकिक सरोवर का निर्माण संसार को सुखी बनाने के लिए ही हुआ है ।

तालाब के समीप पहुंचते ही विविध पक्षियों का कोला-हल सुनायी पड़ने लगता है । बीच-बीच में मयूर की आवाज मन को आकर्षित कर लेती है । तीतर, बटेर, कुररी आदि पक्षियों का कलरव हृदय को जीत लेता है । सारस, हंस आदि कुछ ऐसे भी पक्षी हैं, जो हर समय तालाब मे डटे रहते है । तरह-तरह के रंग-बिरंगे पक्षियों के दर्शन होते है । जंगल से निकलकर झुड के झुड मृग, सामर, सूकर आदि तालाब की ओर दौडते हुए आते यदा-कदा दिखायी देते हैं । ऐसा लगता है, मानो प्रकृति ने उस सरोवर की शोभा बढ़ाने के

लिए उन वन्य पशुओं को भेजा हो। भय का नाम नहीं। दिन भर के थके तालाब के किनारे आकर वे भी क्रीड़ा करने लगते हैं। तालाब के सौन्दर्य का जिन्हें दर्शन करना हो, वे हनुमान टीले पर अवश्य चढ़ें और वह भी सूर्योदय या सूर्यास्त की सुहावनी वेला में। भगवान भास्कर की अरुणिम किरणों के पड़ने पर सरोवर की शोभा अवर्णनीय दृष्टिगोचर होती है। लाल-लाल पानी देखकर ऐसा लगता है, जैसे जलक्रीड़ा करनेवाली युवतियों के महावर छूट गये हों अथवा प्रकृति-सुन्दरी स्वयं स्नान करने आयी हो और उसके शरीर की आभा से पानी का रंग लाल हो गया हो।

यह सरोवर कवि-कलाकारों की कल्पनाओं को सजीव बना देता है। वन-उपवन की हरियाली, अगाध जल में उठती हुई लोल लहरें और चारु चन्द्र की चाँदनी की छटा तो अलग सुन्दर लगती है। ऐसा लगता है, मानो करोड़ों चन्द्र इस ताल में क्रीड़ा कर रहे हों। प्रकृति-प्रेमियों को इस सरोवर का एक बार अवश्य दर्शन करना चाहिए।

मदन सागर (अहार)

बुंदेलखंड में मदन सागर नाम से दो तालाब प्रसिद्ध है—एक जतारा का और दूसरा अहार का। दोनों ऐतिहासिक है। यह सरोवर टीकमगढ़ से १२ मील और बल्देवगढ़ से ४ मील की दूरी पर है। आवागमन के लिए कच्ची सड़क है। बरसात के अतिरिक्त अन्य समयों में लारी एवं मोटर द्वारा यात्रा की जा सकती है। 'अहार' गांव से निकलते ही तीन तालाबो के दर्शन होते है। बिना किसी से पूछे 'मदन सागर' को पहचाना जा सकता है।

'अहार' गांव के पास में स्थित तीन तालाबों में जो सब से बड़ा है, वही मदन सागर है। चारो ओर से जंगल घिरा है, बीच में रम्य सरोवर है। वस्तुतः मैदानी भूमि के सरोवर उतने रम्य नहीं होते, जितने जंगलों के मध्य के। विशाल पर्वत की चोटियों से कल-कल निनाद करनेवाले मनोहर जल-प्रपातों के अभाव में फैली हुई वनस्थली निर्जीव-सी मालूम होती है। उसे प्राणवान बनाने का काम सरोवर ही करते हैं। 'अहार' के आस-पास की वनस्थली जलाभाव से पूर्ण सौन्दर्य को प्राप्त न थी, इसलिए मदन सागर के निर्माता ने प्राकृतिक सौन्दर्य की अभिवृद्धि के लिए जंगलों के मध्य अमर कीर्तिवाही सरोवर का निर्माण कराया है। अनुमान है कि किसी समय 'अहार' वैभवशाली नगर था और उसी समय मदन सागर-जैसे सरोवर का निर्माण भी हुआ है।

बरसात में अहार और लड़वारी गांवों के बीच में स्थित तीनों तालाब अपनी-अपनी सीमा को लाँघकर एक हो जाते है। उस समय की शोभा और ही होती है। सरोवर का हँसता हुआ यौवन शान्तिनाथ जैन पाठशाला से दर्शनीय है। कोई भी ऋतु हो, तालाब की मंजु-मनोहर दृश्यावली यहीं से देखने योग्य होती है। प्रातःकाल की शोभा के लिए तो कहना ही क्या है। ज्यों-ज्यों सूर्य की किरणें फैलती जाती हैं, त्यों-त्यों सरोवर का सौन्दर्य भी निखरता जाता है।

नदनवारा ताल

यह तालाब टीकमगढ़ से उत्तर की ओर २६ मील की दूरी पर स्थित है। इसका निर्माण ओरछा-नरेश महाराज वीरसिंह देव (प्रथम) ने ही कराया था। जिस समय इस तालाब का निर्माण हो रहा था, उस समय शाहजहानी सिक्के चलते थे। किसी सौर (मजदूरी करनेवाली एक जाति) ने जब विक्रमी संवत् १९५६ में बांध के नजदीक जमीन खोदी, तब उसे 'शाहजहानी सिक्के' मिले। इससे यह प्रमाणित होता है कि तालाब के निर्माण-काल में ही ये सिक्के रखे गये होगे। इस ताल का नाम गांव के नाम पर है। 'नदनवारा' गाँव पहले पहाड़ी के ऊपर बसा था, जिसके चिह्न आज भी पाये जाते है।

यह ताल 'बारगी' नामक नदी को रोककर बनवाया गया है। कहा जाता है कि दो बार इस नदी ने ताल के बाध को तोड़ दिया था और तीसरी बार भी टूटने की आशंका थी। इसलिए श्रावण शुक्ल पूर्णिमा को महाराज वीरसिंह देव (प्रथम) ने स्वयं उस बांध पर शयन किया। रात में जब नदी की बाढ़ आयी, तब ऐसा लगा कि बांध टूट जायगा और राजा बह जायंगे। तब नदी ने देवी का रूप धारण करके स्वप्न दिया—"तुम यहां से हट जाओ, बांध टूट रहा है" महाराज देवी के बड़े भक्त थे। उन्हें सदा देवी जी के द्वारा स्वप्न होता और आगे आनेवाले कार्यों का संकेत मिलता था। उसी के अनुसार वे कार्य भी करते थे। नींद खुलने पर महाराज चिन्तित हुए। कुछ समझ में न आया। नदी का वेग देखकर ऐसा लग रहा था कि अभी मिनटों में बांध टूटता है। उन्होंने देवी जी से निवेदन किया—"मैंने अनेक बार आपकी आज्ञाओं का पालन किया है। जब-जब आपने

आदेश दिया, उसे शिरोधार्य किया ; लेकिन एक मेरी प्रार्थना आप भी स्वीकार कर लीजिये । मैं चाहता हूँ कि यह बांध बना रहे । टूटे नही । बड़े परिश्रम से हमने इसका निर्माण कराया है । इसके रहने से असंख्य पशु-पक्षी पानी पीयेंगे और मानव-समाज का भी उपकार होगा । इसलिए आप नदी को दूसरी ओर से ले जाइये ।"

राजा की विनम्र प्रार्थना सुनकर देवी का हृदय पिघल गया और उसने बांध न तोड़ना स्वीकार कर लिया । बांध से करीब ५० गज की दूरी से दो पहाड़ियों के बीच होकर नदी ने अपना मार्ग बना लिया और बहने लगी ।

'बारगी' की इस कृपा पर राजा बहुत प्रसन्न हुए और फूले न समाये । तभी से यह ताल लोक-रंजन कर रहा है ।

इस तालाब का क्षेत्रफल करीब १५ वर्गमील होगा । कहा जाता है कि आरम्भ में यह ताल बहुत बड़ा था, पचीसों मील के घेरा में फैला था । वर्तमान समय में रानीगंज, बिदारी आदि जो गांव बसे हुए हैं, वहां तक इस सरोवर का पानी फैला रहता था । समय की गति-विधि से यह कम हो गया, फिर भी बहुत बड़ा है । इसमें सिंघाड़ा अत्यधिक पैदा होता है । पूरे तालाब में कमल खिले रहते है । वर्षा-काल में बांध पर खड़े होने पर पानी ही पानी दिखायी देता है । पहाड़ियों से नीचे गिरती हुई जल-धाराएँ बहुत सुन्दर लगती है । दूर-दूर से पानी आकर इस सरोवर मे इकट्ठा हो जाता है और प्रत्येक प्राणी को प्रोत्साहित कर जन-समाज की सेवा करता है ।

वीर सागर

बुन्देलखंड की रियासतों में ओरछा का स्थान विशेष महत्वपूर्ण है । यहां के महाराजाओं ने प्राचीन काल से ही सरोवरों के निर्माण में यथेष्ट भाग लिया है । ओरछा के नरेशों में महाराज वीरसिंह (प्राचीन) बड़े प्रतापी हो गये हैं । उन्होंने केवल अपने राज्य के अन्तर्गत ही तालाबों का निर्माण नहीं कराया, अपितु आते-जाते जहां कहीं भी उन्हे तालाब की आवश्यकता प्रतीत हुई, वहीं उन्होंने सुन्दर सरोवरों का निर्माण कराया है । यही कारण है कि उनके नाम पर आज बहुत-से सरोवर लहरा रहे है ।

यह सागर फैली हुई गिरि-मालाओं के अधोभाग में स्थित है । इसके अगोर पर 'वीर सागर' नामक गांव बसा हुआ है । सुबह-शाम इस सरोवर का सौन्दर्य देखने योग्य होता है । सूर्य की सुनहली किरणों के पड़ने से उसकी आभा जानवर इस तालाब में पहुंचते है और पानी पीकर आनन्दित होते और तालाब के प्रति कृतज्ञता प्रकट करते है ।

सरोवर की हिलती हुई मंजु मनोहर लहरो से प्रसन्न होकर प्रत्येक प्राणी पुलकित हो उठता है । इसके आस-पास के वृक्षों मे बसेरा लेने के लिए दूर-दूर से तरह-तरह के पक्षी आते है और प्रति दिन नये-नये रूप दिखाते है । सारस, हंस और बगुला तो इस सरोवर से कभी नहीं हटते । इसका क्षेत्रफल ४ वर्गमील से कम न होगा । इसका निर्माण ओरछा-नरेश महाराज वीरसिंह देव (प्रथम) ने कराया था । उनकी कीर्ति आज भी लहरा रही है ।

धुबेला ताल

इस ताल का निर्माण महाराज चम्पतराय ने कराया था । छतरपुर जिले का महेवा ग्राम बहुत प्रसिद्ध है । इसके आस-पास की प्राकृतिक शोभा से मुग्ध होकर महाराजा ने इस स्थान में राजधानी बनायी थी । उसी समय इस ताल का भी निर्माण हुआ था । चारो ओर लम्बी गिरि-मालाएं फैली हुई है, इसलिए ताल की शोभा और भी बढ़ गयी है । ताल अधिक गहरा है, जिसमें उत्ताल तरंगें सर्वदा लहराती रहती है । विन्ध्य-प्रदेश-सरकार द्वारा सरोवर के पास ही धुबेला महल मे प्रदेश का अजायबघर सजाया गया है ।

वरुणा सागर

यह सरोवर तो इतना प्रसिद्ध है कि उसके नाम पर गाव बसा है । इस सरोवर का निर्माण ओरछा के उदोत सिह ने कराया था । इसका क्षेत्रफल करीब छः वर्गमील होगा । गगन की ओर उठती हुई पहाड़ियों के नीचे तालाब में भरा हुआ अगाध जल मन को मुग्ध कर लेता है । यह तालाब बहुत मजबूत है। कहा जाता है कि इसके जल में ऐसी जड़ी-बूटियों का सम्मिश्रण है कि इसमें स्नान करने पर पुराना ज्वर दूर हो जाता है । दूर-दूर के रोगी इसमें स्नान कर अपना कष्ट मिटाते है ।

सिन्दूर सागर

इतिहास-प्रसिद्ध कुडार का यह प्रमुख तालाब है । इसका निर्माण महाराज परिमलदेव ने कराया था और बाद में ओरछा-नरेश महाराज रुद्रप्रताप सिह ने जीर्णोद्धार कराकर बांध को अधिक मजबूत बनवा दिया । इस तालाब के भीटे पर सिद्धवाहिनी देवी का मन्दिर बना हुआ है । कहा जाता है कि ओरछा राज्य का मान-सम्मान इन्हीं देवी

भैसों की बलि चढ़ती थी, लेकिन राज्य-शासन की समाप्ति के बाद से वह बन्द कर दी गयी है ।

इस तालाब का निर्माण ओरछेश महाराज विक्रमाजित सिह ने कराया है। इसी के किनारे बल्देवगढ़ नामक नगरी बसी हुई है । इसी से लगा हुआ लछिमन ताल है। बरसात में इन दोनों तालों का पानी एक हो जाता है। बल्देवगढ़ का प्रसिद्ध किला भी इन्ही महाराज विक्रमाजित सिह का बनवाया हुआ है । इस किले के पश्चिमी द्वार के बाहर पहाड़ पर बनी हुई 'अल्हा मुंडा' कोठी पर से इस तालाब का सौन्दर्य देखने योग्य है । चारो ओर से पहाड़ियां घेरे हुई है । थोड़े से बांध से इस सरोवर का निर्माण हो गया है; क्योकि चारो ओर भीट नही बनवाना पड़ा है। पहाड़ियाँ ही भीटे का कार्य कर रही है । इस तालाब का बरसाती दृश्य यहां के निवासी तो देख पाते है, बाहर के बिरले ही यात्री ऐसे सौभाग्यशाली होंगे, जिन्होंने वर्षा-काल मे इस सरोवर के सुखद सौन्दर्य का आनन्द उठाया होगा ।

राम सागर (दतिया)

दतिया जिले मे, दतिया-बडौनी के बीच स्थित यह तालाब विन्ध्य-प्रदेश के बड़े तालाबो मे से है। तालाब का घेरा लगभग तीन मील की लम्बाई मे है । तालाब का निर्माण विशेष रूप से राजा-महाराजाओं एवं बाहर से आये अतिथियो के आखेट-क्रीड़ा-हेतु कराया गया था । सरोवर के मध्य मे एक सुन्दर भवन बना हुआ है। सन्ध्या समय जब नीले आकाश मे उड़ती हुई श्वेत बक-पंक्ति तथा अन्य पक्षी भवन के कंगूरों पर बैठ जाते है, तब ऐसा प्रतीत होता है, मानो किसी कुशल कलाकार ने बड़ी कुशलता के साथ उनको सजा दिया हो। हरी दूब पर किल्लोल करते हुए मृग-शावक देशी राजाओं की शिकार-प्रवृत्ति के भय से मुक्ति पाकर मानो आज के जनतन्त्र शासन का आनन्द लूटते रहते है । इस तालाब मे कमल और सिंघाड़ा अधिकता मे उत्पन्न होता है ।

कर्ण सागर

दतिया-नरेश श्री शुभकर्ण राव ने इस तालाब का निर्माण कराया था । निर्माण के समय इसमें देश भर की पवित्र सरिताओं का जल डाला गया था। इसकी परिधि लगभग दो मील होगी । किनारे पर घाट बने हुए है। किनारे पर स्थित भागीरथी की प्रतिमा अत्यन्त मनोहर है । इसके अतिरिक्त भी दतिया जिले मे लाला का ताल, तरन तारन आदि अनेक तालाब बने हुए है ।

धर्म सागर

पन्ना जिले मे धर्म सागर महत्वपूर्ण तालाब है । इस तालाब से नगर के कुओं को पर्याप्त पानी पहुंचता रहता है। कमलो की शोभा से इसकी सुन्दरता और भी बढ़ गयी है।

वस्तुतः विन्ध्य-प्रदेश मे सरोवरों की कमी नही है और ये सरोवर जन-सेवा के साथ-साथ लोक-रंजन भी कर रहे है।
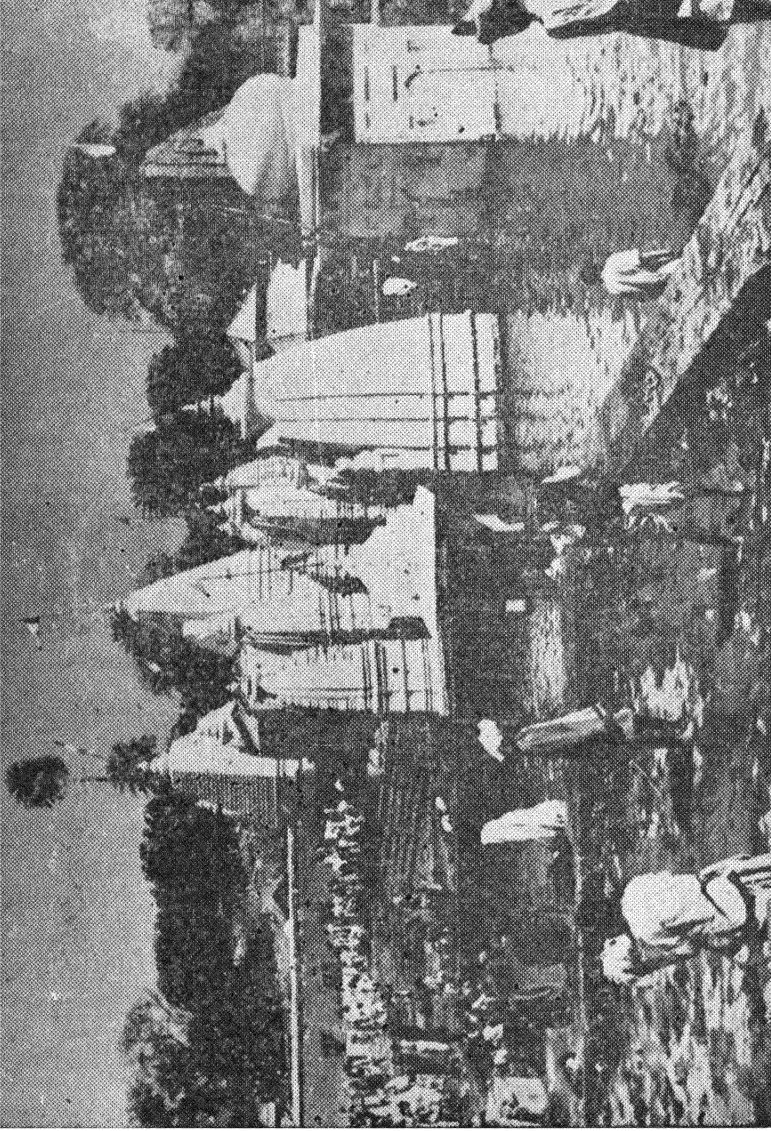
नर्मदा कुड मन्दिर . अमरकंटक

श्रीचन्द्र जैन

विन्ध्य-प्रदेश के तीर्थ

सुरासुरवंदित, यति-मुनि-चर्चित, भक्त-वृन्द-पूजित, दिव्य ज्ञान-आलोकित एवं पुण्यवारि-प्रक्षालित यह विंध्य-प्रदेश एक महान् तीर्थ है। विंध्य-धरित्री ने ही पुरातन काल से अपने गौरव को अक्षुण्ण रखा है। रत्नगर्भा विंध्य-धरा श्री और सरस्वती की आराध्य भूमि है। यहा का धार्मिक और सांस्कृतिक इतिहास विशेष महत्वपूर्ण है। वर्त्तमान विंध्य-प्रदेश बघेलखण्ड तथा बुन्देलखण्ड की कतिपय रियासतों के एकीकरण का रूप है। यह सारा प्रदेश देवालयो, स्तूपो, मठो, सर-सरिताओं एवं तीर्थ-स्थलों से परिपूर्ण हैं।

'चित्रकूट, ओरछौ, कलिंजर उन्नाव तीर्थ,
पन्ना, खजुराहो, जहां कीर्ति झुकि झूमी है।
जमुन, पहुज, सिन्धु, बेतवा, धसान, केन,
मन्दाकिनी पयस्विनी, प्रेम पाय घूमी है ॥
पंचम नृसिंह राव चंपतरा छत्रसाल,
लाला हरदौल भाव चाव चित चूमी है ॥
अमर अनन्दनीय असुर निकन्दनीय,
वन्दनीय विश्व में बुंदेलखंड भूमी है ॥
(स्व० घासीराम व्यास)

हिन्दू-तीर्थ

अमरकंटक--यह एक अखिल भारतीय प्रसिद्ध हिन्दू-तीर्थ है। रीवा से १६० मील और पेंड्रा रोड से १६ मील दूर यह तपस्या-भूमि प्राकृतिक सुषमा की अनुपम स्थली है। यहां के मंदिरों की स्थापत्य-कला अति प्राचीन और ऐतिहासिक है। प्रति वर्ष भारत के विभिन्न स्थानों से हजारों की संख्या मे शिव-भक्त यहां शिवरात्रि को आकर अपनी भक्ति को पावनतर करते हैं। नर्मदा और सोन का उद्गम-स्थल यह (आम्रकूट,अमरकंटक) तीर्थ पुराण-प्रसिद्ध एवं साहित्यिक गरिमा से परिपूर्ण है। यहां के दर्शनीय देवालय, प्रपात और स्थान ये है:--१ कर्णेश्वर, २ पातालेश्वर, ३ सिद्धेश्वर, ४ ओंकारेश्वर, ५ वगेश्वर, ६ केशव नारायण, ७ माधव नारायण, ८ नर्मदा कुड, ९ माई की बगिया, १० कबीरचौरा, ११ कपिल धारा, १२ दुग्धधारा, १३ पंचधारा, १४ सोनमुडा।

यहां की पावन गंगा नर्मदा की महिमा इस प्रकार है:

त्वदम्बुलीनदीनमीनदिव्यसम्प्रदायकं,
कलौमलौघभारवारिसर्वतीर्थनायकम् ।
सुमत्स्य कच्छनक्रचक्रचक्रवाकशर्मदे,
त्वदीय पादपंकजं नमामि देवि नर्मदे ।

स्मरणात् जन्मजं पापं, दर्शनेन त्रिजन्मजं ।
स्नानेन जन्म सहस्राख्यं, हन्ति रेवा कलौ युगे ॥
(नर्मदा माहात्म्यम्)

बांधवगढ़--प्राचीन भारतीय इतिहास में इसका उल्लेखनीय स्थान है। रीवा-उमरिया सड़क पर यह रीवा से ७५ मील दूर स्थित है। जाने का मार्ग कठिन है। इस गढ़ का महत्व पुराणो मे विशेष रूप से वर्णित है। किसी समय यह शैवो का महान् तीर्थ था। शेषावतार लक्ष्मण और उर्मिला की युगल मूर्ति यहाँ दर्शनीय है। यहा की शेषशायी भगवान् विष्णु की विशाल मूर्ति भक्तों के लिए एक आकर्षण है। नारद पंच पुराणान्तर्गत बाधवगढ विषयक कुछ श्लोक यहा उद्धृत किये जा रहे है, जिनमे इसकी धार्मिकता स्पष्ट हो जाती है:

"अद्भुतं चातुलं श्रुत्वा, मुदमाप शिवप्रिया ।
ये शृण्वन्ति पठन्तीदं माहात्म्यं बांधवस्य च ।
तेऽत्र सर्वेप्सितं प्राप्य, यास्यन्ति परमां गतिम् ।

नास्ति बांधवतः पुण्यं, नास्ति बांधवतः परम् ।
नास्ति बान्धवतो देवि ! पवित्रं पापनाशनम् ।
तत्र बेत्रवती गंगा बांधवस्योदरे वसत् ।
बांधवस्यान्तरे देवि ! सदा तिष्ठिन्ति देवताः ।

कहा जाता है कि इसे (बांधवगढ़) भगवान् रामचन्द्र के भ्राता श्री लक्ष्मण जी ने इन्द्र की सहायता से बसाया था। रीवा-नरेशों की यहां राजधानी थी। आज भी वे बांधवेश कहे जाते हैं।

अंधा-अंधी पर्वत--रीवा से १५ मील दूर दो सुन्दर पर्वत हैं। यहां एक सुन्दर सरोवर पहाड़ों को शीतल करता रहता है। कहा जाता है कि महाराज दशरथ के शब्दवेधी वाण से यहीं पर श्रवणकुमार की मृत्यु हुई थी। उसी घटना का स्मरण करानेवाला श्रवण डोंगरी नामक एक तीर्थ-स्थान सतना जिले में भी बताया जाता है। सोन नदी पर एक दशरथ घाट है। यह भी इसी पौराणिक कथा की ओर संकेत करता है।

गृद्धकूट--ब्यौहारी (तहसील ब्यौहारी, जिला शहडोल) के समीप यह तीर्थ-क्षेत्र जटायु की राम-भक्ति को आज भी उच्च स्वर से बता रहा है। मकर संक्रांति को यहां मेला भरता है। एक चट्टान पर अंकित रावण-गृद्ध का युद्ध-चित्र भारतीय संस्कृति का उत्तम नमूना है। गिधैला नामक एक स्थान अमरपाटन तहसील में भी बताया जाता है।

मारकंडेय आश्रम--सोन नदी के किनारे (दुअरा ग्राम, जिला शहडोल के समीप) पर स्थित यह तपस्या-भूमि महर्षि मारकंडेय की साधना-स्थली है। यहां पर भगवान् शंकर का देवालय भी एक आकर्षण है। मकर संक्रांति को यहां मेला लगता है।

वाण गंगा--यह (सोहागपुर, जिला शहडोल) स्थल महाभारत की कथा से सम्बन्धित है। कहा जाता है कि गुप्तवास के समय कुन्ती की प्यास बुझाने के लिए अर्जुन ने वाण चलाकर पाताल गंगा की धारा को इसी स्थान पर प्रकट किया था। शिवरात्रि को यहां मेला लगता है। इस गंगा के पावन जल का आचमन कर के भक्त लोग आत्मिक आनन्द का अनुभव करते हैं। सोहागपुर का विराट मंदिर दर्शनीय है। मंदिर के उच्च शिखरों पर अंकित मूर्तियां शिल्प-कला की अलौकिकता को प्रमाणित करती हैं।

चित्रकूट--भगवान् रामचन्द्र के पावन चरण-रज से पवित्र भारत-प्रसिद्ध यह स्थान सचमुच विध्य-प्रदेश की महती गरिमा का चिह्न है। मानिकपुर-झांसी रेलवे पर स्थित चित्रकूट स्टेशन से ८ मील एवं सतना से १६० मील दूर मन्दाकिनी नदी के तट पर अवस्थित यह तीर्थ महात्मा तुलसीदास की राम-भक्ति का स्मरण कराता रहता है। भरत कूप तथा कर्वी रेलवे स्टेशनों से भी चित्रकूट जाया जा सकता है।

दीन, त्रस्त तथा विपत्तिग्रस्त को सदैव इस तीर्थ ने सहारा दिया है। मर्यादा पुरुषोत्तम राघवेन्द्र ने यहीं पर अपने वनवास के दिनो को व्यतीत किया था। विरहाकुल यक्ष को इसी चित्रकूट ने आश्रय प्रदान किया था। महाराजा नल ने अपने दुर्दिनों में इसी पुण्य तीर्थ को अपनाया था। शरणागत वत्सलता यहां की आदर्श है :

चित्रकूट में रमि रहे, रहिमन अवधनरेश ।
जापर बिपदा परति है, सो आवत यहि देश । 'रहीम'

यहां के कुछ दर्शनीय स्थान ये हैं :

१ बाकेसिद्ध, २ कोटि तीर्थ, ३ देवांगन, ४ हनुमान धारा, ५ प्रमोद वन, ६ जानकी कुंड, ७ सिरसावन, ८ अनुसूया जी, ९ स्फटिक शिला, १० गुप्त गोदावरी, ११ रामशय्या, १२ भरत कूप, १३ राम कुंड, १४ लक्ष्मण कुड, १५ खटखटा चोर। रामनवमी और दीपावली को यहां मेला लगता है। तीर्थ-यात्रियों की सदैव यहां भीड़ लगी रहती है।

शारदा देवी का मंदिर--मैहर (जिला सतना) शहर के समीप कैमूर रेंज की पहाड़ी पर भगवती शारदा का यह प्राचीन एवं चमत्कारपूर्ण मंदिर देवी-उपासकों के लिए महत्त्वपूर्ण है। यह देवालय चन्देल-युगीन है। ३६० सीढ़ियों की चढ़ाई भक्त-हृदय को उल्लसित कर देती है। पुरातत्ववेत्ताओं की दृष्टि में यह देवी-तीर्थ खजुराहो के कतिपय प्राचीनतम मंदिरों से भी पुरातन है। रामनवमी के अवसर पर यहां विशाल मेला लगता है।

बालाजी--भगवान् सूर्यदेव का यह (उन्नाव, जिला-दतिया) प्रख्यात मंदिर हिन्दुओं का पावन तीर्थ है। दतिया से ११ मील पूर्व उन्नाव नामक एक ग्राम है। इस गांव

की विभूति यही मदिर है। झासी से यह पुण्य-स्थल ७ मील की दूरी पर स्थित है। यहां की अर्चना-वन्दना कुष्ठ रोग से मुक्ति दिलाती है। प्रत्येक रविवार को यहां भक्तो की भीड़ लगती है।

सेंवढ़ा--दतिया से ४० मील दूर यह एक प्रसिद्ध हिन्दू-तीर्थ है। सेवढ़ा के प्रपात को आज-कल लोग सनकुआ के नाम से पुकारने लगे है, जो सन्त कूप से ही बिगड़कर बन गया है। आदिकाल मे प्रजापति ब्रह्मा के पुत्र सनत्कुमारादि को जब अनेक स्थानों पर तपस्या करने पर भी शांति न मिली, तब उन्हे उस स्थल पर तपस्या करने का उपदेश दिया गया।

आज भी सनकुआ क्षेत्र मे स्नान करने के लिए सहस्रों व्यक्ति पुण्य पर्वो के अवसर पर यहा आते है।

भीम कुंड--बिजावर (जिला छतरपुर) मे बीस मील दूर दक्षिण दिशा मे यह निर्मल जल का कुड धार्मिकता का स्रोत है। कहा जाता है कि यह कुण्ड भीम की भारी गदा से बना था। मकर संक्रांति को यहा मेला लगता है।

जटाशंकर--भगवान् शिवशंकर की पावन स्मृति का चिह्न यह स्थल बिजावर के समीप है। यहां के स्वच्छ जल से परिपूर्ण कुण्ड दर्शनीय है। यह सलिल चर्मरोग के लिए चमत्कारपूर्ण औषधि है। छतरपुर जिले के प्रसिद्ध तीर्थो मे जटाशकर का विशिष्ट स्थान है। मकर संक्रांति, ग्रहण और अमावस्या को यहाँ मेला लगता है।

प्राणनाथ मंदिर--पन्ना-नरेश महाराजा छत्रसाल के धर्मगुरु महात्मा प्राणनाथ का यह मदिर अपनी सुन्दरता के लिए प्रसिद्ध है। प्राणनामी धर्म के माननेवालो के लिए यह देवालय तीर्थ-तुल्य है। यह पन्ना नगर के मध्य मे स्थित है और पन्ना नगर की प्रसिद्धि इस मदिर से भी है।

पाण्डव प्रपात--पन्ना-छतरपुर सड़क पर यह सुन्दर जल-प्रपात दर्शनीय है। यहा पर कुछ गुफाए भी है, जो 'पाण्डव गुफाए' के नाम से प्रसिद्ध है। यह पन्ना का शिमला कहा जाता है। कहा जाता है कि पाण्डवो ने इसी स्थल पर तपस्या की थी और अपने गुप्त-वास के दिन काटे थे। मकर संक्रांति को यहा मेला लगता है।

वृहस्पति कुंड--पन्ना नगर से करीब पच्चीस मील की दूरी पर स्थित यह कुड पाण्डवों की स्मृति को जीवित करता रहता है। सोमवती अमावस्या को यहां मेला लगता है। इस दिन इस कुड मे स्नान करना धार्मिक महत्व रखता है। मनुष्यों का विश्वास है कि इस कुड का जल बुद्धिवर्द्धक है। सोमवती अमावस्या को पाण्डवों ने इस कुड मे स्नान करके स्वय को पुण्यवान् माना था।

बौद्ध-तीर्थ

गुर्गी--रीवा-गुढ़ मार्ग पर रीवा से १० मील दूरी पर स्थित यह स्थान एक समय धार्मिक भावनाओ की साकार मूर्ति था। यहा पर प्राप्त मंदिरों एवं मठो के भग्नावशेष वास्तु-कला के सुन्दर उदाहरण है। यहां कुछ बौद्ध-स्तूप भी प्राप्त हुए है, जिनसे अनुमान किया जाता है कि प्राचीन काल मे यह स्थान बौद्ध-तीर्थ था।

भूमरा--यह नागौद से १० मील दूर दक्षिण की तरफ स्थित है। यहा के भारशिव-कालीन प्राचीन स्मारक दर्शनीय है।

भरहुत--भरहुत ग्राम सतना के समीप उंचेहरा से ६ मील उत्तर-पूर्व में स्थित है और वहां सतना तथा उँचेहरा के बीच स्थित लगरगवां स्टेशन से पहुंचा जा सकता है। यहा शुगकालीन बौद्ध-स्तूप है, जिसकी रचना साँची के विशाल स्तूप-जैसी ही थी। यह एक बौद्ध-तीर्थ है।

जैन-तीर्थ

सोनागिरि--यह एक प्रसिद्ध जैन-तीर्थ है। यह दतिया (बुन्देलखंड) से ७ मील और सोनागिरि (ग्वालियर-झांसी रेलवे लाइन पर) स्टेशन से २ मील दूर है। इस श्रवणगिरि या स्वर्णगिरि (सोनागढ़) पर ७७ जैन-मंदिर हैं। भगवान् चन्द्रप्रभु का विशाल मंदिर दर्शनार्थियों से भरा रहता है। इस स्थान से करोड़ों मुनियो ने मुक्तिलाभ किया है। नारियलकुड वजिनी शिला यहा दर्शनीय है। यहां चैत वदी १ से ५ तक मेला भरता है।

नग अनंग कुमार सुजान। पाच कोड़ि अरु अर्धप्रमान॥
मुक्ति गए सोनागिर शीश। ते बदौं त्रिभुवन के ईश॥

द्रोण गिरि (द्रोणाचल)--छतरपुर जिला मे यह एक जैन-तीर्थ है। सेंधपा नामक ग्राम के समीपस्थ इस पावन गिरि के दर्शनार्थ चैत सुदी ८ से १४ तक जैनों की भीड़ लगी रहती है। पर्वत पर २४ जिनालय है। यह गिरि मुनिवर गुरुदत्त का मुक्ति-स्थान है।

'फल होड़ी बड़गांव अनूप। पश्चिम दिशा द्रोणगिरि रूप॥
गुरुदत्तादि मुनीश्वर जहा। मुक्ति गए बन्दौं नित तहां।'।

यहां का मान-स्तम्भ दर्शनीय है।

नैना गिरि--जिला छतरपुर में यह एक जैन-तीर्थ है। यह मुनिराज श्रीवरदत्त का मोक्ष-प्राप्ति-स्थल है। पर्वत पर २५ सुन्दर जैन-मंदिर हैं। कार्तिक सुदी ८ से १५ तक मेला भरता है। सेन्ट्रल रेलवे के प्रसिद्ध स्टेशन सागर से यह पावन तीर्थ ३० मील दूर है।

पपौरा--टीकमगढ़ से कुछ ही दूर स्थित यह पवित्र क्षेत्र जैनियों का तीर्थ है। यहां ९० जिनालय हैं। यहां प्रति वर्ष कार्तिक सुदी १४ को मेला भरता है। यहां के जैन-मंदिर स्थापत्य-कला के आधार पर प्राचीन हैं।

अहार--टीकमगढ़ से १२ मील दूर अहार नामक ग्राम है। इस गांव से ९ मील आगे एक निर्जन स्थान है। यहां पर तीन जिनालय हैं। परम पूज्य भगवान् शान्तिनाथ की २१ फुट ऊंची प्रतिमा अत्यन्त मनोज्ञ और दर्शनीय है। यहां पर खंडित जैन-मूर्तियों की संख्या अत्यधिक है। यह एक जैन-तीर्थ है और अपना ऐतिहासिक महत्त्व रखता है।

मुसलमान-तीर्थ

मुकुन्दपुर--अमरपाटन तहसील जिला सतना, में यह एक इतिहास-प्रसिद्ध स्थान है। यहाँ की मदारशाह की दरगाह मुसलमानों के लिए एक तीर्थ है। कहा जाता है कि यहां पर अकबर द्वितीय का जन्म हुआ था।
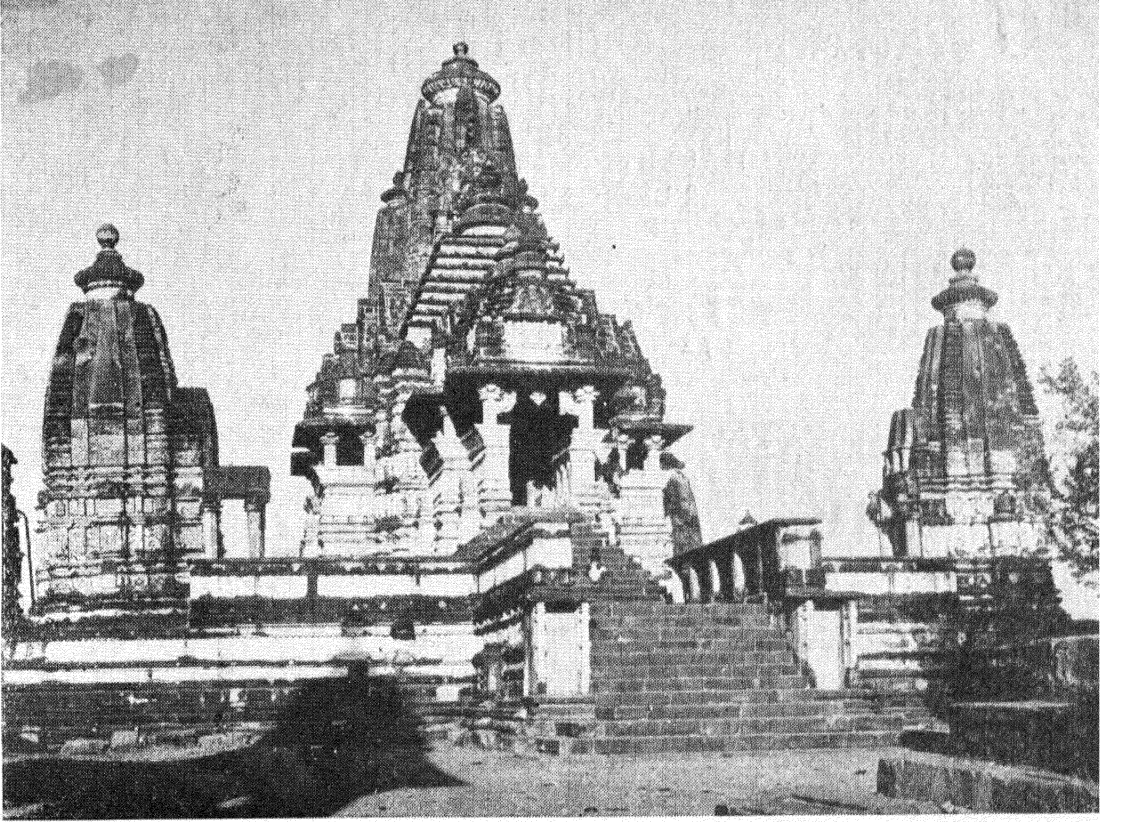
विश्वनाथ मन्दिर : खजुराहो

इतिहास-खण्ड

कुन्ती देवी अग्निहोत्री

प्रागैतिहासिक विन्ध्य-प्रदेश और उसके आगे

विन्ध्य-प्रदेश का प्राचीन इतिहास उतना ही महत्वपूर्ण एवं मौलिक है, जितना किसी भी सभ्य और सुसंस्कृत देश का हो सकता है। प्रागैतिहासिक काल के अनेक अवशेष इस भूमि पर बिखरे पड़े हुए हैं। गिजवा की पहाड़ी की एक गुफा मे गैरिक रंग से रँगे हुए भित्ति-चित्र, जिसमें शिकारी और हिरन के छाया-चित्र उभरे हुए है, बड़े ही महत्वपूर्ण हैं। न जाने कब के बने हुए ये चित्र आज भी प्रागैतिहासिक-कालीन संस्कृति का परिचय दे रहे हैं। सिलहरा (प्राचीन नाम शिलागृह) की गुफाओ मे भी इसी प्रकार के चित्र पाए गए हैं। माँड़ा की गुफायें रामायणकालीन इतिहास की आज भी साक्षी है। गृद्धकूट का प्राचीन स्थान आज भी महत्वपूर्ण है। इस प्रदेश मे जो प्राचीन अवशेष प्राप्त हुए है, वह देवरा (बिजावर राज्य) के निकट शिला-भित्तियों पर की गई प्रागैतिहासिक-कालीन चित्रकारी है, जो गिजवा पहाड़ी की गुफा की शिला-भित्तियों पर बने हुए चित्रों के अनुरूप ही है। गैरिक रग से बने हुए ये चित्र मानव-प्रकृति की प्राचीनतम अनुभूतियों के साक्षी है। देवरा की शिला-भित्तियों पर बने हुए चित्रों में पशुओं का प्रदर्शन किया गया है। पास ही आखेटिक अवस्था में मानव-चित्र भी है। इस प्रकार की चित्रकारियों की परिगणना ऐतिहासिकों के मतानुसार उत्तर-पाषाण-युग मे की जाती है। पीतल-युग के अवशेष भी इस प्रदेश में प्राप्त हुए है, जो आजकल धुबेला-संग्रहालय मे देखे जा सकते है।

रामायण-काल मे यह प्रदेश आर्य्य-संस्कृति का प्रधान केन्द्र था। राज-विभाजन के अनुसार शत्रुहन के पुत्र शत्रुघाती को विदिशा का राज्य प्राप्त हुआ था, जिसकी राजधानी कुशावती नगरी केन नदी के किनारे पर थी। महाभारत-कालीन संस्कृति इस प्रदेश के समस्त भू-भाग में बिखरी हुई है। महाभारत-काल में यह देश अनेक जनपदों मे बंटा हुआ था। उत्तरी भू-भाग पर कारुष जाति का शासन था; वज्रदन्त पराक्रमी शासक था। दक्षिणी भू-भाग विराट संघ मे शामिल था। विराट संघ का प्रबल शासक बसन्त था, जिसने महाभारत के युद्ध में भी भाग लिया था और जिसे जीतने के लिए भीम को चढ़ायी करनी पड़ी थी। विराटपुरी (वर्तमान सोहागपुर) विराट संघ की और कारुषपुरी (वर्तमान कर्वी-बादा) कारुष राज्य की राजधानी थी। उस समय विराट संघ मत्स्य देश के अन्तर्गत था (महाभारत भीष्मपर्व, अध्याय १४)। तत्कालीन अवशेष धवल गुफा (वर्तमान धौरखोह—नँदिया स्टेशन से ५ मील उत्तर), कुन्ताहलपुर (वर्तमान कोंड़िया—नँदिया स्टेशन से ४ मील दक्षिण), पाली आदि स्थानों मे बिखरे पड़े है। सोहागपुर के पास महाभारतकालीन बहुत बड़ी सामग्री भूगर्भ में सोई पड़ी है, जिसका परीक्षण आज तक नही हो सका।

रामायण और महाभारत-काल के पश्चात् बौद्ध-काल आता है। उस समय भारत के छः भौगोलिक भाग थे, जिसमें यह प्रदेश मज्झिम प्रान्त मे शामिल था। इसी कालमें शाम्पक नामक एक बौद्ध ने बागुडा प्रदेश में भगवान बुद्ध के बाल और नाखून से स्तूप का निर्माण कराया था। वरदावती नगर (वर्तमान भरहुत) मे स्तूप का निर्माण हुआ था, जिसके अवशेष अब भी है। इसी काल मे केवती (वर्तमान क्योटी) स्थान पर भी एक स्तूप का निर्माण हारीत के पुत्र शौनक ने कराया था। यह स्तूप महाना नदी के थपेड़ों के कारण अस्तित्वहीन हो चुका है। इस स्थान पर पाली भाषा में एक प्राचीन शिलालेख भी एक गुफा मे है, जिसमे शौनक द्वारा

एक पुखरनी (छोटी तलैय्या)-निर्माण का वर्णन आया है।

ईसा से ३३० वर्ष पूर्व मौर्य साम्राज्य का प्रारम्भ हुआ। महान् प्रतापी नरेश अशोक ने इस प्रदेश में अनेक विहारों का निर्माण कराया था। गोलकी मठ (वर्तमान गुर्गी) का विहार बहुत बड़ा था, जिसमे हजारों भिक्षु और भिक्षुणियां रहा करती थीं। कौशाम्बी प्रान्त मे इस प्रदेश की समस्त भूमि शामिल थी। शकरगढ़ (नागौद राज्य) मे भी बौद्ध-विहार के अवशेष पाए गए हैं। भिलसा से कौशाम्बी को जो राजपथ जाता था, वह बरदावती (भरहुत) नगर से होकर ही जाता था। प्रसिद्ध यूनानी इतिहासज्ञ टाल्मी ने भी अपने ऐतिहासिक मानचित्र में इस नगर का नाम बरदाओतिस लिखा है। यह बरदावती का यूनानी अनुवाद है। कौशाम्बी के राजा प्रसेनजित के पुरोहित ने बावरी वृत्तान्त मे इसका नाम बलगेवती लिखा है।

मौर्यो के बाद इस प्रदेश में ईसा से १२६ वर्ष पूर्व शुगवंशी शासकों का अधिकार हुआ। पुष्यमित्र इस वंश का प्रथम सम्राट् था। इस वंश के राजाओ द्वारा भी बरदावती नगर का समय-समय पर संस्कार हुआ और स्तूप का भी जीर्णोद्धार हुआ। इस समय के अनेक शिलालेख भरहुत मे प्राप्त हुए है। १५ वर्ष पूर्व विक्रमी सम्वत् तक इस वंशवालों का आधिपत्य इस भू-भाग पर रहा।

शुगवंशी राजाओं के बाद इस प्रदेश मे नाग-राजसत्ता का विकास हुआ। नाग लोग यादववंशी क्षत्रिय थे। लगभग ९०० वर्षो तक इनका राज्य विदिशा में स्थिर रहा; किन्तु शकों आदि के आक्रमण से इन्हें विक्रम सदी पहली में विदिशा से हटना पड़ा। इन लोगों ने विदिशा से हटकर किलकिला नदी के किनारे राज्य की स्थापना की। उस समय इनकी राजधानी नागावध (वर्तमान नागौद) मे स्थापित हुई। बनजरिया के पास एक नागकालीन मूर्ति मिली है, जिसमे एक पत्थर पर दो नाग-मूर्तियों के बीच में शिव-मूर्ति अंकित है। नाग शैव मतावलम्बी थे। भागवत महापुराण के द्वादश स्कन्द, वायु-पुराण, विष्णु पुराण आदि ग्रन्थों में इनके सम्बन्ध में बहुत बड़ी ऐतिहासिक सामग्री है। वि० सं० ५०-८० के बीच इनके इस राज्य पर भी शकों का बहुत बड़ा आक्रमण हुआ। उस समय इन लोगों ने जंगलों में छिपकर हिन्दू-संस्कृति की रक्षा की। इतना ही नहीं, इन लोगों ने १८ आटविक राज्यों की भी स्थापना की। शिशु नन्दी के राज्य-काल के ८ शिलालेख मिलहरा (कोतमा स्टेशन से ७ मील पूर्व शहडोल) स्थान मे प्राप्त हुए है।

वि० सं० १३७ से १९७ तक इन लोगों ने जंगलों मे अपना समय बिताया। शिव की अनन्य कृपा से इनका पुनः उत्थान हुआ। इन्होंने बढ़कर गंगा-यमुना के बीच तक की भूमि अपने अधिकार मे कर ली। शकों को इन्होंने बुरी तरह से पराजित किया। उसी समय से नागवंशियों ने अपना नाम 'नवनाग' रखा। शिवोपासक होने के कारण इनका नाम भारशिव भी हुआ। भारशिव का अर्थ शिव का भार ढोनेवाला नन्दी भी होता है। उस समय उन्होंने जिन इमारतों या शिवालयो का निर्माण कराया, उनके द्वार पर गंगा-जमुना की मूर्तियों से खुदी चौखटे भी लगवायी। भुमरा (नागौद राज्य) का शिवालय इसी काल का अमर अवशेष है, जिसका पता प्रसिद्ध इतिहासज्ञ श्री राखालदास बनर्जी ने वि० स० १९७७ मे लगाया था। बैजनाथ (रीवा से ८ मील सतना रोड पर) और नचना कुठरा (अजयगढ़) के शिवालय इसी काल के है। नचना कुठरा का शिवालय नागकालीन स्थापत्य-कला का अद्भुत उदाहरण है। उसमे शिव-पार्वती के शिखरो पर कैलास पर्वत का दृश्य अंकित किया गया है। मैहर तहसील के पियारा गाव मे कुम्भार का मठ भी इसी स्थापत्य-कला का अवशेष है।

उस समय इनकी इस प्रदेश मे दो राजधानिया थी। एक थी भरहुत मे। भरहुत का शुद्ध नाम 'भार-मुक्त' है। दूसरी राजधानी 'भरगढ' (वर्तमान बरगढ) मे थी। नवनाग (वि० सं० १९७-२२७) इस वंश का महान् प्रतापी राजा था। इसी ने इस वंश का उत्थान किया। यह इस प्रदेश मे इस जाति का प्रथम शासक था। इसके बाद वीरसेन नाग (वि० स० २२७-२६७) हुआ, जिसने मथुरा तक का भूभाग अपने अधिकार मे कर लिया था (विष्णु पुराण—"नवनाग पद्मावत्यां कान्तिपुर्याराजाम् मथुरायां")। हयनाग, त्रयनाग, वहिनाग, चरजनाग और भवनाग (वि० स० २६७ से ३७२ तक शासन करते रहे। भवनाग का उत्तराधिकारी उसका दौहित्र रुद्रसेन वाकाटक (हुआ भारशिवानां महाराजा श्री भवनाग दौहित्रस्य। गौतमी पुत्रस्य वाकाटकाना महाराजा रुद्रसेनस्य"—वायु पुराण--९९।३७०-३७१) और इस

तरह भारशिवों की सत्ता वाकाटक राज्य में परिवर्तित हो गई।

वाकाटक-वंश का उद्भव सन् २५५ से हुआ। पहले ये साधारण कुल के थे; किन्तु इस वंश के प्रथम पराक्रमी व्यक्ति विन्ध्यशक्ति ने एक छोटे-से राज्य की भी स्थापना कर ली। क्रमशः इसका प्रभाव समस्त विन्ध्य-भूमि पर हो गया। इसने अपना नाम विन्ध्यशक्ति रखा। वास्तव में इसका नाम भीमसेन था। इसने अपने समय मे समस्त वर्तमान बघेलखण्ड प्रदेश पर अपना प्रभुत्व जमा लिया था। इसका लिखाया हुआ एक शिलालेख गिजवा पहाड़ी (ब्योंथर तहसील) की एक गुफा मे और दूसरा शिलालेख बान्धवगढ के किले की एक चट्टान पर है। कुछ समय तक तो ये लोग नागवंशी राजाओं के सामन्त थे, बाद मे स्वतन्त्र हो गए। इस तरह इनके राज्य की परम्परा तीन रूपों मे पाई जाती है—(१) वाकाटक स्वतंत्र साम्राज्य-काल, (२) गुप्तकालीन वाकाटक साम्राज्य-काल, (३) गुप्तों के बाद वाकाटक साम्राज्य-काल। सन् ३८५ मे वाकाटक गुप्तो के प्रभाव मे आये और पांचवीं शताब्दी के मध्य तक ये उनके आश्रित रहे।

प्रारम्भ मे वाकाटकों की राजधानी कोलकिल (वर्तमान गुर्गी) स्थान मे थी। अन्तिम दिनों मे इनकी राजधानी बुन्देलखण्ड मे चनका में, जिसे काचन भी कहा जाता है, थी। वाकाटकों के उद्भव-काल मे इनके राज्य का विस्तार मध्य-प्रदेश की अधिकाश भूमि पर भी था। वाकाटक भी शिवोपासक थे। इन लोगों ने नचना कुठरा के शिव-मठों का जीर्णोद्धार कराया। गुप्तों और वाकाटकों के बीच संघर्ष भी हुआ था और सीमा-निर्धारण के लिए एक पत्थर भी गाड़ा गया था। यह स्थान थादी पथार (ठाढ़ी पाथर) के नाम से भूमरा (नागौद राज्य) के पास है। इस पत्थर पर वाकाटकों का लिखाया हुआ एक शिलालेख भी था। जसो के पास दुरेह गाव में भी इसी प्रकार का एक शिलालेख है, जिसमे 'वाकाटकानाम्' लिखा हुआ है। इस स्थान पर जो ईंटें खुदाई मे मिली है, उनमे भी 'वाकाटकानाम्' लिखा हुआ है।

शिवोपासक होने पर भी इनकी उपासना भिन्न-भिन्न रूप मे थी। रुद्रसेन द्वितीय की स्त्री प्रभावती गुप्त थी, जो वैष्णव-मतावलम्बी थी। इसी समय मे वाकाटकों का मत वैष्णव हो गया। वाकाटकों ने अपने साम्राज्य-काल मे तीन बड़े काम किये—(१) भारतवर्ष मे सार्वभौम सत्ता की कल्पना की नींव डाली, (२) हिन्दू-संस्कृति का पुनरुत्थान किया और (३) सामाजिक जीवन का क्रमिक विकास किया। इस वंश मे विन्ध्यशक्ति (सन् २५५–२७५), प्रवरसेन प्रथम (सन् २७५–३३५), रुद्रसेन प्रथम (सन् ३३५–३६०), पृथ्वीसेन प्रथम (सन ३६०–३८५), रुद्रसेन द्वितीय (सन् ३८५–३९०), दिवाकर सेन की संरक्षिका प्रभावती गुप्त (सन् ३९०–४१०), प्रवरसेन द्वितीय (सन् ४१०–४४०), नरेन्द्रसेन (सन् ४४०–४६०), पृथ्वीसेन द्वितीय (सन् ४६०–४८०), हरिसेन (सन् ४८० से अंत तक) शासक हुए।

प्रवरसेन पर सुप्रसिद्ध गुप्त-सम्राट् समुद्रगुप्त ने आक्रमण किया और उसे पराजित करने के लिए उसने अमरकण्टक और रोहतासगढ के जगल को छान डाला था। प्रवरसेन का एक शिलालेख वि० सं० ३९२ (वाकाटक-राजकाल के ८०वे वर्ष) का बान्धवगढ मे पाया गया है। रुद्रसेन वि० सं० ४०१ मे कौशाम्बी के युद्ध मे गुप्तों से पराजित हुआ था। इसी समय से वाकाटको की शक्ति का ह्रास होने लगा था। प्रवरसेन द्वितीय (सन् ४१०–४४०) के समय में गुप्तों और वाकाटको मे आपस मे मेल हो गया। इसके दिये हुए तीन दानपत्र भी प्राप्त हुए है।

जिस प्रकार इस प्रदेश के उत्तरी भाग मे नागों, वाकाटकों की सत्ता थी, उसी प्रकार दक्षिणी भाग मे मेकल और अमरकण्टक के बीच मे पाण्डवों की भी एक सुदृढ सत्ता थी, जिसे मेकल प्रदेश कहा जाता था। पाण्डव जाति के क्षत्रिय थे। पहले इनका राज्य गंगा-जमुना के बीच में था, किन्तु गुप्तों के उत्थान के कारण इनकी सत्ता वहां से समाप्त हुई और इन लोगों ने अपनी सत्ता मेकल प्रदेश में स्थापित की। ये वैष्णव-मतावलम्बी थे। इनका एक दानपत्र बम्हनी (जिला शहडोल) गांव मे प्राप्त हुआ है। भागवत महापुराण के भी द्वादश स्कन्द मे इस प्रदेश के राजाओ का वर्णन आया है। इन्द्रबाला (वि० सं० ३८२–४०७), नन्नादेव (वि० सं० ४०७–४३२), तीवरदेव (वि० सं० ४३२ से) तथा जयाबाला, वत्सराज इस प्रदेश के प्रमुख शासक हो गए है।

भारत के इतिहास में गुप्त-साम्राज्य वि० सं० ३९७ से ५५७ तक पाया जाता है। वि० सं० १३७ से १७७ तक कुशानों की भी भारत के इतिहास मे एक प्रबल राजसत्ता थी। कनिष्क इस वंश का महान् प्रतापी शासक था। कनिष्का-

कालीन कुछ सिक्के रीवा के किले के प्रांगण में एक नींव खोदते समय मिले थे। मऊ में कुशानों के उपास्य देव सूर्य की एक विशाल मूर्ति है। इससे स्पष्ट होता है कि इस प्रदेश में भी कुशानों का आधिपत्य किसी-न-किसी रूप में अवश्य था। ऐतिहासिक घटनाओं का कोई क्रम नहीं मिलता। मगध में गुप्तों का उत्थान वि०सं० ३९७ से हुआ। चन्द्रगुप्त प्रथम इस वंश का प्रथम और पराक्रमी शासक था। इसने गुप्त-साम्राज्य की स्थापना कर उसका अच्छा विस्तार किया। चन्द्रगुप्त के बाद वि० स० ३९७ में समुद्रगुप्त शासक हुआ। इसने इस प्रदेश में दो बार चढ़ाई की थी। दूसरी चढ़ाई वि० सं० ४०२–४०३ में कुराल (सतना से ९ मील आगे कोलार) पर हुई। इसी समय से वाकाटक गुप्तों के अधीन हुए।

गुप्त-सम्राट स्कन्दगुप्त (वि० सं० ५१२–५२४) का लिखाया हुआ एक शिलालेख वि० सं० ५१८ (गुप्त सं० १४१) का सुपियागाव (हुजूर तहसील) में मिला है। इस प्रदेश के वाकाटक, उच्छकल्प और परिव्राजक गुप्त सम्राटों के अधीन थे।

वि० सं० ४५७ के आसपास इस प्रदेश के मध्य भाग में उच्छकल्पों की राजसत्ता की स्थापना हुई। ओघदेव इस वंश का प्रवर्तक था। इस वंश के चौथे शासक व्याघ्रदेव ने वाकाटकों की अधीनता स्वीकार की थी। इन शासकों में जयनाथ और शर्वनाथ के शासन-काल के कई एक दानपत्र प्राप्त हुए हैं। इनकी राजधानी उच्छकल्प (वर्तमान उँचेहरा) में थी। ये लोग जिस भूभाग पर शासन करते थे, उसे 'महाकान्तार प्रदेश' कहा जाता था।

उच्छकल्पों के पास ही परिव्राजकों की भी राजसत्ता थी। वर्म्म गिरि नाम के एक संन्यासी ने वि० सदी चौथी में इस सत्ता की स्थापना की थी। खोह इनका प्राचीन स्थान था। इनका राज्य 'वर्मराज' कहा जाता था। इसी वर्म राज्य पर नागौद के परिहारों की राजसत्ता स्थापित हुई थी। वर्म्म गिरि के इस वंश में सुशर्म्मन, देवाढ्य (वि० सं० ४०७-४५२), प्रभञ्जन (वि० सं० ४५२–४७७), दामोदर (वि० सं० ४७७–५१७) और हस्तिन् (वि० स० ५१७–५६७) तथा संक्षोभ (वि० स० ५६७–५८७) शासक हुए। संक्षोभ के बाद इस वंश की राजसत्ता कमजोर हो गई। सोहावल इनके शासन-काल का अन्तिम ठिकाना था, जिसे फतेह सिंह बघेल ने दहेज में प्राप्त कर लिया था और वहीं पर अपनी सत्ता की स्थापना की थी। सोहावल के आसपास अब भी इनका प्रभाव है।

वि० सं० ६६३–७०४ में बघेलखण्ड का अधिकांश वर्धन साम्राज्य में शामिल था। हर्षवर्धन इस वंश का प्रतापी शासक था। इसी के शासन-काल के ८०वें वर्ष (वि० सं० ७४३) का एक शिलालेख देवगवां में प्राप्त हुआ है। इसी समय बघेलखण्ड के उत्तर-पूर्वी भाग में सेंगरों का भी विकास हुआ। मऊ, गंगेव और इटार इनके प्राचीन ठिकाने अब भी हैं। इनकी शासन-प्रणाली बड़ी ही सधी हुई थी। इनके राज्य के गांव दनवार और बनवार दो भागों में बंटे हुए थे। जंगली गांवों की गिनती बनवार में और मैदानी गांव दनवार में गिने जाते थे। इनका शासित भूभाग अब भी 'सेंगरान' नाम से विख्यात है। राजा सारंगदेव इस प्रदेश में इस राजसत्ता का प्रवर्तक था। बिछरहटा इसी राजघराने का प्रमुख स्थान था, जो अब मिट चुका है।

इन सब के बाद जिस प्रबल राजसत्ता का विकास इस भूभाग पर हुआ, वह थी कलचुरी राजसत्ता। कृष्णराज कलचुरी ने इस सत्ता का सूत्रपात किया था, परन्तु इस प्रदेश में कोकल्ल देव (वि० सं० ९२०–९६०) नाम के प्रतापी कलचुरी ने अपनी सत्ता स्थापित की। उसकी राजधानी त्रिपुरी में थी और दक्षिणी बघेलखण्ड का अधिकांश भूभाग त्रिपुरी राज्य में शामिल था। इसके १८ पुत्रों में मुग्धतुंग इसका उत्तराधिकारी हुआ, जिसने इस प्रदेश के अधिकांश भूभाग पर अपना अधिकार कर लिया था। चन्देल राजा यशोवर्म्मन् ने इसके नाती केयूरवर्ष (युवराजदेव प्रथम वि० सं० ९८०-१०००) से प्रसिद्ध किला कालिंजर को जीत लिया था। इसी केयूरवर्ष ने गुर्गी और चन्द्रेह में शिव-मठों का निर्माण कराया था। इसी के बनवाए हुए शिव-मठ का तोरण आज-कल रीवा के किले के पूर्वी दरवाजे पर लगा हुआ है। बैजनाथ (सतना रोड पर रीवा से ८ मील) में भी इसने एक शिव-मठ का निर्माण कराकर बहुत-से गावों की आमदनी लगा दी थी। गुर्गी के महन्त मत्त मयूरवंशी महात्मा चूड़ाशिव थे। चूडाशिव के प्रशिष्य प्रशान्त शिव ने चन्द्रेह के मठ का निर्माण कराकर प्रशान्ताश्रम की स्थापना की थी। इसी के लिखाए हुए शिलालेख चन्द्रेह के मठ में अब भी लगे हुए हैं।

लक्ष्मणदेव कलचुरी ने गुर्गी के मन्दिरों का निर्माण कराया, जो काशी के विश्वनाथ के मन्दिर के समान ही थे। युवराज द्वितीय (वि० सं० १०५०) ने चन्द्रेह के आश्रम का विस्तार बढ़ाया तथा बहुत-सी सम्पत्ति उसमें चढ़ा दी। इसने एक छोटा-सा शिवालय भी भ्रमर शैल की पहाड़ी पर बनवाया था। गुर्गी में उमा-महेश्वर की मूर्ति की स्थापना कराई थी। आजकल यह मूर्ति रीवा के पद्मधर पार्क में स्थापित है।

त्रैलोक्य मल्ल देव (वि० सं० १०५०–१०७७) का दिया हुआ एक ताम्रपत्र भी महाराज रीवा के संग्रहालय में था। इसी का पुत्र गांगेयदेव (वि० सं० १०७७–११००) महान् पराक्रमी हुआ। इसने अपने नाम पर सोने और चांदी के सिक्के भी चलाये। इसका एक शिलालेख कलचुरी स० ७८९ का पियावन (सिरमौर तहसील) में तथा दूसरा शिलालेख कलचुरी स० ७७२ का मुकुन्दपुर में प्राप्त हुआ है। इसके शासन-काल की अनेक इमारतें अमरकण्टक, सोहागपुर और मडई स्थानों में प्राप्त हुई हैं। गांगेयदेव इस वंश का महान् पराक्रमी शासक था।

गांगेयदेव का पुत्र कर्णदेव (वि० स० ११००–११२५) हुआ। इसने चन्देल राजा कीर्तिवर्मा से कालिंजर का किला छीन लिया था। इसका एक ताम्रपत्र कलचुरी स० ७९३ का प्राप्त हुआ है। अमरकण्टक का कर्ण मन्दिर तत्कालीन स्थापत्य-कला का एक उदाहरण है। गुर्गी महानगरी को इसने अच्छे-अच्छे महलों से सुसज्जित किया। इसके दिये हुए द्रव्य से इसकी बहन ने ढुण्ढेश्वर महादेव (रीवा से ६ मील पूर्व) के महान् मन्दिर का निर्माण कराया था, जो आज अस्त-व्यस्त रूप में है। इसके पास जाने से आश्रम की महानता का पता चलता है। १२ फीट मोटी दीवालों का साढ़े पांच मील के घेरे में इसने गुर्गी में एक विशाल दुर्ग का निर्माण कराया था। इसके दिए हुए दानपत्र से स्पष्ट है कि इसका शासन-प्रबन्ध बड़ा ही उत्तम और आदर्श था, राज्य का काम-काज १० राज्याधिकारियों द्वारा सम्पन्न होता था।

कर्ण के बाद यशः कर्णदेव (वि० सं० ११२५–११८०), जयकर्ण देव (वि० सं० ११८०–१२१३), नरसिंह देव (वि० सं० १२१३–१२३४), जयसिंह देव (वि० सं० १२३४–१२३७), विजय सिंह देव (वि० सं० १२३७–१२५३) और अजय सिंह देव (वि० सं० १२५३–१२८७) इस प्रदेश के कलचुरी-शासक हुए, जिनके अनेक शिलालेख और दानपत्र इस प्रदेश के भिन्न-भिन्न स्थानों में उपलब्ध हुए हैं, जिनमें तत्कालीन ऐतिहासिक परिस्थिति पर अच्छा प्रकाश पड़ता है। अजय सिंह देव के बाद इस वंश के शासकों का पता नहीं चलता। इसी समय बघेलखण्ड में बघेलों और बुन्देलखण्ड में बुन्देलों का उद्भव हुआ और इस वंश की राज-सत्ता का भी अन्त हो गया।

इस प्रदेश के बुन्देलखण्ड भूभाग में वि० सं० ८५७ में चन्देल वंश का प्रारंभ हुआ। नन्नुक इस वंश का प्रथम पराक्रमी सम्राट् था, जिसने उरई के परिहारों की सत्ता का विनाश कर चन्देल-राज का विस्तार किया। नन्नुक के बाद वाकपति (वि० स० ८८२–९०७), जयशक्ति (वि० स० ९०७–९३२), राहिल (वि० सं० ९३२–९५७) इस वंश के शासक हुए। इनके बाद हर्ष (वि० स० ९५७–९८२) का शासन-काल आता है। इसे चित्रकूट का राजा कहा गया है। राहिल ने अपनी राजधानी महोबा में स्थापित की थी। हर्ष के बाद यशोवर्म्मन् (वि० स० ९८२–१००७) इस वंश का नामी सम्राट् हुआ। इसने केयूरवर्ष कलचुरी राजा से कालिंजर का किला छीनकर 'कालिंजर-पुरवाराधीश्वर' की पदवी धारण की थी। इसने कन्नौज के राजा महिपाल के पुत्र देवपाल से एक विष्णु-मूर्ति छीनकर खजुराहो में स्थापित की, खजुराहो का नाम खजरपुरी रखकर उसका विकास किया। खजुराहो के शिलालेख में इसे अनेक राज्यों का विजेता लिखा गया है। इसी का पुत्र धंग (वि० स० १००७–१०५६) राजा हुआ, जिसने अपनी ८४-वर्षीय माता की मृत्यु की स्मृति में खजुराहो में ८४ जोगिनी के मन्दिर का निर्माण कराकर ८४ बावली, ८४ कुआ और ८४ अन्य देवस्थानों का भी निर्माण कराया था। खजुराहो को एक कलापूर्ण समृद्धशाली मन्दिरों का नगर बनाने का श्रेय इसी चन्देल राजा को है।

गण्ड के शासन-काल (वि० स० १०५६–१०८२) में कोकल्ल द्वितीय कलचुरी ने चढ़ाई कर के कालिंजर और खजुराहो को छीन लिया था। गण्ड के बाद विद्याधर (वि० सं० १०८२–१०९७) और विजयपाल (वि० स० १०९७–११०७) शासक हुए। इनके बाद कीर्तिवर्म्मन (वि० सं० ११०७–११५७) इस वंश का महान् पराक्रमी शासक हुआ, जिसने कालिंजर के किले को जीतकर उसका जीर्णो-

द्धार कराया था। इसके कई शिलालेख और ककरेड़ी मे ताम्रपत्र भी उपलब्ध हुए हैं। इसके अनन्तर सल्लक्षण वर्म्मन (वि० सं० ११५७–११६७), जयवर्म्मन (वि० सं० ११६७–११७७), पृथ्वीवर्म्मन (वि० सं० ११७८–११८७) मदनवर्म्मन (वि० सं० ११८७–१२२२), परिमर्दिदेव (वि० सं० १२२२–१२५९), त्रैलोक्य वर्म्मदेव (वि० सं० १२५९–१२९८), बम्हनदेव, (वि० सं० १२९८), वीरवर्म्मन (वि० सं० १२९८–१३४२), भोजवर्म्मन (वि० स० १३४२–१३७५) इस वंश के प्रमुख शासक हो गये हैं। इनके अनेक शिलालेख, ताम्रपत्र इस प्रदेश के भूभाग के कोने-कोने में उपलब्ध हुए हैं। इनका ऐतासिक वृत्तान्त बड़ा गौरवपूर्ण एवं सजीव है। इस वश की ऐतिहासिक प्रख्याति से भारत की वसुन्धरा बहुत काल तक संजीवित एवं अनुप्राणित रहेगी।

इस प्रदेश के दक्षिणी भूभाग में गोंड़वंशीय क्षत्रियों का इतिहास भी कम महत्व का नहीं है। इनकी जिस संस्कृति का प्रभाव तत्कालीन ऐतिहासिक प्रगति पर पड़ा, वह बड़ी ही सजीव एवं शाश्वत है। दशवी सदी से लेकर तेरहवी सदी तक इस वंशवाले इतिहास के उन महान् पुरुषों मे हैं, जिन पर इस देश को बहुत दिनों तक गर्व रहेगा। जिस प्रदेश में इनका शासन था, उसे आज भी गोंड़वाना प्रदेश कहा जाता है। इस वंश के गोंड़ राजा अमानदास और दलपति शाह की महारानी दुर्गावती की ऐतिहासिक प्रख्याति कभी नहीं भुलायी जा सकती। महारानी दुर्गावती ने नारीत्व को जो शाश्वत सन्देश दिया है, उससे इस प्रदेश की वसुन्धरा सदैव ही गौरवान्वित रहेगी। इनके समय के अनेक ऐतिसाहिक अवशेष इस भूभाग में बिखरे पड़े हुए हैं।

इन सम्पूर्ण ऐतिहासिक घटनाओं एवं संस्कृतियों के अलावा वर्तमान बुन्देलखण्ड का भूभाग अन्य अनेक संस्कृतियों का केन्द्र-स्थल-सा प्रतीत होता है। जहा पर बुन्देली, चन्देली, कलचुरी-कालीन सस्कृति का समन्वय हुआ है, वही पर जैन और बौद्ध-कालीन संस्कृति भी अधिक महत्वपूर्ण बन सकी है। उनाव का सूर्य्य मन्दिर, सोनागिरि के जैन-मन्दिर, पपौरा के मन्दिर नही भुलाए जा सकते। बानपुर महाभारत-कालीन प्रसिद्ध नगर था, जिसमे शिशुपाल की राजधानी थी। दतिया का उत्तरी भूभाग द्रोण प्रदेश कहा जाता था, जो कौरवों और पाण्डवो के गुरु द्रोणाचार्य्य को गुरु-दक्षिणा में प्राप्त हुआ था। सेवढ़ा मे महात्मा सनकसनन्दन ऋषि के आश्रम आज भी हिन्दू-आस्था के प्रतीक हैं। यहां की विशाल एवं मनमोहक सरस्वती, शिव आदि देवताओं की मूर्तिया अपने युगों की स्थापत्य-कला एवं मूर्ति-कला के अनुपम उदाहरण हैं।

बालचंद्र जैन

नाग-भारशिवों की देन

ईस्वी सन् की तीसरी शताब्दी में--कुषाण साम्राज्य के अस्त होने के पश्चात् और गुप्त साम्राज्य के स्थापित होने के पूर्व--उत्तर भारत में जिस राजवंश ने हिन्दू-संस्कृति, और विशेषकर शैव मत का पुनरुत्थान किया, वह नाग या भारशिव अथवा नाग-भारशिव के नाम से ज्ञात है। इस वंश का प्रामाणिक और श्रृंखलाबद्ध इतिहास आज तक हमे पूर्ण रूप से ज्ञात नही है, किन्तु पुराणों, सिक्कों और अभिलेखों में उल्लिखित बातों से विदित होना है कि यह वंश बड़ा प्रभावशाली, सशक्त और प्रभुता-सम्पन्न था। यह कहना कठिन है कि उपरोक्त वंश का वास्तविक नाम क्या था? इस वंश के राजाओं को नागवंशी इसलिए कह दिया जाता है कि उनके नाम के उत्तरार्द्ध में 'नाग' शब्द जुड़ा रहता है। कहीं-कहीं इस वंश के लिए भारशिव संज्ञा भी दी गई है। संभव है, भारशिव इनकी उपाधि रही हो अथवा जैसा कि वाकाटक-लेखों से ज्ञात होता है, अपने मस्तक पर शिवलिंग रखने के कारण ये भारशिव कहे जाने लगे हों। किन्तु इतना अवश्य मान लेना पड़ता है कि नाग-वंश के राजा ही आगे चलकर भारशिव-वंशी कहे जाने लगे थे। इसलिए इस वंश का नाम नाग-भारशिव ही अधिक उपयुक्त जान पड़ता है।

वैसे तो नाग-वंश का उल्लेख महाभारत में मिलता है और वे शुंग तथा कुषाण राजाओं के साम्राज्य-काल से पूर्व भी अनेक स्थानों में अपने छोटे-मोटे राज्य स्थापित किये हुए थे, किन्तु इनके साम्राज्य का विस्तार कुषाण वंश के ह्रास के अनन्तर ही हो सका। कुषाण राजा कनिष्क से दबकर नागों ने अपने निवास-स्थान पद्मावती को छोड़ दिया था और वे बुन्देलखण्ड में आ बसे थे, जहां से वे मिर्जापुर के निकट कातिपुरी नामक स्थान को चले गये। जब कुषाण-वंशी राजा कमजोर पड़ने लगे, तब नागों ने पद्मावती को पुन प्राप्त करके मथुरा तक अपने राज्य का विस्तार कर लिया। यह कार्य वे ईस्वी सन् की दूसरी शताब्दी के अन्तिम भाग में ही सम्पन्न कर सके होंगे। कुषाणों को परास्त कर देने से नागों की शक्ति और प्रभुत्व बढ़ने लगे और उन्होंने एक विस्तृत साम्राज्य की स्थापना कर ली। साम्राज्यकालीन नाग-राजाओं में से वीरसेन और भवनाग के नाम का उल्लेख बहुत मिलता है। वीरसेन इनका प्रथम राजा था और भवनाग अन्तिम।

नाग-भारशिव परम शैव थे। इनके शासन-काल में शैव धर्म की बड़ी उन्नति हुई, अनेक शिव-मंदिरों का निर्माण हुआ और भारतीय कला में एक नयी शैली का उदय हुआ। भारशिवों के बारे में कहा जाता है कि वे स्वयं सादगी का जीवन व्यतीत करते थे और भगवान शंकर की भांति उदार थे। यद्यपि इन्होंने दस अश्वमेध यज्ञ किए थे, किन्तु इनकी शान-शौकत और राजसी ठाट-बाट की कहीं झलक भी नहीं दिखाई देती। कला के क्षेत्र में भारशिवों की देन अनूठी है। गुप्तों के समय में जिस शैली का सम्पूर्ण विकास हुआ, वह वास्तव में भारशिवों के समय में ही उदित हुई थी। चूंकि नाग-भारशिवों के समय के अवशेषों का अभी तक भली भांति अध्ययन नहीं हो पाया है, इसलिए अक्सर यह देखा गया है कि उनकी बहुत-सी कृतियों को लोग गुप्तों की कृति कह देते है, जो असत्य है।

विंध्य-प्रदेश में नाग-भारशिवों का खासा विस्तार रहा है। उनके समय के अनेक मन्दिर और मूर्तियां विन्ध्य-प्रदेश में आज भी विद्यमान हैं। ध्यान देने की बात है कि विन्ध्य-प्रदेश की गुप्तों के प्रारम्भिक काल की कही जानेवाली समस्त

पुरातत्त्व-सामग्री शैव है। यह कला-सामग्री गुप्तों की नहीं है, अपितु भारशिवों की है। गुप्त महाराजे परम वैष्णव थे, यद्यपि उन्हें शैव धर्म से कोई द्वेष न था। फिर भी इतना तो मानना ही चाहिये कि यदि विन्ध्य-प्रदेश की उपरोक्त कला-वस्तुएं गुप्तों की कृतियां होतीं, तो उतनी ही वस्तुएं हमें वैष्णव पंथ की भी मिलनी चाहिए। खैर, जो कुछ भी हो, विन्ध्य-प्रदेश की प्रारम्भिक गुप्त-काल की कला-कृतियों पर भारशिवों की कला का अटूट प्रभाव है।

भूमरा के शिव-मंदिर को गुप्तों का सब से प्राचीन मन्दिर कहा जाता है, पर है यह भारशिवों की कृति। यह मन्दिर ध्वस्त अवस्था में विन्ध्य-प्रदेश में नागौद के निकट के भूमरा स्थान में स्थित है। इसके द्वार के दाहिनी ओर मकरवाहना गंगा की और बाईं ओर कूर्मवाहना यमुना की प्रतिमाएं है। द्वार की चौखट अलंकृत है। गंगा-यमुना की मूर्तियों के सिरे पर कोरकर गंधर्वों की प्रतिमाएं बनायी गयी हैं। कीर्तिमुख, कमल, भेरी बजाते हुए गण आदि की रचना अलंकरण के लिए की गयी है। ये सभी प्रतिमाएं और अलंकरण इतने स्वाभाविक और स्वयं में पूर्ण है कि दर्शक का मन मुग्ध हो जाता है। इसी स्थान का एकमुख शिवलिंग तो देखते ही बनता है।

भूमरा से तेरह-चौदह मील पर नचना-कुठारा नामक स्थान पर भारशिवों की एक दूसरी सुन्दर कृति विद्यमान है। इसे पार्वती मन्दिर कहते है। इस मन्दिर की बनावट बताती है कि यह गुप्तों के प्रारम्भिक युग में भारशिवों अथवा वाकाटकों की छत्रछाया में निर्मित किया गया होगा। स्मरण रखने की बात है कि अपने पिछले समय में भारशिव-वंश वाकाटक-वंश में विलीन हो गया था। नचना-कुठारा का पार्वती मन्दिर भूमरा के शिव-मन्दिर-जैसा अलंकृत तो नही है, किन्तु उसकी अपेक्षा अच्छी अवस्था में है। यहां का चतुर्मुख शिवलिग कला की उत्कृष्ट देन है।

ये तो रहे भारशिव-कालीन मन्दिरों के दो उदाहरण। इनके समय की विन्ध्य-प्रदेश में प्राप्त मूर्तियां भी सुन्दरतम कला-कृतियों की कोटि में आती है। यद्यपि वे संख्या में अधिक नहीं हैं, किन्तु निर्माण में अपूर्व हैं। खोह नामक स्थान का एकमुख शिवलिंग कदाचित् भारशिवों की ही देन है। खोह भूमरा से लगभग पांच मील की दूरी पर है। भूमरा के एक-मुख लिंग और नचना के चतुर्मुख शिवलिंग का उल्लेख ऊपर किया जा चुका है। इन सभी में खोह का शिवलिंग बहुत ही उत्कृष्ट है। इसमें शिव जी का मस्तक रत्नजटित मुकुट से सुशोभित है। जटा में अर्द्धचन्द्र की रचना करना भी कलाकार भूला नहीं। हर एक अंग, आंख, नाक, ओठ आदि बहुत ही सुन्दर गढ़े गये है। शिवजी के गले में हार और कानों में कुण्डल हैं।

शिवजी की मानवी प्रतिमा की पूजा बहुत पहले ही भारतवर्ष से उठ चुकी थी और वे अपने प्रतीक के माध्यम से पूजे जाने लगे थे। लिंग-पूजा के प्रचार के कारण शैव कलाकारों को शिवजी की प्रतिमा बनाने का कोई अवसर ही न मिलता था। उधर जैन, बौद्ध और वैष्णव मूर्तियां धड़ाधड़ बन रही थीं, वह भी एक से एक बढ़कर। लिंग के निर्माण में कला का कितना प्रदर्शन हो सकता था? आखिर भारशिवों के आश्रित कलाकारों ने एक रास्ता निकाल ही लिया और वे शिवलिग पर शिव जी के मुख बनाने लगे। भारशिवों के समय में प्रारम्भ की गई इस नई परम्परा का गुप्तों के कलाकारों ने भी अनुसरण किया और मुखलिंगों के निर्माण में उन्होंने अपनी समस्त प्रतिमा, कल्पना और कुशलता का मन लगाकर उपयोग किया तथा एक-से-एक सुन्दर कला-कृतियां प्रस्तुत कीं।

उपरोक्त विवरण से भारशिव-राजाओं की कृतियों और उनकी देन का अनुमान लगाया जा सकता है। उनकी कला का गुप्तकालीन कला पर बहुत गहरा प्रभाव पड़ा है, यह बात अब सभी विद्वान् स्वीकार करने लगे है। यह निश्चयपूर्वक नहीं कहा जा सकता कि भारशिवों के राज्यकाल में विन्ध्य-प्रदेश में ऊपर गिनाई गई जिन कला-कृतियों का निर्माण हुआ, उनका निर्माण करनेवाले कलाकार प्रदेश के बाहर से आए थे अथवा यह उत्कृष्ट सामग्री यहां के स्थानीय कलाकारों की अद्भुत कृति है। यदि ये अपूर्व कृतियां यही के कलाकारों द्वारा निर्मित हुई थीं, तो मानना पड़ेगा कि भारशिव-काल में विन्ध्य-प्रदेश के कलाकार अद्भुत प्रतिभा से सम्पन्न और ईश्वरीय देन के स्वामी थे। उनकी कल्पना विलक्षण थी, साधना अनूठी थी और उनमें उच्च कोटि की रुचि का सद्भाव था।

प्रभाकर ठाकुर

वाकाटक-राजवंश

जिस समय गंगा की तलहटी में चक्रवर्ती गुप्त-सम्राटों की तूती बोलती थी, उसी समय नर्मदा और कृष्णा के मध्य सम्पूर्ण मध्य प्रदेश, बरार, मध्य भारत आदि प्रदेशों में वाकाटक-राजवंश की प्रभुता थी। दक्षिण भारत का प्रसिद्ध राजवंश सातवाहन लगभग २२५ ई० में तिरोहित होने लगा और उसकी शक्ति क्षीण होने पर भारत के उस भाग में छोटे-छोटे राज्य उठ खड़े हुए। उन दिनों मध्य आन्ध्र देश में इक्ष्वाकु, दक्षिण कर्नाटक मे शातकर्णि और पश्चिमी महाराष्ट्र में आभीर-वंशीय राजाओं ने अपनी शक्ति बढ़ायी; पर मध्य भारत का तत्कालीन इतिहास अज्ञात ही है और अनुमान है कि सातवाहन-वंश के ह्रास के बाद उनके केन्द्रीय प्रदेशों में कोई एक शक्तिशाली राज-वंश अपनी स्थिति दृढ़ नहीं कर सका। ऐसी राजनीतिक स्थिति में कोई साहसिक व्यक्ति अपने साहस एवं महत्वाकांक्षा को मूर्त रूप देकर उस प्रदेश की बिखरी राजशक्ति को समेटने एवं शक्ति-सम्पन्न बनाने में सफल हो सकता था। वास्तव में वह काम वाकाटक-राजवंश के प्रथम दो राजाओं ने सम्पन्न किया। अतः प्रो० डुब्रील का कथन अक्षरशः सत्य है कि "तीसरी से लेकर छठी सदी तक राज्य करनेवाले दक्षिण के सभी राजवंशों में वाकाटकों का राजवंश सबसे अधिक श्रेष्ठ एवं यशस्वी हुआ।" इस राजवंश के इतिहास की जानकारी सन् १८३६ के पूर्व इतिहासकारों को नहीं थी। यह सच है कि इस राजवंश के संस्थापक विन्ध्यशक्ति का नाम पुराणों में भी आया है; किन्तु उस नाम का उल्लेख केलिकिल नामक एक जाति के शासक के रूप में हुआ है और वह जाति यवनों की थी, इसका संकेत भी पुराणों में है--"तेषूच्छिन्नेषु केलिकिला यवना भूपतयो भविष्यन्ति।" पर बाद की खोज ने विन्ध्यशक्ति के विषय के इस मत को भ्रामक सिद्ध किया है और यह मान्य मत है कि विन्ध्यशक्ति वाकाटक-राजवंश का प्रथम शासक था और वह द्विज था। बाद के वाकाटक-अभिलेखों में इस वंश के शासकों का गोत्र 'विष्णुवृद्ध' बताया गया है और एक अन्य अभिलेख में वाकाटक-नरेश गौतमीपुत्र की माता को 'गौतम गोत्र' का कहा गया है। इसके अतिरिक्त अन्य प्रमाणों के आधार पर अब यह निश्चित हो चुका है कि वाकाटक-राजवंश की उत्पत्ति ब्राह्मण-कुल में हुई थी।

वाकाटक कौन थे, उनका यह नाम क्यों पड़ा ? आज भी यह प्रश्न विवादपूर्ण बना हुआ है। स्वर्गीय डा० जायसवाल का स्पष्ट मत है कि वाकाटक मूलतः वर्तमान ओरछा-राज्य में स्थित 'बागाट' नामक स्थान के रहनेवाले थे। कुछ विद्वानों ने वाकाटक नाम की इस उत्पत्ति को अमान्य ठहराया है; क्योंकि बागाट नामक स्थान से इस वंश के प्रारम्भिक राजाओं का सम्बन्ध स्थापित करने में कठिनाई उपस्थित होती है। पर डाक्टर अल्तेकर के अनुसार यह सम्भव हो सकता है कि वाकाटक-राजवंश के मूल पुरुषों का सम्बन्ध 'बागाट' नामक स्थान से रहा हो और वे वहीं से दक्षिण की ओर चले गये हों। जाति और वंश के नाम की ऐसी परम्परा इतिहास के पृष्ठों में अनेक स्थानों पर उपलब्ध है।

अजन्ता में प्राप्त सोलहवीं गुफा के अभिलेख के अनुसार वाकाटक-राजवंश का संस्थापक विन्ध्यशक्ति था। उसे 'द्विज' और 'वंशकेतु' विरुद भी प्राप्त हैं। विन्ध्यशक्ति नाम भी लाक्षणिक है। वास्तव में उस संस्थापक का कोई दूसरा नाम रहा होगा। मालूम होता है कि उसके पूर्वज सातवाहन-सम्राटों के अधीनस्थ बरार और भोपाल के

आस-पास के प्रदेशों में उच्च अधिकारी थे और उस सातवाहन-राजवंश के अन्त हो जाने पर उन्होंने अवसर देखकर अपने को स्वतंत्र बना लिया। पुराणों के अनुसार विन्ध्यशक्ति विदिशा का, शासक था, उसकी राजधानी पुरिका थी, असाधारण प्रभाव का व्यक्ति था और उसका उल्लेख 'पुरन्दरोपेन्द्रसम-प्रभावः' कहकर किया गया है। डाक्टर अल्तेकर के अनुसार विन्ध्यशक्ति का शासन-काल सन् २५५ ई० से २७५ ई० तक था।

वाकाटक-वंश का दूसरा शासक प्रवरसेन प्रथम (सन् २७५ई०–३३५ई०) था। वह विन्ध्यशक्ति का पुत्र था। राज्य-विस्तार करने और राजवंश की शक्ति को दृढ़तर बनाने में प्रवरसेन प्रथम का नाम बहुत महत्वपूर्ण है। वाकाटकों की राजशक्ति की प्रतिष्ठा स्थापित करने का श्रेय इसी को है। पुराण उसे 'वाजपेय' यज्ञों का कर्ता कहते हैं। उसने चार अश्वमेध यज्ञ भी किये। चार अश्वमेध यज्ञो का अभिप्राय यही हो सकता है कि प्रवरसेन ने विभिन्न दिशाओं में चार सफल अभियान किये होंगे। उसने 'सम्राट्' की उपाधि धारण की थी। सम्राट् प्रवरसेन के चार सफल अभियानों के कारण साम्राज्य की सीमा अति विस्तृत हो गयी। दक्षिण में उसका प्रभुत्व कृष्णा नदी तक और उसके साम्राज्य की सीमा उत्तर में बघेलखण्ड तथा छत्तीसगढ़ तक फैल गयी। वास्तव में नर्मदा के उत्तर के इलाके, जिसमें विन्ध्य-प्रदेश के अधिक भाग शामिल थे, प्रवरसेन के संरक्षण में थे।

सम्राट् प्रवरसेन के चार पुत्रों में गौतमीपुत्र ज्येष्ठ था; पर उसकी मृत्यु पिता के जीवन-काल में हो चुकी थी। दूसरे पुत्र सर्वसेन ने वत्सगुल्म में (आधुनिक बसीम, जो अकोला जिले में स्थित है) अपनी एक पृथक् शाखा स्थापित की, जो मूल शाखा के साथ-साथ लगभग ५२५ ई० तक चलती रही। प्रवरसेन ने अपने पुत्र गौतमीपुत्र का विवाह भारशिव-नरेश भवनाग की राजकुमारी के साथ किया।

प्रवरसेन के बाद उसका पौत्र रुद्रसेन प्रथम गद्दी पर बैठा। वह भारशिव-नरेश भवनाग का दौहित्र था। उसका शासन-काल सन् ३३५ से ३६० ई० तक था। इस प्रकार रुद्रसेन प्रथम गुप्तवंश के प्रसिद्ध सम्राट् समुद्रगुप्त का समकालीन था। इलाहाबाद की प्रशस्ति की इक्कीसवीं पंक्ति में दक्षिण के उन राजाओं के नाम एक साथ आये है, जिन्होंने समुद्रगुप्त के दक्षिणापथ के अभियान में गुप्त सम्राट् का सामना किया था। उन नामों में रुद्रसेन का नाम सर्वप्रथम है। मालूम होता है कि रुद्रसेन दक्षिण के उन राजाओं का नायक था और उसने समुद्रगुप्त की साम्राज्यवादी नीति का प्रबल विरोध किया था। सब कुछ करने के बाद भी रुद्रसेन को समुद्रगुप्त की विजय-वाहिनी सेना के समक्ष घुटने टेक देने पड़े और इस पराजय के कारण वाकाटक-नरेश को गुप्त साम्राज्य का संरक्षण स्वीकार करना पड़ा। यही कारण है कि रुद्रसेन के साथ 'सम्राट्' का विरुद नही पाया जाता है।

रुद्रसेन के पश्चात् पृथ्वीषेण प्रथम वाकाटक-गद्दी का अधिकारी हुआ। पृथ्वीषेण ने 'कुन्तल' विजय कर दक्षिण में अपना राज्य बढ़ाया और 'कुन्तलेन्द' कहलाया। बघेलखण्ड में प्राप्त दो अभिलेखों से यह स्पष्ट प्रतीत होता है कि यहाँ के एक स्थानीय राजा व्याघ्रदेव ने उसका संरक्षण स्वीकार किया। इन प्रमाणों से मालूम होता है कि पृथ्वीषेण दक्षिण और उत्तर दोनों ओर अपनी शक्ति का विस्तार करने में समर्थ हो सका और आधुनिक विन्ध्य-प्रदेश का अधिकांश उसके संरक्षण में आ गया। वाकाटक-नरेश की इस शक्ति-सम्पन्न स्थिति के कारण गुप्तवंशीय सम्राट् चन्द्रगुप्त ने अपने शक-अभियान के पूर्व अपनी पुत्री प्रभावती गुप्त का विवाह पृथ्वीषेण के पुत्र रुद्रसेन द्वितीय के साथ कर दिया और इस प्रकार उस विजय में वाकाटक-शक्ति की सहायता प्राप्त की। इस विवाहोत्सव के केवल पाँच वर्ष बाद सन् ३८५ ई० में पृथ्वीषेण का देहान्त हो गया और उसका पुत्र रुद्रसेन द्वितीय उसका उत्तराधिकारी हुआ।

रुद्रसेन द्वितीय केवल पाँच वर्ष तक ही राज्य कर सका। सन् ३९० ई० में पति की असामयिक मृत्यु हो जाने पर प्रभावती गुप्त ने राज्य का काम अपने दो अल्पवयस्क पुत्रों—दिवाकर सेन और दामोदर सेन—की संरक्षिका बनकर सम्भाला। दिवाकर सेन तो बहुत थोड़े दिनों तक ही जीवित रहा, अतः वयस्क होकर दामोदर सेन प्रवर सेन द्वितीय के नाम से सन् ४१० ई० में वाकाटक-राज्य का राजा बना। उसने अपने शासन के १८वें वर्ष में प्रवरपुर नामक नगर बसाकर उसे अपनी राजधानी बनायी। वह एक उदारचेता नरेश था और उसने हजारों ब्राह्मणों को प्रचुर

दान दिया। प्रवरसेन साहित्यिक अभिरुचि का व्यक्ति था और उसने 'सेतुबन्ध' नामक प्राकृत काव्य-ग्रन्थ लिखा।

इसके बाद सन् ४४० ई० में प्रवरसेन का पुत्र नरेन्द्रसेन गद्दी पर बैठा। उसने लगभग ४६० ई० तक शासन किया। उसके समय में मालवा भी वाकाटक-आधिपत्य में आ गया। उसके बाद राज्य का अधिकारी उसका पुत्र पृथ्वीसेन हुआ। पृथ्वीसेन द्वितीय इस शाखा का अन्तिम राजा है, जिसके विषय में जानकारी प्राप्त है। इस प्रकार वाकाटक-वंश की इस मूल शाखा का इतिहास ४८० ई० के बाद अज्ञात है।

वाकाटक-वंश की एक छोटी शाखा वत्सगुल्म (बसीम) में स्थापित हुई। सन् ३३० ई० में सम्राट् प्रवरसेन प्रथम के छोटे पुत्र सर्वसेन ने मूल शाखा से पृथक् इस शाखा की स्थापना की। इस शाखा के कतिपय राजाओं का उल्लेख अजन्ता की सोलहवी गुफा के अभिलेख में हुआ है। दक्षिण-राजाओं की परम्परा के अनुसार सर्वसेन ने 'धर्म महाराज' की उपाधि धारण की। अनुश्रुति के अनुसार वह प्राकृत का कवि माना जाता है। इस शाखा में अनेक प्रबुद्ध, कुशल और योग्य शासक हुए। अजन्ता-अभिलेख से ज्ञात होता है कि इस वंश के शासक हरिषेण (सन् ४७५–५१० ई०) के समय में राज्य का विस्तार विस्तृत हो गया। उसके राज्य में वर्तमान हैदराबाद, बम्बई, महाराष्ट्र, बरार और मध्य प्रदेश के अधिकांश शामिल थे। उत्तर में मालवा और छत्तीसगढ़ के इलाके भी उसके संरक्षण में थे। उसकी सफलता का श्रेय अंशतः उसके योग्य मंत्री वराहदेव को भी है। योग्य राजा और मंत्री के सहयोग से इस समय वाकाटक-शक्ति अपनी चरम सीमा पर पहुँच गयी। अज्ञात कारणों से हरिषेण के पश्चात् इस वंश का इतिहास धूमिल पड़ गया और छठी सदी के मध्य तक वाकाटक-राज्य के बहुत बड़े भाग पर चालुक्य-नरेशों का आधिपत्य स्थापित हो गया।

वाकाटक-नरेश केवल विजेता और साम्राज्य-निर्माता ही नहीं थे, बल्कि वे धर्म, कला, संस्कृति के क्षेत्र में भी विशेष अभिरुचि लेते थे और उनके शासन-काल में इस क्षेत्र में भी विशिष्ट कार्य हुए।

वाकाटक-नरेश ब्राह्मण-धर्मानुयायी थे। वे मूलतः शैव थे और शिव की उपासना महेश्वर एवं महाभैरव नाम से करते थे। गुप्त-वंश से सम्बन्धित होने पर उनका झुकाव वैष्णव धर्म की ओर हो गया; पर कुछ दिनों बाद वे पुनः शैव हो गये; क्योंकि प्रवरसेन द्वितीय को उसी के अभिलेख में 'परम महेश्वर' का विशेषण दिया गया है। पहले उल्लेख किया जा चुका है कि प्रवरसेन ने किस प्रकार सात वैदिक यज्ञों का अनुष्ठान किया, जिनमें से चार 'अश्वमेध' यज्ञ भी थे। उन्होंने धर्मात्मा एवं विद्वान् ब्राह्मणों को भूमि और धन-दान प्रचुर मात्रा में दिया।

वाकाटक-नरेश विद्यानुरागी भी थे। बसीम शाखा के संस्थापक सर्वसेन ने प्राकृत काव्य 'हरि विजय' की रचना की, जिसका आधार महाभारत में वर्णित कृष्ण, सत्यभामा और पारिजात का उपाख्यान था। आज यह ग्रन्थ उपलब्ध नहीं है, पर उसके उद्धरण विभिन्न ग्रन्थों में आये हैं। वास्तव मे उस समय वत्सगुल्म विद्या का केन्द्र हो गया था। मूल शाखा के प्रसिद्ध नरेश प्रवरसेन द्वितीय ने 'सेतुबन्ध' नामक प्रसिद्ध प्राकृत काव्य लिखा, जिसे 'रावणोवहो' भी कहा जाता है। इस ग्रन्थ में राम द्वारा रावण-विजय का वर्णन किया गया है। यह ग्रन्थ 'सुभाषितावलि' के रूप में सम्मानित है। अनुमान है कि कालिदास भी कुछ दिनों तक प्रवरसेन के दरबार में रहे।

वाकाटक-नरेश वास्तु-कला, चित्र-कला तथा मूर्ति-कला के भी प्रेमी रहे। जबलपुर जिले के निगोवा में और नागौद राज्य के नचना में स्थित दो मन्दिर आज भी इस युग की कीर्ति अक्षुण्ण बनाये हुए है। उन मन्दिरों की चिपटी छतें और आच्छन्न बरामदे द्रष्टव्य है। बरामदे के स्तम्भों और आलम्बनों पर वृक्ष और अर्द्ध-अधिष्ठित सिंहध्वज निर्मित हैं, जो कला की दृष्टि से उत्तम है। गर्भ-गृह के प्रवेश-द्वार पर भगवती गंगा और यमुना की प्रतिमाएँ गर्भ-गृह के रक्षार्थ बनी हुई है। वास्तव में नचना का मन्दिर वाकाटक-नरेश पृथ्वीषेण द्वितीय के सामन्त व्याघ्रदेव का बनवाया हुआ है। अजन्ता की कुछ भव्य श्रेष्ठतम गुफाओं का निर्माण हरिषेण के एक सामन्त द्वारा हुआ, जिनमें 'धर्मचक्र प्रवर्त्तन मुद्रा' में बुद्ध की एक विशाल प्रतिमा प्रतिष्ठित है। इनमें से एक गुफा सुन्दर शिल्पों से अलंकृत है, जिनमें बुद्ध की खड़ी और उपवेष्ठित मूर्तियां बनी है, जो फर्गुसन द्वारा भारत में पाये जानेवाले बौद्ध-कला के सर्वोत्कृष्ट उदाहरणों में से एक माना जाता है।

वासुदेवशरण अग्रवाल

कलचुरियों का वैभव

पुराणों मे हैहयवंशी क्षत्रियों के गौरव की यशोगाथाएं प्रसिद्ध हैं। इसी वंश में प्रतापी कार्तवीर्य अर्जुन का यश विश्रुत है। नर्मदा-तट पर माहिष्मती उनकी राजधानी थी। अनुश्रुति है कि इतिहासगत कलचुरि-वंश उसी प्राचीन हैहय-वंश की एक उत्तरवर्ती शाखा थी। इसके संस्थापक महाराज कोक्कल्ल ने जबलपुर के पास त्रिपुरी को अपनी राजधानी बनाया। अतएव यह वंश त्रिपुरी के कलचुरि नाम से भी विख्यात है। प्राचीन काल मे नर्मदा के शीर्ष स्थानीय प्रदेश से महानदी के शीर्ष स्थानीय प्रदेश का विस्तृत भू-भाग चेदि जनपद के नाम से प्रसिद्ध था। मध्य काल में इसे ही डहाल कहा जाने लगा। कलचुरियों का साम्राज्य और वैभव डहाल प्रदेश मे बद्धमूल था। अतएव वहां के सम्राट् डहाल के अपभ्रंश रूप डहर से ये डहरिया भी कहलाए। इस वंश का महाप्रतापी सम्राट् कर्ण 'कर्ण डहरिया' नाम से लोक मे प्रसिद्ध है। वस्तुतः भौगोलिक स्थिति ऐसी थी कि नर्मदा और महानदी के कांठों में कलचुरियों के दो वंश एक दूसरे से संबंधित होने पर भी पृथक् राज्य करने लगे। नर्मदा के क्षेत्र में त्रिपुरी के कलचुरियों ने और महानदी के क्षेत्र में रत्नपुर के कलचुरियों ने राज्य किया। कोक्कल्लदेव बड़ी सूझ-बूझ का उत्साहशील व्यक्ति था। उसने उत्तर के चंदेलों की बढ़ती हुई शक्ति से लाभ उठाने के लिये चंदेल-राजकुमारी नट्टादेवी से विवाह सम्बन्ध स्थापित किया। उसके उत्तराधिकारी भी सशक्त पड़ोसी राजवंशों से विवाह द्वारा अपना प्रभाव-क्षेत्र बढ़ाने की नीति का पालन करते रहे। कोक्कल्ल-देव का अपना कोई लेख प्राप्त नहीं हुआ, पर कर्ण के काशी-ताम्रपत्र के अनुसार यह राजा अत्यन्त दानी, धर्मशील और उदयोन्मुख पराक्रम का अनुयायी था। कहा तो यहां तक गया है कि उसने भोज, वल्लभराज, हर्ष और शंकरगण नामक राजाओं को अपनी शक्ति के द्वारा भयोन्मुक्त बनाया था। ये भोज गुर्जर-प्रतिहारवंशी महेन्द्रपाल प्रथम के पुत्र भोज द्वितीय थे। वल्लभराज राष्ट्रकूट-वंश के कृष्ण नामक राजा थे और हर्ष चन्देल-वंश के सम्राट् थे। नवीं, दसवीं और ग्यारहवीं शती के तीन सौ वर्षों में राष्ट्रकूट, गुर्जर प्रतिहार, चन्देल, कलचुरी, परमार और पाल वंशों का देश के विभिन्न भागों में एक साथ ही या कुछ आगे-पीछे उत्कर्ष पाया जाता है। अतएव स्पर्द्धा और दिग्विजय के दांव-पेंच इनमें आपस में चलते रहते थे। यही उस समय के राजनैतिक ताने-बाने का मुख्य सूत्र था।

कोक्कल्ल की मृत्यु के बाद कलचुरि-वंश की राज्य-लक्ष्मी उसके पुत्र मुग्धतुंग प्रसिद्धधवल के हाथों में आई। उसने त्रिपुरी राज्य की सीमाओं को बढ़ाया और राष्ट्रकूट-नरेश कृष्ण द्वितीय के सहयोग से कुन्तल या कर्णाट तक धावा किया। कोक्कल्ल के अट्ठारह पुत्र कहे जाते हैं। शेष सत्रह ने मण्डलेश्वर की भांति अपने लिए छोटे-छोटे रजवाड़े विस्थापित किये। उन्हीं में से एक ने तुम्माड़ को राजधानी बनाकर कलचुरि-वंश की एक नई शाखा का प्रवर्तन किया, जो इतिहास मे रत्नपुर के कलचुरि नाम से प्रसिद्ध है। महानदी के कांठे में कलचुरि-वंश की इस नई शाखा की स्थापना दक्षिण कोशल के इतिहास और संस्कृति के लिए बहुत ही फलवती हुई।

मुग्धतुंग के अनन्तर उसका पुत्र केयूरवर्ष युवराजदेव गद्दी पर बैठा। काशी के ताम्रपत्र से विदित होता है कि युवराजदेव के बड़े भाई बालहर्ष ने भी कुछ समय तक राज्य किया था। यह युवराजदेव प्रथम बहुत ही प्रतापी, रण-

कुशल, धर्मपरायण और उत्साही राजा था। इसके समय में विद्या और साहित्य की अभूतपूर्व उन्नति हुई। बिलहरी शिलालेख के अनुसार केयूरवर्ष ने पूर्व में गोंड़, दक्षिण में कर्णाट, पश्चिम में लाट की स्त्रियों से अपने को सुखी किया और कैलास से लेकर सेतुबन्ध तक शत्रुओं को भयकम्पित किया। इस कथन में कवि की अतिशयोक्ति स्पष्ट है, फिर भी इतना तो सत्य है कि युवराजदेव एक प्रतापी राजा था। युवराजदेव ने अपनी पुत्री का विवाह कर्णाटक के राष्ट्रकूट अमोघवर्ष तृतीय (९३३–९४० ई०) से किया। कलचुरि और राष्ट्रकूट राजाओं में सुविधानुसार विवाह-सम्बन्ध होते रहते थे। लेखों से ज्ञात होता है कि तीन पीढ़ियों में इस प्रकार के छः सम्बन्ध हुए थे।

युवराजदेव शैव धर्म का बड़ा भक्त था। चन्द्रेह शिला-लेख के अनुसार उसका राज्य बघेलखण्ड में भी फैल गया था। वहां रीवा के समीप शोण नदी के तट पर उसने मत्तमयूर शैवों का एक बहुत बड़ा मठ बनवाया। उसी के समीप युवराजदेव के समय का चन्द्रेह का शिव-मन्दिर अभी तक है। युवराजदेव की पत्नी नोहला देवी चालुक्य-वंश की राजकुमारी थी। उसने अपने पति के साथ मिलकर मत्तमयूर नामक शैवाचार्यो के लिए अनेक मठों की स्थापना की। युवराजदेव के राज्य में शैव-सिद्धान्त, शैव आगम, शैव आचार्य, शैव मठ और शैव मन्दिरों की बाढ़-सी आ गई थी। ये मठ विद्या और ज्ञान-साधना के महान् केन्द्रों के रूप मे विकसित हुए। राष्ट्रकूट सम्राट् और चेदीश्वर दोनों अपने-अपने क्षेत्रों में इस प्रकार के मठों की स्थापना कर रहे थे। राष्ट्रकूट-वंशी कृष्णराज तृतीय के करहाड़ ताम्रपत्र (९५९ ईस्वी) से विदित होता है कि करहाट (सितारा जिले मे वर्तमान करहाड़) में वल्क-लेश्वर मठ शैवों का अत्यन्त प्रसिद्ध मठ था। उसके अध्यक्ष आचार्य गगनशिव शैव-सिद्धान्तों के परम मर्मज्ञ थे। उन्हें राष्ट्रकूट-नरेश की ओर से एक गांव दान में दिया गया। इसके कुछ ही समय बाद कलचुरि संवत् ७२४ अर्थात् ९७२ ईस्वी में चन्द्रेह नामक स्थान मे त्रिपुरी के चेदिवंशी सम्राटों के राज्य में शैवाचार्य प्रबोध शिव के द्वारा एक अत्यन्त विशाल शिव-मठ की स्थापना की गई। चन्द्रेह के मठ से भी पूर्व में युवराजदेव की पत्नी नोहला देवी की प्रेरणा से अघोरशिव नाम के शैवाचार्य ने नोहलेश्वर मठ की स्थापना की। यह मठ बिलहरी नामक उसी स्थान में होना चाहिए, जहां उसका शिला-लेख पाया गया है। मठ के साथ-साथ नोहला देवी ने एक शिव-मन्दिर का भी निर्माण कराया था। इसी प्रकार चन्द्रेह के शैव मठ के साथ ही आचार्य प्रबोध शिव ने अभिनव कलचुरि-शैली में एक भव्य शिव-मन्दिर का निर्माण कराया था, जो आजकल सुरक्षित है। इस मन्दिर का गर्भगृह गोल है, उसके ऊपर गोल शिखर और आमलक है और सामने की ओर एक छोटा अन्त-राल मण्डप और मुख मण्डप है। युवराजदेव ने रीवा से बारह मील पूर्व गुर्गी नामक स्थान में उन्ही मत्त-मयूर शैवाचार्यों के लिए चन्द्रेह-जैसे मठ और मन्दिर का निर्माण कराया था। बिलहरी और गुर्गी के दोनों लेख आचार्य प्रबोध शिव ने उत्कीर्ण कराये थे। उनसे ज्ञात होता है कि शैवों का मत्तमयूर सम्प्रदाय पश्चिमी भारत और मध्य भारत के कितने ही स्थानों में दूर-दूर तक फैला हुआ था। आचार्य प्रबोध शिव प्रशान्त शिव के शिष्य थे। उन प्रशान्त शिव ने भ्रमर पर्वत के पादमूल में शोण के तट पर एक आश्रम बनाया था और उन्होंने ही गंगा के तट पर एक पवित्र तपःस्थान की स्थापना की थी, जिसे काशी के शिव-भक्त बड़े सम्मान की दृष्टि से देखते थे। प्रशान्त शिव के गुरु प्रभाव शिव थे, जिन्हें युवराजदेव विशेष रूप से मालवा से चेदि देश मे लाए थे। युवराजदेव ने अपने गुरु के लिए अनन्त धन व्यय करके गुर्गी में एक मठ की प्रतिष्ठा की। इसी प्रकार युवराज के पुत्र लक्ष्मणराज ने उसी मत्तमयूर शैव सम्प्रदाय के प्रति अपनी भक्ति प्रकट करते हुए हृदय शिव नामक आचार्य के लिए वैद्यनाथ मठ की स्थापना की थी। ऐसा बिलहरी के शिला-लेख से ज्ञात होता है।

चन्द्रेह के लेख में लिखा है कि आचार्य प्रभाव शिव के गुरु आचार्य शिखा शिव थे और उनके भी गुरु मत्तमयूर सम्प्रदाय के आचार्य पुरन्दर थे, जो कितने ही राजाओं के दीक्षा-गुरु थे। आचार्य पुरन्दर अत्यन्त प्रभावशाली व्यक्ति थे। उन्होंने ही मत्तमयूर शैवों के संगठन को आगे बढ़ाया। मालवा में दसवीं शती के अन्तिम भाग के लगभग रणपद्रपुर या राणोद से (झांसी और गोंडा के बीच में एक स्थान) एक लेख प्राप्त हुआ है, जिससे ज्ञात होता है कि मत्तमयूर शैवों के दो मठ मालवा में स्थापित हो चुके थे। अवन्ति-वर्मन् नाम के किसी राजा को आचार्य पुरन्दर ने शैव धर्म

में दीक्षित किया था और उसने अपनी गुरु-भक्ति प्रकट करने के लिए एक तपोवन या यत्याश्रम की रणपद्र या राणोद में और दूसरे की उपेन्द्रपुर या उन्डोर में स्थापना की। राणोद में अभी तक इस मठ के अवशेष पाये जाते हैं। राणोद के लेख के अनुसार मठ के साथ दो बड़े सरोवर भी थे, जो अभी तक सुरक्षित हैं। ये शैव आचार्य स्वयं इस प्रकार के सार्वजनिक कार्यों में रुचि रखते थे। लेख के अनुसार रणपद्रपुर के सरोवर का निर्माण आचार्य व्योमशिव ने कराया था। मूल संस्थापक आचार्य पुरन्दर के बाद उनके शिष्य कवच शिव, उनके सदाशिव, उनके हृदयेश और तब व्योम शिव हुए। व्योम शिव प्रभावशाली व्यक्ति थे। उन्होंने रणपद्रपुर के वैभव की पुनः स्थापना की, मठ की मरम्मत कराई और शैव मूर्तियों की स्थापना की एवं उसके साथ मन्दिर, वाटिका और सरोवर का निर्माण कराया।

राणोद शिला-लेख में मत्तमयूर शाखा के संस्थापक आचार्य पुरन्दर के पूर्व-गुरुओं के नाम भी दिये हुए हैं। सब से पहले कदम्ब गुहाधिवासिन्, उनके बाद शंख मठिकाधिपति और तीसरे उनके उत्तराधिकारी तेरम्बिपाल और चौथे आमर्दक तीर्थनाथ थे। राणोद से पांच मील दक्षिण-पूर्व में स्थित तेरहि (प्राचीन तेरम्बि) स्थान था। तेरहि से छः मील दक्षिण कदवाह नामक स्थान प्राचीन कदम्बगुहा था। बिलहरी लेख से ज्ञात होता है कि कदम्बगुहा शैव-सिद्धों का प्राचीन स्थान था। आचार्य रुद्र शम्भु उन सब के पूर्वज थे। उनके शिष्य मत्तमयूर नाथ, उनके धर्म शम्भु और उसके बाद सदाशिव, माधुमतेय, चूडाशिव, हृदयशिव और अघोरशिव नामक आचार्य हुए। रुद्र शम्भु के शिष्य मत्तमयूरनाथ ही मत्तमयूर शाखा के संस्थापक आचार्य पुरन्दर थे, जिन्होने राजा अवन्तिवर्मन् को शैव मत में दीक्षित किया। इस परम्परा में जिस आचार्य को माधुमतेय कहा गया है, वे मालवा में मधुमती नामक स्थान में शैव शाखा के संस्थापक थे। गुर्गी शिला-लेख के अनुसार मधुमती सैद्धान्तिक या शैवों का बहुत बड़ा केन्द्र था। वस्तुतः ये शैवाचार्य मत्तमयूर सम्प्रदाय के ही अनुयायी थे। मधुमती की शैव शाखा को बिलहरी के लेख में माधुमतेय वंश कहा गया है। आचार्य हृदयशिव भी उसी शाखा से सम्बन्धित थे, जिन्होंने युवराजदेव के पुत्र लक्ष्मण राज से वैद्यनाथ मठ का दान स्वीकृत किया।

मत्तमयूर शैवों ने मध्य भारत, मालवा, ग्वालियर, रीवा और मध्य प्रदेश में अपने केन्द्रों का विस्तार किया। कलचुरि और राष्ट्रकूट राजाओं ने उन्हें मुक्तहस्त से सहायता प्रदान की। उससे भी और आगे दक्षिण कोंकण में एक हजार आठ ईस्वी में अपना एक केन्द्र स्थापित किया था। शिलाहारवंशी नरेश रट्टराज के ताम्रपत्र से ज्ञात होता है कि आत्रेय नामक मत्तमयूर शैवाचार्य को मन्दिर और मठ के उपयोग के लिए कुछ गांव दान मे दिए गए थे। आचार्य आत्रेय के गुरु अम्भोज शम्भु थे, जिन्हें मत्तमयूर शाखा के अन्तर्गत परम्परा-विशेष से सम्बन्धित कहा गया है।

किन्तु कलचुरि-मण्डल में सबसे प्रसिद्ध मठ गोलकी का शैव मठ था, जो कलचुरियो की राजधानी त्रिपुरी के समीप ही सद्भव शम्भु नामक शैवाचार्य द्वारा स्थापित किया गया था। किन्तु यह मठ मत्तमयूर आचार्यों से भिन्न किसी दूसरी शाखा का जान पड़ता है। इसकी स्थापना भी युवराज देव प्रथम के समय में दसवीं शताब्दी के चौथे पाद मे हुई थी। लगभग तीन सौ वर्षो तक यह प्रसिद्ध केन्द्र फूलता-फलता रहा। बारह सौ इकसठ ईस्वी में काकतीय सम्राज्ञी महादेवी रुद्राम्बा ने मलकापुरम् नामक स्थान में एक स्तम्भ-लेख उत्कीर्ण कराया था। उससे ज्ञात होता है कि युवराज देव प्रथम के समय सद्भव शम्भु नाम के अत्यन्त विख्यात शैवाचार्य थे। उन्होंने खास त्रिपुरी राजधानी में ही अपने आश्रम की स्थापना की। मद्रास प्रान्त से मिले हुए एक लेख से ज्ञात होता है कि युवराज देव ने गोलकी मठ को तीन लक्ष "ग्राम" दान में दिये थे। वस्तुतः मध्यकालीन शिलालेखों में इस प्रकार की जो बड़ी-बड़ी ग्राम-संख्याएं दी हैं, उनका तात्पर्य गांवो से न होकर राजकीय आय से था और यहां भी वही अर्थ सुसंगत बैठता है। सम्राट् केयूरवर्ष युवराज देव प्रथम ने गोलकी मठ के लिए इसी प्रकार के तीन लक्ष राजकीय मुद्राओं की वार्षिक आयवाले दान की सुविधा की थी। मलकापुर के स्तम्भ-लेख में उसी परम्परा के अन्य आचार्य सोम शम्भु का भी उल्लेख है, जिसने 'सोम शम्भु पद्धति' नामक किसी ग्रन्थ की रचना की थी और जिसके हजारों शिष्य थे। ईशान शिव गुरुदेव पद्धति नामक महत्त्वपूर्ण शैव ग्रन्थ के क्रियापाद में सोम शम्भु का प्रमाण कई बार दिया गया है, जिससे अनुमान होता है कि ये सोम शम्भु लगभग ग्यारहवीं शती के आरम्भ में हुए होंगे। ईशान-

शिव गुरुदेव पद्धति ग्रन्थ भी इन्हीं शैव आचार्यों की प्रेरणा से ग्यारहवी-बारहवीं शती के लगभग विरचित हुआ होगा। गोलकी मठ की शाखाएं सुदूर दक्षिण के तामिल और तेलगु प्रदेशों तक फैल गई थीं। मलकापुरम् स्तम्भ-लेख से ज्ञात होता है कि गोलकी मठ के ही एक शैव आचार्य विश्वेश्वर शम्भु को बारह सौ एकसठ ईस्वी में एक गांव दान में दिया गया था।

सम्राट् युवराज देव प्रथम के सांस्कृतिक यश का दूसरा प्रमाण कवि राजशेखर की 'विद्धशालभञ्जिका' नामक नाटक से प्राप्त होता है। राजशेखर अपने काव्य-जीवन के आरम्भ में कान्यकुब्ज या महोदय के गुर्जर प्रतिहार सम्राट् महेन्द्रपाल की राज्य-सभा के सभापण्डित थे। वहीं उन्होने पहले कर्पूरमञ्जरी की रचना की और फिर स्वयं सम्राट् के अनुरोध से बालरायामण की टीका की। किन्तु बाद में वे कन्नौज छोड़कर कलचुरि-साम्राज्य की राजधानी त्रिपुरी में युवराजदेव केयूरवर्ष की सभा में आ गये। वहीं उन्होंने विद्धशालभञ्जिका नामक नाटिका की रचना की और उसमें बड़े ही सौम्यभाव से युवराज देव की परिषद् का उल्लेख किया, युवराजदेव को प्रसन्न करने के लिये उन्होंने नाटिका की रचना की और उनके सामने उसका अभिनय किया गया। इससे ज्ञात होता है कि दसवी शती के प्रथम भाग में चेदीश्वर युवराज देव का सांस्कृतिक यश चारो ओर विख्यात था। उसे सुनकर राजशेखर-जैसे स्वाभिमानी और विवेकशील विद्वान् भी कान्यकुब्ज का वैभव छोड़कर कुछ समय के लिए त्रिपुरी चले आये थे। ज्ञात होता है, राजशेखर ने कुछ ही वर्षों तक त्रिपुरी में निवास किया और फिर वे महोदय लौट गए। उनका बालभारत नामक अपूर्ण नाटक महेन्द्रपाल के उत्तराधिकारी महीपाल या विनायकपाल देव के समय में लिखा गया, जिनका सबसे पहला लेख ९१४ ई० का पाया गया है।

युवराज देव के समय में डहाल-मण्डल या कलचुरि-साम्राज्य का विस्तार भागीरथी और शोण से लेकर नर्मदा तक फैल गया था। युवराज देव और उनकी महिषी नोहला देवी के गर्भ से उनके पुत्र लक्ष्मणराज का जन्म हुआ। यह भी अत्यन्त प्रतापी शासक था, जिसने अपने कुल के बल-वैभव में और भी वृद्धि की। बिलहरी-शिलालेख के अनुसार लक्ष्मण-राज ने सोमनाथ पाटन तक की यात्रा की, जहां उसने एक स्वर्णमयी नागमूर्ति सोमेश्वर देव के लिए अर्पित की, उसने कन्नौज के प्रतिहार राजा को पराजित किया और बंग देश के पाल राज से भी युद्ध मे लोहा लिया। लक्ष्मण-राज ने भी अपने पिता की नीति का अनुसरण करते हुए मत्तमयूर शैव आचार्यों के प्रति उदार नीति का पालन किया। इसके मंत्री सोमेश्वर का एक लेख जबलपुर जिले की मुड़वारा तहसील कारितलाई नामक गांव में प्राप्त हुआ है, जिससे ज्ञात होता है कि मंत्री सोमेश्वर ने एक विष्णु-मन्दिर का निर्माण कराया था। उस मन्दिर के व्यय के लिए राजा की ओर से दीर्घशाखिका नामक एक गांव और उसकी रानी महादेवी राहड़ा की ओर से चक्रह्लदी नामक गांव दान मे दिया गया।

लक्ष्मणराज का पुत्र शंकरगण सामान्य राजा था। उसके बाद उसका छोटा भाई युवराज देव उसका अधिकारी हुआ। यह समय चेदि-राज्य के लिए अच्छा न था। युवराज देव द्वितीय को राष्ट्रकूट-नरेश कृष्ण तृतीय, और कल्याणी को चालुक्यराज जयसिंह द्वितीय एवं मालवा के परमार राजा वाक्पतिराज द्वितीय से पराजित होना पड़ा। उसके पुत्र कोक्कल्लदेव द्वितीय को चन्देल-राजा विद्याधर से पराभव प्राप्त हुआ किन्तु कोक्कल्लदेव द्वितीय के पुत्र महाराजाधिराज श्रीमद्गांगेयदेव (१०१५-१०४१ ई०) विक्रमादित्य ने चेदि-साम्राज्य की विचलित वंशलक्ष्मी को पुनः प्रतिष्ठापित करके चारो दिशाओं में अपने प्रताप की दुन्दुभी फेर दी। अलबिरूनी ने अपनी पुस्तक किताबुल-हिन्द (१०३० ईस्वी) में डहाल, उसकी राजधानी तीउरी और राजा गांगेय का उल्लेख किया है। गांगेयदेव ने कीर, अंग, कुन्तल, उत्कल आदि देशों में अपनी विजय-पताका फहराई और यशःकर्ण के जबलपुर-लेख के अनुसार उसने विक्रमादित्य की उपाधि धारण की। महोबा से प्राप्त चन्देलों के एक लेख में गांगेयदेव को जितविश्व अर्थात् विश्व-विजयी कहा गया है। गांगेयदेव को प्रयाग बहुत प्रिय था और कहा जाता है कि वे अक्षयवट के समीप रहा करते थे। काशी भी उनके साम्राज्य में थी। ग्यारहवीं शती के मध्य भाग में गुर्जर प्रतिहारों की शक्ति बुझ गई थी और चन्देल भी अवनति के पथ पर थे। गांगेयदेव ने तीरभुक्ति या तिरहुत के पालवंशी राजा को भी पराजित किया था, किन्तु पारिजात-मंजरी के लेखक मदन पण्डित की उक्ति से ज्ञात होता है

कि धारेश्वर परमार भोज (१०१०-५५) से गांगेय देव को पराजित होना पड़ा था। कलचुरि-वंश के राजाओं में केवल गांगेयदेव ने ही लक्ष्मी की मूर्ति से अंकित सोने के सिक्के चलाए थे। गांगेयदेव की मुद्राओं का उल्लेख ठक्कुर फेरु ने अपनी द्रव्य-परीक्षा में किया है। ये सिक्के बहुत अधिक संख्या में उत्तर प्रदेश से लेकर मध्य प्रदेश तक के विशाल भू-भाग में अनेक स्थानों में पाए गए हैं।

गांगेयदेव का पुत्र प्रतापी कर्णदेव (१०४२-१०७३ ई०) हुआ, जो लक्ष्मीकर्ण के नाम से भी प्रसिद्ध है। यह सम्राट् भारतवर्ष के महान् विजेताओं में गिने जाने योग्य है। गुजरात के चालुक्यराज भीम (१०३९-६४ ई०) से मित्रता करके कर्ण ने धारेश्वर भोज को चकनाचूर कर डाला और इसी युद्ध में भोज का अन्त हो गया। कहा जाता है कि उसने पूर्व में मगध के राजा को भी हरा दिया था। चोल, कुंग, हूण, गौड़, गुर्जर, कीर, कलिग, बंग, पाण्डय देशों के राजा उसके दरबार में उपस्थित रहते थे। चन्देल-शिलालेखों में भी यह स्वीकार किया गया है कि लक्ष्मीकर्ण के कारण कुछ समय के लिए उस साम्राज्य के यश को ग्रहण लग गया। पश्चिम में मही और पर्णाशा नदियों के क्षेत्र से लेकर पूर्व में हुगली नदी तक, उत्तर मे गंगा-यमुना की अन्तर्वेदी से लेकर महानदी वेण्णगंगा, वर्दा और ताप्ती नदियों तक के समस्त भू-भाग में कर्ण का एकछत्र सार्वभौम शासन स्थापित हो गया था। किन्तु अपने दीर्घकालीन शासन के अन्त में कर्ण को अपने विशाल साम्राज्य का कुछ ह्रास देखना पड़ा। बंगाल के नयपाल और विग्रहपाल तृतीय ने गौड़ से, कीर्तिवर्मन् चन्देल ने कालिञ्जर और खजराहा प्रदेश से, उदयादित्य परमार ने मालवा प्रदेश से, कल्याणी के चालुक्यराज सोमेश्वर ने कर्णाट से कर्ण के प्रभाव को समाप्त कर दिया और ये राज्य क्रमशः स्वतन्त्र हो गये। यहां तक कि गुजरात के चालुक्यराज भीम प्रथम ने भी कर्ण का साथ छोड़ दिया और हेमचन्द्र के कथनानुसार कर्ण उससे पराजित हुआ। कर्ण का सबसे महान् सांस्कृतिक कार्य वह विशाल मन्दिर था, जो उसने काशी में कर्णमेरु के नाम से शिव के लिए बनवाया। यह महान् प्रासाद अब ध्वस्त हो गया है; किन्तु ग्यारहवीं शती में यह उत्तर भारत का सब से महान् देव-प्रासाद था। इस मन्दिर के भग्न प्रस्तरखण्ड आज भी काशी में बकरिया कुण्ड के पास बिखरे पड़े हुए हैं। कर्ण ने अमरकण्टक में भी एक विशाल मन्दिर बनवाया था, जो सौभाग्य से सुरक्षित रह गया है। यह एक त्रिकूट देवालय था, जिसमें ब्रह्मा, विष्णु और शिव के लिए तीन और तीन गर्भगृह थे, जिन्हें बीच का एक महामण्डप आपस में मिलाता था। वह महामण्डप अब ध्वस्त हो गया, अन्यथा तीनों शिखरयुक्त देवालय आज भी अपने प्राचीन स्थापत्य और वास्तु-वैभव की साक्षी देते है। काशी और अमरकण्टक दोनों स्थानों के मन्दिर कर्ण डहरिया के मन्दिर के नाम से प्रसिद्ध थे। अपने दिग्विजय के सर्वोत्तम मुहूर्त में १०५२ ईस्वी में कर्ण ने पुनः अपना राज्याभिषेक कराया था और लगभग उसी समय उसने त्रिपुरी से लगभग एक मील पर कर्णावती नामक नई राजधानी (वर्तमान करनबेल) का निर्माण भी कराया।

कर्ण ने अपनी मृत्यु से पहले ही वृद्धावस्था में राज्य का भार अपने पुत्र यशःकर्ण को सौंप दिया था, जो १०७३ ईस्वी में सिंहासन पर आसीन हुए और पिता के सामने ही उनका अभिषेक हुआ। उनका राज्यकाल १०७३ ई० से ११५१ ई० तक माना जाता है, जब कि उनके पुत्र गयाकर्ण का उल्लेख प्राप्त होता है। किन्तु महाराजाधिराज परमेश्वर कर्णदेव के अनन्तर कलचुरि-साम्राज्य के यश में किसी प्रकार की वृद्धि नहीं हुई। इलाहाबाद जिले की मंझनपुर तहसील के गुहरवा ताम्रपत्र लेख में अथवा बनारस ताम्रपत्र लेख में महाराज कर्णदेव को परमभट्टारक-महाराजाधिराज परमेश्वर वामदेव पादानुध्यात परमभट्टारक-महाराजाधिराज परमेश्वर परम माहेश्वर त्रिकलिंगाधिपति कर्णदेव कहा गया है। ये भारी-भरकम उपाधियाँ यशःकर्ण और सम्भवतः उसके पुत्र गयाकर्ण के समय में भी प्रचलित रहीं। किन्तु कलचुरि-साम्राज्य का भीतरी सार खोखला हो चुका था और बारहवी शताब्दी में चन्देल और गाहड़वालों की बढ़ती हुई शक्ति के सामने कलचुरि-साम्राज्य की सीमाएँ सिमटकर केवल डहाल या चेदिवंश तक ही रह गई थीं। गयाकर्ण के बाद उसका पुत्र नरसिंह ११५५ ई० में गद्दी पर बैठा और उसके कुछ समय बाद नरसिंह का छोटा भाई जयसिंह राजा हुआ। ११८० ई० के लगभग उसका पुत्र विजयसिंह राजा हुआ। वह त्रिपुरी के कलचुरि-वंश का अन्तिम नरेश था, जिसे १२०० ई० के लगभग देवगिरि के यादव राजा ने समाप्त कर दिया।

इस प्रकार कोक्कल्ल देव का प्रतापी वंश लगभग तीन सौ वर्षों तक भारत के मध्य भाग में महती शक्ति के रूप में शासन करता रहा। ग्यारहवीं शती में इस वंश का प्रताप अपने मध्याह्न पर पहुँच गया था, जब गांगेयदेव और कर्णदेव ने दिगन्त-व्यापी चक्रवर्ती राज्यों की स्थापना की, और अनेक प्रकार से धर्म, कला और संस्कृति के कार्य को आगे बढ़ाया। कलचुरि-सम्राटों की विशेषता उनका समन्वयात्मक दृष्टिकोण था। यद्यपि सम्राट् शिव के भक्त थे और वे अपने आपको परम-माहेश्वर कहते हैं, तो भी, जैसा कि लक्ष्मीकर्ण के अमरकंटक में स्थित त्रिकूट देवालय से सिद्ध होता है, वे त्रिदेव-उपासना के अनुयायी थे। पुराण-प्रतिपादित धर्म में उनकी आस्था थी। कलचुरि-वंश का जहाँ तक प्रभाव था, मन्दिर और मूर्ति-शिल्प को बराबर प्रश्रय प्राप्त हुआ। गुर्गी, चन्द्रेह, भेड़ा घाट, बिलहरी, सुहागपुर, अमरकंटक आदि स्थानों में कलचुरियों के अनेक मन्दिर और मूर्तियाँ फैली हुई हैं। वृत्ताकार गर्भ-गृह वाले शिखरयुक्त मन्दिर कलचुरि-वास्तु-शैली की विशेषता थी। इनके शिखर विशेष रूप से अलंकृत हैं। मूर्तियों की उकेरी मे शिल्प की बारीकी का परिचय तो मिलता है, किन्तु सौन्दर्य-विधान में उतनी सफलता नही देखी जाती। मूर्तियों मे अलंकरण का प्राधान्य है और भावाभिव्यक्ति का प्रयत्न भी किसी अंश तक विद्यमान है; किन्तु वे शिल्पकारों की स्वाभाविक उमंग से प्रसूत न होकर शिल्प-शास्त्रों के विजड़ित विधान के अनुसार उत्कीर्ण हुई हैं। जिस प्रकार चन्देल-मन्दिरों और मूर्ति-शिल्प के उदाहरण खजुराहो में सुरक्षित रह गए हैं, उस प्रकार के विशिष्ट मन्दिर कलचुरि-शिल्प-कला में सुरक्षित नहीं रहे। फिर भी तीन सौ वर्षो के लम्बे इतिहास में कला, साहित्य, शिक्षा और धर्म के लिए कलचुरि-राजाओं ने अपनी एक परम्परा बनाये रखी। साहित्य के क्षेत्र में भी कलचुरि-नरेशों की राजसभा की कीर्ति अति प्रसिद्ध थी। केयूरवर्ष युवराजदेव प्रथम की राजपरिषद् में राजशेखर सम्मिलित हुए थे और परिषद् के अनुरंजन के लिए उन्होंने विद्धशालभंजिका नामक नाटिका विरचित की। श्री वर्धमानक और तन्तुमती के पुत्र मौद्गल्य गोत्रीय मुरारि कवि ने अनर्घ राघव नामक संस्कृत नाटक में लिखा है कि कलचुरि-नरेश का यश 'त्रिभुवन-विजय' के लिए विख्यात था। इस श्लोक में उन्होंने 'विक्रम' शब्द का प्रयोग किया है। कलचुरि-नरेश लक्ष्मीकर्ण या कर्णदेव का यश त्रिभुवन-विजय के लिए विख्यात हो गया था और १०५१ ई० मे अपने अभिषेक के समय उन्होंने 'विक्रमादित्य' की पदवी भी धारण की थी। किन्तु मुरारि और कर्ण की समसामयिककता के लिये और पक्का प्रमाण चाहिए। मुरारि ने माहिष्मती राजधानी का साक्षात् उल्लेख किया है—**इयं** च कलचुरिकुलनरेन्द्रसाधारणाग्रमहिषी माहिष्मती नाम चेदिमंडल मुण्डमाला नगरी (अंक ७)। यह माहिष्मती नर्मदा के तट पर स्थित अर्वाचीन मान्धाता नगरी थी। राजशेखर ने उदात्तराघव नामक नाटक के लेखक मायुराज नामक कलचुरि (करचुलि) का उल्लेख किया है। ज्ञात होता है कि दसवी शती के आरम्भ में ये कोई कलचुरि-नरेश ही थे। इनका लिखा हुआ नाटक तो अब प्राप्त नही है; किन्तु दशरूप पर धनिककृत टीका में उसका कई बार उल्लेख आया है। कलचुरियों के समय संस्कृत-प्रशस्ति-काव्य की पर्याप्त उन्नति हुई थी, जैसा उनके कई शिला-लेख और ताम्र-पत्रों से विदित होता है।

बालमुकुन्द भारतीय

चन्देल-राजसत्ता का विकास

भारतीय इतिहास में चन्देलों का स्थान बहुत महत्व-पूर्ण है। उनका समय महान् राजनीतिक उथल-पुथल और सामाजिक ह्रास का था। इस समय हिन्दुओं का पतन हो रहा था और देश पर मुसलमानों के आक्रमण आरम्भ हो गये थे। प्रतिहारों की शक्ति क्षीण होने के पश्चात् देश की रक्षा का भार उनके ऊपर आया, जिसका निर्वाह उन्होंने भली भांति किया। उन्होंने तुर्कों को रोका और पश्चिमी पंजाब में आगे नहीं बढ़ने दिया, यद्यपि राजपूतों की परस्पर फूट के कारण महमूद गजनवी के घातक आक्रमण नहीं रोके जा सके। दूसरे क्षेत्रों मे भी चन्देलों की महान् देन हें। उन्होंने संक्र-मण-काल में हिन्दू-धर्म, कला और साहित्य को आश्रय देकर न केवल उनकी रक्षा की, वरन् अपने प्रयासों से उनकी अभि-वृद्धि भी की।

इतना महत्वपूर्ण स्थान होने पर भी उनकी उत्पत्ति संदिग्ध और विवादग्रस्त है। स्मिथ, ब्रोकमैन और पावेल प्राइस-जैसे इतिहासकार उनकी उत्पत्ति गोंड़ जाति से बता-कर उन्हें निम्न जाति का प्रमाणित करने का प्रयास करते है। डा० हेमचन्द्र राय और श्री चिन्तामणि विनायक वैद्य-जैसे विद्वानों ने उन्हें क्षत्रिय प्रमाणित किया। हमारे पास डा० राय और श्री वैद्य की बात मानने के लिए यथेष्ट प्रमाण हैं। चन्देलों के अभिलेखों और ताम्र-पत्रों से उनके क्षत्रिय होने का प्रमाण मिलता है। चारणों ने भी उनका उल्लेख ३६ राजपूत कुलों मे करते हुए उनका मान चौहानों के समान बताया है। अनुश्रुतियों के अनुसार भी वे उच्च कुल के ठहरते हैं। वास्तव में उनका सम्बन्ध प्राचीन क्षत्रिय राज-वंशों में से प्रसिद्ध चन्द्रवंश से है।

इसी प्रकार का विवाद इस वंश के संस्थापक के संबंध में है। अधिकांश विद्वान् नन्नुक को चन्देल-वंश का संस्थापक मानते है। अभिलेखों के अनुसार इस वंश का संस्थापक चन्द्रात्रेय ठहरता है। इस सम्बन्ध में तीन उत्कीर्ण लेख मिले है, जिनमें महाराज धंग का खजुराहो-लेख बहुत महत्वपूर्ण और विश्वसनीय है। अनुश्रुतियां भी चन्द्रवर्मा अथवा चन्द्र-देव को इस वंश का संस्थापक मानती हैं, जो चन्द्रात्रेय का ही अपभ्रंश है।

चन्द्रात्रेय ने चन्देल-राज्य की स्थापना सन् ७४० के लगभग परिहारो को हराकर की थी। यह तिथि नन्नुक के पूर्ववर्ती तीनों राजाओं मे से प्रत्येक का शासनकाल ३० वर्ष मानकर निर्धारित की गई है। कुछ विद्वानों का मत है कि चन्देल-राज्य की स्थापना स्वतंत्र रूप से की गई। चन्द्रा-त्रेय के पश्चात् दो राजा हुए, जिनके नाम धंग के लेख में अधूरे दिए है। इन तीनों राजाओं के सम्बन्ध में अधिक जानकारी नहीं है। यह काल चन्देल-वंश के उदय का था और इसलिए स्वाभाविक रूप से उनकी शक्ति अधिक न रही होगी।

नन्नुक ने इस वंश का गौरव बढ़ाया। वह एक ऐति-हासिक पुरुष है और इसीलिए बहुत-से विद्वान् इसी को चन्देल-राजवंश का संस्थापक मानते है। उसने अपने राज्य का विस्तार किया और महोबा को अपनी राजधानी बनायी। इसी समय प्रसिद्ध प्रतिहार-शासक नागभट्ट द्वितीय ने चंदेल-राज्य पर आक्रमण किया और नन्नुक को पराजित कर अपने अधीन कर लिया। इस संरक्षण में रहकर भी नन्नुक ने अपने राज्य का विस्तार किया। उसकी मृत्यु के बाद सन् ७४८ में वाकपति गद्दी पर बैठा। उसने कई युद्ध किए और चन्देल राज्य का विस्तार किया। तत्पश्चात् सन् ७६० में उसका

ज्येष्ठ पुत्र जयशक्ति शासनारूढ़ हुआ। उसे जैज्जाक अथवा जेजा भी कहते थे और उसी के बाद, जिस भूभाग पर चन्देलों का राज्य था, वह ज़ैजाकभुक्ति कहलाने लगा। जयशक्ति के सम्भवतः एक पुत्री थी, जिसका विवाह कलचुरी राजा कोकल्लदेव से हुआ था। उसकी मृत्यु के बाद उसका छोटा भाई विजयशक्ति गद्दी पर बैठा। उसने अपने राज्य का विस्तार दक्षिण की ओर किया। खजुराहो के एक लेख के अनुसार उसने आसपास के प्रदेशों को जीतकर दक्षिण पर चढ़ाई की और इस विजय-यात्रा में सुदूर दक्षिण तक गया। इससे डा० मजुमदार ने निष्कर्ष निकाला है कि सम्भवतः वह बंगाल के प्रसिद्ध राजा देवपाल का मित्र था और उसके साथ विजय-यात्रा में दक्षिण गया था। इसके बाद राहिल शासनारुढ़ हुआ। उसने अपने १५ वर्ष के शासन में चन्देल-शक्ति को सुदृढ़ किया। राहिल ने अजयगढ़ तथा अन्य स्थान जीते और कलचुरी-शासकों से वैवाहिक सम्बन्ध स्थापित किया। उसके कार्य काल में अनेक देवालय,किले और तालाब बने। उत्तर प्रदेश के हमीरपुर जिला में स्थित राहिल्य ग्राम इसी ने बसाया।

राहिल की मृत्यु के उपरान्त सन् ९१५ में हर्षदेव गद्दी पर बैठा। वह बहुत ही योग्य और वीर शासक था। इस समय प्रतिहारों की शक्ति कमजोर हो गई थी। भोज की मृत्यु के पश्चात् उसका छोटा भाई महिपाल गद्दी पर बैठा। सन ९१६ में राष्ट्रकूट-राजा इन्द्र तृतीय ने महिपाल को बुरी तरह पराजित कर कन्नौज पर अपना अधिकार जमा लिया। हर्षदेव ने उसे सहायता देकर पुनः गद्दी पर बैठाया। इस समय से चन्देलों का मान बहुत बढ़ गया और प्रतिहार उनका प्रभुत्व मानने लगे। हर्षदेव ने अपने राज्य का विस्तार किया और बहुत-से छोटे-छोटे राजाओं ने उसकी अधीनता स्वीकार कर ली। उसने परम भट्टारक का विरुद धारण किया और चौहान-राजकुमारी कंचुका से विवाह किया। उसकी मृत्यु सन् ९३० में हुई और उसका पुत्र यशोवर्मन् सिंहासन पर बैठा।

यशोवर्मन् अपने पिता से भी अधिक पराक्रमी और महत्वाकांक्षी था। उसने अपने पिता की नीति बदल दी और दिग्विजय करने का निश्चय किया। सन् ९४० में उसने कन्नौज पर आक्रमण कर देवपाल को पराजित किया। इस पराजय से लड़खड़ाते हुए प्रतिहार-साम्राज्य को गहरा धक्का लगा और वह समाप्तप्राय हो गया। उसने देवपाल से विष्णु भगवान की एक प्रतिमा प्राप्त की और उसे खजुराहो में एक मन्दिर बनवाकर उसमें प्रतिष्ठित किया। तत्पश्चात् उसने कालिंजर पर चढ़ाई की और उसे अपने अधिकार में कर लिया। उस समय कालिंजर किसके अधिकार में था, यह एक विवादग्रस्त प्रश्न है। कुछ विद्वान् उस पर कलचुरियों का अधिकार बताते हे, जब कि कुछ प्रतिहारों का। कुछ ऐसे भी हैं, जो उस समय कालिंजर पर राष्ट्रकूटों का अधिकार बताते हैं। कुछ भी हो, उसने कालिंजर पर अपना अधिकार किया और 'कालंजराधिपति' का विरुद धारण किया। इसके बाद उसने चेदिराज युवराज प्रथम और परमार-राजा सियाक द्वितीय को पराजित कर दक्षिण में अपने राज्य की सीमा बढ़ा ली। तत्पश्चात् दक्षिणी-कोशल के सोमवंशी राजा को हराया और अपनी यात्रा में दूर तक गया। इस समय बंगाल की स्थिति बहुत खराब थी। यशोवर्मन् ने इससे लाभ उठाकर पाल और कम्बोज राज्यों पर चढ़ाई की तथा गौड़ एवं मिथिला पर अधिकार कर लिया। खजुराहो-लेख में तो खस, कश्मीर, कुरु आदि देशों को जीतने का भी उल्लेख है। यह अतिशयोक्ति-पूर्ण है और इस पर विश्वास करना कठिन है। इतना सत्य है कि यशोवर्मन् ने अपने पराक्रम से चन्देल-राज्य को उत्तरी भारत का सब से प्रमुख राज्य बना दिया। वह जैसा पराक्रमी था, वैसा ही न्यायशील और कला तथा साहित्य-प्रेमी। उसने खजुराहो तथा अन्य स्थानों में कई जलाशय और मन्दिर बनवाए, जिनमें खजुराहो का चतुर्भुज मन्दिर प्रमुख है।

धंगदेव इस वंश का सबसे प्रतापशाली राजा हुआ। उसने अपने राज्य का खूब विस्तार किया। उसकी विजयों का उल्लेख हमें उसके अभिलेखों तथा ताम्रपत्रों से मिलता है। उसने प्रतिहारों के रहे-सहे प्रभुत्व को भी समाप्त कर दिया और जमुना से नर्मदा तथा ग्वालियर से काशी के बीच के भू-भाग में एक सार्वभौम सत्ता-सम्पन्न राज्य की स्थापना की। सन् ९९८ के लगभग धंगदेव ने काशी में एक दान-पत्र दिया। ऐसा प्रतीत होता है कि यहीं से उसने अंग अर्थात् भागलपुर और राधा अर्थात् पश्चिमी बंगाल पर चढ़ाई की। उसने कोशल के सोमवंशी शासकों पर भी आक्रमण किया। अपनी विजय-यात्रा पर वह दक्षिण गया और

वहां आन्ध्र तथा कुन्तल के शासकों से युद्ध किया। इस सम्बंध में अभी पूरी जानकारी नहीं है। खजुराहो के एक लेख से ज्ञात होता है कि ऋथ, सिंहल और कांजी के शासक 'उसके आदेश बड़े विनीत भाव से सुनते थे।' उसने 'भारत के समस्त राजाओं को खुली चुनौती दी, जैसा महोबा के एक खंडित लेख से स्पष्ट है।' कुछ भी हो, यह निर्विवाद है कि धंगदेव अपने समय में भारत का सब से प्रतापी और प्रभावशाली राजा था, जिसकी कीर्ति पूरे देश में छाई थी।

वह बहुत दूरदर्शी था। उसने यह भली भांति समझ लिया था कि भारत की रक्षा के लिए सीमान्त की रक्षा करनी होगी। ऐसा समझनेवाला अपने समय का वह सम्भवतः एक ही राजा था। यदि दूसरे राजाओं ने भी ऐसी ही दूरदर्शिता और राष्ट्रीयता का परिचय दिया होता, तो भारत के आन्तरिक भागों में महमूद गजनवी के आक्रमण न हुए होते और न यहां मुसलमानी शासन ही स्थापित होता। जब सुबुक्तगीन ने भटिंडा पर आक्रमण किया और शाही राजा जयपाल ने धंगदेव तथा दूसरे भारतीय राजाओं से सहायता मांगी, तो धंगदेव स्वयं एक सेना लेकर गया था। इस युद्ध में सुबुक्तगीन को नीचा देखना पड़ा और जयपाल ने उसके राज्य का बहुत-सा भाग छीन लिया। इस पराजय से क्रुद्ध होकर सुबुक्तगीन ने भटिंडा पर फिर चढ़ाई की। जयपाल ने फिर सहायता मांगी। धंगदेव भी गया, किन्तु देर हो चुकी थी और सफलता सुबुक्तगीन को मिली।

धंगदेव जैसा पराक्रमी और दूरदर्शी था, वैसा ही कुशल शासक, दानी, धार्मिक, न्यायशील और कला तथा साहित्य-प्रेमी भी। उसने सन् ९५० से १००० तक बड़ी सफलतापूर्वक शासन किया। युद्धों और राज्य-विस्तार में व्यस्त रहने पर भी उसने जनहित-सम्बन्धी कार्यों की ओर अधिक ध्यान दिया। उसने अनेक मन्दिर और जलाशय बनवाए। इन मन्दिरों में चन्देल-कला अपने पूर्ण विकसित रूप में मिलती है। उसी के काल का वह लेख है, जिसमें चन्द्रात्रेय को चन्देलवंश का संस्थापक बताया गया है और नन्नुक से उस समय तक की पूरी वंशावली दी गई है। यद्यपि उसमें काव्य-प्रतिभा नहीं थी, तथापि उसे साहित्य से प्रेम था। उसके दरबार में अनेक कवियों को आश्रय मिला। राजा स्वयं शिव का उपासक था, किन्तु बहुत सहिष्णु था। उसके समय में चन्देल-राज्य अपने पूर्ण वैभव पर था।

गंडदेव अपने पिता की ही भांति पराक्रमी और योग्य शासक था। वह सन् १००० में गद्दी पर बैठा। बताया जाता है कि अत्यधिक वृद्ध हो जाने के कारण धंगदेव ने अपने जीवन-काल में ही गंडदेव को शासन-भार सौंप दिया था। उसने अपने पिता के राज्य को अक्षुण्ण बनाए रखा और उसकी नीति का यथावत् अनुसरण किया। उसका अधिकांश समय महमूद गजनवी से युद्ध करने में व्यतीत हुआ। जब महमूद ने सन् १००८ में भटिंडा के राजा आनन्दपाल पर चढ़ाई की, तब गंडदेव ने भी आनन्दपाल की सहायता के लिए एक विशाल सेना भेजी। झेलम-तट पर घोर युद्ध हुआ, जिसमें मुसलमानों की अपार क्षति हुई। किन्तु भाग्य ने पलटा खाया। जैसे ही उनकी सेना के पैर उखड़नेवाले थे, वैसे ही बारूद की आग से आनन्दपाल का हाथी भड़क गया और विजय-श्री मुसलमानों के हाथ लगी। इसके बाद महमूद के आक्रमण आन्तरिक भागों में होने लगे। सन् १०१९ में वह कन्नौज तक चढ़ आया। राज्यपाल ने उसका आधिपत्य बिना युद्ध किए ही स्वीकार कर लिया। इससे गंडदेव के राजपूत-अभिमान को ठेस पहुँची और उसने अपने पुत्र विद्याधर को एक विशाल सेना के साथ राज्यपाल के विरुद्ध भेजा। राज्यपाल मार डाला गया और उसके स्थान पर त्रिलोचनपाल राजा बनाया गया। जब महमूद को इसका पता लगा, तब वह एक विशाल सेना लेकर गंडदेव तथा त्रिलोचनपाल को दण्डित करने चला। गंडदेव ने उसे मार्ग में ही रोकने की व्यवस्था की। दूसरी बार महमूद फिर चढ़ आया। उसने ग्वालियर को अपने अधिकार में कर कालिंजर की ओर पयान किया। कालिंजर का किला चारो ओर से घेर लिया गया। जब किले में पूरी रसद समाप्त हो गई और बाहर से आना असम्भव हो गया, तब गंडदेव ने महमूद से सन्धि कर ली और उसे ३०० हाथी दिए तथा वार्षिक कर देने का वचन दिया।

गंडदेव की मृत्यु के उपरान्त सन् १०२५ में विद्याधर गद्दी पर बैठा। वह अपने पिता के समय में अनेक युद्धों में विजय प्राप्त कर चुका था। उसने चन्देल-राज्य की कीर्ति में लेश-मात्र भी कमी नहीं आने दी। कन्नौज के प्रतिहार-शासक से दोआब छीनकर अपने राज्य में मिला लिया। उसके समय में कलचुरी-राजा गांगेयदेव ने स्वतंत्र होने का प्रयत्न किया, किन्तु असफल रहा। विद्याधर ने अपने पितामह की

नीति को यथावत् चालू रखा और मुसलमानों को रोकने के लिए संघ बनाता रहा । उसके समय में चन्देल-राज्य अपने पूरे उत्कर्ष.पर था । इसके बाद चंदेल-वंश का पतन आरम्भ हो गया । उसका पुत्र विजयपाल देव गद्दी पर बैठा । वह बहुत ही धार्मिक और शान्तिप्रिय राजा था । उसने जनहित के बहुत-से कार्य किए । उसके बाद उसका पुत्र देववर्मन देव शासक हुआ । उसने सन् १०५० से १०६० तक केवल दस वर्ष राज्य किया । वह था तो उदार एवं चरित्रवान् शासक, लेकिन उसकी कमजोरी से चन्देल-शक्ति को बहुत धक्का लगा । कलचुरी-शासक कर्णदेव ने उसे पराजिन कर उसके राज्य के बहुत-से भाग अपने अधि-कार में कर लिये । आन्तरिक प्रदेश के शासकों ने भी अपनी शक्ति बढ़ा ली और वे स्वतंत्र होने का स्वप्न देखने लगे ।

इसी समय कीर्तिवर्मन देव गद्दी पर बैठा और उसने चन्देल-शक्ति का पुनरुत्थान किया । उसने गद्दी पर बैठते ही यशोवर्मन्, धंगदेव और गंडदेव-जैसी दिग्विजय प्रारम्भ कर दी तथा चेदिराज कर्ण को पराजित किया । कीर्तिवर्मन ने अपने राज्य का भी विस्तार किया । वह कुशल शासक, साहित्य-प्रेमी एवं निर्माता था । जब उसने अपने राज्य का संगठन कर लिया, तब शासन-व्यवस्था की ओर ध्यान दिया । इसमें उसे अपने सुयोग्य मंत्री गोपाल से बड़ी सहायता मिली । 'प्रबन्ध-चन्द्रोदय' नाटक में इसका पूरा वर्णन मिलता है । यह नाटक कृष्ण मिश्र द्वारा लिखा गया है और सम्भवतः कीर्तिवर्मन देव के दरबार में अभिनीत हुआ था । कीर्ति-वर्मन ने कीर्तिसागर झील तथा कई मन्दिरों का निर्माण कराया । इसके समय के कुछ लेख और स्वर्ण-मुद्राएँ भी प्राप्त हुई हैं । उसका राजत्व-काल सन् १०६० से ११०० ई० तक रहा ।

कीर्तिवर्मन देव के पश्चात् चन्देल-शक्ति का ह्रास होता गया, यद्यपि उसके बाद भी कई प्रतापी एवं योग्य शासक हुए । उसका उत्तराधिकारी सल्लक्षण वर्मन अथवा हल्लक्षण वर्मन हुआ । उसने अन्तर्वेद में कुछ राजाओं पर विजय प्राप्त की और मालवा तथा चेदि के शासकों को हराया । उसने केवल दस वर्ष शासन किया । खजुराहो के कई मन्दिर उसी के बनवाए हुए हैं । उसके बाद जयवर्मन देव और फिर पृथ्वीवर्मन शासक हुए, किन्तु इनके समय में कोई महत्वपूर्ण घटना नहीं घटी ।

मदनवर्मन देव के समय चन्देल राज्य का सितारा फिर चमका । उसने अपने पराक्रम से मालवा के शासक को पराजित किया और गुजरात के शासक पर आक्रमण कर उसे सन्धि करने के लिए बाध्य किया । इस प्रकार उसका राज्य चालुक्य राज्य की सीमा से जा लगा । उसने आसपास के दूसरे राजाओं को अपने अधीन कर काशी के गहडवाल वंश से कूटनीतिक सम्बन्ध स्थापित किए । उसने अनेक मन्दिर और जलाशय बनवाए, जिनमें देद्द ग्राम के समीप विष्णु मन्दिर और महोबा का मदन सागर प्रसिद्ध है । इसके कई लेख कालिजर, अजयगढ़ और महोबा में है । इसके सम्बन्ध में कई जनश्रुतियां भी प्रचलित हैं ।

मदनवर्मन के पश्चात् उसका पौत्र परिमर्दिदेव सन् ११६५ में शासनारूढ हुआ । कुछ विद्वान् मदनवर्मन के पश्चात् उसके पुत्र यशोवर्मन् का गद्दी पर बैठना बताते है, किन्तु ऐसा जान पड़ता है कि उसकी मृत्यु मदनवर्मन के शासन-काल में ही हो गई और परिमर्दिदेव अपने पितामह के बाद ही गद्दी पर बैठा । परिमर्दिदेव एक कुशल और परा-क्रमी शासक था । उसी के आश्रय में आल्हा और ऊदल नाम के दो वीर योद्धा रहते थे , जिनकी वीरता के गीत आज भी जन-जन द्वारा बुन्देलखंड में गाए जाते है । उसके समय में कलचुरियों से फिर युद्ध छिड़ गया, पर विजय-श्री परिमर्दिदेव के साथ ही रही । उसे प्रसिद्ध चौहान-शासक पृथ्वीराज से कई बार युद्ध करना पड़ा । सब से घमासान युद्ध सन् ११८२-८३ में हुआ । यह युद्ध सिरसागढ़ के युद्ध के नाम से प्रसिद्ध है । इसमें चन्देल-सेना की पराजय हुई । चौहान-सेना महोबा तक चढ़ आई और फिर कालिंजर का किला लूटा गया । पृथ्वीराज महोबा पज्जुनराज को सौंप-कर दिल्ली वापस चला गया । इस विजय से चन्देल-राज्य का पश्चिमी भाग चौहानों के अधिकार में आ गया । चन्देलों ने अपनी स्थिति सुधारने का प्रयास किया, किन्तु वे असफल रहे । किसी प्रकार सन् १२०१ में कालिंजर का किला फिर उनके अधिकार में आ गया, जिसे सन् १२०३ में कुतुबुद्दीन ऐबक ने छीन लिया । चौहानों और इसके बाद के मुसलमानों से निरन्तर युद्ध करते रहने से चन्देल-शक्ति

समाप्तप्राय हो गई। यद्यपि उनका शासन सोलहवीं शताब्दी तक चलता रहा, पर वे नाम-मात्र के शासक रहे।

भारत के मध्ययुगीन राजवंशों में चन्देल-वंश अत्यन्त गौरवशाली है। चन्देल-नरेशों ने उत्तरी भारत में एक शक्तिशाली राज्य की स्थापना की और बढ़ते हुए मुसलमानों को रोका। उन्होंने अपनी दूरदर्शिता एवं बुद्धिमत्ता से संघीय भावना को जाग्रत किया और इस प्रकार अपने देशप्रेम और राष्ट्रीयता का परिचय दिया। इसी राष्ट्रीयता से प्रेरित हो गंडदेव ने राज्यपाल पर चढ़ाई की थी। इससे पावेल प्राइस-जैसे इतिहासकारों का यह कथन गलत प्रमाणित हो जाता है कि उस समय भारत मे राष्ट्रीयता नही थी।

चन्देलों का शासन-प्रबन्ध बहुत अच्छा था। प्रशासकीय सुविधा के लिए पूरा राज्य भुक्ति, विषय, मंडल, भोग और ग्रामों में विभक्त था। ग्रामों में ग्राम-सभाएं थीं, जो ग्राम-पंचायतों के रूप में कार्य करती थी। इन सभाओं को पर्याप्त अधिकार थे। जनता पर कर-भार अधिक नही था। न्याय-व्यवस्था समय के अनुरूप अनुकरणीय थी। प्रायः प्रत्येक बडे कार्य की देख-भाल के लिए पृथक्-पृथक् विभाग थे। सेना की व्यवस्था के लिए पृथक् विभाग था। जनहित-सम्बन्धी कार्यों का विशेष ध्यान रखा जाता था। उनकी देख-भाल के लिए भी पृथक् विभाग था। प्रायः सभी चन्देल-नरेशों ने सिंचाई, शिक्षा, सड़कों आदि की सुन्दर व्यवस्था की। उनके द्वारा बनवाए हुए अगणित तालाब आज भी विद्यमान हैं। उनके समय में बुन्देलखंड की बड़ी आर्थिक उन्नति हुई।

साहित्य की अभिवृद्धि में भी चन्देलो का योगदान कम नहीं है। उनके समय में संस्कृत भाषा में व्याकरण, काव्य, नाटक, चम्पू, नीति, आख्यायिका, धर्म आदि-सम्बन्धी कई ग्रन्थ लिखे गए। इसी समय प्रदेशीय भाषाओं का उदय हुआ और पश्चिमी हिन्दी से बुन्देलखंडी का रूप निखरा। वे स्वयं विद्वान् थे और उन्होंने विद्वानों को आश्रय दिया। उनके दरबार में देद्द-जैसे चिकित्सक एवं वैयाकरण, कृष्ण मिश्र-जैसे नाटककार तथा गदाधर, माधव, राम और नन्दन-जैसे कवि रहते थे। प्रसिद्ध बुन्देलखंडी लोक कवि जगनिक परिमर्दिदेव के आश्रय में था। गंडदेव और परिमर्दिदेव स्वयं अपनी काव्य-प्रतिभा के लिए प्रसिद्ध थे।

चन्देल-नरेशों में भारतीय परम्परा के अनुरूप धार्मिक सहिष्णुता थी। उनके समय में सभी मत-मतान्तरों को पूर्ण स्वतंत्रता थी। एक ही घर में विभिन्न मतावलम्बी थे। राजवंश में स्वयं महाराज यशोवर्मन् वैष्णव थे, जब कि उनके पुत्र महाराज धंगदेव शैव थे। उन्होंने अनेक देवी-देवताओं के मन्दिर बनवाए। खजुराहो उनकी धार्मिक सहिष्णुता का जीता-जागता प्रतीक है। शायद ही कोई ऐसा हिन्दू देवता हो, जिसे इन मन्दिरों में स्थान न मिला हो।

चन्देलो का राजत्व-काल निर्माण-कार्यों और कला के विकास की दृष्टि से अत्यन्त महत्वपूर्ण है। उन्होंने न केवल अनेक उपवन, जलाशय, दुर्ग, राजप्रासाद और मन्दिर बनवाए, वरन् कई नगर भी बसाए। खजुराहो, अजयगढ़, कालिंजर और महोबा उनके समय मे वैभवशाली नगर थे। उनके आश्रय में कला का सर्वतोमुखी विकास हुआ। दूसरी कलाओं के सम्बन्ध में अधिक जानकारी नहीं है, पर वास्तु और मूर्ति-कला के तो खजुराहो, दुधही और चांदपुर के मन्दिर सजीव उदाहरण हैं। आसल, अच्युत और छिच्छा-जैसे युग-प्रतिनिधि शिल्पकार चन्देलों के आश्रय में रहते थे।

राज्य की यह चतुर्दिक प्रगति उनके सुदृढ शासन और उनकी समुन्नत आर्थिक स्थिति का द्योतक है। वास्तव में चन्देलों का इतिहास एक ऐसे गतिशील राजवंश का इतिहास है, जो संक्रमणकाल की महान् राजनीतिक उथल-पुथल में निरन्तर संघर्षशील रहकर घोर आपदाओं के बीच अपना अस्तित्व बनाए रखने में समर्थ रहा और जिसने उत्तरी भारत को एक राजनीतिक स्थायित्व दिया तथा उससे अधिक निर्माणशील धाराओं को प्रश्रय देकर कला, साहित्य और संस्कृति की अभिवृद्धि की, जो न केवल एक गौरवशाली परम्परा को जीवित बनाए रखने में, वरन् परिस्थितियों के अनुरूप उसे आगे बढ़ाने में सहायक हुई।

बुन्देल और उनका राजत्व-काल

बुन्देले अपने को श्री रामचन्द्र जी के विख्यात सूर्यवंश से सम्बन्धित बतलाते हैं। उनका कथन है कि श्री रामचन्द्र जी के ज्येष्ठ पुत्र लव के वंश में कुछ समय उपरान्त गगनसेन राजा हुए। इनके वंश में फिर गंगा ऋषि और प्रद्युम्न ऋषि हुए। गंगा ऋषि ने गया जी में मन्दिर बनवाया और प्रद्युम्न ऋषि ने प्रयाग में अक्षयवट लगवाया। इसी प्रकार इन्द्रद्युम्न ने पुरी में जगन्नाथ जी का मन्दिर बनवाया। इनके ही वंश में अनिरुद्ध हुए, जिनकी छठी पीढ़ी में कर्तृराज हुए। कर्तृराज ने काशी आकर वहां के शनि राजपूत राजा को गद्दी से उतार दिया और उसकी कन्या से विवाह किया। उस समय राज्य की स्थिति अच्छी नहीं थी। कर्तृराज ने पंडितों से अशुभ ग्रहों की शान्ति के लिए यज्ञ-जाप कराया, जिससे ये ग्रहनिवार कहलाए। गहरवार इसी का अपभ्रंश है।

कर्तृराज के पश्चात् राजाओं की नामावली लगातार मिलती है, किन्तु बीसवें राजा करनपाल तक उनके राजत्व-काल की घटनाओं का कोई उल्लेख नही मिलता। अन्तिम राजा के सम्वन्ध में केवल इतना उल्लेख मिलता है कि इसके तीन पुत्र थे——वीरकरन, हेमकरन और अरिवर्मन। इनमें हेमकरन बहुत बुद्धिमान और योद्धा थे और इसीलिए इनके पिता ने इन्हें छोटा होते हुए भी अपना उत्तराधिकारी बनाया, शेष भाइयों को जागीरें दे दी गयी। पिता की मृत्यु के उपरान्त दोनों भाइयों ने मिलकर हेमकरन से गद्दी छीन ली। हेमकरन ने विन्ध्यवासिनी देवी की आराधना की, जिससे प्रसन्न होकर देवी ने इन्हें विजयी होने का वरदान दिया। देवी का वरदान पाकर हेमकरन ने थोड़ी-सी सेना एकत्र की और बुन्देलखंड के उत्तरी भाग पर अधिकार कर लिया। विन्ध्यवासिनी देवी का वरदान पूरा होने पर हेमकरन अपने को विन्ध्येला कहने लगे। उसी समय से इनके वंशज बुन्देला कहे जाने लगे, जो विन्ध्येला का अपभ्रंश है।

इस समय बुन्देलखंड की स्थिति बहुत अनिश्चित थी। चन्देलों की शक्ति का ह्रास होने लगा था। वे बाहरी आक्रमणों से अपनी रक्षा न कर सके। उन पर दो बार महमूद गजनवी और कई बार पृथ्वीराज चौहान ने चढ़ाई की। मुहम्मद गोरी की विजय के पश्चात् तो बुन्देलखंड का उत्तर-पश्चिमी भाग भी मुसलमानों के अधिकार में चला गया। दक्षिण में गोंड़ों ने अपनी शक्ति बढ़ा ली और उनकी देखा-देखी आन्तरिक प्रदेश के शासक भी स्वतंत्र होने का प्रयास करने लगे। ऐसी अवस्था में चारो ओर अराजकता छाई हुई थी, जो शक्तिशाली होता था वही अपने पैर जमा लेता था। इस समय हेमकरन को अच्छा अवसर मिल गया और जैसा ऊपर कहा जा चुका है, उन्होंने उत्तरी भाग पर अपना अधिकार कर लिया।

हेमकरन आदि-बुन्देला कहे जाते है। इनका ही दूसरा नाम पंचमसिंह है। इन्होंने सन् १०५५ से १०७१ तक १६ वर्ष राज्य किया। इनकी मृत्यु के उपरान्त वीरभद्र गद्दी पर वैठे। ये भी अपने पिता की भांति बड़े वीर और महत्वाकांक्षी थे। इन्होंने अनेक युद्ध किए और अपनी तलवार के बल पर राज्य का विस्तार किया। इनका सबसे पहला युद्ध भदौरिया राजपूतों से हुआ, जिसमें इन्हें अटेर का किला प्राप्त हुआ। इसके बाद अफगान सरदार तातार खां को हराकर कालपी के आसपास का समस्त भू-भाग बुन्देल राज्य में मिला लिया गया। इन्होंने कलचुरियों को पराजित किया और उनसे कालिंजर का प्रसिद्ध किला छीन लिया। इस

प्रकार इन्होंने बुन्देलखंड के अधिक भाग पर अपना अधिकार कर लिया और महोनी को अपनी राजधानी बनायी। इनकी मृत्यु सन् १०८७ में हुई और करनपाल गद्दी पर बैठे। इनके ६ पुत्र हुए, जिनमें वीरसिंह अपनी दानशीलता के लिए प्रसिद्ध हैं। करनपाल की मृत्यु के उपरान्त सन् १११२ में कन्नरशाह गद्दी पर बैठे। इन्होंने १८ वर्ष राज्य किया, किन्तु निस्संतान मरे, जिससे इनके भाई शौनकदेव राजा हुए। शौनकदेव भी निस्संतान थे, इसलिए उनके बाद उनके भाई नौनकदेव उत्तराधिकारी हुए। नौनकदेव की मृत्यु सन् ११६९ में हुई। इन्होंने अपने भतीजे मोहनपति को उत्तराधिकारी बनाया। मोहनपति के भी कोई संतान नहीं हुई और इन्होंने अपने भाई अभय भूपति को शासक बनाया। अभय भूपति ने सन् ११९७ से १२१५ तक राज्य किया। इनके बाद अर्जुनपाल राजा हुए। अर्जुनपाल के पुत्र सोहनपाल हुए, जिन्होंने बुन्देल-राज्य की वास्तविक नींव डाली।

सोहनपाल अपने पिता की मृत्यु के उपरान्त गद्दी पर बैठे; किन्तु उनके भाई वीरपाल ने इन्हें गद्दी से उतार दिया। सोहनपाल को एक छोटी-सी जागीर दी गई, किन्तु इन्होंने उसे स्वीकार नहीं किया। वे अपने भाग्य का आप निपटारा करने के लिए निकल पड़े और इधर-उधर घूमते हुए गढ़ कुढ़ार पहुंचे। गढ़ कुढ़ार में इस समय खांगट राजा हुरमंत सिंह राज्य कर रहा था। सोहनपाल ने वीरपाल से राज्य वापस करने के लिए हुरमत सिंह से सहायता चाही, किन्तु उसने ऐसा करना अस्वीकार कर दिया। सोहनपाल फिर भी हताश नहीं हुए। इन्होंने गढ़ कुढ़ार तथा आस-पास के राजपूतों को अपनी ओर मिलाकर एक छोटी-सी सेना तैयार कर ली और मोहनी पर आक्रमण करने का निश्चय किया। राजा हुरमत सिंह से फिर सहायता मांगी गई। इस बार राजा ने सहायता करना तो स्वीकार कर लिया, किन्तु बदले में राजकुमार सहजेन्द्र से अपनी पुत्री के ब्याहने का वचन चाहा। सोहनपाल खांगट राजा के इस व्यवहार से बहुत क्रुद्ध हुए। इन्होंने गढ़ कुढ़ार पर आक्रमण कर उसे अपने अधिकार में कर लिया। कुछ लोगों का मत है कि बुन्देलों ने गढ़ कुढ़ार पर छल से अधिकार किया। सोहनपाल ने उसे अपनी राजधानी बनायी और बाद में जैतपुर विजय किया।

सोहनपाल के उत्तराधिकारियों ने धीरे-धीरे अपने राज्य का विस्तार किया। इनमें पृथ्वीराज बड़े प्रतापी, धार्मिक और प्रजा-पालक थे। इनके राजत्वकाल में धर्म-सम्बन्धी कार्य बहुत हुए। इन्होंने चन्देल-राजा शशांक भूप से युद्ध किया और इसी युद्ध में घायल होकर सन् १३३९ में परलोक सिधारे। इनके बाद मेदनीमल दूसरे प्रतापी राजा हुए। ये पृथ्वीराज के पौत्र थे, जो अपने बड़े भाई रामचन्द्र की मृत्यु के उपरान्त गद्दी पर बैठे। इन्होंने सिहुड़ा और महोबा अपने राज्य में मिला लिए। इनके पौत्र मलखान सिंह ने बहलोल लोदी के विरुद्ध ग्वालियर के तोमर राजा कीरत सिंह की सहायता की और फिर स्वयं उससे युद्ध किया।

महाराज रुद्रप्रताप सन् १५०१ मे शासनारूढ़ हुए। इनके समय में बुन्देल-राज्य ने बड़ी उन्नति की। महाराज ने बहुत-से भूभाग को जीतकर अपने राज्य मे मिला लिया और कई बार दिल्ली के लोदी-शासकों से युद्ध किया। ये वीर तथा पराक्रमी होने के साथ ही बड़े विद्वान् और कलाप्रेमी थे। इन्होंने परिहारों की नष्ट राजधानी ओरछा का पुनरुद्धार किया और उसे अपनी राजधानी बनाया। इन्होने ओरछा का किला बनवाना प्रारंभ किया, जो इनकी मृत्यु के पश्चात् सन् १५३९ में महाराज भारतीचन्द के समय में बनकर तैयार हुआ। ये धार्मिक भी बहुत थे। गौ और ब्राह्मण की रक्षा करना ये अपना कर्तव्य मानते थे। इनके सम्बन्ध में एक कथा प्रचलित है। कहा जाता है कि जब ये अपने पुत्र भारतीचन्द को राज्य सौंपकर कुढ़ार की ओर जा रहे थे, तब मार्ग मे गाय की कराहती हुई आवाज सुनाई दी। महाराज उस ओर गए, तो देखा कि एक शेर गाय को दबाए था। इन्होंने शेर को मार डाला। शेर मर तो गया, किन्तु उसने महाराज को घायल कर दिया, जिससे उनकी मृत्यु हो गई।

महाराज रुद्रप्रताप ने अपने जीवन-काल में ही ओरछा का शासन भारतीचन्द को सौंप दिया था। इनके समय में शेरशाह सूर ने कालिंजर के दुर्ग पर आक्रमण किया और उसे अपने अधिकार में कर लिया। शेरशाह की मृत्यु के उपरान्त महाराज ने जतारा पर आक्रमण किया। ओरछा का महल इन्हीं भारतीचन्द ने बनवाया।

महाराज मधुकरशाह अपने पिता की मृत्यु के पश्चात् सन् १५५४ में गद्दी पर बैठे। इन्हीं के राजत्व-काल में पानीपत का द्वितीय युद्ध हुआ, जिसमें हेमू को पराजित कर अकबर दिल्ली के सिंहासन पर बैठा। अकबर ने सिंहासन पर बैठते

ही अपने राज्य का विस्तार करना आरम्भ कर दिया और एक बड़े साम्राज्य की स्थापना की। महाराज मधुकरशाह बड़े धार्मिक थे। ये शाही दरबार में भी तिलक लगाकर और माला पहनकर जाते थे। इनकी कट्टरता अकबर को बहुत खटकती थी। बताया जाता है कि एक बार अकबर ने आज्ञा दी कि कोई सरदार शाही दरबार में तिलक लगाकर और माला पहनकर न आवे। उस दिन मधुकरशाह और भी बड़ा तिलक लगाकर गए। इनकी बड़ी रानी भी ऐसी ही भक्त थीं। उन्होंने अयोध्या से रामराजा की मूर्ति लाकर ओरछा में प्रतिष्ठित की। मधुकरशाह के सम्बन्ध में एक और ऐसी ही घटना बताई जाती है। कहा जाता है कि अकबर ने एक दिन इनसे आखेट में चलने को कहा, किन्तु इन्होंने जाने से इनकार कर दिया, कारण कि ये नृसिंह के उपासक थे और इसलिए सिंह को नहीं मार सकते थे।

धीरे-धीरे मधुकरशाह और अकबर में वैमनस्य बढ़ गया। अकबर ने इन्हें दबाने के लिए पानीपत के विजयी सेनापति अली कुली खां और न्यामत खा को भेजा; पर उन्हे सफलता नहीं मिली। दूसरी बार भी शाही सेना को नीचा देखना पड़ा। तीसरी बार सादिक अली खां के सेनापतित्व में एक सेना भेजी गई और भयंकर युद्ध हुआ। इस युद्ध में राजकुमार होरलदेव मारे गये और रामशाह घायल हुए। दोनों पक्षों में सन्धि हो गई, किन्तु वह स्थायी न रही। अकबर ने सन् १५८८ में अब्दुल्ला खां और आसकरन को सेना-सहित भेजा। इस सेना ने बुन्देलखण्ड का बहुत-सा भूभाग अपने अधिकार में कर लिया। तीन वर्ष बाद शाहजादा मुराद ओरछा पर चढ़ आया और उस पर अपना अधिकार कर लिया। महाराज को बड़ी ठेस लगी और उनका देहावसान सन् १५९२ में हो गया। इसके पश्चात् ज्येष्ठ पुत्र रामशाह गद्दी पर बैठे, और शेष भाइयों को जागीरें मिली। रामशाह अपने राज्य का संचालन ठीक से न कर सके, जिसके परिणामस्वरूप उनके अधीन के सभी जागीरदार स्वतंत्र हो गए। उन्होंने अकबर के प्रति अच्छी स्वामिभक्ति का परिचय दिया, यहां तक कि अपने भाई वीरसिंह देव के विरुद्ध भी युद्ध किया। अन्त में जब शाहजादा सलीम सिंहासनारूढ़ हुआ और उसने वीरसिंह देव को बुन्देलखण्ड का राज्य दे दिया, तब रामशाह को चन्देरी और बानपुर की जागीर दे दी गई। इनकी मृत्यु सन् १६१२ में हुई।

जैसा ऊपर कहा जा चुका है, वीरसिंह देव महाराज मधुकरशाह के ज्येष्ठ पुत्र न थे, इसलिए ओरछा की गद्दी इन्हें नहीं दी गई। इन्हें दतिया के निकट बड़ौनी की जागीर मिली। अपने अतुल पराक्रम और साहस के बल पर इन्होंने इस छोटी-सी जागीर को एक बड़े राज्य में परिवर्तित कर लिया। सब से पहले इन्होने पवाया पर अधिकार किया। तत्पश्चात् तोमरगढ़ सेना भेजी और उसे भी अपने अधिकार में कर लिया। इन्होंने मैना और जाटों को भी हराया तथा थोड़े ही दिनों में नरवर, केलारस, केरछा, भांडेर और एरछ को जीत लिया। अकबर ने इन्हें दबाने के लिए रामशाह और आसकरन के सेनापतित्व में एक सेना भेजी। यह सेना काफी बड़ी थी, इसलिए वीरसिंह देव ने सीधा युद्ध न कर छापेमार-नीति से उसे तंग किया। सन् १५९४ में अबुल फजल के साथ दूसरी सेना भेजी गई, जिसके साथ रामशाह, अब्दुल्ला खां और दुर्गादास भी थे। किसी प्रकार दोनों पक्षों में सन्धि हो गई और वीरसिंह देव को शाही मनसबदार बना दिया गया। इसके बाद वीरसिंह देव शाही सेना के साथ दक्षिण भी गए, लेकिन जब इन्हे पता चला कि बड़ौनी पर शाही सेना लगा दी गई है, तब मार्ग से ही लौट आए। इधर मुराद की मृत्यु के बाद अकबर ने स्वयं दक्षिण जाने का विचार किया और माड़ो जाने के लिए नरवर तक आ गया। राजसिंह के साथ एक सेना वीरसिंह देव के विरुद्ध भेजी गई। वीरसिंह देव भी तैयार थे। घनघोर युद्ध हुआ और राजसिंह को ग्वालियर भागना पड़ा। इधर अकबर और सलीम के बीच मतभेद हो जाने के कारण वीरसिंह देव को अच्छा अवसर मिला। ये प्रयाग गये और वहां सलीम से भेंट की। सलीम ने महाराज का यथोचित सत्कार किया और उन्हें अबुल फजल को मारने का अपना मन्तव्य बतलाया। महाराज इसके लिए तैयार हो गए। जब वे बड़ौनी लौटकर आए और उन्हे अबुल फजल के दक्षिण से लौटने तथा नरवर पहुंचने का समाचार मिला, तब ये अपने चुने हुए साथियों के साथ उस ओर बढ़े। इन्होंने अबुल फजल को आंतरी के निकट आ घेरा। घमासान युद्ध हुआ, जिसमें महाराज के बहुत-से सिपाही आहत हुए; पर इन्होने अबुल फजल का सिर काट लिया और उसे बड़ौनी ले जाकर चम्पतराय की संरक्षता में सलीम के पास प्रयाग भेज दिया। इससे सलीम बहुत प्रसन्न हुआ और उसने एक ब्राह्मण के साथ सम्मानसूचक बहुत-सी वस्तुएं महाराज

दी गई और वे ओरछा में ही रहे। दीवान हरदौल जागीर होते हुए भी ओरछा में रहे।

जुझार सिंह में महाराज वीरसिंह-जैसी योग्यता न थी। उनके स्वभाव से सभी अप्रसन्न थे। वे सन् १६२८ में किसी कारण दीवान हरदौल से अप्रसन्न हो गए और उन्हें अपनी रानी द्वारा भोजन में विष दिलवा दिया। दीवान हरदौल का अपने सद्गुणों के कारण बड़ा सम्मान था। वे विष-युक्त भोजन हंसते-हंसते कर गए। इनका स्मरण आज भी गर्व के साथ किया जाता है। इनके चबूतरे बुन्देलखण्ड के सभी स्थानों में बने है और प्रत्येक मांगलिक अवसर पर हरदौल-सम्बन्धी गीत गाए जाते है। जब शाहजहां को यह समाचार मिला, तब उसने जुझार सिंह को दंड देने के लिए एक सेना भेज दी। दतिया, एरछ, नरवर, चंदेरी आदि के बुन्देल-सरदार भी बहुत दुखी हुए और अपनी सेनाएं लेकर ओरछा पर चढ़ आए। किसी प्रकार दोनों पक्षों में सन्धि हो गई और शाहजहां ने जुझार सिंह को क्षमा कर दिया। सन् १६३३ मे जुझार सिह ने किसी कारण रुष्ट होकर गोंड़ राजा प्रेम-शाह पर आक्रमण किया और चौरागढ़ को अपने अधिकार में कर लिया। इस पर शाहजहां ने ओरछा पर चढ़ाई कर दी। जुझार सिंह दक्षिण की ओर भागे, किन्तु पकड़े गए और गोंड़ों द्वारा बड़ी निर्दयता से मार डाले गए। उनके कुमारों के साथ भी अत्याचार किया गया और वे मुसलमान बनाए गए।

शाहजहां ने देवीसिंह को ओरछा की गद्दी पर बिठाया, किन्तु उनसे शासन न चल सका ; इसलिए सन् १६४१ मे पहाड़ सिह गद्दी पर बिठाए गए। शाहजहां ने उन्हे पाच-हजारी मनसबद री दी और २०० सवार रखने की अनुमति दी। पहाड़ सिह शाही सेना के साथ कंदहार भी गए। सन् १६५१ में इन्हें चौरागढ़ की जागीर भी दे दी गई और एक हजार मनसब बढ़ा दिया गया। इन्होंने गोंड़ राजा हिरदेशाह पर चढ़ाई की। वह रीवा भाग आया। पहाड़ सिह ने रीवा पर भी चढ़ाई की और उसे मनमाना लूटा। बताया जाता है कि गोंड़ राजा पर इसलिए चढ़ाई की गई थी कि उसके राज्य में गाएं जोती जाती थीं। लेकिन पहाड़ सिंह ने एक बुरा काम किया। इन्होंने वीर चम्पत राय से बिगाड़ कर लिया। इनकी मृत्यु सन् १६६३ में हुई और इसके बाद क्रमानुसार सुजान सिंह, इन्द्रमणि, जसवन्त सिंह, भगवंत सिंह, उदोत सिंह, अमर सिंह, सामंत सिंह, हेत सिंह, मान सिंह और भारतीचन्द गद्दी पर बैठे।

महाराज वीरसिंह देव के पश्चात् बुन्देलो मे चम्पत राय दूसरे प्रतापी राजा हुए। ये महाराज वीरसिंह देव के मुख्य सामन्त रह चुके थे और इन्होंने कई बार बुन्देली सेना को विजय-श्री प्राप्त कराई थी। महाराज ने इन्हे महोबा की जागीर दी थी। वीरसिह देव की मृत्यु के उपरान्त शाहजहा ने इन्हें कोंच का परगना दे दिया। जब सन् १६३७ मे शाही सेना ने शाहबाज खा के नेतृत्व मे इन पर आक्रमण किया, तब उसे मुह की खानी पड़ी। ओरछा के राजा पहाड सिह ने इन्हें भोजन में विष देकर मारने का प्रयास किया, किन्तु असफल रहा। दोनों मे कटुता बढ़ गई और फलतः इनके विरुद्ध कई षड्यंत्र किए गए। ये सन् १६५३ में दारा के साथ चढ़ाई पर कंदहार गए, फिर भी इनसे जागीर लौटा ली गई। भाग्यवश औरंगजेब ने दारा के विरुद्ध इनसे सहायता मांगी, जो इन्होंने देना स्वीकार कर लिया। सन् १६५८ मे जब दारा और औरंगजेब के बीच सामोगढ़ का युद्ध हुआ, तब उसमें चम्पत राय की बुद्धिमत्ता से औरंगजेब को सफलता मिली। औरंगजेब ने बादशाह होते ही इन्हे ओरछा से जमुना तक का प्रदेश जागीर मे दे दिया। ये दिल्ली-दरबार के उमराव हो गए। किन्तु चम्पत राय सदैव बुन्देलखण्ड को स्वाधीन करने की सोचा करते थे, इसलिए इनमे औरंगजेब के साथ बिगाड़ हो गया। एक शाही सेना इनके विरुद्ध भेजी गई, किन्तु कुछ नहीं हुआ। फिर औरंगजेब स्वयं एक विशाल सेना लेकर चढ़ आया। दूसरे बुन्देलों ने भी उसका साथ दिया और बुन्देलखंड शाही सेना द्वारा रौद डाला गया। चम्पत राय ने सन् १६६४ में आत्म-हत्या कर ली।

महाराज छत्रसाल बुन्देल-वंश में सब से प्रसिद्ध और प्रतापी राजा हुए। इन्होंने अपने बल और बुद्धिमत्ता से जीवन-पर्यन्त संघर्ष किया और बुन्देलखंड की स्वाधीनता तथा महानता को अक्षुण्ण बनाए रखा। इन्होंने मुसलमान शासकों से खूब-लोहा लिया और जब-जब यवन-सेना ने इस ओर आंख उठाने का साहस किया, उसे नीचा देखना पड़ा। पहले देवगढ़ के युद्ध में इन्होंने मुगलों का साथ दिया, जिसमें ये स्वयं बुरी तरह घायल हुए; किन्तु औरंगजेब की नीति और अपनी धार्मिक भावना से यह सहयोग आगे न चल सका। औरंगजेब की धार्मिक नीति बड़ी खराब थी। उसने हिन्दुओं पर अत्याचार

किया। इसके विरुद्ध दक्षिण में मराठों और उत्तर में सिक्खों ने बीड़ा उठाया। मध्य भारत में महाराज छत्रसाल ने भी विद्रोह का झंडा गाड़ दिया और मुगल साम्राज्य की नींव हिला दी।

जब औरंगजेब को इनकी नीति और तैयारी का पता चला, तब उसने इन्हें दबाने का प्रयास किया। लेकिन उस समय वह इनकी शक्ति को नहीं समझ सका और इसलिए केवल तीन सौ सिपाही इनके विरुद्ध भेज दिए, जो बुरी तरह भगा दिए गए। धीरे-धीरे छत्रसाल की सेना बढ़ने लगी। इन्होंने धामौनी, मैहर और बांसा अपने अधिकार में कर लिए। मुगल-सेना से सामने लड़ना उचित न समझकर पुरानी छापामार-नीति से काम लिया गया। फिर ग्वालियर के सूबे पर धावा किया और वहां से यवन-सेना को मार भगाया। यवन-सेना ग्वालियर के किले में बन्द हो गई। छत्रसाल ने ग्वालियर लूटा और लगभग डेढ़ करोड़ रुपए तथा बहुत-से रत्न लेकर लौट आये। बीच में ही यवन-सेना से सामना हो गया, जिसमें विजय-श्री छत्रसाल के हाथ लगी। इसके बाद औरंगजेब ने दूलह खां के साथ सेना भेजी, जो गढ़कोटा के पास बुरी तरह पराजित हुई। छत्रसाल ने नरवर का खजाना लूटा और बसिया के युद्ध में औरंगजेब की शक्तिशाली तुर्की सेना को हराया। तहवर खां मारकर भगा दिया गया और बुन्देलों ने कालिंजर फिर ले लिया। सन् १६८५ में छत्रसाल ने सागर लूटा, फिर ग्वालियर के निकट लतीफ खां को हराया, राजगढ़ के समीप तहवर खां को पराजित किया और आस-पास के भूभाग पर अधिकार करने के बाद कालपी की ओर बढ़े। वहां का खजाना लूटकर ये ग्वालियर गए और उसे तथा भिलसा को अपने अधिकार में कर लिया। औरंगजेब ने छत्रसाल को कुचलने के लिए धामौनी के सूबेदार सदरुद्दीन को नियत किया, पर वह भी पराजित हुआ। इसके बाद दिल्ली का सूबेदार अब्दुल समद आया और वह भी मऊदहा के युद्ध में बुरी तरह हराया गया। इस युद्ध में छत्रसाल स्वयं घायल हो गए। छत्रसाल ने फिर धावा किया और धामौनी, भिलसा, शाहगढ़ आदि को अपने अधिकार में कर लिया। अन्त में शाहकुली आया। उसके साथ युद्ध में बुन्देलों की बड़ी क्षति हुई, किन्तु विजय इन्हीं की रही। सन् १७०७ में औरंगजेब मर गया। उसके बाद बहादुरशाह के नाम से मुअज्जम दिल्ली का शासक बना। छत्रसाल ने उसकी सहायता की थी और इस कारण दोनों में शांति रही। महाराज पन्ना आकर राज्य करने लगे।

इस समय भारत में मराठों का जोर हो चला था। उनसे महाराज छत्रसाल का मेल था। दिल्ली में सैयद भाइयों की चल रही थी। उन्होंने मुहम्मद बक्स खां को इलाहाबाद का सूबेदार बनाया। उसने आस-पास का बहुत-सा भाग जीतकर बुंदेलखंड पर आक्रमण कर दिया, किन्तु इसी समय मराठों ने आक्रमण कर दिया और यह आपदा टल गई। मुहम्मद बक्स फिर पूरी तैयारी के साथ चढ़ आया। इस बार दूसरे बुन्देल राजा भी उसके साथ थे। जैतपुर के दक्षिण में भीषण युद्ध हुआ, जिसमें बुन्देलों की बड़ी क्षति हुई और महाराज छत्रसाल स्वयं मूर्च्छित होकर गिर पड़े। कई दूसरे युद्धों में भी बुन्देलों की पराजय हुई। इस समय महाराज छत्रसाल वृद्ध हो गए थे। इन्होंने बाजीराव पेशवा से सहायता मांगी और मराठों की सहायता से सन् १७३० में जैतपुर का किला मुगलों से छीन लिया।

महाराज छत्रसाल ने अपने पराक्रम से टमस से चम्बल और जमुना से नर्मदा तक एक विशाल राज्य की स्थापना कर बुन्देलों के गौरव को बढ़ाया। इनका राज्य कीर्तिवर्म्मन चन्देल से भी बड़ा था। महाराज वीर योद्धा होने के साथ-साथ बड़े विद्वान् और कला-प्रेमी थे। ये स्वयं कवि थे और उनके आश्रय में अनेक कवि रहते थे, जिनमें लाल प्रमुख थे। भूषण, चिन्तामणि, मतिराम, नेवाज और अक्षर अनन्य-जैसे कवि और महात्मा भी उनके द्वारा सम्मानित किए गए। स्वामी प्राणनाथ उनके गुरु थे। उनकी स्मृति में पन्ना में आज भी धामी मन्दिर विद्यमान है। महाराज छत्रसाल ने बहुत-से भवन बनवाए और नगर बसाए। इन्होंने मऊ, महेबा, पन्ना तथा दूसरे स्थानों में बहुत-से भवन बनवाए। छतरपुर नगर इन्ही का बसाया हुआ है। छतरपुर-नौगांव-मार्ग पर स्थित धुबेला महल इनके भवन-निर्माण-प्रेम का जीता-जागता उदाहरण है।

महाराज छत्रसाल की मृत्यु के उपरान्त बुन्देल-राज्य तीन मुख्य भागों में बंट गया। एक भाग इनके ज्येष्ठ पुत्र हिरदेशाह को, दूसरा भाग इनके दूसरे पुत्र जगतराम को और तीसरा भाग पेशवा को मिला, जिसे महाराज अपने पुत्र के समान मानते थे। कुछ समय बाद बुन्देलों में गृह-युद्ध होने लगा और इनकी शक्ति बहुत क्षीण हो गई। धीरे-धीरे बुन्देलखंड पर मराठों

का आधिपत्य हो गया और वे यहां के राजाओं से चौथ वसूल करने लगे। जब अंग्रेजों ने उत्तर और मध्य-भारत में मराठों को कमजोर कर दिया, तब अली बहादुर और हिम्मत बहादुर के नेतृत्व में नवाबी ने कुछ जोर पकड़ा, किन्तु शमशेर खां की मृत्यु के बाद उसके सम्बन्धी पेंशन देकर अलग कर दिए गए और जो राज्य अलीबहादुर के अधीन थे, वे अंग्रेजों के अधीन हो गये। केवल ओरछा, दतिया और समथर स्वतंत्र थे। इनसे अंगरेजों से सन्धि हो गई। इनमें सब से पहले सन् १८०४ में दतिया राज्य ने सन्धि की। ये तीनों राज्य आंतरिक मामलों में बिल्कुल स्वतंत्र रहे। दूसरे राज्य सनद-वाले थे और उनकी आन्तरिक व्यवस्था में अंग्रेजों को हस्तक्षेप करने का अधिकार था। जब सन् १८५७ में भारतीय स्वाधीनता का प्रथम संग्राम छिड़ा, तब बहुत-से सामन्तों ने उसमें भाग लिया, लेकिन अधिकांश अंग्रेजों के साथ रहे। इसके बाद बुन्देल-खण्ड में कभी कोई अशान्ति नही हुई। स्वाधीनता-प्राप्ति तक छोटे-छोटे राज्य बने रहे। ४ अप्रैल सन् १९४८ को इनका एकीकरण किया गया और वर्तमान विन्ध्य-प्रदेश की स्थापना हुई।

हरिमोहनलाल श्रीवास्तव

स्वतंत्रता-संग्राम में विन्ध्य का योगदान

स्वाधीनता के लिए सतत संघर्ष करते हुए हमारे पूर्वजों ने जो गौरव अर्जित किया है, उसकी रक्षा का भार हम सभी पर है। भारतीय राष्ट्र अब शीघ्र ही पूर्वजों और अग्रजों के गौरव की धरोहर को एक स्थायी रूप देने जा रहा है, जिससे देश की भावी सन्तान चिरकाल तक प्रेरणा प्राप्त कर सकेगी। कार्य अब शीघ्र ही सम्पादित किया जाना है, और बात करते-करते १९५७ भी आ पहुंचेगा, जब सन् सत्तावन की याद मे मनाये जाने वाले शताब्दी-समारोह के अवसर पर उस प्रथम भारतीय स्वातंत्र्य-संग्राम का पूर्णतः प्रामाणिक इतिहास प्रस्तुत किये जाने का आयोजन है।

आवश्यकता इस बात की है कि प्रकृति और मनुष्य के द्वारा ज्ञात और अज्ञात रूप से किये जानेवाले विनाश से इतिहास की पवित्र धरोहर की रक्षा की जाय। विभिन्न व्यक्तियों और संगठनों से सम्पर्क स्थापित करते हुए अवशिष्ट सामग्री को शीघ्र ही प्रकाश में लाना प्रत्येक भारतीय का पवित्र कर्तव्य है। इस समय हमारी तनिक-सी उपेक्षा से राष्ट्र की एक बडी आवश्यकता का कार्य उतना सुचारु रूप से नही हो सकेगा, जितना वह होना चाहिए। खेद है कि आज के कितने ही बड़े-बड़े व्यक्ति तत्काल सिद्धि के फेर में इस बड़े उतरदायित्व के सम्यक् निर्वाह के लिए आवश्यक रुचि नही दिखा रहे है। राजनीति के दांव-पेंचों मे उन्हें तत्काल सिद्धि दिखाई दे रही है, और वे अपने अतीत को अमरत्व प्रदान करनेवाले अन्वेषण के लिए आवश्यक सुविधाएं एवं अनुकूल परिस्थितियां जुटाने की बात भूले हुए है। वर्तमान से जब अपने लिए और अपने सगे-सम्बन्धियों के लिये पूरा-पूरा लाभ दूसरे के स्वत्वों को रौंदकर भी उठाया जा सकता है, तो अतीत की नीरसता से प्रयोजन ही क्या? माना कि बहुतेरों ने उस समय डंडे खाये और यातनाएं सहीं; परन्तु आज तो डंडे लगाते हुए और विपत्तियां ढाते हुए वह पुराना अनुभव कुंठित हो गया है।

ध्यान रहे, इतिहास की निर्मम लेखनी आज या उस बीते हुए कल को कभी भुला न सकेगी। स्वतंत्रता-संग्राम के इस इतिहास की घोषित नीति है कि वह सभी दलों के अपने योग का निष्पक्ष विवरण प्रस्तुत करेगा, और यह सब व्यर्थ की कटुता को बहुत-कुछ बचाकर। इस दृष्टि से यह इतिहास हमारे लिए कुछ अधिक महत्व का है; क्योंकि दलबन्दी के दलदल से ऊपर उठकर यह समन्वय और सामंजस्य के लिए सचेष्ट होगा। स्वतंत्रता-आंदोलन के सामाजिक, सांस्कृतिक और राजनैतिक--सभी पहलू इस वृहत् इतिहास में योग्य स्थान पायेंगे। हम आशा करेंगे कि १५ अगस्त १९४७ और उसके बाद के प्रकरण में अर्थात् १९५२ के आम निर्वाचन तक राष्ट्र ने जो सफलताएं प्राप्त कीं, और साथ में उसकी जितनी असफलताएं रहीं, उन सब का खरा चित्र योग्य सम्पादक-मंडल प्रस्तुत किये बिना न रहेगा। वे कौन-सी परिस्थितियां हैं, जिन्होंने श्री धीरेन्द्र मजूमदार जैसे-व्यक्तियों को "यह स्वराज कैसा?" जैसा अनुभव कराया।

इतिहास सही-सच्चे अर्थ में मार्ग-दर्शक भी है। उसकी आलोचना ध्वंसात्मक कदापि नहीं कही गई वह सदैव रचनात्मक होती आई है। हित की बात तो सबको ही तीखी लगती आई है, पर 'सत्यमेव जयते' तो हमारे राष्ट्र का महामंत्र है। सत्य कहने से कोई क्यों चूके?

विंध्य-प्रदेश में स्वतंत्रता-संग्राम का इतिहास गौरव का अध्याय है—वह लज्जा योग्य तो कदापि नहीं रहा। माना कि देशी राज्यों का यह भू-भाग अंग्रेजों के समय में 'दुरेजी' के दबदबे और आज भी कहीं कुछ 'डबल डीलिंग' के दौर-दौरे के कारण राष्ट्रीय चेतना में पड़ोसी प्रान्तों की अपेक्षा कुछ पिछड़ा रहा और आज भी ऐसा समझा जाता है, परन्तु वह कौन-सा अवसर है, जब राष्ट्र पर 'भीर' पड़ी हो, और विंध्यवासियों ने योग न दिया हो ?

यह सर्वथा सत्य है कि हमारा इतिहास हमारी अपनी परिस्थितियों के अनुरूप सर्वथा गौरवशाली रहा है। १८५७ के प्रथम भारतीय स्वतंत्रता-संग्राम से भी पूर्व इसी धरती पर बुन्देल-केसरी छत्रसाल के वंशज जैतपुर के पारीछत ने विद्रोह की ज्योति जगाई थी—ऐसी, जिसने बानपुर के मर्दनसिंह को सन् सत्तावन में झांसी के भाग्य के साथ सर्वस्व होम कर देने का आमंत्रण दिया, और कुछ वैसी ही परिस्थितियों में राजा मर्दनसिंह का भी अन्त हुआ।

१८५७ की क्रांति में झांसी, सागर, जबलपुर, इलाहाबाद और बांदा माने हुए केन्द्र थे, जिन्होंने फिरंगी के दांत खट्टे कर दिए, और इन सब से घिरकर हमारे विंध्य-प्रदेश ने इधर बुन्देलखंडी पानी और उधर बाघेली रण-मत्तता से कुछ देर तो छक्के छुड़ा ही दिये। और तो और, यहां डभौरा के ब्राह्मण-परिवार ने बाबू कुंवरसिंह के पीछे अपने को मिटा दिया। मैहर और सोहागपुर के ठाकुरों ने गोरों की गोलाबारी से गढ़ी को छलनी होते देखा, परन्तु ये सब रणबांकुरे अन्याय और अनाचार के शिकार होकर भी छलना से दूर रहे।

बाबा रणमतसिंह को आज कुछ लोग 'लुटेरा' भले ही कह लें, और सच तो यह है कि उनकी निर्ममता का समर्थन नहीं किया जा सकता, परन्तु ये बाबा रणमतसिंह भी 'स्वराज्य' के सबल सिपाही थे। टीकमगढ़ में फौजदार अब्दुल मजीद खां के संग्रह में एक पत्र बाबा रणमतसिंह के एक साथी द्वारा लिखा हुआ पाया गया है, जो तात्या टोपे—मराठा बाघ—से 'स्वराज्य' की स्थापना के लिए सेवाएं अर्पित करने के विषय में कुछ आदेश प्राप्त करने के निमित्त लिखा गया था। यह एक पत्र बाबा रणमत सिंह को इतिहास की दृष्टि मे बहुत ऊचा उठा देता है।

आग-सी लग जाती है , जब आज जातिवाद के पीछे स्वत्वों को मनामना कुचल दिया जाता है, और जब कहीं बिरादरी का विषधर फुफकार भरता दिखाई देता है। कैसा अच्छा था वह युग, जिसे हम यों ही कभी-कभी पिछला या पिछड़ा जमाना कह दिया करते है, जब एक-अकेले रणमतसिंह के झंडे के नीचे ब्राह्मण और ठाकुर, मुसलमान और लुहार एक ध्येय को लेकर कंधे से कंधा भिड़ाकर चलते थे। झांसी की रानी वीरांगना लक्ष्मीबाई तो शौर्य और विक्रम की साक्षात् प्रतिमा ही थी। उन्होंने झलकारी कोरिन में मर मिटने की प्रबल पिपासा जगाई, तो बाबा रणमतसिंह ने भी जाति और वर्ग के द्वेष से परे संगठन का सुदृढ़ सम्बन्ध स्थापित किया। कैसा अपूर्व था वह भाव—आज की संकुचित मनोवृत्तियों से बहुत विस्तृत, बहुत उदात्त, जब ये रणमतसिंह महाराज रघुराज सिंह के एक तनिक-से संकेत पर अपने रीवा राज्य के लिए अपने को मिटाने के लिए चल दिये।

अंग्रेजों की विजय-दुन्दुभी बजी, और रियासतों में तो खूब ही बजी—हमारी अपनी दुर्बलताओं के कारण, परन्तु घड़ा जो भरने को था भरकर रहा, और फिर फूटा भी निहत्थों के हाथों, जिसे देखकर जगती के नेत्र विस्फारित होकर रह गये। इधर इस खेवे के कितने ही हमारे नेता अभी भी जीवित हैं, और उनमे से कुछ को अपनी तपस्या का पुण्य भी प्राप्त हुआ है; किन्तु प्रभुता पाकर वे जितना कुछ जनहित के लिए सोचेंगे, उतना ही स्थायी यश वे संचित कर सकेंगे। हम-जैसे तो अपनी सामर्थ्य से अधिक त्याग और बलिदान के लिए बाध्य हुए, परन्तु गांव-गांव में छिपी गौरव-गाथा को प्रकाश में ले आने का कार्य आज प्रत्येक जन का है । ऐसा होने पर हम अपने प्राचीन वैभव को समझ जायँगे और प्रेरणा प्राप्त करेंगे ।

गणेशप्रसाद शाह

विन्ध्य-प्रदेश में जहां तोपें गरजीं, तलवारें चमकीं

प्रकृति की यह सुरम्य वाटिका, जहां एक ओर सौन्दर्य, सुषमा एवं कला के प्रेमियों के लिए क्रीड़ा-स्थल है, वहीं वह उन वीरों की वीरभूमि है, जिन्होंने अपने कौशल से समस्त भारतीय वीरों का मस्तक ऊंचा किया और जिनके स्मरण-मात्र से उस भूमि के समक्ष हमारा मस्तक श्रद्धा एवं प्रेम से नत हो जाता है।

आखिर यहां वीर क्यों न हों, जब यह प्रदेश बहादुरों और रणबांकुरों की आराध्य देवियों का क्षेत्र रहा है, जिनकी प्रभुता आज भी जन-जन के मुख पर है। मैहर की देवी शारदा और मिर्जापुर की विन्ध्यवासिनी देवी के चमत्कार किसे मालूम न होंगे?

यह कौन नहीं जानता है कि बुन्देलों और बघेलों को अपनी आजादी जान से भी अधिक प्यारी रही है, जिसकी रक्षा में अपना सर्वस्व तक न्योछावर करने को वे हर क्षण तत्पर रहते थे? आज भी उनकी वीरता की गाथाएँ हमें इतिहास के पृष्ठों तथा लोक-रागिनियों में मिलती हैं। इनकी गाथाएं विन्ध्य के ग्रामीण समाज में आज भी ससम्मान शुभ अवसरों पर गाई जाती हैं।

विन्ध्य के अनेक ऐसे स्थल हैं, जहां यहां के वीरों ने प्राचीन-काल से लेकर अब तक अपनी जान पर खेलकर तलवारों के कौशल दिखाये तथा दुश्मनों के दांत खट्टे किए हैं।

कुराल तथा थारी पथार का मैदान

वाकाटक राज्य-विस्तार को लेकर राजा रुद्रदेव और गुप्त-सम्राट् समुद्रगुप्त के बीच कुराल के मैदान में युद्ध हुआ था। वह वि० सं० ४०२-४०३ का समय था। इसके पूर्व इन्हीं राजाओं के बीच ४०१ संवत् में कौशाम्बी में एक और युद्ध हुआ था। थारी पथार (भूमरा) के मैदान में भी वाकाटकों और गुप्त-सम्राटों के बीच राज्य-विस्तार के लिए भीषण युद्ध हुआ, जिसमें असंख्य लोग मारे गए। युद्ध की समाप्ति सीमा-समझौता के साथ हुई। यह स्थान नागौद तहसील में पड़ता है, जहां आज भी स्मृति-स्वरूप एक पत्थर खड़ा है, जिस पर युद्ध का पूरा विवरण अंकित है। इसे ठड़ी पत्थर कहते हैं।

सिरसागढ़ का मैदान

सिरसागढ़ पर उस समय मलखान का शासन था। वह आल्हा का मौसेरा भाई था। पृथ्वीराज ने उस पर सं० १२३८ में हमला किया। तीन-चार बार आक्रमण हुआ, पर पृथ्वीराज की हार होती रही। अन्त में मलखान ने ही हमला किया। रात भर युद्ध होता रहा। इसी युद्ध में मलखान वीर-गति को प्राप्त हुआ।

उरई-मोहानी का मैदान

इस मैदान में परमाल और पृथ्वीराज की सेनाओं के बीच जमकर लड़ाई हुई। आल्हा परमाल को कालिंजर पहुँचाने गया था। उसके लौटने के पूर्व ही परमाल की सेना हार गई। रंज होकर आल्हा ने भीषण हमला करने की ठानी, पर कहा जाता है कि जब उसने रंज हो तलवार उठाई, तभी मैहर की देवी शारदा ने उसका हाथ पकड़ लिया।

क्योंटी का मैदान

क्योंटी भारत के प्रपातों में एक खास स्थान रखता है। एक ओर जहां यहां का मनोरम दृश्य यात्रियों का ध्यान आकृष्ट करता है, वहीं उस स्थल की पावन स्मृति भी सर झुकाने को विवश करती है, जहां वीरों ने अपनी आजादी के लिए तलवारें उठाई थीं।

क्योंटी पर मलकेश्वर देव का शासन था। उनके सामन्तों में हमीरदेव शक्तिशाली थे। ये गोभक्त शासक थे। ठीक

उसी समय दिल्ली की गद्दी पर तुगलकों का शासन था, उनके अत्याचार से त्राहि-त्राहि मची हुई थी। गोभक्त शासक और तुगलकों के साथ क्योंटी के मैदान में जमकर लड़ाई हुई। इस युद्ध में हमीरदेव मारा गया। यह युद्ध १३९७ सम्वत् में हुआ था।

सिगड़ई अमरपाटन

सं० १४३१ में वर्तमान तहसील रघुराजनगर पर चन्देलो का अधिकार था। ग्राम झाझगढ़ (अमरपाटन) में सिंहदेव बघेल तथा चंदेल सामन्त परिहार के बीच घनघोर युद्ध हुआ, जिसमें सिहदेव की विजय हुई। यद्यपि सिहदेव का शासक होने का कोई प्रमाण नहीं मिलता, फिर भी उस स्थान पर सं० १३७६ का एक शिलालेख मिला है, जिसमे सिंहदेव का नाम अवश्य आया है। इससे यह अन्दाज लगाया जा सकता है कि सिहदेव ने युवराज-काल मे ही हमला किया होगा।

बान्धवगढ़

दिल्ली की गद्दी पर लोदी वंश का सिकन्दर लोदी शासक था। उसका एक प्रतिद्वन्द्वी भागकर बान्धवगढ़ के राजा भैदचन्द्र की शरण में आया। भैदचन्द्र ने भारतीय परम्परा के अनुसार उसे अपनी शरण में रख लिया। इससे चिढ़कर सिकन्दर लोदी सं० १५५१ में बान्धवगढ़ पर चढ़ आया, पर हारकर भाग गया। दूसरी बार सं० १५५२ मे वह पुनः चढ़ आया और कठालीधार में भैदचन्द्र के नाती वीरसिंह ने मुकाबिला किया, पर उसकी विशाल सेना के समक्ष टिक न सके। लोदी की सेना पपौधर (ब्यौहारी तहसील) तक आयी, परन्तु मौसम खराब होने के कारण लौट गयी। सिकन्दर ने तीसरी बार सं० १५५६ में चढ़ाई की, पर इस बार भी उसी दशा में उसे वापस होना पड़ा। बान्धवगढ़ के कई युद्धों में वीरसिंह और परिहारों के बीच का युद्ध भी एक है। रामचन्द्र बघेल तथा आसफ खां के साथ भी यहा युद्ध हुआ, जिसमें आसफ खां हारकर भाग गया।

फिर सं० १६५४ में अकबर के प्रतिनिधि पातदास ने चढ़ाई की, जिसका मुकाबिला महाराज विक्रमादित्य ने किया और उसे मार भगाया।

मीमी का मैदान

ओरछा के बुन्देले राजा जुझार सिंह ने दिल्ली के बादशाह जहांगीर की अधीनता में मनसबदारी स्वीकार न की, अतः उसे पकड़ने के लिए बादशाह ने खानजहां को भेजा। उसके साथ ओरछा में युद्ध हुआ। खानजहां हारकर मालवा की ओर भागा, पर सं० १६८७ में वह नीमी में घेर लिया गया और घनघोर लड़ाई हुई। फलस्वरूप खानजहां यहां भी पराजित हुआ। इस लड़ाई में रीवा के महाराजा विक्रमादित्य बुन्देलों के राजा जुझार सिह की मदद में पहुंचे थे।

मनगवां का मैदान

रीवा की गद्दी पर महाराजा अनिरुद्ध सिह का शासन था। इन्हीं के समय सं० १७५१ में मऊ के सेंगरों ने अपने को स्वतन्त्र घोषित कर दिया। उसे पुन. अधिकार में लेने के लिए महाराज स्वयं गए। महाराज का शिविर मनगवां के पास पड़ा। उधर से संधि का पैगाम पाकर महाराज साधारण तौर से गए, पर जब वार्ता समाप्त कर वापस आ रहे थे, तब उन पर पीछे से गोली चलाई गई और महाराज घायल होकर घोड़े से गिर पड़े। शिविर में खबर पहुंचते ही सेना टूट पड़ी और मनगवां में ही जमकर युद्ध हुआ, जिसमें ठाकुर रघुनाथ सिंह पकड़ा गया। बाद में राजमाता से क्षमा मांगने पर वह छोड़ दिया गया और सेंगरों का हिस्सा रीवा में मिला लिया गया।

त्योंथर का मैदान

त्योंथर में भी कई युद्ध हुए। बैजूवंशी राजाओं के बीच सं० १७७२ में महाराज अवधूत सिंह के साथ प्रथम लड़ाई हुई, जिसमें महाराजा की जीत रही। दूसरी लड़ाई महाराजा अजीत सिंह के शासनकाल में महाराज तथा लखनऊ के नवाब के बीच सं० १८४० में नरुटगवां के पास सीमा-विस्तार के लिए हुई। भयंकर मार-काट मची, जिसमें नवाब का सेनापति कर्नेल बिलोवर हारकर बांदा की ओर भाग गया और त्योंथर रीवा-राज्य में मिला लिया गया।

तीसरी लड़ाई महाराज अजीतसिह के साथ माड़ा के ईश्वरी सिंह गहरवार के साथ त्योंथर में हुई। इस लड़ाई में भी अजीत सिंह की ही जीत रही। लड़ाई का कारण यह था कि जब अलीबहादुर ने रीवा पर दोबारा हमला किया था, उस समय त्योंथर को माड़ा के राजा के यहां बन्धक रख दिया गया था; पर जब रुपया चुकता कर त्योंथर वापस मांगा जाने लगा, तब ईश्वरी सिंह ने देने से इन्कार कर दिया। इस पर लड़ाई जमकर हुई और त्योंथर रीवां

राज्य में मिला लिया गया। इस बार की लड़ाई में रीवा की सेना का नेतृत्व युवराज जयसिंह ने किया था।

मैहर का मैदान

मैहर में कई युद्ध हुए हैं।

सं० १७७३ में मैहर पर बघेला राजा का शासन था। पन्ना के छत्रसाल ने शादी-सम्बन्धी विवाद को लेकर अपने पुत्र को मैहर के राजा समर सिंह बघेल पर चढ़ाई के लिए भेजा। चूंकि रीवा की स्थिति अच्छी नहीं थी, अतः कोई मदद न मिल सकी और समर सिंह हारकर रीवा चले आए। मैहर पर बुन्देलों का अधिकार हो गया। इस लड़ाई में जूड़ा और भैसवाही घराने की ओर से पन्ना के छत्रसाल को मदद मिली थी, अतः मैहर की देख-रेख भैसवाही के सरदारों के ऊपर छोड़कर छत्रसाल पन्ना लौट गये। अब वे सरदार स्वयं अधिकारी बनने की कोशिश करने लगे। इसकी खबर पाकर पन्ना की ओर से पुनः सं० १८२५ में चढ़ाई की गई और उससे छीनकर बेनी हजूरी को दे दिया।

तीसरा युद्ध तब हुआ, जब वहां के शासक नाबालिग अवस्था में थे। राजमाता शासक का कार्य करती थीं। सेनापति श्री माधव सिंह गूजर था, जिसने मनमानी आरम्भ कर दी थी। धमौनी पर विजय पाने के बाद छत्रसाल ने मैहर पर आक्रमण किया और उसे अधिकार में कर लिया। माधव सिंह पकड़ लिया गया; पर तीन हजार वार्षिक देने के वादा पर छोड़ दिया गया।

चांदा का मैदान

सं० १६९० में जुझार सिंह ने प्रेमनारायण को युद्ध में मार कर उसका किला ले लिया था। शाहजहां ने किला वापस करने को लिखा, पर जुझार सिंह ने किला वापस करने को तैयार न हो युद्ध की तैयारी की। दोनों सेनाओं के बीच चांदा के मैदान में जमकर युद्ध हुआ, जिसमें जुझार सिंह जंगल की ओर भागे, जहां गोड़ों ने पकड़कर उन्हें मार डाला।

ओरछा का मैदान

ओरछा-नरेश वीर सिंह तथा इन्द्रजीत संग्रामशाह राव प्रताप आदि की सेनाओं के साथ अकबर की सेना के साथ भीषण लड़ाई हुई, जिसमें वीरसिंहदेव की जीत हुई।

सं० १६६३ में वीर सिंह की सेना और रामशाह की सेना में अब्दुला खां के नेतृत्व में जमकर युद्ध हुआ। वंश के नाश की आशंका देख वीरसिंह ने सन्धि-पत्र भेजा और समझौता हो गया।

सं० १६८५ में शाहजहां ने पुनः आक्रमण किया, जिसका मुकाबला बुन्देल-राजा चम्पत राय के साथ हुआ। वह बुरी तरह हारकर भाग गया।

सं० १६८७ में विक्रमाजीत और खानजहां के बीच नीमी में युद्ध हुआ, जिसमें खानजहां हार गया। इसलिए चम्पतराय तथा अन्य बुन्देला-नरेशों की सेनाओं और मुगल-सेनाओं के बीच कई लड़ाइयां हुईं।

बसिया-मऊदहा के मैदान

पन्ना-नरेश छत्रसाल तथा दिल्ली के बादशाह औरंगजेब की सेनाओं के बीच बसिया ग्राम के मैदान में घनघोर युद्ध हुआ। इस युद्ध में छत्रसाल की जीत रही, पर मुगल-सेना यों ही बैठी नही रही। सेना के साथ महाराज छत्रसाल की जमकर मार-काट हुई और मुगल-सेना जान लेकर भागी।

मऊदहा के मैदान में अब्दुल समद नामक मुगल-सेनापति के साथ पन्ना-नरेश की सेनाओं की मुठभेड़ हुई; पर वहां भी उसकी सेना हार गई और भागी।

सेहुंड़ा

सेहुँड़ा के मैदान में पन्ना-नरेश छत्रसाल तथा मुगल-सूबेदार मुराद खां की बड़ी सेनाओं के बीच जमकर कई दिनों तक युद्ध होता रहा। काफी लोग मारे गए। अन्त में मैदान छत्रसाल का ही रहा और मुराद खाँ मारा गया। इस मैदान में और भी कई लड़ाइयां लड़ी गयी।

नौली का मैदान

बार-बार मुगल-सेना की हार देख दिल्ली के बादशाह औरंगजेब ने इस बार शाहकुली के नेतृत्व मे बड़ी भारी सेना भेजी, जिसका मुकाबला नौली (मऊ के पास) के मैदान में हुआ। कई सप्ताह तक युद्ध चलते रहने के बाद पन्ना-नरेश छत्रसाल को पीछे हटना पड़ा; पर वे पुनः सेना का संगठन कर आगे बढ़े और पूरी ताकत के साथ हमला किया। इस बार छत्रसाल की जीत रही। हार की खबर पाते ही दिल्ली से नन्दराम के नेतृत्व में ८०० सवार और सेना पुनः आ गई और शाह कुली की बची सेना ने साथ मिलकर घनघोर हमला किया। इस बार का युद्ध नौगाँव छावनी के पास के मैदान में हुआ था। इस बार भी शाह कुली हारकर भागा, पर अलीपुरा के पास गिरफ्तार

कर लिया गया। बहुत-सा दण्ड देने पर वह छोड़ दिया गया।

गठेवरा का मैदान

सं० १८४० में गठेवरा के मैदान में पन्ना के अनिरुद्ध सिहं के सेनापति बेनी हज़ूरी और बाँदा के सुप्रसिद्ध सेनापति नोने अर्जुनसिंह और कायम जी चौबे सरमेद सिह की ओर से सेना लेकर मैदान में आये। यह लड़ाई आपस की ही थी। पन्ना-राज्य में सरमेदसिंह और अनिरुद्धसिंह अलग-अलग शासक थे। दोनों एक दूसरे को दबाकर शासन जमाना चाहते थे। कारण यह था कि हिन्दूपत के मरने पर पन्ना की गद्दी अनिरुद्धसिंह को मिली, जब कि सरमेदसिंह का बड़े होने के नाते हक था। दोनों ओर की सेनाओं में जमकर लड़ाई हुई और कई सप्ताहों तक युद्ध होता रहा, लाखों की संख्या में लोग काटे-मारे गये। अन्त में नोने अर्जुनसिंह की विजय हुई और बेनी हज़ूरी मारा गया। विद्वानों के मत में गठेवरा का यह युद्ध बुन्देलखण्ड का महाभारत कहा जाता है।

अजयगढ़-बनगाँव का मैदान

सं० १८४९ मे अलीबहादुर और हिम्मतबहादुर ने सम्मिलित रूप से अजयगढ़ पर हमला किया। इस समय अजयगढ़ में बाँदा के गुमानसिह को लेकर अर्जुनसिंह रह रहा था। इस बार का यह हमला पुरानी दुश्मनी के कारण किया गया था। जमकर लड़ाई हुई और अर्जुनसिंह लड़ते हुए मारे गये। हिम्मतबहादुर की जीत हुई। यह युद्ध अजयगढ़ और बनगाँव के बीच के मैदान में हुआ था।

चरखारी का मैदान

सं० १८५९ की लड़ाई में अलीबहादुर ने चरखारी का साथ दिया था; पर किसी कारणवश अनबन हो गई और दोनों में युद्ध हो गया। यह युद्ध चरखारी के मैदान में हुआ। चरखारी की बिजावर के वीरसिंह ने मदद की; पर वे हार गये और उन्होने अलीबहादुर को चौथ देना स्वीकार किया।

नेकहाई का सुप्रसिद्ध मैदान

विन्ध्य-प्रदेश के रणक्षेत्रों में नेकहाई खास महत्व रखता है। इसी मैदान ने रीवा राज्य की लाज रखी थी। यह वही मैदान है, जहाँ महाराजा अजीतसिंह की रानी कुन्दन कुंवरि की बदौलत रीवा का राज्य बच सका।

सं० १८५२ में छतरपुर के पामार अर्जुनसिंह के साथ मराठों के नायक अलीबहादुर के साथ युद्ध हुआ, जिसमे अर्जुनसिंह मारा गया। उसका पुत्र धौकलसिंह भागकर रीवा-नरेश अजीतसिंह की शरण में आ गया। उसे वापस करने के लिए अलीबहादुर ने अजीतसिह से माँग की, परन्तु उन्होंने उसे अस्वीकार कर दिया। इस पर अलीबहादुर ने चौथ की मांग की; पर महाराजा अजीतसिह ने चौथ देने से भी इनकार कर दिया। अब अलीबहादुर ने महावत राव नायक के नेतृत्व में रीवा पर चढ़ाई करा दी। यह चढ़ाई १८५३ में हुई थी। बहुत दिनों तक नायक की सेना बाबूपुर के मैदान में पड़ी रही। काफी प्रयत्न करने पर भी रीवा-नरेश अजीतसिंह लड़ाई के लिये सफल न हुए और सन्धि का पैगाम भेजना चाहा। इसकी खबर रानी कुन्दन कुवंरि की दासी मुनिया को लग गई और उसने महारानी से कहा—"आज तक तो महारानी की दासी हूँ; पर कल से नायक की नौकरानी बनूंगी। कितनी शर्म की बात है।" रानी इसे सहन न कर सकी और कहा—"मेरे जीते जी तू मेरी दासी रहेगी।"

महारानी ने महाराजा से बातें कीं; पर महाराजा साहब ने विवशता प्रकट की। इस पर रानी ने वीरों के सामने पान का बीड़ा और चूड़ी-सिन्दूर रखकर चुन लेने को कहा। इसका आशय यह था कि या तो बीड़ा उठाकर मैदान में जाओ या चूडी पहनकर जनानखाने में रहो, मैं मैदान मे जाऊंगी। इस पर बहादुरशाह कलचुरी ने आगे बढ़कर बीड़ा उठा लिया और कहा कि हम लोगों के जीते जी रानी युद्ध-क्षेत्र में नहीं जा सकतीं।

बस, अब बान्धवीय सेना मैदान की ओर बढ़ गई। सेना की एक टुकड़ी ने बहादुरसिह के नेतृत्व में लखौरी बाग की ओर से हमले का प्रयत्न किया; पर दुर्भाग्यवश नायक की तोपें उधर ही थीं, और इनकी सेना नष्ट हो गई। दूसरी टुकड़ी ने निपनिया होकर हमला किया। इसी बीच महारानी की सेना भी कलन्दरसिंह कलचुरी के नेतृत्व में चढ़ आई। इस तरह एकाएक हमला होने से नायक घबड़ा गया और हाथी से घोड़ा पर आना चाहा। इसी बीच आझर के प्रतापसिंह ने उसका काम तमाम कर दिया। नायक की सेना भाग खड़ी हुई और रीवा के वीरों के हाथ मैदान रहा। इस मैदान में स्वयं महाराजा ने जाकर वीर-गति पानेवाले

वीरों का परिचय प्राप्त किया और युवराज जयसिंह ने रणक्षेत्र की पूजा की। आज भी यह स्थान सुविख्यात है, जहाँ वीरों की स्मृति-स्वरूप छतरी बनी हुई है। यह स्थान रीवा-सतना रोड पर रीवा से करीब तीन मील की दूरी पर है।

कैशा तथा बरों का मैदान

हिम्मतबहादुर अंग्रेजी सेना की सहायता तथा खर्च पर बुन्देलखंड में घुसा। प्रथम बार बरों के मैदान मे अली बहादुर के लड़के शमशेरबहादुर के साथ युद्ध हुआ; पर शमशेर मौरागढ़ के पास हिम्मतबहादुर से हार गया और कैशा नामक ग्राम मे दोनों सेनाओं की मुठभेड़ हो गई। शमशेर यहाँ भी हार गया और भविष्य अच्छा न देख अंग्रेजों से सन्धि कर ली। संवत् १८९१ की इस सन्धि के अनुसार चार लाख की जागीर शमशेर को मिली।

कालपी

सन् १८५७ में भारत की प्रथम आजादी की लड़ाई में विन्ध्य के अनेक वीरों ने अंग्रेजों के विरुद्ध लड़ाई लड़ी। उनका क्षेत्र समस्त विन्ध्य-प्रदेश रहा—विशेषकर प्राचीन बुन्देलखंड का क्षेत्र, जिसमें कालपी मुख्य है। कालपी में पूर्व के राजाओं, मुसलमानों तथा मराठों की भी लड़ाइयाँ लड़ी गई है। महारानी लक्ष्मीबाई, जैतपुर के महाराजा पारीछत, बानपुर के महाराज रनमतसिंह आदि ने अंग्रेजों का विरोध किया और विन्ध्य-प्रदेश में विद्रोहियों का नेतृत्व किया।

इस तरह हम देखते है कि विन्ध्य का हर क्षेत्र युद्ध-स्थल है, जहाँ आदि-काल से लेकर अब तक तोपें गरजी और तलवारे चमकी है। आज भी इनकी स्मृति ताजी है। वीरों की छतरियाँ, उनकी वीरता का प्रतीक हैं और वह पावन भूमि उनकी स्मृति !

गुरु रामप्यारे अग्निहोत्री

विलयन के पूर्व विन्ध्य-प्रदेश की राजकीय सत्ताएँ

वर्तमान विन्ध्य-प्रदेश दो प्रमुख राजकीय सत्ताओं से बना हुआ है—एक थी बघेल-राजसत्ता और दूसरी थी बुन्देली-राजसत्ता। बघेलखण्ड और बुन्देलखण्ड में अन्य छोटी सत्ताओं का भी प्रभुत्व था; परन्तु वे सत्ताएँ नगण्य ही थीं। इन सत्ताओं का इतिहास लगभग एक हजार वर्षों का है। अपने इस ऐतिहासिक काल में इन सत्ताओं ने अपने-अपने क्षेत्र में पर्याप्त प्रगति भी की थी। भारत के इतिहास का मुसलमानी शासन-काल एक प्रमुख अध्याय है। इसी काल में इन सत्ताओं के इतिहास का निर्माण हुआ। इन्हीं के कारण बघेलों द्वारा शासित भूभाग बघेलखण्ड और बुन्देलों द्वारा शासित भाग बुन्देलखण्ड कहलाता था।

इन सत्ताओं का विकास हिन्दू-सांस्कृतिक परम्परा के आधार पर ही हुआ। यहां के शासकों ने अपनी प्राचीन संस्कृति की रक्षा करना ही अपने शासन का प्रधान लक्ष्य समझा था। यही कारण है कि बुन्देलखण्ड की अनेक सत्ताएँ मुसलमानी सत्ता के अन्तर्गत रहकर भी अपनी परम्परा को न भुला सकीं। मुसलमानों के प्रयत्न करने पर भी मुसलमानी संस्कृति का सम्मिश्रण इस प्रदेश की पूर्व-सांस्कृतिक परम्परा के साथ न हो सका। इसीलिए आज भी यह प्रदेश अन्य प्रदेशों की अपेक्षा अपनी मूल संस्कृति से ही समन्वित है।

विन्ध्य-प्रदेश के दोनों भू-भाग भौगोलिक दृष्टि से एक ही भू-भाग के दो उपविभाग थे। दोनों की प्राकृतिक बनावट तथा भौगोलिक परिस्थिति एक-सी है। विन्ध्य-गिरि की उपत्यका में बसे हुए ये दोनों भू-भाग एक ही जनपद के रूप में थे, इसमें कोई सन्देह नहीं है। इन दोनों भू-भागों के शासक भी एक ही जाति के राजपूत थे।

विन्ध्य-प्रदेश छोटी-बड़ी ३६ रियासतों का एक संघ है, जिसमें दो प्रकार की रियासतें थीं। विन्ध्य-प्रदेश में रीवा राज्य १३००० वर्गमील था। इनमें कुछ बड़ी रियासतों को अंगरेजी सरकार की ओर से तोपों की सलामी भी प्राप्त थी। रीवा के शासक को १७ फायर की, ओरछा, दतिया को १५ फायर की, समथर, चरखारी, पन्ना, अजयगढ़, बावनी, बिजावर, छतरपुर के शासकों को ११-११ फायर की और मैहर तथा नागौद के नरेशों को ९-९ फायर तोपों की सलामी अंगरेजी शासन-काल में दी जाती थी। किसी समय बुन्देलखण्ड के भू-भाग में उत्तर प्रदेश के झांसी, हमीरपुर, जालौन, बांदा, मध्य प्रदेश के सागर, जबलपुर, नरसिंहपुर, होशंगाबाद, मण्डला तथा मालवा संघ के शिवपुरी, कटेरा, पिछोर, कोलारस, भिण्ड, लहार और भांडेर के जिले और परगने शामिल थे; तथा इस पूरे भू-भाग का क्षेत्रफल लगभग ३०००० वर्गमील था। किन्तु सामयिक प्रगति के कारण इसका बराबर अंग-विच्छेद होता गया और विन्ध्य-प्रदेश-निर्माण के पूर्व यह उस रूप में था, जिसका संकेत ऊपर किया जा चुका है।

बघेलखण्ड के इतिहास का प्रारम्भ वि० सं० १२३४ से होता है। बघेलों के मूलपुरुष व्याघ्रदेव वि० सं० १२३४ में गुजरात से चलकर इस प्रदेश में आए। गुजरात में सोलंकी क्षत्रियों का एक अच्छा और प्राचीन राज्य था। गुजरात के पाँचवें सोलंकी राजा भीमदेव के चौथे पुत्र सारंगदेव हुए। सारंगदेव के पुत्र वीरसिंह थे, जिनके पुत्र व्याघ्रदेव (बाघराज) को गुजरात के शासक सिद्धराय जयसिंह (वि० सं० ११५०–११९९) ने निर्वाहार्थ बघेला गांव दिया था। इसी बघेला गांव के नाम पर व्याघ्रदेव के वंशज बघेल कहलाए। गुजरात के राजा कुमार पाल के शासनकाल में

व्याघ्रदेव ने अपना भाग अपने भतीजे धवल को देकर नवीन राज्य की स्थापना की अभिलाषा से रीवा की ओर प्रस्थान किया और वि० सं० १२३४ में बघेल राज्य की नींव डाली ।

कालिजर से १६ मील उत्तर-पूर्व की ओर पहाड़ी पर महोबा के चन्देलों का प्रसिद्ध दुर्ग मरफा था। इसके आसपास की सत्ताएँ शक्तिहीन-सी थीं। कालिजर में भरों का अधिकार था; पास ही तरौहा राज्य के शासक मुकुन्ददेव चन्दावत परिहार थे। व्याघ्रदेव को अवसर मिला और उन्होंने मरफा दुर्ग पर अपना अधिकार कर उसके उत्तर १५ मील पर बाघेल-भवन और दक्षिण की ओर १५ मील पर बाघोलन स्थान तक अपना प्रभुत्व जमा लिया। बाघेल-भवन और बाघोलन स्थानों का नामकरण भी व्याघ्रदेव ने ही किया था। व्याघ्रदेव अकेले नहीं थे, बल्कि उनके साथ वीरों का एक सुगठित दल भी था, जिसमें उढ़ार, सुरकी, गुजराती ब्राह्मण, गुजराती कायस्थ और कुछ मुसलमान शामिल थे।

व्याघ्रदेव एक बहादुर राजपूत थे; उन्होंने शीघ्र ही अपनी सत्ता का विकास किया। कुछ ही दिनों बाद उन्होंने गहोरा को अपनी राजधानी बनायी और उसे अच्छे-अच्छे महलों आदि से सुसज्जित भी किया। तरौहा के परिहार राजा मुकुन्ददेव चन्दावन के कोई पुत्र न था; सिन्दूरमती एक ही कन्या थी, जिसका विवाह उन्होंने व्याघ्रदेव के साथ कर अपना राज्य भी दहेज में दे डाला और आप स्वयं तीर्थ-यात्रा करने के लिए रामेश्वरम् की ओर चले गये। इस तरह बघेल-राजसत्ता एक सुदृढ़ राजसत्ता के रूप में हो गई। बघेल-राजसत्ता का विकास जिस भू-भाग पर हुआ, वही बघेलखण्ड कहलाने लगा।

बघेलखण्ड

रीवा राज्य--यह बघेल-शासकों का प्रमुख घराना है। इसकी शाखाएं कसौटा, सोहावल, मैहर और कोठी राज्यों में साधारण शासकों के रूप में थीं। व्याघ्रदेव के पुत्र कर्ण-देव हुए। इनका विवाह रायपुर घराने के चंदनिया जागीर के सोमदत्त कलचुरी की कन्या के साथ हुआ, जिसमें इन्हें बान्धवगढ़ का किला और उसके आसपास का भू-भाग दहेज में प्राप्त हुआ। बान्धवगढ़ का किला बहुत ही प्राचीन ऐतिहासिक दुर्ग है। इसका निर्माण कब हुआ, आज तक ऐतिहासिकों ने किसी तथ्य का निर्णय नहीं किया। बौद्धकाल में कौशाम्बी और बरदावही (वर्तमान भरहुत) नगरों को जोड़नेवाला राजपथ बान्धवगढ़ से भी नियोजित था। प्रसिद्ध यूनानी इतिहासज्ञ टालेमी ने बान्धवगढ़ का नाम 'बलन्तीपुरगान' लिखा है, जो बालेन्दुपुर का यूनानी अनुवाद है। इस प्रदेश में बालेन्दु क्षत्रियों का प्रभुत्व भी बहुत दिनों तक रहा। उनकी एक साधारण जागीर आज भी 'मड़वास' है। बान्धव-गढ में बहुत प्राचीन शिला-लेख हैं, जिनका परीक्षण आज तक नहीं हो सका है। इसी बान्धवगढ़ के प्रभाव के कारण रीवा के शासक 'बान्धवेश' कहलाते हैं। बान्धवगढ़ का किला व आस-पास का भू-भाग प्राप्त हो जाने पर भी बघेलों का प्रभुत्व बहुत दिनों तक इस स्थान से अछूता रहा था।

वि० सं० १२६० में कुतुबुद्दीन का आक्रमण कालिजर के किले पर हुआ था। उस समय यह किला चन्देलवंशी राजाओं के अधिकार में था; किन्तु वि० सं० १३०४ में जिस समय बलबन का आक्रमण कालिजर के किले पर हुआ, उस समय बघेल-वंश के राजा विलासदेव (वि० सं० १३००–१३२५) का आधिपत्य था। वास्तव में विलासदेव परम पराक्रमी शासक थे। इन्होंने अपने राज्य का विस्तार बान्धवगढ़ के आगे विलासपुर तक बढ़ा लिया था। अपने नाम पर इन्होंने विलासपुर नगर को बसाया था, जो आज-कल मध्य प्रदेश का एक प्रसिद्ध व्यापारिक नगर है। बघेल-वंश के नवे राजा मलकेश्वरदेव (वि० सं० १३९०–१४००) के शासन-काल में इस प्रदेश में मुसलमानों का बहुत बड़ा आक्रमण हुआ। क्योंटी के जंगल में जिस समय मुसलमान गायों का अपहरण कर जा रहे थे, क्योंटी और लूक के रावतों ने, जो राजा के सामन्त थे, गायों के रक्षार्थ बहुत बड़ा युद्ध किया था। इस सम्बन्ध के चार शिला-लेख वि० सं० १३९७ के अब भी क्योंटी के सुनसान जंगल में हैं।

इस वंश के पराक्रमी राजा बुल्लारदेव (वि० सं० १४१२–१४६०) हुए, जिन्होंने महाराजाधिराज की पदवी धारण की थी। ये दिल्ली के बादशाह फिरोज तुगलक के समकालीन थे। वि० सं० १२३४ से वि० सं० १५२७ तक कुल १४ शासक हुए। इन शासकों का ऐतिहासिक वृत्तान्त बड़े महत्व का है। इनके शासन-काल में शासित प्रदेश की उत्तरोत्तर प्रगति होती गई। यह काल रीवा-राज्य के इतिहास का प्रथम प्रकरण है।

वि० सं० १५२७ मे भैदचन्द शासक हुए। इन्हें बहलोल खां और सिकन्दर लोदी से कई लड़ाइयां लड़नी पड़ी थी। इनकी राजधानी बान्धवगढ़ मे थी। भैदचन्द ने लोदी वंश के प्रबल आक्रमणकारियों का वीरता के साथ सामना किया और अपने शासित भू-भाग पर कभी भी अन्य सत्ता का प्रभाव नहीं जमने दिया। भैदचन्द के नाती महाराज वीरसिह (वि० सं० १५५७–१५९७) हुए। ये महान् पराक्रमी और दिग्विजयी शासक थे। इन्होंने नरोगढ़ का अटूट दुर्ग भोजराज परिहार से जीता और उसके बाद मण्डला के गोंड़ राजा दलपति शाह (वि० सं० १५८७–१६०५) को युद्ध में पराजित किया था। वि० सं० १५८४ (२७ जून १५२७) में जिस समय बाबर ने राणा सागा पर चढ़ाई की थी, उस समय वीरसिह ४००० घुड़सवारों के साथ स्वयं कनवाहा के युद्ध-स्थल में शामिल हुए थे। बाबर ने स्वयं अपने बाबर-नामा मे वीरसिह की वीरता का वर्णन किया है। जिस समय बाबर का अधिकार दिल्ली के सिहासन पर हुआ, उसने रीवा-राज्य का नानकार का पाट महाराज वीरसिह को दिया। यह अपने समय के अद्वितीय वीर और महा-पराक्रमी शासक थे। 'वीरभानूदयकाव्यम्' और 'कथा-सरित्सागर' मे उनका वर्णन आया है।

वीरसिह के पुत्र वीरभानु वि० सं० १५९७ में शासक हुए। यह भी अपने पिता की ही भांति वीर और योग्य शासक थे। वि० सं० १५६७ में जिस समय मुगलों और अफगानों के बीच दिल्ली की बादशाही के लिए युद्ध छिड़ा और मुगल बादशाह हुमायू, शेरशाह अफगान के भय से अफगानिस्तान की ओर भागा, उस समय वीरभानु ने हुमायू की गर्भवती बेगम (चोली) को अपने यहां आश्रय दिया, जिससे भारत के प्रसिद्ध बादशाह अकबर का जन्म हुआ। वीरभानु ने कुछ दिनों के बाद अपने ४०० सवारों के साथ बेगम और उसके पुत्र अकबर को हुमायू के पास अमरकोट के किले में पहुंचवा दिया। इसी कारण वीरभानु पर शेरशाह का भयंकर आक्रमण हुआ; किन्तु वह बान्धवगढ़ तक न पहुंच सका और कैमोर पहाड़ के उत्तर का भूभाग जीतकर वापस कालिंजर चला गया, जहां पर वि० सं० १६०१ में वह आग से जल मरा। इसी शेरशाह के पुत्र शलीम शाह ने रीवा के वर्तमान किले की नींव डाली थी तथा कुछ हिस्से का निर्माण भी कराया था।

वीरभानु के पुत्र महाराज रामचन्द्र हुए। भारत का प्रसिद्ध गायक तानसेन इन्ही के दरबार में था, जिसे लेने के लिए अकबर ने बान्धवगढ़ पर आसफ खा को चढ़ाई करने के लिए भेजा था। इसी समय से कसौटा का सम्बन्ध बान्धव-गढ़ के शासकों से अलग हो गया, साथ ही गहोरा और कालिंजर के भू-भाग भी इस राज्य से अलग होकर मुगल-साम्राज्य में शामिल हो गए। महाराज रामचन्द्र ने कवि रहीम को एक दोहे पर एक लाख रुपया दिया था; साथ ही तानसेन की एक तान पर एक करोड मोहरों का पुरस्कार प्रदान किया था। उनके शासन-काल में कला और साहित्य की जैसी उन्नति हुई, वैसी फिर कभी न हो सकी।

रामचन्द्र के पुत्र वीरभद्र हुए। इ हीं के पुत्र विक्रमादित्य (वि० सं० १६५४–१६८१) हुए, जिन्होंने अपनी राजधानी बान्धवगढ से रीवा मे स्थापित की। इनके शासन-काल में वि०सं० १६५४ में अकबर के सामन्त पालदास ने बान्धवगढ़ पर चढ़ाई की थी, जिसे ८ महीना ५ दिन के घेरे के बाद सफलता मिली थी।

विक्रमादित्य के पुत्र अमरसिंह उच्च कोटि के साहित्यिक थे। इनके समय में मुसलमानी सत्ता उत्तरोत्तर बढ़ रही थी, साथ ही यह भी अपने को मुसलमान बादशाहों के कृपापात्र समझने लगे थे। यह प्रथम बघेल-शासक थे, जिन्होंने मुगलो की अधीनता स्वीकार की थी और जिसके उपलक्ष्य मे मुगल बादशाह जहांगीर ने इन्हें पंचहजारी मनसबदार का पद प्रदान किया था। जिस समय वि० सं० १६९७ में अमरसिंह स्वर्गवासी हुए, उनके पुत्र अनूपसिह अल्पवयस्क थे। वि० सं० १६७९ में अमरसिह ने ओरछा के राजा के खिलाफ मुगल बादशाह की सहायता की थी, जिसका बदला चुकाने के लिए अमरसिह के मरते ही वि० सं० १६९७ में ओरछा के राजा जुझारसिंह के भाई पहाड़सिह ने रीवा पर चढ़ाई कर दी; किन्तु अनूपसिह के बड़े वैमात्रिक बन्धु फतेहसिह ने, जिन्होंने आगे चलकर सोहावल-राज्य की स्थापना की थी, जगतराय इत्यादि अपने साथियों के साथ पहाडसिंह का सामना किया और उसे रीवा से खदेड़ बाहर किया। अनूपसिह का शासन-काल बघेल-शासकों के अपकर्ष का समय था।

वि० सं० १७३२ में अनूपसिह के पुत्र भावसिंह हुए। यह अपने समय के महान विद्वान राजा थे। ।

पन्ना-नरेश महाराज क्षत्रसाल की दी हुई मस्तानी नाम की वेश्या का बाजीराव मराठा से पैदा हुए पुत्र शमशेर बहादुर का पुत्र अलीबहादुर था और उसे छत्रसाल द्वारा दिया हुआ बुन्देलखण्ड का भूभाग मिला हुआ था। वह छतरपुर के पमार अर्जुनसिह के पुत्र को पकड़ना चाहता था; परन्तु रीवा-नरेश ने उसे शरण दे दी। इससे चिढ़कर महाराज अजीतसिंह (वि० सं० १८१२–१८६६) के शासन-काल मे वि० सं० १८ ३ मे बांदा के नवाब अलीबहादुर ने रीवा-नरेश महाराज अजीत-सिह पर चढ़ाई कर दी। उसका नायक यशवन्त राव रीवा के पास तक चला आया और बाबूपुर के मैदान मे अपना पड़ाव डाला। महाराज अजीतसिह की इच्छा न रहते हुए उनकी चंदेलिन महारानी कुन्दन कुंवरि ने नायक से युद्ध करना ही ठीक समझा। नैकहाई की युद्ध-भूमि मे भयानक संग्राम छिड़ा और उसमें नायक मारा गया, उसकी विशाल सेना भाग निकली। महाराज अजीतसिह का एक युद्ध वि० सं० १८६१ में माड़ा के गहरवार राजा ईश्वरसिह से भी त्योंथर परगना वापस लेने के सम्बन्ध में जनेह स्थान पर हुआ, जिसमें गहरवार राजा की पराजय हुई।

महाराज अजीतसिह के पुत्र महाराज जय सिंह (वि० सं० १८६६–१८९०) हुए। इन्ही के शासन-काल मे वि० सं० १८६९ में अंगरेजों के साथ सन्धि हुई। इनके समय से रीवा-राज्य मे नवीन शासन-प्रणाली का जन्म हुआ। इनके पुत्र महाराज विश्वनाथ सिह (वि० सं० १८९०–१९११) हुए, जिन्होने अपनी योग्यता के साथ राज्य की परिस्थिति को सुधारा। इनके सुयोग्य पुत्र महाराज रघुराज सिह (वि० सं० १९११–१९३७) हुए। इन्ही के राजकाल मे वि० सं० १९१४ मे भारत-व्यापी अंगरेजों के खिलाफ बहुत बड़ा विद्रोह हुआ, जिसमें इन्होने अंगेजों की सहायता की और मैहर, विजयराघवगढ़ तथा सोहागपुर मे स्वयं अपनी सैनिक सहायता से शान्ति स्थापित की।

महाराज रघुराजसिह के पुत्र महाराज वेंकटरमण सिह (वि० सं० १९३६–१९७५) हुए। इन्होंने हरिहर-क्षेत्र में गोवध बन्द कराया था। इनके पुत्र महाराज गुलाबसिह (वि० सं० १९७५–२००३) हुए। महाराज गुलाबसिह उच्च कोटि के राजनीतिज्ञ और अर्थशास्त्र के पण्डित थे। वि० सं० २००७ (१३ अप्रैल १९५०) में ये स्वर्गवासी हुए।

महाराज गुलाबसिह के पुत्र महाराज मार्तण्डसिह है। वि० सं० २००२ में इन्होंने राजशासन-प्रबन्ध ग्रहण किया। वि० सं० २००५ मे विन्ध्य-प्रदेश का निर्माण हुआ, जिसके यह राजप्रमुख बनाए गए; किन्तु वि० सं० २००६ मे यह राजप्रमुख पद से अलग हो गये।

सोहावल राज्य—वि० सं० १७०० मे रीवा के महाराज अमर सिह के बड़े पुत्र फतेह सिह ने अपने बाहुबल से सोहावल राज्य की स्थापना की। सोहावल समेत १२ गांव इन्हे उचेहरा के तत्कालीन परिहार-राजा पृथ्वीसिह से दहेज मिले थे। सोहावल पिछले परिव्राजकों का एक छोटा-सा राज्य था। सोहावल के आसपास परिव्राजक शैली का प्रभाव अब भी अवशेष है। कोठी की जागीर भी तीस परगना नाम से सोहावल राज्य के अन्तर्गत थी; परन्तु सोहावल के राजा पृथ्वीपति सिह के समय में कोठी और सोहावल के बीच बहुत बड़ा विरोध उठ खड़ा हुआ। इसी विरोध के कारण पृथ्वीपति सिह कोठीवालों के हाथ मार डाले गये और इस तरह कोठी सोहावल से अलग हो गया। वर्तमान सोहावल-नरेश जगेन्द्रसिह उच्च कोटि के धार्मिक और दानी है।

कोठी राज्य—कमौटा राज्य के शासक फतेहसिह के दूसरे पुत्र मकरन्द हुए, जिनके पुत्र जगतराय थे। सोहावल के मूलपुरुष फतेह सिह के ये परम मित्र थे। जिस समय वि० सं० १७०० मे फतेह सिह ने सोहावल राज्य की स्थापना की थी, उन्होंने हीसा का परगना (वर्तमान कोठी का भूभाग) अपने मित्र जगतराय को निर्वाहार्थ दे दिया था। जगतराय के पुत्र अंगदसिह और सोहावल के राजा पृथ्वीपति सिंह के बीच आपसी मतभेद उठ खड़ा हुआ, जिसके फलस्वरूप कोठी सोहावल से अलग होकर एक स्वतंत्र राज्य के रूप में हो गया। वर्तमान शासक कौशलेन्द्र प्रताप बहादुर सिह है, जो विन्ध्य-प्रदेश विधान-सभा के एक सदस्य भी है।

नागौद राज्य—नागौद के परिहारो का राजवंश बहुत प्राचीन है। ग्वालियर के परिहार राजा विजयपाल के कनिष्ठ पुत्र शिविर शाह ने वि० सं० ११२३ में खंगार जाति के लोगों से कालपी और महोबा के बीच का भूभाग जीतकर अपना प्रभुत्व स्थापित कर लिया था। कोट्टा और उरई का भूभाग इनके शासन के अन्तर्गत था। बाद में चन्देलों के संघर्ष के कारण इनकी सत्ता स्थिर न रह सकी।

वि० सं० १३७० में उरई का राज्य इनसे छूट गया। सुमेरु शाह परिहार ने उरई से हटकर नरोगढ के तैलपवंशी राजा भगदत्त से युद्ध कर इसका राज्य ले लिया। वि०सं० १४२० में फिरोज शाह तुगलक ने नरोगढ़ भी जीत लिया। विक्रमादित्य परिहार ने अपनी सत्ता उँचेहरा मे स्थापित की। परिव्राजकों को दबाकर ये लोग बरमै राज्य के अधिकारी बन गए। भोजराज परिहार ने उँचेहरा से अपनी राजधानी नागौद मे स्थापित की। चैनसिंह परिहार ने स्थायी रूप मे अपना निवास-स्थान नागौद मे बनाया। दिल्ली के मुसलमान बादशाहों के साथ यहां के शासकों का अच्छा सम्बन्ध था। यहाँ वर्तमान शासक यादवेन्द्र सिंह है।

मैहर राज्य––पहले मैहर राज्य रीवा राज्य का एक भाग था। वीरसिंह के दूसरे पुत्र जमुनीभान को मैहर-सोहागपुर समेत १५०० गाव प्राप्त हुए थे। बाद में जमुनीभान के पुत्र चन्द्रभान को मैहर समेत ७५० गांव बँटवारे मे मिले। मैहर के किले की नीव रीवा के राजा भैदचन्द ने वि० सं० १४१५ मे अगहन सुदी ५ गुरुवार को डाली थी। सभासिंह के राजकाल में वि० सं० १७७३ में पन्ना-नरेश छत्रसाल के पुत्र हिरदेशाह ने मैहर पर चढाई करके मैहर को जीत लिया और इस तरह मैहर से बघेल-राजसत्ता समाप्त हो गई। वि० सं० १८३७ मे पन्ना-नरेश हिन्दूपत ने मैहर का राज्य अपने सामन्त बेनीहुजूरी को दिया। तभी से वर्तमान मैहर राजवंश की स्थापना हुई।

अलीबहादुर का आक्रमण मैहर राज्य पर भी हुआ, जिसने बेनीहुजूरी के बड़े पुत्र राजधर से, जिन्होंने अलीबहादुर का सामना किया था, मैहर का राज्य छीन कर छोटे भाई दुर्जनसिंह को दे दिया। दुर्जनसिंह के मरने पर उनके दो पुत्रों––बिसुनसिंह और प्रयागसिंह––के बीच आपसी राज-बाँट के लिए झगड़ा उठ खड़ा हुआ, जिससे राज्य के दो टुकड़े हो गये। बिसुनसिंह को मैहर का राज्य और प्रयागसिंह को विजयराघवगढ़ का राज्य मिला। वि० सं० १९१४ के स्वतंत्रता-संग्राम मे विजयराघवगढ़ के राजा सरजू प्रसाद तथा मैहर राज्य के अनेक बहादुरों ने भाग लिया। उस समय मैहर के राजा रघुवीरसिंह अल्पवयस्क थे, जिससे उसका प्रभाव बाद मे मैहर राज्य पर नही पड़ा; किन्तु विजयराघवगढ़ का राज्य अंगरेजी सरकार ने छीन लिया। मैहर और विजयराघवगढ़ का आन्दोलन इतना उग्र था कि अंगरेज उसे दबा न सके और रीवा के महाराज रघुराजसिंह से सहायता की प्रार्थना की। महाराज रघुराजसिंह ने मैहर और विजयराघवगढ के विद्रोहियों को दबा दिया।

बघेलखण्ड भू-भाग में यही ५ राज्य––रीवा, सोहावल, कोठी, नागौद और मैहर––शामिल थे। इन राज्यों की शासनिक परम्परा अलग-अलग थी। रीवा राज्य को छोड़कर अन्य राज्यों को शासनिक प्रगति में कुछ सीमित अधिकार थे। सनद के नियमों से बंधे हुए ये राज्य अंगरेजी राज-सत्ता के अन्तर्गत सुरक्षित थे। रीवा राज्य के शासकों को अपने राज्य के अन्दर शासन-सम्बन्धी सभी अधिकार प्राप्त थे।

बुन्देलखण्ड

काशी के गहरवारों का अधिकार बांदा तक था और उनकी दूसरी राजधानी काशी के अतिरिक्त 'गहरवारा' में भी थी। गहरवारा ही आजकल गहोरा कहा जाता है। वि० सं० ७३१ के आसपास इस वंश का राजा कर्तृराज गहरवारा प्रान्त का शासक था। कर्तराज से बीसवीं पीढ़ी में करनपाल हुए, जिनके तीन लड़के वीर, हेमकरन (पंचम) अरिवहान (अरिवर्म्मा) हुए। करनपाल ने अपना राज अपने दूसरे पुत्र हेमकरन को दिया। इससे दोनों भाई जल उठे और उन लोगों ने हेमकरन का राजपाट छीन लिया। वि० सं० ११२८ मे हेमकरन स्वर्गवासी हुए। उनके पुत्र वीरभद्र हुए। इन्होने अपने पराक्रम से वर्तमान बुन्देलखण्ड की ओर प्रस्थान कर भदोरिया राजपूतों से उनका राज्य अँटेर छीन लिया। इसी समय से बुन्देल-राजवंश की नींव पड़ी। बाद में वीरभद्र ने अफगान सरदार तातार खां से कालपी के आसपास का भाग छीनकर अपनी राजधानी महौनी में स्थापित की। वि० सं० ११४४ में वीरभद्र का स्वर्गवास हो गया। इसी वंश में आगे चलकर अर्जुनपाल हुए, जिनका स्वर्गवास वि० सं० १२८८ में हुआ। इनके तीन पुत्रों मे से मोहनपाल राज्य का अधिकारी हुआ; किन्तु उसके दूसरे भाई वीरपाल ने सारी पैतृक सम्पत्ति छीन ली। सोहनपाल कुछ दिनों तक इधर-उधर घूमता रहा; परन्तु इसी बीच इसने अपना एक दल बना लिया और वि० सं० १३१४ में गढ़कुडार के खंगार राजा खूबसिंह के पुत्र हुरमतसिंह पर चढ़ाई करके उसे मार डाला और गढ़कुंडार

राज्य का अधिकारी बन गया। वि० सं० १३१६ में सोहनपाल मर गया।

सोहनपाल के वंश में पृथ्वीराज हुआ। उस समय हिन्दुस्तान मे इस्लाम धर्म का प्रचार बड़े जोरों के साथ हो रहा था। पृथ्वीराज ने हिन्दू-धर्म और हिन्दू-संस्कृति की रक्षा के लिए अथक परिश्रम किया। वि० सं० १३९६ में पृथ्वीराज के मरने पर उसका बडा पुत्र रामचन्द्र और बाद में मेदनीमल राज्याधिकारी हुए। मेदनीमल ने अपने पराक्रम से सेवढ़ा और महोबा-समेत उसके आसपास का भू-भाग जीत लिया। मेदनीमल के पुत्र अर्जुनदेव (वि०स० १४९४--१५२५) हुए। इनके पुत्र मलखान सिंह (वि० सं० १५२५–१५५८) हुए। मलखान सिह एक वीर और उद्दण्ड राजपूत थे। इन्होंने बुन्देलखण्ड की नींव डाली। परिहारों की प्राचीन राजधानी ओरछा को छीनकर वि० सं० १५५८ मे ओरछा मे अपनी राजधानी बनाई। इस तरह सबसे पहले बुन्देलखण्ड के राज्यों में ओरछा राज्य की नींव पड़ी और ओरछा-राजवंश ही सम्पूर्ण बुन्देल-राजपूतों का प्रारम्भिक घराना है।

ओरछा (टीकमगढ़)--मलखान सिह् के मरने के बाद उनके पुत्र रुद्र प्रताप अधिकारी हुए। उन्होने महौनी राज्य को भी हस्तगत कर अपने शासित भूभाग का विस्तार किया। वि० सं० १५८८ मे इन्होंने स्थायी रूप से अपनी राजधानी ओरछा में स्थापित की। वि० सं० १५८८ में रुद्र प्रताप के मरने पर उनके तीन पुत्रों मे से बड़े पुत्र भारतीचन्द अधिकारी हुए। वि० सं० १६०२ में भारतीचन्द को शेरशाह बादशाह का सामना करना पड़ा, जिससे इनके राज्य का कुछ भू-भाग निकल गया। भारतीचन्द वि० सं० १६११ में निःसन्तान स्वर्गवासी हुए और इनके दूसरे भाई मधुकर शाह अधिकारी हुए। मधुकरशाह ने स्वतंत्र ओरछा राज्य की स्थापना की। अकबर बादशाह के बुलाने पर भी जब वह अकबरी दरबार में नही गए, तब अकबर ने अपने सरदार शादिक खां को ओरछा पर चढ़ाई करने के लिए भेजा। शादिक खां ने ओरछा को छीन लिया और मधुकरशाह जंगलों में चले गए, जहाँ वे मर भी गये।

मधुकर शाह के छोटे भाई उदयजीत के पुत्र रामशाह ने मुगल बादशाह के दरबार में उपस्थित होकर क्षमा-याचना की, जिससे रामशाह ओरछा के शासक बना दिये गये; किन्तु मधुकर शाह के पुत्र वीरसिह ने इसका बहुत बड़ा विरोध किया। फलतः राज्य तहस-नहस हो गया। वीरसिह वास्तव में बहुत बड़े राजनीतिज्ञ और अदम्य साहसी थे। मुगल बादशाह अकबर ने इन्हें अपने वश में करने की बहुत कोशिश की; परन्तु ये कभी भी उसके हाथ नहीं आये। कई बार ये घेर लिये गये, इन्हें धोखा दिया गया तथा मुसलमानी सेना की चढ़ाइयां हुई; पर वीरसिंह बराबर बचते रहे और अपने पराक्रम से मुगलों को नचाते रहे। इन्होंने जहांगीर से मित्रता कर अबुलफजल को ग्वालियर के पास आंतरी स्थान में मार भी डाला। इससे अकबर बादशाह आग-बबूला हो गया और वीरसिह को पकड़ने के लिए एक-से-एक वीर योद्धा भेजता रहा, पर वीरसिह को वह पकड़ न सका।

वि० सं० १६६२ मे अकबर बादशाह के मरने पर जहांगीर बादशाह हुआ। इसने बादशाह होते ही वीरसिंह का बड़ा सम्मान किया और जतारा का राज्य वीरसिह को दे दिया। वीरसिह और रामशाह मे बराबर झगड़ा चलता रहा। अन्त में जहांगीर ने वि० सं० १६६४ मे वीरसिह को ओरछा का राज्य देकर रामशाह को चन्देरी और बानपुर का राज्य दे दिया। वीरसिह का प्रभुत्त्व समस्त बुन्देलखण्ड में था। वह अपने समय के प्रसिद्ध वीर और राजनीतिज्ञ थे। उनके राज्य में कुल ८१ परगने और १२,५०,००० गाव थे। इन्होंने मथुरा मे ८१ मन सोने का तुलादान भी किया था।

जहांगीर के मरने पर शाहजहा बादशाह हुआ। वीरसिंह ने शाहजहां को कर देना बन्द कर दिया था, जिससे चिढ़कर शाहजहां ने वीरसिंह से लड़ने के लिए तीन बार ओरछा पर चढ़ाइयाँ कीं। वीरसिंह के जीते जी शाहजहा जीत न सका। अन्त में वीरसिह के मरने पर तीसरी बार की चढ़ाई मे वि० स० १६८४ मे बुन्देल राजपूतों ने शाहजहां से सन्धि कर ली। शाहजहां ने वीरसिह के पुत्र जुझारसिह को ओरछा का राजा स्वीकार कर लिया।

जुझारसिंह के राजा होते ही बुन्देलखण्ड में विद्वेष का बीज पड़ गया। इसी के कारण शाहजहां ने महावत खां को ओरछा पर चढ़ाई करने के लिए भेजा, जिसके साथ नावा, दतिया, चन्देरी और कालपी के शासक भी थे। जुझारसिह

ने सन्धि कर ली और इस तरह ओरछा-राज्य का बहुत-सा भाग निकल गया। जुझारसिंह को शाहजहां ने दक्षिण में युद्ध करने के लिए भेज दिया। जुझारसिंह के भाई हरदौल का भी निधन जुझारसिंह की नीति के कारण हुआ। वि० सं० १६९१ में शाहजहां ने गोंड राजा प्रेमशाह पर चढ़ाई करने और उसका राज्य चौरागढ़ ले लेने के कारण ओरछा राज्य पर चढ़ाई कर दी। जुझारसिंह और उनके पुत्र विक्रमादित्य राज्य से निकल गये। गोंड़ों ने दोनों को पकड़कर जंगल में मार डाला।

जुझारसिंह के मरने पर बुन्देलखण्ड में अराजकता-सी फैल गई। चन्देरी के राजा देवीसिंह ओरछा के राजा बना दिये गये। परन्तु इससे भी जनता का असन्तोष कम न हुआ, जिससे जुझारसिंह के छोटे लड़के पृथ्वीराज वि० सं० १६९३ में ओरछा के राजा बनाये गये। इसके बाद कुछ दिनों में पहाड़सिंह ओरछा के राजा हुए। महाराज छत्रसाल के पिता चम्पतराय और पहाड़सिंह में आपसी वैमनस्य हो गया। पहाड़सिंह एक नामी वीर और योग्य शासक थे। इन्होंने मुगलों की ओर से कई युद्ध किये। वि० सं० १७१० में पहाड़सिंह की मृत्यु के बाद सुजान सिंह अधिकारी हुए। इन्होंने मुगलों की ओर से बीजापुर में युद्ध किया। सुजान सिंह के मरने पर उनके छोटे भाई इन्द्रमणि ओरछा के राजा हुए। इस समय मुगलों की शक्ति कमजोर पड़ गई थी और मराठों का जोर दिन प्रति दिन बढ़ रहा था। पृथ्वीसिंह के शासन-काल में मराठों ने बुन्देलखण्ड का अधिकांश भाग दबा लिया। भारतीचन्द ओरछा के सबसे शक्तिहीन शासक थे। विक्रमाजीत सिंह के शासन-काल में अंगरेजों का प्रभुत्व बुन्देलखण्ड में स्थापित हुआ।

हमीरसिंह (वि० सं० १९११–१९३१) के शासन-काल में भारतव्यापी स्वतंत्रता का संग्राम छिड़ा। हमीरसिंह ने अपने मंत्री नत्थे खां को झांसी की महारानी लक्ष्मीबाई पर आक्रमण करने के लिए भेजा। उसमें इसकी पराजय हुई, फिर भी इसने झांसी राज्य का बहुत कुछ भाग लूट लिया। इस वंश के शासक महाराज वीर सिंह ने, जिनका देहावसान ७ अक्तूबर १९५६ को बम्बई में हो गया, योग्यता के साथ अपने राज्य का शासन किया। ये उच्च कोटि के साहित्य-प्रेमी और कलाकारों के आश्रयदाता थे।

पन्ना—ओरछा के राजा रुद्रप्रताप के तीसरे पुत्र उदयजीत सिंह को महेवा की जागीर मिली थी। इन्हीं की पाँचवीं पीढ़ी में कुलन्दन के पुत्र चम्पतराय हुए। चम्पतराय लड़कपन से ही बड़े वीर और उद्दण्ड थे। ये अपनी थोड़ी-सी जागीर से प्रसन्न न हो सके और शीघ्र ही एक विशाल राज्य का स्वप्न देखने लगे। इन्होंने अपना एक दल बनाकर लूट-पाट करना प्रारम्भ कर दिया। इससे तंग आकर बादशाह शाहजहां ने इन्हें मिला लिया। चम्पतराय ने अनेक लड़ाइयां लड़ी और अपनी वीरता की धाक सम्पूर्ण बुन्देलखण्ड में जमा दी। वि० सं० १७१५ में बादशाह औरंगजेब ने इन्हें ओरछा से जमुना पार तक का भू-भाग देकर बारह-हजारी मनसबदार बना दिया। किन्तु कुछ दिनों के बाद बादशाह और चम्पतराय में फिर अनबन हो गई, जिससे इनका भू-भाग छीन लिया गया। इन्हीं के पुत्र महाराज छत्रसाल हुए, जिन्होंने अपनी असाधारण वीरता के कारण पन्ना राज्य की स्थापना की। मुगलों से यह जीवन भर लड़ते रहे और कभी भी इन्होंने हार नहीं खाई। इनकी असाधारण वीरता के कारण मुगलों का अधिकार बुन्देलखण्ड से एक दम उठ गया। छत्रसाल की वीरता भारत के इतिहास में प्रसिद्ध है। इनके समान वीर और पराक्रमी राजपूत उस समय था ही नहीं। औरंगजेब की बढ़ती हुई दुर्दमनीय अनीति का विरोध अगर किसी ने किया था, तो वह थे दक्षिण के महाराज शिवा जी और बुन्देलखंड के महाराज छत्रसाल। महाराज छत्रसाल ने हिन्दू-संस्कृति की रक्षा के लिए जो महान् कार्य्य किया है, वह इतिहास की अमर घटना है। महाराज छत्रसाल-जैसा पराक्रमी शासक आज तक हुआ ही नहीं। यह जितने उदार, वीर और प्रतापी थे, उतने ही श्रेष्ठ कवि भी थे। यह कलाकारों के आश्रयदाता और उनके पोषक भी थे। इन्होंने बंगस के आक्रमण के समय बाजीराव पेशवा को मदद देने के उपलक्ष्य में अपने राज्य का तिहाई भाग दे दिया था। वि० सं० १७३२ में इन्होंने पन्ना राज्य की स्थापना की और वि० सं० १७८८ में स्वर्गवासी हुए। महाराज छत्रसाल के नाम पर आज की बुन्देलखण्ड की भूमि को गर्व है।

महाराज छत्रसाल के बाद राज्य की वह परिस्थिति न रह गई। छत्रसाल के पुत्र हिरदेशाह भी असाधारण वीर थे। इनके बाद मराठों का जोर बुन्देलखण्ड में बढ़ा और शासक भी शक्तिहीन हो गए। महाराज धौकल सिंह के समय में

वि० सं० १८६० मे अंग्रेजों की सत्ता बुन्देलखण्ड में स्थापित हुई। महाराज नरपतिसिंह के समय मे भारतीय स्वतंत्रता-आन्दोलन का संग्राम छिड़ा, जिसमे पन्ना के शासको ने अंगरेजों की मदद की। वर्तमान शासक महाराज यादवेन्द्र सिंह हैं। ये विन्ध्य-प्रदेश के उप-राजप्रमुख भी थे। ये एक योग्य शासक और नीतिवान् नरेश हैं।

दतिया राज्य--ओरछा के महाराज वीरसिंह ने वि० सं० १६८३ में दतिया का राज्य अपने पुत्र भगवान राव को दिया था। राजा शुभकरण राव के समय मे मुगलो का आधिपत्य दतिया राज्य पर भी स्थापित हुआ। इसके बाद दतिया मराठों के अधीन हो गया; परन्तु सं० १८५९ मे मराठों एवं अंग्रेजों के बीच जो बेसीन में संधि हुई, उसके अनुसार दतिया का राज्य अंग्रेजों के अधिकार मे आ गया। दतिया के तत्कालीन राजा पारीछत ने, जो ओरछा-नरेश महाराजा वीरसिंहदेव के वंशज थे, सं० १८६१ (१५ मार्च सन् १८०४) मे अंग्रेजों से संधि कर ली। राजा पारीछत की मृत्यु सं० १८९६ मे हुई, परन्तु अपनी मृत्यु के पूर्व ही उन्होंने विजय बहादुर को गोद ले लिया और सरकार से इसकी स्वीकृति भी प्राप्त कर ली। राजा विजय बहादुर की सं० १९१४ मे मृत्यु हो गयी। इस राज्य के अन्तिम नरेश श्री गोविन्द सिंह हुए।

खनियाधाना--ओरछा के महाराज उदोत सिंह ने वि० सं० १७५५ मे अपने बडे पुत्र अमर सिंह को यह राज्य दिया था। वि० सं० १७५६ में मराठा राज्य के प्रबंधक गोविन्द बल्लाल ने इस पर अपना अधिकार कर लिया। वि० सं० १७६९ में पन्त प्रधान बालाजी बाजीराव ने इस राज्य को एक सनद के साथ अमरसिंह को दे दिया। इसके बाद महाराज देव ने अलीबहादुर की अधीनता स्वीकार कर ली। सं० १८७४ मे सारे बुन्देलखंड पर अंग्रेजी राजसत्ता स्थापित हो जाने पर यह राज्य भी अंग्रेजों के अधीन हो गया। गुमानसिंह को वि० सं० १९२७ में अंगरेजों ने राजा की उपाधि दी और इकरारनामा ताबेदारी लिखने पर उन्होंने गोद लेने की सनद प्राप्त की। वर्तमान शासक राजा देवेन्द्र प्रताप सिंह हैं।

गरौली--ओरछा राजाघराने मे यह जागीर अंग्रेज-सरकार द्वारा सं० १८६९ में दीवान भोपाल सिंह को दी गई थी। इसमे १८ गांव थे। दीवान गोपाल सिंह जैसे वीर थे, वैसे ही निर्भीक भी। वे सदा अपने विरोधियों से लड़ने को तैयार रहते थे। बाद में पन्ना-नरेश राजा किशोर सिंह ने उन गांवों का दावा किया; परन्तु उनका दावा प्रमाणित न हो सका। जागीर के वर्तमान शासक कप्तान दीवान बहादुर रघुराज सिंह है।

अठभैया जागीर--ओरछा के महाराज जुझार सिंह ने अपने भाई हरदौल को वि० सं० १६८८ में बड़गांव की जागीर दी थी। आगे चलकर उदोत सिंह ओरछा राज्य के शासक हुए। इनके छोटे भाई राय सिंह को अठभैया जागीर प्राप्त हुई। राय सिंह के ८ पुत्र थे। सं० १८४७ में अठभैया जागीर भी आठ भागो मे बंट गयी और हर एक भाई को एक-एक भाग मिला। इससे यह जागीर अठभैया कहलाने लगी। इसमे कर्री, पसराई, तारौली, चिरगाव, धुरवई, विजना, टोरी फतेपुर और बंका-पहाड़ी ये ८ जागीरें थी। सामयिक प्रगति के कारण (१) कर्री, (२) तारौली, (३) पसराई (४) चिरगांव की जागीरें कुछ दिनों के बाद समाप्त हो गईं। धुरवई, विजना, बंका-पहाड़ी और टोरी फतेपुर के ही भाग वर्तमान है।

धुरवई--दीवान रायसिंह ने धुरवई की जागीर अपने चौथे पुत्र अमान सिंह को दी थी। झांसी राज्य के प्रबन्धक नरोशंकर ने इस जागीर को झांसी राज्य में मिलाकर इसका स्थायित्व ही मिटा देना चाहा था, परन्तु ऐसा न हो सका। वि० सं० १८८० मे इस जागीर की एक सनद अमान सिंह के पौत्र और जयसिंह के पुत्र बुध सिंह को अंगरेजी सरकार की ओर से दी गई। वर्तमान शासक दीवान केशवेन्द्र सिंह है, जिन्होंने अनेक स्थानों मे रहकर शासन-प्रणाली में योग्यता प्राप्त की है।

(ब) विजना--यह जागीर रायसिंह के दूसरे पुत्र सामन्त सिंह को सं० १८४७ मे प्राप्त हुई थी। इसके बाद दीवान अजीत सिंह शासक हुए। अजीत सिंह के बाद उनके पुत्र सुरजनसिंह को अंगरेजी सरकार ने सनद दी थी। वर्तमान शासक दीवान हिम्मत सिंह हैं।

(स) बंका-पहाड़ी--यह जागीर रायसिंह के पुत्र उम्मेदसिंह को प्राप्त हुई थी। दीवान उम्मेद सिंह के बाद दीवान बंका दुर्गसिंह ने जागीर पायी। इन्होंने अपने दोनों लड़कों--दीवान बंका छत्रपति और दीवान बहादुरसिंह--

को जागीर बाट दी । दीवान छत्रपति के छोटे पुत्र दीवान बंका ईश्वरी सिह को वि० सं० १८८० मे अगरेजी सरकार ने सनद दी थी । इस समय इस जागीर के अधिकारी दीवान जगत प्रतापसिह है ।

(द) टोरी फतेपुर—रायसिह ने अपने ज्येष्ठ पुत्र हिन्दू सिह को यह जागीर दी थी । इसके बाद इनके पुत्र मेदनीमल उत्तराधिकारी हुए, जिन्होने कोई पुत्र न होने के कारण बिजना के जागीरदार दीवान सुरजन सिह के छोटे पुत्र हरप्रसाद को गोद लेकर उसे अपना उत्तराधिकारी बनाया । दीवान हरप्रसाद को वि० सं० १८८० मे अगरेजो से इस जागीर की सनद प्राप्त हुई । इसमे चौदह गाव थे । इस जागीर के वर्तमान जागीरदार दीवान रघुराज सिह है ।

बीहट—ओरछा के महाराज अर्जुनपाल के दूसरे पुत्र सोहनपाल को कोटरा की जागीर मिली हुई थी । अंग्रेजी राजसत्ता स्थापित होते समय बीहट मे अपरबल सिह जागीरदार थे । इन्हे ही वि० स० १८६४ मे जागीर के सात गांवों की सनद अंग्रेजी सरकार की ओर से मिली । दीवान अमरपाल के बाद राव वेकट राव गद्दी पर बैठा, जिसकी सं० १८८५ मे मृत्यु के उपरान्त राव कमोदसिह जागीर का उत्तराधिकारी हुआ । वि० सं० १९०३ मे इसके मरने पर हिरदेशाह को गद्दी मिली, पर यह स० १९०६ मे ही परलोक सिधार गया । इसके बाद कमोदसिह के भाई गोविन्द दास को जागीर मिली , जिसका सं० १९२९ मे देहावसान हो गया । वर्तमान शासक राव वीरेन्द्र सिह हं ।

चरखारी—पन्ना के महाराज छत्रसाल ने वि० सं० १७८८ मे अपने राज्य को तीन भागो मे बांटकर ३१ लाख की जैतपुर की जागीर अपने तीसरे पुत्र जगतराय को दी थी । वि० सं० १८१४ मे जगतराय के मरने पर राज्य के सम्बन्ध में बहुत बड़ा आपसी झगड़ा खड़ा हो गया । पहाड़ सिह ने अपने भतीजों—गुमान सिह और खुमान सिह—को मिलाकर स्वयं अधिकार प्राप्त कर लिया । वि० सं० १८२१ मे पहाड़ सिह ने बाँदा का भू-भाग गुमान सिह को और ९ लाख का भूभाग चरखारी-समेत खुमान सिह को दिया । वि० सं० १८३९ में खुमान सिह के मरने पर बाँदा के अधिकारी अर्जुनसिंह ने खुमान सिह के पुत्र विजय विक्रमाजीत बहादुर सिह को जागीर के बाहर खदेड़ दिया । वि० सं० १८४६ मे अलीबहादुर के आक्रमण के समय विक्रमाजीत बहादुर सिह ने अलीबहादुर की बड़ी मदद की, जिससे उसने चरखारी-समेत ४ लाख की जागीर दी । वि० सं० १८६० मे विजय विक्रमाजीत बहादुर सिह ने अंगरेजो से सनद प्राप्त की । वि० स० १९१४ के भारतव्यापी स्वतंत्रता-सग्राम मे रतन सिह ने अंगरेजों की सहायता की, जिसके उपलक्ष्य मे उन्हें २०००) पुरस्कार-समेत कुछ और भू-भाग प्राप्त हुआ । वि० सं० १९३७ मे जयसिह देव के अपुत्र स्वर्गवासी होने पर मलखान सिह गोद लिए गए । वर्तमान शासक महाराज जयेन्द्र सिह है ।

अजयगढ़—जैतपुर के अधिकारी जगतराय के मरने पर उनके पुत्रो पहाड़सिह, वीरसिह और कीरतसिह मे झगडा उठ खड़ा हुआ । अन्त में पहाड़सिह ने स्वयं राज-सिहासन लेकर कीरतसिह के पुत्र गुमानसिह को अजयगढ़-समेत बादा का ९ लाख का भूभाग दिया । वि० सं० १८४९ मे गुमानसिह के मरने पर उनके भतीजे बख्तसिह जागीर के अधिकारी हुए; किन्तु अलीबहादुर ने उनको बांदा से निकाल दिया । कुछ दिनो तक बख्तसिह को दो रुपए रोज अलीबहादुर देता रहा, किन्तु जिस समय अंगरेजो का आधिपत्य बुन्देलखण्ड पर हुआ, बख्तसिह को ३००००) सालाना भरण-पोषण के लिए मिलने लगा । वि० सं० १८६४ मे बख्तसिह को कोटरा और पवई के परगने अंग्रेजो ने दे दिये । इस समय अजयगढ़ की जागीर लक्ष्मण प्रसाद दौआ के अधिकार मे थी । इसने अंगरेजो का विरोध किया, जिससे वि० स० १८६६ मे कर्नल मार्टिण्डल ने अजयगढ़ की जागीर छीन ली । बख्तसिह ने अंगरेजो की मदद की थी, जिससे यह जागीर भी उन्हे दे दी गयी । बख्तसिह ने अपनी राज-धानी अजयगढ़ मे स्थापित की । वि० सं० १८६९ मे बखत सिह ने अंगरेजो से सनद भी प्राप्त कर ली । वि० सं० १९१० मे विजयसिह अपुत्र स्वर्गवासी हुए । वि० सं० १९१४ के स्वतंत्रता-संग्राम में मदद देने के कारण विजयसिह की रानी के इच्छानुसार रनजोर सिह अधिकारी बना दिए गए । वर्तमान शासक पुण्य प्रतापसिह है ।

जसो—गुमानसिह को अजयगढ़-समेत बादा का भू-भाग मिला था । महाराजा छत्रसाल ने अपने लड़के हिरदे शाह को पन्ना और जगतराज को जैतपुर दिया था । जगत-राज के हिस्से के तीन भाग पहाड़ सिह, गुमान सिह और

खुमान सिह मे बँटे । इसी अजयगढ़ के साथ जसो का भी भू-भाग था । महाराज छत्रसाल के चौथे पुत्र भारतीचन्द को बनघोरा की जागीर मिली हुई थी । भारतीचन्द के दो पुत्र दुर्जनसिह और हरीसिह हुए । इनमे हरीसिह वीर और पराक्रमी पुरुष थे । इन्होंने जसो पर अपना अधिकार कर लिया । बनघोरा का भू-भाग दुर्जनसिह को मिला हुआ था । दुर्जनसिह के पुत्र मेदनी सिह के कोई पुत्र नही था; अतः बनघोरा की जसो की जागीर हरीसिह के पुत्र चेतसिह को मिली । मूरत सिह के अभिभावक गोपाल सिह ने अलीबहादुर की मदद की, जिससे कोटरा का भू-भाग अली बहादुर ने जसो की जागीर के साथ शामिल कर दिया । बाद मे कोटरा अजयगढ़ रियासत मे शामिल हो गया । वि० सं० १८७३ में अंगरेजों ने जसो को सनद दी । अजयगढ़ के शासकों ने जसो के लिए बहुत दिनों तक लिखा-पढ़ी की, किन्तु कुछ न हुआ । वि० स० १९३४ मे जगराजसिह को अंगरेजों ने 'बहादुर' की उपाधि दी । वर्तमान समय मे इस जागीर के शासक आनन्द प्रतापसिह है ।

बिजावर—बिजावर का भू-भाग भी जगतराय को जैतपुर-समेत प्राप्त हुआ था । जिस समय पहाड़सिह ने अपने भतीजे गुमानसिह को बांदा का भूभाग दिया, बिजावर भी उसी मे शामिल था । वि० सं० १८२६ मे गुमानसिह ने यह जागीर वीरसिह को, जो जगतराय के दूसरे पुत्र थे, दी । वीरसिह और गुमानसिह एक साथ ही थे । वीरसिह वास्तव मे वीर और पराक्रमी थे । उन्होने शीघ्र ही अपनी जागीर बढ़ा ली । वि० सं० १८५० में वीरसिह चरखारी के पास अलीबहादुर के साथ युद्ध में मारे गए । उनके पुत्र केशरी सिह ने अगरेजों से मित्रता की , जिससे अंगरेजों ने वि० सं० १८५९ मे बिजावर मे जागीर की एक सनद भी दे दी । वि० सं० १८९० मे केशरीसिंह के पुत्र रतनसिह अपुत्र स्वर्गवासी हुए, जिससे उनकी रानी ने खेतसिह के पुत्र लछिमन सिह को गोद ले लिया । वि० सं० १९१४ के स्वतंत्रता-संग्राम मे राजा भानुप्रतापसिंह ने अंगरेजों की अच्छी मदद की, जिससे अंगरेजों ने इन्हें सम्मानित और पुरस्कृत किया । वर्तमान शासक महाराज गोविन्दसिंह हैं ।

सरीला—जैतपुर के शासक पहाड़सिंह के दो पुत्र थे । गजसिंह जैतपुर के अधिकारी हुए और दूसरे पुत्र मानसिंह को वि० सं० १८१२ में सरीला की जागीर मिली । अली बहादुर ने मानसिह के पुत्र तेजसिह से यह जागीर छीन ली । बाद मे हिम्मतबहादुर के कहने पर उसने जागीर का कुछ भाग तेजसिह को दे दिया । अंगरेजो की सत्ता बुन्देलखण्ड मे स्थापित होने के समय ९०००) का केवल सरीला भर का भी भूभाग था । वि० सं० १८६४ मे २३६०० रुपये की आय की जागीर तेजसिह को अंगरेजी सरकार ने दी । हिन्दूपत के पुत्र भानुप्रतापसिह उनके जीवन-काल ही में मर गए थे, जिससे समर सिह के पुत्र खलक सिह गोद ले लिए गए । वर्तमान शासक राजा महिपाल सिह हैं ।

जिगनी—महाराज छत्रसाल के पुत्र पदुमसिह को कोई जागीर राज्य से नही मिली थी । यह अपने मामा के यहा रासिन बदौस मे रहते थे । मामा के निस्सन्तान मरने पर ये जागीर के अधिकारी हुए, किन्तु दुश्मनो ने कुछ दिनों मे रासिन बदौस छीन लिया । वि० स० १७८७ मे पदुमसिह ने एक संगठन बनाकर पुनः रासिन बदौस पर अपना अधिकार कर लिया । मराठो का जोर बढ़ने के कारण पदुमसिह के पुत्र लक्ष्मण सिह के पास केवल दो ही गाव बचे । अगरेजो की सत्ता स्थापित होने के समय तक यहां के शासक ने जिगनी-समेत १६ गाँवों पर अपना अधिकार कर लिया था । १८६१ वि० मे अंगरेजों ने ६ गांव छोडकर बाकी अपने राज्य मे मिला लिये । सं० १८६७ में इन्हीं ६ गांवों की सनद इन्हे मिली । वर्तमान समय मे ये ही ६ गाव जिगनी जागीर मे हैं , जिसके शासक राव भूपेन्द्र विजय सिह हैं ।

लुगासी—वि० सं० १७८९ मे महाराज हिरदेशाह के दत्तक पुत्र दीवान सलीमसिह को यह जागीर मिली थी । सलीम सिह के पुत्र धीरज सिह को वि० सं० १८६५ मे इस जागीर की सनद प्राप्त हुई । वि० स० १९१४ के स्वतंत्रता-संग्राम मे अंगरेजों की मदद करने के कारण सरदारसिह को ४ गांव और मिल गए । इसके वर्तमान शासक दीवान भूपाल सिंह है ।

समथर—वि० सं० १७९० मे दतिया राज्य पाने के लिए नन्हे शाह गुर्जर ने इन्दुजीत सिह की मदद की थी, जिससे इन्दुजीत सिंह ने नन्हे शाह को समथर के किले का गवर्नर बनाकर ५ गांवों की जागीर भी दे दी थी । रनजीत सिंह ने मराठों की शक्ति रोकने का भरपूर प्रयत्न किया; साथ ही बुन्देलखण्ड में अंगरेजी राज-सत्ता स्थापित होने

में मदद दी, जिससे अंगरेजों ने वि० सं० १७९४ में यहां के शासक को समथर राज्य की एक सनद दे दी। वि० सं० १८८४ में रनजीत सिंह के पागल हो जाने पर उनको अमरगढ़ की जागीर दी गयी। वि० सं० १९२१ में छत्रजीत सिंह अधिकारी हुए। वि० सं० १९४० मे अमरगढ़ की जागीर भी समथर राज्य में शामिल हो गयी। वर्तमान समय में यहां के शासक महाराज राधाचरण सिंह हैं।

छतरपुर—पन्ना के महाराज हिन्दूपत सिह के सामन्त कुमार सोनेशाह ने सं० १८४२ में रियासत स्थापित कर ली। वि० सं० १८३४ मे हिन्दूपत सिह के मरने पर यह जागीर छीन ली गयी और उसके बदले में राजनगर का भूभाग दिया गया; किन्तु वि० सं० १८४२ मे कुमार सोनेशाह पमार ने छतरपुर को जीत लिया। कुमार सोनेशाह राजनगर के अल्पवयस्क शासक हीरासिंह के अभिभावक थे। इन्होंने अलीबहादुर के राज्य का भी कुछ भाग जीत लिया था। वि० म० १८६३ मे अंगरेजों ने यह रियासत सोनेशाह को दे दी। धीरे-धीरे इसका विस्तार बढ़ता गया। वि० सं० १९१४ के स्वतंत्रता-संग्राम में अंगरेजों की मदद करने के उपलक्ष्य मे पुरस्कार और सम्मान भी मिला। इस समय इसके शासक महाराज भमानी सिंह हैं।

अलीपुरा—ग्वालियर के परिहार-राजा जयसिंहदेव के दूसरे भाई जुझारसिह को वि० सं० १२८३ में सानिया-मऊ की जागीर मिली थी। वि० सं० १३१९ मे जुझारसिंह के पुत्र अमरसिह जागीर के अधिकारी हुए और दूसरे पुत्र धांगचन्द्र को अलीपुर की जागीर मिली। वि० स० १७६५ मे इस वंश के गरीबदास ने पन्ना के महाराज हिन्दूपत सिह के यहां नौकरी कर ली। उसके कामो से प्रसन्न हो पन्ना-नरेश हिन्दूपत ने वि० सं० १८१४ में गरीबदास के नाती अचल सिंह को अलीपुरा की जागीर दे दी। बाद में ये स्वतंत्र हो गये। वि० सं० १८५६ में प्रतापसिंह को एक सनद अंगरेजों से प्राप्त हुई। तब इस जागीर की वर्तमान रूप-रेखा का निर्माण हुआ। इस समय इसके शासक राजा रघुराजसिंह है।

नौगांव रिबई—जैतपुर के पास किसी गांव में अनन्तराम दौआ रहता था। उसके दो पुत्र लछमन सिंह और दलसिह थे। लछमन सिंह जैतपुर के शासक किशोर सिंह की सेना में नौकर था। किशोर सिंह ने जिस समय कालिंजर पर चढ़ाई की, लछमन सिंह ने बड़ी वीरता दिखलाई और किशोर सिंह के वापस आने पर वहां लूट-मार शुरू कर दी। इतने में अंग्रेजी राजसत्ता स्थापित होने लगी। लछमन सिंह अजयगढ़ के राजा बखत सिंह के साथ अंग्रेजों से मिला। वि० सं० १८६४ में नौगांव-समेत ५ गांवों की एक सनद अंग्रेजों ने उसे दे दी। पहले यह जागीर अस्थायी थी; परन्तु वि० सं० १९२४ में जगतसिह के मरने पर उनकी रानी लाड़ली दुलैय्या के प्रयत्न से यह जागीर भी स्थायी हो गयी। वर्तमान जागीरदार कुमार रतनसिह हैं।

बेरी—यह पमारों की जागीर है। पहले इनके पूर्वज ग्वालियर राज्य के अन्तर्गत कहरैया के जागीरदार थे। इसी वंश मे दीवान पृथ्वीसिंह हुए। इनके बड़े पुत्र महिमाराय के पुत्र अक्षराज सिह को जालौन जिले में संडी की जागीर मिली हुई थी। इनका विवाह जैतपुर के शासक जगतराय की पुत्री के साथ हुआ, जिसमें इन्हें १२ लाख की जागीर दहेज में मिली। वि० सं० १८६६ मे अगरेजों ने बेरी जागीर की एक सनद जुगुल प्रसाद को दी। वर्तमान समय में इस जागीर के अधिकारी राव यादवेन्द्र सिह हैं।

बरौंछा (पाथर-कछार)—यह रघुवंशी क्षत्रियों की बहुत प्राचीन जागीर है। पहले इनकी जागीर मंडीहा कहलाता था; उसके बाद रासिन कहा जाने लगा। बुन्देली-राजसत्ता बढ़ने के कारण, साथ ही बघेलखण्ड के बघेलों का प्रभुत्व बढ़ने के कारण यह जागीर बहुत कुछ कट-छँट गयी। कुछ दिनों के बाद ये पन्ना के राजाओं के आश्रित हो गए। वि० सं० १८६८ मे अंगरेजों ने इस जागीर की एक सनद मोहनसिंह को दी। तब से यह जागीर उसी रूप में है। वि० सं० १९१४ के स्वतंत्रता-संग्राम में अंगरेजों की मदद करने के कारण यहां के राजा रघुवर दयाल सिह को पुरस्कार और सम्मान मिला। वर्तमान समय में यहां के शासक राजा रामप्रतापसिंह है।

गौरिहार—जुझौतिहा ब्राह्मणों की पवाई है। बारहवी सदी में बुन्देलखण्ड जैजाकभुक्ति कहलाता था। यह भूभाग ग्वालियर के राजा महीपक्ष देव (वि० सं० ११८३) के पुत्र जुझारसिंह के शासन के अन्तर्गत था। इन्ही के पुत्र अमरसिंह हुए। अमरसिंह की रानी कन्नौज के राजा जयसिंह के छोटे भाई हरिश्चन्द्र की पुत्री थीं। कुष्ठ रोग से पीड़ित होने के कारण हरिश्चन्द्र ने १६ याज्ञिकों को बुलाकर

एक यज्ञ किया, जिसमें ब्राह्मणों को दक्षिणा में यह भूभाग दिया गया। पहले केवल १३ ही गांव थे; किन्तु बाद में इनका प्रभुत्व बढ़ा और सारा प्रदेश ही जैजाकभुक्ति कहलाने लगा। बाद में इनकी शक्ति का ह्रास हुआ और महपुरा गांव (चरखारी) भर में ही इनका अधिकार रह गया। अंगरेजी शासन-काल में वि० सं० १८६४ में इन्हें गोरिहार जागीर की एक सनद प्राप्त हुई। वर्तमान समय में इसके अधिकारी प्रतापसिंह हैं।

बामनी—हैदराबाद के निजाम आसफजाह के नाती इमादुल मुल्क गाजिउद्दीन ने वि० सं० १८०५ में बाजीराव पेशवा की मदद बुन्देलखण्ड-विजय में की थी, जिससे विजयी होने पर पेशवा ने उसे ५२ गांवों की जागीर दे दी; किन्तु ४९ गांवों में ही अधिकार हो सका। वि० सं० १८६३ में अंगरेजों ने पूरे ५२ गांवों की सनद दी। वि० सं० १९१४ के स्वतंत्रता-संग्राम में यहां के नवाब मुहम्मद हुसेन खां ने अंगरेजों की बड़ी मदद की। वि० सं० १९१९ में मुसलमानी व्यवस्था के अनुसार शासन करने की सनद महदीहसन खां को अंगरेजों ने दी। इन्हीं ५२ गांवों के कारण यह जागीर बामनी कहलाती है। वर्तमान शासक नवाब मोहम्मद मुस्ताक-उल-हसन खां हैं।

चौबे जागीरें—पहले केवल ददरी गांव भर ही था। रामकृष्ण चौबे को महाराज छत्रसाल ने कालिंजर किले की किलेदारी दी थी। अलीबहादुर के आक्रमण के समय १० वर्षों तक रामकृष्ण चौबे ने किले की रक्षा की, जिससे महाराजा हिरदेशाह ने एक छोटी-सी जागीर भी दे दी। रामकृष्ण चौबे के ७ पुत्र थे, जिससे उनके मरने पर जागीर के ७ भाग हो गए। रामकृष्ण के बड़े पुत्र बलदेव प्रसाद हुए, जिन्हें पालदेव की जागीर मिली। वि० सं० १८६९ में अंगरेजों ने कालिंजर का किला ले लिया, किन्तु वि० सं० १८६९ में यह किला पुनः दरियाव सिंह को मिल गया। वि० सं० १८७४ में जागीर के ९ भाग, वि० सं० १८९६ में ७ भाग और वि० सं० १९१९ में ५ भाग किए गए। वर्तमान समय में यही भू-भाग निम्न ५ जागीरों के रूप में हैं :—

(अ) पालदेव—इस जागीर के वर्तमान शासक शिव प्रसाद सिंह रामकृष्ण चौबे के प्रथम पुत्र बलदेव प्रसाद के वंशज है। वि० सं० १८६९ में इस जागीर की सनद अंगरेजों ने चौबे दरियाव सिंह को दी थी।

(ब) पहरा—वर्तमान जागीरदार लक्ष्मीप्रसाद, रामकृष्ण चौबे के दूसरे पुत्र सालिगराम के वंशज हैं। वि० सं० १८६९ में इस जागीर की भी सनद अंगरेजों ने सालिगराम को दी थी ;।

(स) तरौन—यह जागीर गयाप्रसाद के हिस्से में आयी थी। वर्तमान जागीरदार गंगाप्रसाद चौबे रामकृष्ण के चौथे पुत्र गजाधर प्रसाद के वंश में से हैं। वि० सं० १८६९ में तरौन के किला-समेत इस जागीर की सनद अंगरेजों ने दी थी।

(द) भैसौंधा—वि० सं० १८७४ में इस जागीर का निर्माण हुआ। रामकृष्ण चौबे के लड़के का नाम नवलकिशोर था। इसका हिस्सा इसके भाई तीरथप्रसाद को मिला था। तीरथ प्रसाद के बाद नबलकिशोर के लड़के अचलजू ने जागीर पायी। वर्तमान जागीरदार ललित किशोर हैं।

(ई) कामता रजौला—रामकृष्ण चौबे के वकील राव गोपाललाल कायस्थ के वंशज इस जागीर के अधिकारी है। वि० सं० १८६९ में चौबे जागीर का एक भाग इन्हें भी मिला था। वर्तमान जागीरदार राव राजीवनन्दन प्रसाद है।

जिस समय बुन्देलखण्ड पर अंगरेजों का आधिपत्य स्थापित हुआ, उस समय बुन्देलखण्ड में छोटी-बड़ी कुल ४३ रियासतें और जागीरें थीं। अंगरेजों ने छल-बल से अनेक जागीरों और रियासतों को एक न एक बहाने से समाप्त कर दिया; जो बचीं, उन्हीं का यह संक्षिप्त परिचयात्मक इतिहास है। बेसीन की सन्धि के बाद इस भूभाग की देख-रेख वि० सं० १८६८ में पोलिटिकल एजेण्ट द्वारा की जाने लगी, जिसका प्रमुख स्थान बांदा मे था। वि० सं० १८७५ में इसका स्थान बांदा से कालपी चला गया, जो थोड़े ही दिनों में वि० सं० १८८१ में हमीरपुर परिवर्तित हो गया। वि० सं० १८८९ में कार्यालय पुनः बांदा मे आ गया। वि० सं० १८७७ में बुन्देलखण्ड कमिश्नरी का निर्माण हुआ। वि० सं० १८९२ में जालौन, हमीरपुर, बांदा के जिले पश्चिमोत्तर (उत्तर) प्रदेश में और सागर मध्य प्रदेश में मिला दिया गया, जिसकी देख-रेख आगरे से होती थी। वि० सं० १९०६ में सागर, दमोह जिलों को मिलाकर एक कमिश्नरी बना दी गई, जिसकी देख-रेख झांसी से होती थी।

कुछ दिनों के बाद कमिश्नरी का कार्यालय झांसी से नौगांव आ गया। वि० सं० १८९९-१९०० में सागर, दमोह जिलों में अंगरेजों के खिलाफ़ बहुत बड़ा आन्दोलन हुआ; किन्तु उन्होंने फूट डालने की नीति का आश्रय लेकर शीघ्र ही शान्ति स्थापित कर ली। वि० सं० १९११ में सेण्ट्रल इण्डिया एजेंसी का निर्माण हुआ, जिसकी देख-रेख के लिए एक 'एजेण्ट टु दी गवर्नर जनरल' की नियुक्ति हुई। झांसी, चन्देरी और जालौन के भू-भाग एक सुपरिण्टेण्डेण्सी में मिला दिए गए। वि० सं० १९१४ में अंगरेजों के खिलाफ भारतव्यापी आन्दोलन हुआ, जिसमे इस प्रदेश के अनेक वीरों ने भाग लिया, जिसके परिणाम-स्वरूप उन्हें अपनी जागीरों से हाथ धोना पड़ा।

नाथूराम द्विवेदी

विलयन के बाद

युग-पुरुष महात्मा गांधी के नेतृत्व मे सत्य एवं अहिंसा के बल पर देश ने २०० वर्ष की दासता से त्राण पाया था। इसी दिन नवयुग का समारम्भ हुआ था। देशी राज्यों की प्रजा में एक नवीन स्फूर्ति एवं आशा का संचार हुआ था। यों तो भारत के उस भाग में, जिसे अंग्रेजी शासक 'भारतीय भारत' कहा करते थे, देशी राज्यों के नरेशों के स्वेच्छाचारी-शासन से जर्जर प्रजा अखिल भारतीय देशी राज्य लोक-परिषद् के तत्वावधान में आन्दोलन करती आ रही थी, किन्तु सम्पूर्ण 'भारतीय भारत' के स्तर पर संगठित न होने के कारण वह घोर दमन द्वारा कुचल दी जाती थी।

जिस भूभाग को आज विन्ध्य-प्रदेश के नाम से सम्बोधित किया जाता है, वह ३६ अलग-अलग राज्यों में विभाजित था और प्रत्येक राज्य अपने ढंग की एक अलग शासन-पद्धति की ईकाई था। वे राज्य के आपसी विरोध के केन्द्र थे। प्रत्येक राज्य एक राजा के अधीन अपनी सम्पूर्ण विषमताओं का मूर्तिमान् स्वरूप था। निरंकुशता की सीमाएँ आत्म-उल्लंघन में एके दूसरे की स्पर्द्धा करती थीं। इन राज्यों में अपने समीपवर्ती अंग्रेजी क्षेत्रों में उपलब्ध न तो राजनैतिक स्वतंत्रता थी, न वैयक्तिक स्वतंत्रता। गिनती में राज्य ३६ थे; परन्तु मध्यकालीन राजनैतिक दृष्टिकोण से इनका विभाजन केवल दो खण्डों में था। सेन्ट्रल इंडिया एजेन्सी के अन्तर्गत रीवा-राज्य की सम्पूर्ण सीमा बघेलखण्ड और शेष ३५ राज्यों को मिलाकर बुन्देलखण्ड पुकारा जाता था और ये सब राज्य नौगांव-स्थित पोलिटिकल एजेन्ट की देख-रेख में थे।

देशी राज्यों का शासन राजाओं का शासन था, आज की तरह प्रजातंत्रिक नहीं। बेगार सभी राज्यों में प्रचलित था। राजस्व की वसूली का कोई नियम पालन नहीं होता था। फसल-बेफसल की वसूलियां होती थीं और वसूली मे बड़ी कठोर नीति को अपनाया जाता था। विधि-विधान देखने के लिये थे, वास्तव में राजा की इच्छा ही सब से बड़ा विधान था।

भारत के स्वतन्त्रता-संग्राम के सूत्रपात होते ही राजनैतिक जागरण का सूत्रपात विन्ध्य-प्रदेश के राज्यों मे भी प्रारंभ हुआ। रीवा में बघेलखंड कांग्रेस का जन्म हुआ। बघेलखंड कांग्रेस कमेटी कुछ दिनों मध्य प्रदेश और तत्पश्चात् उत्तर प्रदेशीय कांग्रेस कमेटी की जिला कमेटी के रूप में चलती रही। इस कांग्रेस कमेटी ने देशव्यापी आन्दोलनों में भी भाग लिया। किन्तु राज्यों के अन्दर प्रजातन्त्रीय शासनों की स्थापना के अतिरिक्त और कोई महत्वपूर्ण कार्य नही हो पाया। अन्य राज्यों में भी प्रजामण्डल स्थापित हुए। ओरछा राज्य प्रजा-मण्डल अग्रगामी रहा। सन् १९४५-४६ में प्रजामण्डलीय संगठनों ने उग्र रूप धारण किया।

स्वाधीनता-प्राप्ति के उपरांत केन्द्रीय शासन मे राज-मंत्रालय की स्थापना हुई और उन देशी राज्यों को, जिन्हें अंग्रेज शासकों ने प्रभुसत्ता सौंपकर प्रस्थान किया था, भारतीय संघ में प्रतिरक्षा बाह्यनीति एवं यातायात के विषयों में सम्मिलित होने का निमन्त्रण दिया गया। यह देशी राज्यों को भारतीय संघ के प्रशासकीय ढांचे में लाने की कार्यवाही का प्रथम चरण था। इसके उपरान्त तुरन्त ही दूसरे चरण का सूत्रपात हुआ, जिसका द्विमुखी संघटन देशी राज्यों का बड़ी प्रशासकीय इकाइयों के रूप में संगठन और जनतन्त्री-करण उद्देश्य था।

अस्तु, भारत सरकार की छोटी-छोटी रियासतों को मिलाकर बड़े राज्य-संघ बनाने का स्वर्गीय वल्लभभाई

वर्तमान विन्ध्य प्रदेश
जिला व तहसील
तहसील सेंवढ़ा
तहसील दतिया
तह. टीकमगढ़
टीकमगढ़
तह. जतारा
तह. छतरपुर
छतरपुर
तह. विजावर
तह. चंदला
तह. अजयगढ़
पन्ना
तह. पन्ना
तह. पवई
तह. रघुराज नगर
तहसील नागोद
तह. मैहर
तह. अमरपाटन
तहसील त्योंथर
तहसील सिरमौर
तहसील मऊगंज
री वा
हुजूर तहसील
सी धी
तहसील देवसर
तहसील गोपद बनास
तहसील सिंगरौली
तहसील ब्योहारी
तहसील बान्धवगढ़
तहसील सोहागपुर
तहसील पुष्पराजगढ़
संकेत
जिले की सीमा
तहसील की सीमा
KISHORE ARTS

— विलयन के पूर्व राज्य —
दतिया
समथर
बुन्देलखंड
बघेलखंड
रीवाँ
ओरछा
छतरपुर
बिजावर
पन्ना
अलीपुरा
गरौली
खनियाधाना
मैहर
नागौद
कोठी
Kishore Arts

पटेल के नेतृत्व में आन्दोलन आरम्भ हुआ। इसके अन्तर्गत बघेलखण्ड एवं बुन्देलखण्ड के निम्नलिखित राज्यों न संयुक्त राज्य विन्ध्य-प्रदेश निर्माण के संकल्प-पत्र पर राज्य-मंत्रालय के सचिव श्री वी० पी० मेनन की उपस्थिति म रीवा तथा नौगांव में मार्च १९४८ में हस्ताक्षर किये। उस समय यह 'बी' श्रेणी का राज्य था।

भाग (क)

(१) अजयगढ़ (२) बावनी (३) बरौंधा (४) बिजावर (५) छतरपुर (६) चरखारी (७) दतिया (८) मैहर (९) नागौद (१०) ओरछा (११) पन्ना (१२) रीवा (१३) समथर।

भाग (ख)

(१) अलीपुरा (२) बंका-पहाड़ी (३) बेरी (४) भैसौंध (५) बीहट (६) विजना (७) दुखई (८) गरौली (९) गौरिहार (१०) जामो (१) जिगनी (१२) कानता रजौला (१३) खनियाधाना (१४) कोठी (१५) लुगासी (१६) नौगाँव रिबई (१७) पहरा (१८) पालदेव (१९) सरीला (२०) सोहावल (२१) तरांव (२२) टोरी फतेपुर।

सर्व प्रथम इस राज्य को रीवा तथा बुन्देलखण्ड दो इकाइयों के रूप में रखा गया, जिनके राजप्रमुख रीवा के महाराजा श्री मार्तण्ड सिंह जी देव नियुक्त हुए। ४ अप्रैल १९४८ को संयुक्त राज्य विन्ध्य-प्रदेश का उद्घाटन श्री यन० वी० गोडगील द्वारा हुआ तथा रीवा के महाराजा ने राजप्रमुख पद की शपथ ग्रहण की। रीवा तथा बुन्देलखण्ड में दो मन्त्रिमण्डल बने, जो यों थे:——

रीवा——श्री कप्तान अवधेश प्रताप सिंह (प्रधान मंत्री), श्री शम्भूनाथ शुक्ल (वित्त मंत्री), श्री नर्मदा प्रसाद सिह (राजस्व एवं खाद्य मंत्री), श्री लाल यादवेन्द्र सिह (शिक्षा मंत्री), श्री सत्यदेव (लोक-निर्माण-मंत्री) तथा भैया साहब यशवंत सिंह ताला।

बुन्देलखंड——श्री कामता प्रसाद सक्सेना (प्रधान मंत्री), श्री लाला राम बाजपेयी (पुलिस मंत्री), श्री गोपाल शरण सिंह (शिक्षा-मंत्री) तथा श्री राम सहाय तिवारी (माल-मंत्री)।

यह विभाजित शासन-प्रणाली बोझिल एवं अव्यावहारिक प्रतीत हुई। अतः जुलाई १९४८ में दोनों सरकारों को संयुक्त कर एक मन्त्रि-मण्डल की स्थापना की गई, जिसके प्रधान मंत्री श्री कप्तान अवधेश प्रताप सिंह हुए। इस मंत्रि-मंडल में श्री कामता प्रसाद सक्सेना (उप प्रधान मंत्री), श्री नर्मदा प्रसाद सिंह (माल मंत्री), श्री राजा शिव बहादुर सिंह (उद्योग मंत्री), श्री चतुर्भुज पाठक (वित्त मंत्री), श्री गोपाल शरण सिंह (न्याय मंत्री) तथा श्री सत्यदेव (लोक-निर्माण-मंत्री) थे। इस मंत्रि-मंडल ने १४ अप्रैल, १९४९ को त्याग पत्र दे दिया। १५ अप्रैल, १९४९ को श्री एन० बी० बनर्जी को जो राज्य मंत्रालय की ओर से रीवा-स्थित प्रदेशीय कमिश्नर एवं संयुक्त राज्य के परामर्शदाता पद पर कार्य कर रहे थे, राज्य-शासन सौप दिया गया! १ मई, १९४९ को श्रीनाथ मेहता प्रधान मंत्री नियुक्त किये गये। इस समय श्री ब्रजेन्द्रनाथ चतुर्वेदी अतिरिक्त मंत्री तथा चीफ सेक्रेटरी नियुक्त हुए। कई कारणों से भारत सरकार इस निर्णय पर पहुंची कि विन्ध्य-प्रदेश संयुक्त राज्य के रूप में नही चल सकता। अब दो ही रास्ते थे——एक तो यह कि इसे समीपवर्ती राज्यों में मिला दिया जाय अथवा केन्द्र-प्रशासित राज्य के रूप में रखा जाय।

दिसम्बर १९४९ में विन्ध्य-प्रदेश के भूतपूर्व नरेशों एवं कांग्रेस-नेताओं को यह वस्तुस्थिति समझाई गई, जिसके फलस्वरूप उन्होंने विन्ध्य प्रदेश को केन्द्रीय सरकार को सौंप देने के प्रतिज्ञा-पत्र पर हस्ताक्षर कर दिये। इस प्रकार १ जनवरी, १९५० से विन्ध्य प्रदेश केन्द्र प्रशासित 'ग' श्रेणी का राज्य हो गया, जिसके चीफ कमिश्नर श्रीनाथ मेहता और चीफ सेक्रेटरी डी० ए० ह्वाइट हुए।

२५ जनवरी १९५० को विन्ध्य-प्रदेश की द्वीपवत् इकाइयां (दतिया जिले को छोड़कर) उत्तर प्रदेश, मध्य-भारत, और मध्य प्रदेश को हस्तांतरित कर दी गयीं। सन् १९५१ में श्री वी० के० वी० पिल्लई चीफ कमिश्नर नियुक्त होकर आये।

अन्तर्कालीन संसद् में भाग "ग" राज्यों में प्रजातंत्रीय शासन के लिये "ग" भाग के संसद्-सदस्यों ने आवाज उठाई, जिसके फलस्वरूप १९५१ में "गवर्नमेण्ट आफ पार्ट ,सी' स्टेट्स एक्ट" पास हुआ। इसके अनुसार सन् १९५२ में विन्ध्य-प्रदेश में ६० प्रतिनिधियों की निर्वाचित धारा-सभा बनी तथा २ अप्रैल सन् १९५२ को लोकप्रिय मन्त्रिमण्डल स्थापित हुआ, जिसके मुख्य-मंत्री पं० शम्भूनाथ शुक्ल जी हुए।

इस मंत्रिमंडल में श्री लालाराम बाजपयी (गृह-मंत्री), श्री महेन्द्रकुमार 'मानव' (शिक्षा मंत्री), श्री दान बहादुर सिंह (उद्योग मंत्री) तथा श्री गोपाल शरण सिंह (न्याय मंत्री) भी थे। चीफ कमिश्नर के स्थान पर श्री कस्तूरी संथानम् लेफ्टिनेण्ट गवर्नर नियुक्त हुए। इस लोक-प्रिय शासन की स्थापना के साथ विन्ध्य-प्रदेश के इतिहास का एक नया अध्याय आरम्भ हुआ। संविधान मे उदिष्ट लोक-कल्याणकारी राज्य के निर्माण हेतु प्रथम पंचवर्षीय योजना के कार्यान्वयन का भार सरकार पर पड़ा। पंचवर्षीय योजना के अन्तर्गत सर्वतोन्मुखी विकास के कार्यक्रम में सरकार को आशातीत सफलता मिली और जितना कार्य हुआ, उतना इसके पूर्व कभी भी नहीं हुआ था। विन्ध्य-प्रदेश की एक तिहाई भूमि, जिसकी वार्षिक आय लगभग ४० लाख थी, जागीरदारों एवं पवाईदारों के हाथ में थी। जागीरदारी-उन्मूलन (जिसके द्वारा सब की ·ाब जागीरें तथा पवाइयां सरकार के शासन में आईं), राज्यसेवाओं का पुनर्गठन, केन नदी के पुल का निर्माण (जिससे बुन्देलखण्ड एवं बघेलखंड का आवागमन सुगम हो गया) लोकप्रिय सरकार की सफलताओं में से अत्यन्त महत्वपूर्ण कार्य है।

विन्ध्य-प्रदेश का पृथक् इकाई के रूप में अस्तित्व ही समाप्त होने जा रहा है। १ नवम्बर, १९५६ को राज्य-पुनर्गठन-विधान के अन्तर्गत नवीन मध्य प्रदेश-रूपी नक्षत्र भारत-गगन में उदय होने को है। विन्ध्य-प्रदेश की इकाई उसी में मिलने जा रही है। यह परिवर्तन विन्ध्य-भूमि की जनता के लिए मंगलमय एवं सुखद हो, सर्वतोमुखी विकास का कार्यक्रम अबाध रूप से केवल चलता ही न रहे, वरन् तीव्रता एवं और व्यापक स्वरूप धारण करे, जिससे जनता का कल्याण हो।

गुर्गी-द्वार : रीवा

पुरातत्व-खण्ड

पार्श्वनाथ मन्दिर . खजुराहो

जयकृष्ण चौधरी
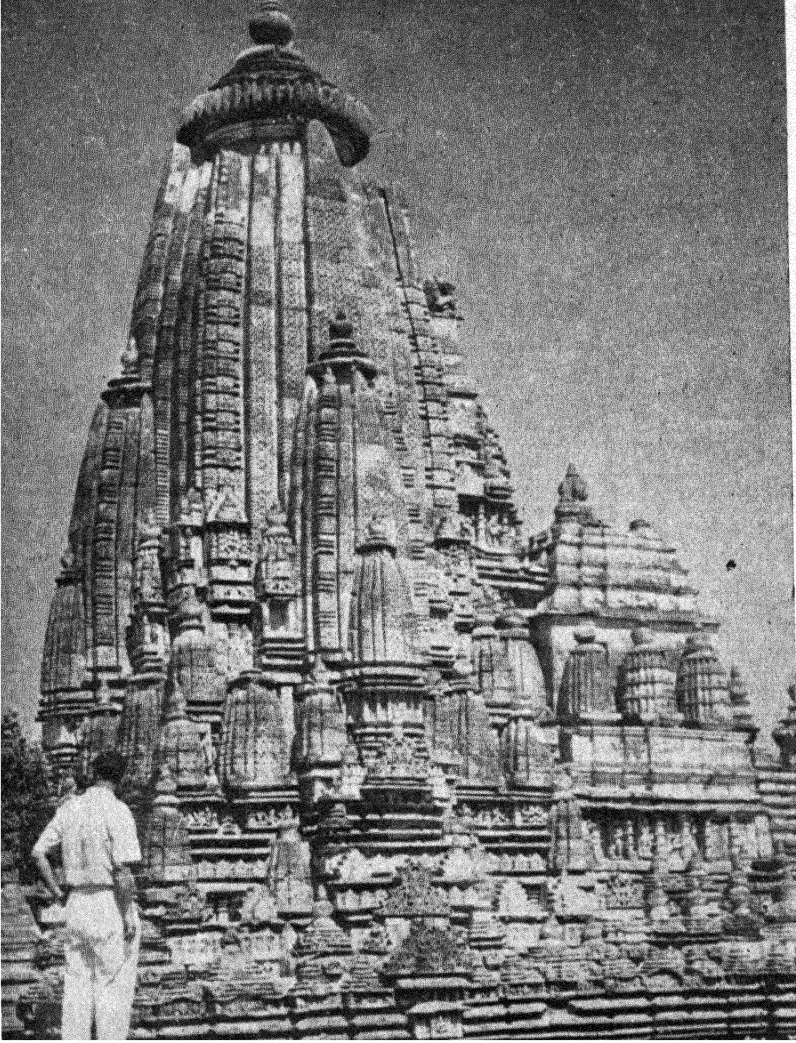
विन्ध्य-प्रदेश की पुरातत्व-परम्परा

पुरातत्व जन-जीवन का दर्पण है। जिस प्रकार वह उसके बौद्धिक विकास तथा भौतिक उन्नयन का दृश्य अभिलेख है, उसी प्रकार वह उसकी आध्यात्मिक चेतना का प्रतीक भी है। इसकी सहायता से हम अतीत का पुर्ननिर्माण कर सकते हैं और सदियों पूर्व की सामाजिक, राजनैतिक और आर्थिक स्थिति का अवलोकन कर सकते है।

इन मानो से देखने पर पता लगता है कि विन्ध्य-प्रदेश में आश्चर्यचकित कर देनेवाली पुरातत्व-परम्परा है। यह परिमाण और कोटि दोनोंमें ही समृद्ध है। समस्त राज्य महलों, किलों और छतरियों से भरा पड़ा है और ये अतीत के वैभव के प्रतीक है। वास्तव में मंदिर ही हमारी सभ्यता और संस्कृति के संक्षिप्त स्वरूप है। वे प्रतीकवाद में ढाले हुए सदियों पुरानी पौराणिकता और कल्पनाशीलता को चित्रित करते है। हमारे यहाँ केवल इतिहास के अभ्युदय काल के कुछ अमूल्य स्मारक ही नहीं है, वरन् सीधी और छतरपुर जिले में कुछ ऐसी प्रागैतिहासिक गुफायें भी है, जिनमें अप्रौढ़, किन्तु बलपूर्ण ढंग से मानव के आत्म-व्यक्तीकरण के प्रारम्भिक प्रयत्न अब भी सुरक्षित हैं। शिलाओं, ईंटों और पत्थरों के रूप में वे भारतीय इतिहास तथा सांस्कृतिक चरणों के उस काल के महत्त्वपूर्ण प्रमाण है, जिनसे होकर हमारा देश गुजरा है। उनमें से अधिकांश अभी तक विख्यात नही है और दुरूह स्थानों में है। उनमें से अधिकांश खंडहर, खंडित और जीर्ण-शीर्ण अवस्था में हैं, जब कि कुछ सुरक्षा और संरक्षण के विभिन्न स्तरों पर हैं। यह खजुराहो के मंदिरों का शानदार समूह ही था जो पांच वर्ष पूर्व राष्ट्रपति डा० राजेन्द्र प्रसाद के आगमन के साथ ही सुविख्यात हो गया और जिसने अतीत के इन मूल्यवान, किंतु उपेक्षित भग्नावशेषों की ओर प्रथम बार हमारा ध्यान केन्द्रित कर दिया। तब से राज्य सरकार इन्हें सुरक्षित रखने तथा इन्हे बाहरी दुनिया के ध्यान में लाने के लिए प्रयत्न कर रही है। अतीत की कुछ बहुमूल्य सामग्री को संग्रहीत करने हेतु नौगाँव से चार मील दूर धुबेला महल मे एक संग्रहालय स्थापित किया गया है; किन्तु यह तो एक छोटी-सी बात है। खजुराहो मे, जो देश के सर्वोत्तम भ्रमणार्थी केन्द्रों मे से एक बन रहा है, उपराज्यपाल श्री तिरुमलराव ने अभी हाल ही में एक नये संग्रहालय का शिलान्यास किया। इस पुरातत्व-सम्पत्ति का जो, कि हमने विरासत में पाई है, जिक्र करते हुए आपने इसकी सुरक्षा के लिए प्रभावोत्पादक अपील की।

अशोक-कालीन शिला-लेख

दतिया शहर से लगभग १० मील दूर गुजर्रा गाँव में अभी हाल ही में एक अत्यधिक ऐतिहासिक महत्व के अतीत-कालीन लेख पर प्रकाश पड़ा है। यह ईसा से २५८ वर्ष पूर्व का मौर्य्य सम्राट् अशोक का शिलालेख है। वहां उसका अस्तित्व यह सिद्ध करता है कि वर्तमान गुजर्रा गाँव मौर्य्य-काल के एक समृद्धशील प्रशासनिक केन्द्र के आसपास था। भारत सरकार के शिलालेख विशेषज्ञ डा० डी० सी० सरकार के कथनानुसार यह शिलालेख अत्यधिक महत्वपूर्ण है; क्योंकि इसका विषय एक सुप्रसिद्ध शिलाभिलेख है, जिसके ११ भाषाओं के अनुवाद देश के विभिन्न भागों में मिलते हैं। यह बहुत-से अशोक-कालीन शिलालेखों में से पाये जानेवाले उन दो शिलालेखों में से है, जो सम्राट् के व्यक्तिगत नाम अशोक का उल्लेख करते हैं, न कि उसकी लोकप्रिय उपाधियों 'देवानाम् प्रिय' और 'प्रियदर्शी' का, जो कि दूसरे अभिलेखों में पाई जाती हैं। इसके अतिरिक्त भी गुजर्रा वाले शिलालेख में कुछ ऐसी बातें हैं, जो दूसरी जगह नहीं

मिलती है। इसमें राजकीय घोषणा का अत्यधिक स्पष्ट खुदाईवाला संक्षित वर्णन है। इसमें अशोक ने यह घोषणा की है कि उसके एक वर्ष के हार्दिक धर्मप्रचार ने उसके उपनिवेशों मे पवित्र व्यक्तियों की संख्या बढ़ा दी है।

भरहुत

दूसरी चीज सतना जिलान्तर्गत भरहुत है, जो बौद्ध-धर्म और अशोक के धर्म-प्रचार-संबंधी उत्साह से संबंधित है। ऐसा प्रतीत होता है यह स्थान बौद्ध धार्मिक स्थानों को जानेवाली सड़क पर स्थित था और तीर्थयात्रियो द्वारा विश्रामस्थल के रूप मे उपयोग किया जाता रहा। ईसा से २५० वर्ष पूर्व अशोक ने वहाँ ईंटों का एक स्तूप निर्मित कराया। तोरण और छज्जे यहां शुगों के शासन-काल में (ईसा से १८४–७४ वर्ष पूर्व) लगाये गये, जैसा कि तोरण पर अंकित अभिलेख से विदित ही है। यह साँची के स्तूप की भाँति है, यद्यपि उससे कुछ छोटा है। अब तो भरहुत खंडहर के रूप में है और यहाँ प्राचीन स्तूप का कोई अस्तित्व शेष नही बचा है। छज्जे के भग्नावशेष कलकत्ता-स्थित भारतीय संग्रहालय में सुरक्षित रखे हैं। यह अत्यधिक दिलचस्पी की चीज है; क्योंकि यह न केवल जातकों में वर्णित बुद्ध के जीवन की कथाओं को चित्रित करती है, वरन् वह तत्कालीन सामाजिक जीवन का एक विहंगम चित्र भी प्रस्तुत करती है।

गुप्तकालीन स्मारक

चौथी शताब्दी मे गुप्त-साम्राज्य के उदय के साथ-साथ भारत में महानतम बौद्धिक जागृति का युग आया और इसके परिणामस्वरूप कला, पुरातत्व तथा साहित्य के क्षेत्र मे अमर कृतियों का उद्भव हुआ। स्थापत्य-कला में पत्थर ने ईंट और लकड़ी का स्थान ले लिया। इस प्रकार के चपटे छतवाले और छोटे स्थापत्य के प्रारम्भिक उदाहरणों के रूप मे हमारे राज्य में भूमरा (सतना जिला) स्थित शिव-मंदिर और नचना (पन्ना जिला) स्थित पार्वती-मंदिर विद्यमान है। इन दोनों का निर्माण सम्भवत: ५०० ई० मे हुआ था और अब ये खंडहरों के रूप में है। इनके दरवाजों पर गुप्तकाल के विचित्र कलायुक्त तोरण उत्कीर्ण हे और इनमें से कुछ अजंता के नमूने के तथा वैसे ही सुन्दर है।

कलचुरी-स्मारक

गुप्त शासकों के पतन के पश्चात् हैहय और कलचुरी-वंश का क्रमिक अभ्युदय हुआ। वे बघेलखंड के वर्तमान क्षेत्र (जिसमें सतना व पन्ना जिलों का अधिकांश भाग सम्मिलित है) में फैल गये और उन्होंने कालिञ्ज़र पर अधिकार कर लिया। नवीं शताब्दी के बाद से इस क्षेत्र और देहलस (वर्तमान जबलपुर जिला) के आसपास के क्षेत्र पर दो-तीन शताब्दियों तक इनका आधिपत्य रहा। इनके राज्यान्तर्गत समस्त क्षेत्र में, जो 'चेदि साम्राज्य' के नाम से विख्यात है, अत्यधिक महत्वपूर्ण स्मारक और ध्वंसावशेष पाये जाते है। रीवा जिले में कलचुरियों के अत्यधिक महत्वपूर्ण भग्नावशेष रीवा से १२ मील पूर्व की ओर स्थित गुर्गी में तथा २९ मील दक्षिण की ओर स्थित चंद्रेह में पाये जाते हैं। देवतालाब में भी ऐसे ही खंडहर हैं। जिला शहडोल में सोहागपुर-स्थित विराटेश्वर का मंदिर और अमरकंटक के अन्य प्राचीन मंदिर उस साम्राज्य की महानता के द्योतक है, जिसका वीजारोपण कलचुरियों ने किया था।

गुर्गी के भग्नावशेषों मे विभिन्न मंदिरों के खंडहर, एक बड़ा कृत्रिम डीहा, जिसे गुरगाज कहते हैं, मसाऊ ग्राम के निकट का एक वर्तुलाकार मंदिर और तालाबों के किनारों पर बने कई मंदिर सम्मिलित है। यह स्थान अब बिल्कुल खंडहर हो गया है। समस्त मूर्तियां रीवा, गुढ़ या दूसरे गांवों को हटा दी गई है। अंत में इनमें से कुछ राजकीय संग्रहालय में रखी गई हैं और इस प्रकार भावी क्षति तथा विनाश से बच गई है। शिव और पार्वती की एक वृहदाकार मूर्ति रीवा-स्थित पद्मधर पार्क मे रखी है और विशाल जन-समुदाय का ध्यान अपनी ओर आकर्षित करती है; लेकिन सर्वाधिक महत्वपूर्ण भग्नावशेष जो गुर्गी से हटाया गया है, वह एक तोरणद्वार है, जो रीवा के महाराज के महल के द्वार पर लगा है। इसके ऊपरी भाग में देवताओं का जुलूस हिमांचल के घर शिव और पार्वती की शादी मे जाता हुआ तथा दूल्हा-दुलहिन (नन्दी बैल की पीठ पर सवार) शिव जी के घर लौटते दिखाये गये है।

चंद्रेह के खंडहरों में शिव का एक मंदिर और ९४७ ई० में निर्मित एक मठ सम्मिलित हैं, जो कि मत्तमयूर वंश के एक शैव तपस्वी प्रबोध शिव के शिलालेख से प्रमाणित है। यह भी अब ध्वस्त दशा में है।

मोहागपुर-स्थित विराटेश्वर मंदिर और अमरकंटक-स्थित कर्णमंदिर उस स्थापत्य-कला के प्रस्तावना स्वरूप
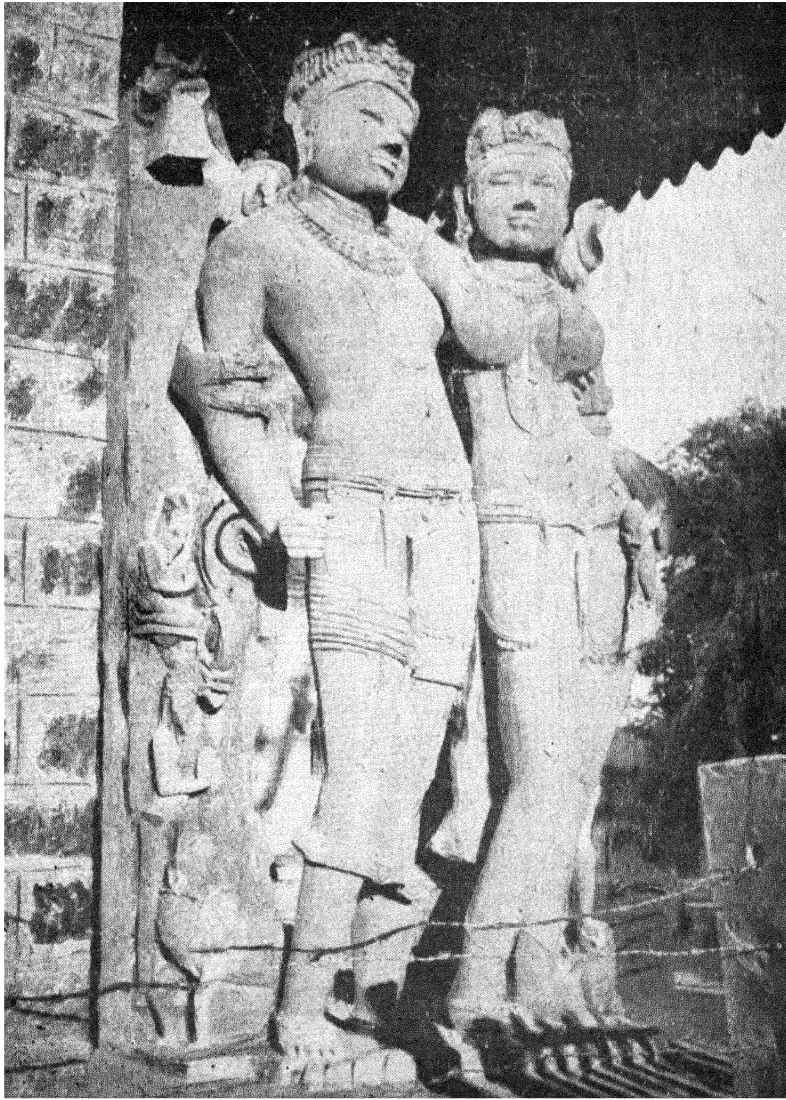
हर-गौरी की मूर्ति : रीवा

विष्णु : चतुर्भुज मन्दिर (खजुराहो)

है, जिसने खजुराहो के मंदिरों(विशेष कर जैन मंदिर)की पूर्णता और भव्यता को चोटी पर पहुंचा दिया। विराटेश्वर मंदिर का तोरणद्वार मूर्तिकला की सूक्ष्मता और विपुलता के लिये प्रसिद्ध है। एक किनारे पर मंदिर की नींव में दरार हो गई है और मंदिर विचित्र तिरछी हालत में खड़ा है। इसकी बुरी तरह उपेक्षा हुई है और जल्दी ही हम इसे खो देंगे। इस मंदिर की और आसपास के मंदिरों की अमूल्य मूर्तियां अब ठाकुर साहब सोहागपुर की गढ़ी की दीवालों को सुरक्षित करती हैं और सारी गढ़ी 'एक विचित्र प्रकार का संग्रहालय'-सी बन गई है। यहां पाई गई मूर्तियां जैन और वैष्णव दोनों ही धर्मों से सम्बन्धित हैं और तीन प्रकार की हैं। इनमें से कुछ मूर्ति-कला के शानदार प्रतीक हैं और इनके गहन अध्ययन की आवश्यकता है।

अमरकंटक के पुराने मंदिरों की भी उपेक्षा हो रही है; क्योंकि नये मंदिरों और मूर्तियों को ही यात्रीगण अधिक पूज रहे हैं। चंद्रेह, गुजर्रा और दूसरे स्थानों से मिले हुए शिलालेख कलचुरी-साम्राज्य के विषय में ऐतिहासिक सूचना देते हैं। यह बताते हैं कि बघेलखंड शैव मत का गढ़ रहा है और वास्तव में राजाओं ने शैव मत को प्रोत्साहित किया है।

खजुराहो

खजुराहो के लगभग ३० मंदिर हमारी शानदार तथा बहुमूल्य पुरातत्व-परम्परा के प्रतीक हैं। इनके विषय में कहा गया है कि यह "इन्डो-आर्यन शैली में भारतीय स्थापत्य के सुन्दरतम और स्वच्छतम स्पष्टीकरण हैं।" ये लगभग एक वर्गमील के क्षेत्र में फैले हैं और ऐसा लगता है, जैसे एक कृत्रिम झील के चारो ओर इनके बनाने की आयोजना की गई हो। ९५० ईस्वी से १०५० ईस्वी तक लगभग एक शताब्दी के दरम्यान ये बनाये गये थे। यह वह समय था, जब मोटे तौर से वर्तमान बुन्देलखंड क्षेत्र पर चन्देलवंश का आधिपत्य था और खजुराहो उनकी राजधानी थी। चंदेलों का राजत्वकाल मंदिर बनवाने के अतिरिक्त बड़े-बड़े किले, जलाशय और जनहित की दूसरी चीजें बनवाने के लिये भी विख्यात है। खजुराहो के मंदिर केवल भारतीय शिल्पकला और कौशल के ही द्योतक नहीं हैं, वरन् वे उत्कृष्ट धार्मिक सहिष्णुता के दोषरहित प्रमाण भी हैं। शैव, वैष्णव और जैन इन तीन मतों का प्रतिनिधित्व करनेवाले इन मंदिरों का एक ही स्थान पर एकत्रीकरण यद्यपि तत्कालीन सुन्दरतम दृश्य है, किंतु बहुत कुछ असाधारण भी है।

मंदिरों को तीन भागों में बांटा जा सकता है। पश्चिमी भाग, जिसमें शैव और वैष्णव मंदिर हैं, उत्तरी भाग, जिसमें वैष्णव मंदिर हैं और दक्षिण-पूर्वी भाग, जिसमें केवल जैन मंदिर ही हैं। पश्चिमी भाग का सर्वोत्तम उदाहरण कन्दरिया महादेव का मंदिर है। उत्तरी भाग का वृहत् मंदिर भगवान विष्णु के वामन अवतार से सम्बतन्धी है, जब कि घंटई और जिननाथ के मंदिर दक्षिण-पूर्वी भाग के विचित्र मंदिर हैं।

बीसियों कलाकार, चित्रकार और लेखक, जो इस विषय पर लिखने में अधिक समर्थ हैं, दीवालो, तोरण और छतों की मूर्तियों तथा खुदाई का सूक्ष्मतम और विस्तृत लेखा अपनी कृतियों में दे रहे हैं। देश और विदेश के हज़ारों भ्रमणार्थियों ने इस स्थान को देखा है और अतीत के जिन कलाकारों ने पाषाणों की यह बोलती हुई सजीव प्रतिमायें गढ़ी हैं, उनकी पूर्णता, यथार्थता और सौन्दर्य पर आश्चर्य किया है। डा० गोइट्स ने लिखा है—'खजुराहो के मन्दिरों में जानवरों, मानवों, देवताओं, दैत्यों और अन्य प्राणियों की दुनियां की सम्पूर्ण सतह पर ललित कलाओं और प्रतीकवाद के सम्पूर्ण याचनों-सहित विश्व का एक प्रतीक दर्पण छाया हुआ है। पुरुष देवता संसार के स्वामी हैं, उत्पादक-सिद्धान्त का प्रतिनिधित्व करते हैं। देवियां, जो विशिष्ट महिलायें हैं, शक्ति के सृजनकारक सिद्धान्त की अवतार हैं। वे मानव आदर्शवाद के प्रतिनिधि होते हुए भी विश्व के मूल सिद्धान्तों की भौतिक शक्तियों के प्रतीक हैं।

बुन्देल शिल्पकला

खजुराहो के बाद पश्चिम की ओर ओरछा का छोटा-सा नगर, जो कि बेतवा नदी के किनारे १५३१ ई० में बुन्देल-सामंत रुद्रप्रताप द्वारा बसाया गया था, सर्वाधिक आकर्षण का केन्द्र है। वीरसिंहदेव के राजत्वकाल (१६०५–१६२७) में ओरछा अपने गौरव की चोटी पर पहुंच गया था। वीरसिंह देव जहांगीर के मित्र थे और उन्होंने जहांगीर के इशारे पर अबुलफजल को दक्षिण से अकबर के दरबार को लौटते समय मार डाला था। उन्होंने ओरछा में शानदार भव्य भवन बनवाये। इन मन्दिरों में मुगल स्थापत्य का भारतीय शैली पर प्रभाव,

स्पष्ट है। वेतवा में एक द्वीप पर वीरसिंह देव ने एक और बड़ा महल बनवाया, जहाँ एक रपटा पर होकर जाना होता है। राजमंदिर और जहांगीर महल (जो सम्राट् जहांगीर के आगमन से सम्बन्धित हैं) सरीखे भवन इससे सम्बद्ध हैं। जहांगीर महल अपनी मज़बूती और दुर्लभ सजावट के मिश्रण के लिये विख्यात है और इसी कारण हिन्दू परिवारिक शिल्प के रूप में इसका नाम अमर हो गया है। यहां के भवनों में दूसरे भवन हैं फूलबाग और हरदौल की समाधि––हरदौल जो लोकगीतों और लोक-कथाओं में विख्यात हैं और जिन्होंने अपनी भाभी से अपना निर्मल स्नेह सिद्ध करने हेतु प्रसन्नतापूर्वक विष-मिला भोजन कर लिया था।

इन धर्म-निरपेक्ष भवनों के अतिरिक्त ओरछा में कुछ शानदार मंदिर भी हैं; जैसे चतुर्भुज मंदिर, रामचंद्र मंदिर और हरिसिद्धि देवी का मंदिर।

वीरसिंह देव और ओरछा के स्थापत्य का प्रभाव दतिया में एक पहाड़ी पर बने हुए महल पर स्पष्ट दृष्टिगोचर होता है। इसका बगीचा एक तालाब की तरफ है। भारत में यह पुराना महल गृह-शिल्प का एक अद्वितीय नमूना माना जाता है।

दतिया शहर के कुछ दूर पर ऊंची और ढलुवां सोनागिरि की पहाड़ी पर लगभग १०० जैन मंदिर है। ये तुलनात्मक दृष्टि से बहुत अर्वाचीन हैं और इनमें वह शान नहीं है, जो पुराने धार्मिक भवनों में है।

वासुदेव उपाध्याय

विन्ध्य-प्रदेश की महत्वपूर्ण प्रशस्तियां

प्राचीन समय में वर्तमान विंध्य-प्रदेश का भूभाग दो भौगोलिक भागों में बंटा था, जिस पर विभिन्न वंशों का अधिकार रहा। पश्चिमी भाग बुन्देलखण्ड के नाम से प्रसिद्ध था, जहाँ पूर्व मध्य-युग में चन्देल-शासक राज्य करते थे। पूर्वी भाग यानी बघेलखण्ड अधिक समय तक हैहय राज्य के अधीन था, जिनका केन्द्र मध्य प्रदेश में जबलपुर के समीप माना गया है। वहीं से चेदि राजा बघेलखण्ड पर शासन करते रहे। बारहवीं सदी में चन्देल राजा परिमर्दि के पश्चात् रीवा का भाग बुन्देलखण्ड मे सम्मिलित कर लिया गया। रीवा से प्राप्त लेखों के अध्ययन से यह सब प्रमाणित हो जाता है तथा राजा मदनवर्मन के पनवर से प्राप्त सिक्कों का ढेर चन्देल-आधिपत्य को पुष्ट करता है। जैसा कहा गया है कि विंध्य-प्रदेश पर दो विभिन्न वंशों का राज्य था, अतएव प्राप्त प्रशस्तियों में उन राज्यों की कीर्ति तथा यश का गुणगान पाया जाता है । हैहय तथा चन्देल के उत्कीर्ण लेखों में वंशावली के अतिरिक्त हमें सामाजिक, आर्थिक तथा धार्मिक बातों की चर्चा मिलती है। प्रशस्तियों के साधारण विवरण उपस्थित करते समय उन विषयों की गहराई में जाना अप्रासंगिक होगा।

पूर्व मध्य-युग की प्रशस्तियों में अधिकतर दान का वर्णन पाया जाता है और उससे सम्बन्धित अन्य बातें भी उल्लिखित मिलती हैं। यदि उनका अध्ययन किया जाय, तो निम्न बातों का पता लग जाता है। प्रथम स्थान पर दानकर्त्ता के (राजा के) वंश का विवरण उपस्थित किया जाता है, ताकि इसके द्वारा लोगों को दान देने वाले शासक के पूर्व का इतिहास मालूम पड़ जाय। तात्पर्य यह है कि राजा के पूर्वजों की कीर्ति तथा दानकर्त्ता के विशिष्ट कार्य व शासन का वृत्तांत इन लेखों से मिल जाता है। उस स्थान पर राजनीतिक कारणों से विभिन्न बातों की चर्चा नहीं की जाती; किन्तु दान लेनेवाले को यह बतलाना परमावश्यक है कि अमुक वंश का राजा दान दे रहा है। उसी प्रसंग में दानग्राही के वंश का भी परिचय प्राप्त हो जाता है। ब्राह्मण की योग्यता, गोत्र तथा वैदिक शाखा पर लोगों का ध्यान रहता था। कारण यह था कि प्राचीन समय में योग्य विद्वान् को ही दान देने की परिपाटी थी। अतः उनकी योग्यता का वर्णन तो नितान्त आवश्यक समझा जाता। दूसरी बात दान का विवरण है, जिसमें दान में दी गई भूमि की सीमा तथा स्थिति की चर्चा की जाती थी। माप में कितनी भूमि थी, किस प्रकार का कर (टैक्स) उस पर लगाया गया था तथा दानग्राही को उन सब को भोग करने का अधिकार मिल जाता था आदि बातों का उल्लेख सदा दानपत्रों में पाया जाता है। इससे भी दान के अवसर को प्रधानता दी जाती थी। दान देने के विशिष्ट अवसर का चुनाव राजा को करना पड़ता था। कभी शासक विजेता होकर दान देता, तो कभी तीर्थयात्री के रूप में ब्राह्मणों को अग्रहार भूमि दिया करता था। इन बातों के अध्ययन से यह निष्कर्ष निकलता है कि दानपत्रों से सम्बन्धित विषय हमारे सामाजिक बातों पर प्रकाश डालते हैं। ब्राह्मणों की शाखा की चर्चा कर यह स्पष्ट कर दिया जाता है कि वेद तथा वेदांग का अध्ययन होता था। कुछ सामाजिक अवसर थे, जिस समय दान देना श्रेयस्कर समझा जाता था। राजा व्यक्ति को छोड़कर संस्थाओं को भी दान देता था, जिससे यह पता चल जाता है कि अमुक धर्म के अनुयायी शासक के प्रियपात्र थे । अथवा

बन बैठे। इस तरह मठ तथा मठाधीश का नया रूप समाज में आया। वही मठ की प्रणाली आज भी हिन्दू-समाज में वर्तमान है। अतएव यह कहा जा सकता है कि रीवा प्रदेश की प्रशस्तियां शैव शिष्य तथा गुरु-परम्परा का ज्ञान कराती हैं। मत्तमयूर शैव साधुओं का हाल इन्हीं लेखों से मिलता है।

बुन्देलखण्ड के चन्देल-राजाओं के लेख जो विंध्य-प्रदेश में मिले हैं, उनके अध्ययन से धार्मिक सहिष्णुता की भावना प्रकट होती है। खजुराहो से उस वंश के कई एक लेख प्राप्त हुए हैं, जिससे सामाजिक तथा धार्मिक बातों पर प्रकाश पड़ता है। अधिकतर ये लेख वैष्णव मत से सम्बन्धित हैं, जिनका आरम्भ द्वादशाक्षर मंत्र "ओम् नमो भगवते वासु-देवाय" से होता है। उनकी मुद्रा पर लक्ष्मी की आकृति बनी है, जो विष्णु की भार्या है और इससे यह वैष्णव लेख माना जा सकता है। छत्तरपुर के समीप गुर्र की प्रशस्ति में लक्ष्मी की मुद्रा तथा द्वादशाक्षर मंत्र पाये जाते हैं। उस प्रशास्ति को परिमर्दि के पादानुय्यात परम भट्टारक महाराजाधिराज परमेश्वर त्रैलोक्यवर्मन् ने खुदवाया था। इसमें वर्णन मिलता है कि ककडाड़ह के युद्ध में एक क्षत्रिय की मृत्यु हो गई। इस युद्ध में क्षत्रिय लोगों ने मुसलमानी आक्रमण का मुकाबिला किया था। चूकि तुरुष्क (मुसलमान) के साथ युद्ध करते राउत की मृत्यु हुई थी, इसलिये सरकार ने मृत व्यक्ति के परिवार के पोषण के लिये गुजारा दिया था। उस गुजारे की भूमि को "मृत्युक वृत्ति" कहा गया है। अतएव इससे तत्कालीन सरकार के सुशासन का परिज्ञान हो जाता है। वर्तमान समय में सैनिक के परिवार के पेंशन की तरह ही वह वृत्ति रही होगी। पूर्व मध्य-युग में मुसलमानों ने आक्रमण आरम्भ कर दिया था तथा वे बुन्देलखण्ड तक पहुंच गये थे। इस प्रशस्ति के आधार पर रीवा प्रदेश को को त्रैलोक्यवर्मन् के अधीन होना साबित होता है। त्रैलोक्य-वर्मन् को विष्णु से उपमा दी गई है, जिसने पृथ्वी को सागर में डूबने से बचाया था। सागर की समता पु रुष्क से इस कारण की गई है कि विंध्य-प्रदेश को मुसलमानी आक्रमण से राजा ने बचाया था। इस कारण विष्णु की प्रधानता इस लेख से ज्ञात हो जाती है। रीवा-दरबार में दो ऐसे ही लेख सुरक्षित थे, जिनमें त्रिदेवों (ब्रह्मा, विष्णु तथा शिव) की प्रार्थना की गई है। वे दोनों लेख सन् १२४० ई० के समीप जारी किये गये थे। खजुराहो में यों तो कन्दरिया महादेव का मन्दिर प्रमुख स्थान रखता है, तो भी चौसठ योगिनी का मंदिर, देवी जगदम्बा, भरत जी मंदिर, पार्वती मंदिर, बराह मंदिर तथा वामन मंदिर की स्थिति लोगों की भावना को व्यक्त करती है। यही नहीं, आदिनाथ तथा पार्श्वनाथ का जैन मंदिर यह घोषित करता है कि वहां लोगों में धार्मिक सहिष्णुता का विचार काम कर रहा था। खजुराहों के कुछ लेखों में विष्णु के अवतारों का वर्णन है, तो दूसरे में वह स्थान भगवान शिव का निवास-स्थान कहा गया है। एक लेख के वर्णन से पता चलता है कि राजा धंग ने महादेव का मंदिर तैयार किया था और बहुत-सा द्रव्य, अन्न तथा गायें दान में दी थीं। खजुराहों में जैन लेख भी मिले हैं, जिनमें जैन मंदिरों को दान देने का उल्लेख पाया जाता है। इस तरह देखने से प्रकट होता है कि प्रशस्तियों के उल्लेख अन्य प्रमाणों से पुष्ट हो जाते हैं। चन्देलों के लेख यह बतलाते हैं कि अधिकतर शासक वैष्णव थे, पर शैव मतानुयायी भी रहे। उनमें कट्टरपंथी की भावना न थी। रीवा प्रदेश में भी चन्देलों की वही नीति काम में लाई गई। कहने का तात्पर्य यह है कि विंध्य-प्रदेश की प्रशस्तियों के सहारे प्राचीन समाज तथा धार्मिक बातों का परिज्ञान हो जाता है। इस प्रदेश के निवासी ब्राह्मण धर्म के अनुयायी थे ; शासक वर्ग को अन्य विरोधी मत से द्वेष न था ; उनमें धार्मिक सहिष्णुता थी। अत्यन्त प्राचीन काल में भी सतना के समीप भरहुत बौद्ध-केन्द्र प्रसिद्ध था। गुप्त-युग से यहां सम्भवतः ब्राह्मण धर्म का प्रसार हुआ, जो बारहवीं सदी तक प्रचलित रहा। विन्ध्य-प्रदेश के लोग विष्णु तथा शिव के उपासक थे। यदि इस प्रदेश की प्रशस्तियों का विस्तृत अध्ययन किया जाय तो, अनेक सामाजिक बातों पर प्रकाश पड़ेगा।

बालमुकुन्द भारतीय

खजुराहो की कला

खजुराहो के मंदिर मध्यकालीन भारतीय कला का सर्वोत्तम प्रतिनिधित्व करते हैं। उनकी कला-पद्धति एक विशिष्ट प्रकार की है, जो अन्यत्र दुर्लभ है। आकार-प्रकार की सुन्दरता तथा अलंकरण की गहनता और विविधता में ये मंदिर अपना सानी नहीं रखते। वहाँ शिल्पियों ने 'शिल्पित-काव्य' की रचना की है। अपनी छेनी से पत्थर में प्राण डाल दिये हैं—जीवन और प्रकृति के विभिन्न पक्षों का सजीव चित्रण किया है। उनमें कल्पना की सूक्ष्मता, वृत्ति, वैभव और विश्लेषण परम्परागत होते हुए भी नवीन हैं। इस दृष्टि से खजुराहो की कला अपनी समकालीन भुवनेश्वर, गुर्गी और हलेविद की कला से कहीं अधिक मौलिक और ऊंची है। यहाँ के मंदिरों में अजंता-जैसा चमत्कार और एलौरा-जैसी विशालता नहीं, किन्तु उनकी कला सौन्दर्य की अभिव्यक्ति की ओर सूक्ष्मता से उन्मुख है।

इन मन्दिरों का निर्माण चन्देलों के राजत्व-काल मे दसवीं और ग्यारहवीं शताब्दी में हुआ। चन्देल-शासक अपने निर्माण एवं लोक-कल्याणकारी कार्यों के लिए प्रख्यात है। प्रायः सभी शासकों ने कला और साहित्य को प्रोत्साहन दिया। खजुराहो के मंदिरों में सबसे अधिक हाथ यशोवर्मन्-धंगदेव, विद्याधर और सल्लक्षणवर्मन देव का है। चौसठ जोगिनी तथा ब्रह्माजी के मंदिर को छोड़कर, सभी मंदिर केन नदी से लाये गये पत्थरों से बने हैं। अवशिष्ट मंदिरो में मातंगेश्वर मंदिर के अतिरिक्त किसी भी मंदिर में पूजा-अर्चना नहीं होती। ये मंदिर शिव, विष्णु, शक्ति और जैन तीर्थंकरों की उपासना में बने है, पर उनके स्थापत्य में विशेष अन्तर नही है।

साधारणतया सभी मंदिर आयताकार नागर-शैली पर बने हैं। प्राचीन स्तूपों की भाँति प्रत्येक मंदिर ऊँचे मंच पर बना है; किन्तु वह प्राकार से नहीं घिरा है। मंदिर की योजना वर्गाकार है। पूर्व से पश्चिम वाली भुजा लम्बी है। प्रत्येक मंदिर के तीन प्रमुख अंग हैं—गर्भगृह, मंडप और अर्धमंडप। गर्भगृह और मंडप के बीच अन्तराल है। पूर्ण विकसित मंदिरों में महामंडप और प्रदक्षिणापथ भी हैं। उड़ीसा के मंदिरों के विपरीत, यहाँ के मंदिरों के विभिन्न अंग अभिन्न हैं। वे पृथक्-पृथक् अंगों के समूह नहीं, वरन् एक संश्लिष्ट इकाई प्रतीत होते हैं।

प्रत्येक मंदिर मोटे रूप से तीन भागों में विभक्त है। इनमें प्रथम भाग अधिष्ठान है। इसमे अनेक प्रति-निर्गम है, जो ऊपर जाकर शिखर में शृंग बन गये हैं। अधिष्ठान अनेक प्रकार के थरों, गोलों, गलतों, शोभापट्टों तथा रथिकाओं से युक्त है। इसके ऊपर मड़ोवर है। इसमें छज्जायुक्त खिड़कियाँ और शेष भाग में गोले तथा गलते हैं। ये खिड़कियाँ बहुत ही आकर्षक हैं। उनका स्थान भारतीय स्थापत्य में अत्यन्त महत्वपूर्ण है। शिल्प की दो-तीन पंक्तियों और उनके बीच शोभापट्टों से मड़ोवर की शोभा द्विगुणित हो गई है। अंतिम भाग शिखर है। प्रायः प्रत्येक अंग पर स्वतंत्र शिखर है। शिखर के ऊपर आमलक, उसके ऊपर स्तूपिका और सबसे ऊपर कलश है। विभिन्न अंगों के शिखरों की उँचाई क्रमिक है—अर्धमंडप का शिर सबसे नीचा और गर्भगृह का शिखर सब से ऊँचा है। प्रत्येक मंदिर में अधिष्ठान से लेकर शिखर तक उच्चता पर जोर दिया गया है। मंदिर के फैलाव और उसकी उँचाई में एक संतुलन है, जो केवल कुछ शिल्पों द्वारा भंग हुआ है। ये शिल्प-चित्र बहुत ही सजीव और देवतायन के चारों ओर है।

उड़ीसा के मंदिरों की तुलना में खजुराहो के शिखर रचना में अपेक्षाकृत गोलाकार हैं। उनकी बनावट अधिक

शाल-भंजिका : लक्ष्मण मंदिर (खजुराहो)

दर्पण-विभ्रम : खजुराहो

प्रभावशाली है। मूलमंजरी अर्थात् मुख्य शिखर के विभिन्न भागों पर उरुश्रृंग बने हैं, जिनमें अद्वितीय कुशलता है। उरुश्रृंगों के दो या तीन पर्तों से शिखर पर्वत-श्रृंग जैसा शोभित होता है। सम्पूर्ण शिखर पर सुन्दर तिरछी रेखाएँ हैं। इन रेखाओं और मूलमंजरी के उरुश्रृंगों से मंदिर में एक विशेष आकर्षण आ गया है।

मंदिरों के अन्तर्भाग की रचना विशुद्ध रूप से पूजा-अर्चना क आवश्यकतानुसार की गई है। प्रायः सभी धार्मिक भवनों का निर्माण इसी आधार पर हुआ है। मन्दिर के भीतर गर्भगृह में बहुत कम स्थान है। वहाँ प्रकाश भी मन्द रहता है और आध्यात्मिक वातावरण के निर्माण में सहयोग देता है। मंदिर के भीतर प्रवेश करने के लिए अर्धमंडप के सामने पूर्व की ओर मुख्य द्वार है, जहाँ सोपान-मार्ग द्वारा पहुँचते हे। साधारणतया प्रवेश-द्वार पर मकर अथवा गज-शुड की आकृति का तोरण है । यह गहन रूप से अलंकृत है। अर्धमंडप के पार्श्व भाग खुले हैं और उसकी छत स्तम्भों पर आधारित है। इसके चारों ओर छज्जा है। इसके बाद मंडप हैं। मंडप के बीच में चार स्तम्भ हैं, जो शहतीरों द्वारा छत को सम्भाले हैं । चन्द्रशिला पर होकर अन्तराल में प्रवेश करते हैं । तत्पश्चात् गर्भगृह का द्वार है, जो अलंकृत तोरण से युक्त है। जिन मंदिरों में प्रदक्षिणा-पथ और महा-मंडप हैं, उनमें थोड़ी भिन्नता है। प्रकाश के लिए गर्गगृह और बाहरी भित्तियों में छज्जायुक्त खिड़कियाँ है। गर्भगृह में मुख्य उपास्य-मूर्ति प्रतिष्ठित रहती है।

खजुराहो के कलाकारों ने आन्तरिक अलंकरण के लिए भित्तियों और कोनों के अतिरिक्त स्तम्भों, शहतीरों तथा छतों का भी आश्रय लिया है। स्तम्भों के नीचे के भाग तो सादा हैं, किन्तु ऊपरी भाग गहनता से अलंकृत है। अलंकरण के लिए बेल-बूटों, लता-वितानों, अप्सराओं अथवा शाल-भंजिकाओं, गणों आदि को प्रयुक्त किया गया है। कोनों में झंपा व्याल हैं, जिनमें सुन्दर मूर्तियाँ है। छतें भी विभिन्न भूमितिपरक आकृतियों से अलंकृत हैं। उनकी रचना बहुत ही मौलिक तथा कलात्मक है।

कुछ मंदिर पंचायतन शैली पर बने हें। ऐसे मंदिरों मे मंच के ऊपर मुख्य देवतायन के अतिरिक्त चारों कोनों पर सहायक देवतायन बने होते हैं। कन्दरिया मंदिर इसी प्रकार है। उसके सहायक देवतायन नष्ट हो चुके हैं। कुछ मंदिरों में मंडप के सम्मुख देव-वाहन के लिए गर्भगृह भी बने हैं।

आर्यशैली के इन सर्वश्रेष्ठ मंदिरों के प्रतीक वैदिक काल के साधारण स्मारकों में निरूपित दार्शनिक मन्तव्य के ही विस्तृत रूप है। मंदिर कल्पित सांसारिक मेरु-पर्वत का ही छोटा वास्तु-रूप है। इसी प्रकार आमलक, जो कमल अथवा फूटती किरणोंवाले सूर्य की आकृति का बना है, पुरुष द्वारा आध्यात्मिक क्षेत्र में प्राप्ति की सर्वोच्च चोटी का प्रतीक है, जहाँ से स्वर्ग पहुँचा जा सकता है। कलश इस संसार-पर्वत की चोटी का सब से ऊपरी भाग है। मंदिर के प्रत्येक अंग में उच्चता पर जोर दिया गया है। वह आराधक को देव से एकाकार होने के लिए अद्भुत केन्द्र की ओर ऊँचा उठाता है। मंदिर में शिल्पी अलंकरणों में भी भौतिक जीवन के सभी पहलुओं और पुरुष द्वारा इच्छित उद्देश्य की प्राप्ति के लिये किये गए प्रयास दर्शित है। मिथुनों के विभिन्न अभिप्रायों का भी यही गूढ़ अर्थ है। वे आत्मा और परमात्मा की एकता प्रतिरूपित करते है। यह उस एकता का पुनर्निर्माण है, जो मनुष्य प्रकृति से पृथक् होकर नष्ट कर चुका है।

बाहर से देखने में खजुराहो के मंदिर अपनी भव्यता से दर्शक को मोह लेते हैं, चाहे वह इन शिल्प-आकृतियों के गूढ़ अर्थ को समझें या न समझें। ये मंदिर अधिक विशाल नहीं हैं, किन्तु उनकी अनुरूपता, रूप की रुचिरता और गहन अलंकरण का' व्यापक एवं गहरा प्रभाव पड़ता है। मंदिर की ओर देखने पर दृष्टि अपने-आप नीचे से ऊपर तक और अंत में अर्धमंडप से होकर गर्भगृह की ओर दौड़ जाती है।

वास्तु-कला के इन अप्रतिम उदाहरणोंके शिल्प की महानता को स्पष्ट करने के लिए कुछ अधिक कहना आवश्यक है। मंदिरों के चारों ओर बाह्य तथा अन्तर्भित्तियों पर और कोनों में शिल्प-पट्टिकाओं में रथों तथा सलिलान्तरों को एक के बाद एक के क्रम से प्रमुख देवी-देवताओं की मूर्तियों के अतिरिक्त अष्टदिक्पाल, अप्सराएं, सुर-सुन्दरियां, मिथुन, विद्याधर, नाग, शार्दूल आदि अंकित है। उपास्य देवी-देवताओं की मूर्तियां आलों में हैं और उनकी आकृतियों में गंभीरता तथा सौम्य है। आलों के पार्श्व में सुर-सुन्दरियों की मूर्तियां जुड़ी हैं। नीचे के भागों में नृत्य-गीतों के अर्ध-शिल्प हैं और ऊपरी भागों में विद्याधर के मिथुन हें। अन्त-र्भाव में अप्सराओं अथवा शालभंजिकाओं को अंकित करने वाले मोड़ महान् शिल्प-कृतियां हैं। उनमें अप्सराएं अपनी

विभिन्न कामुक मुद्राओं में और कुछ में गणों को नीचे दबाये बहुत ही आकर्षक ढंग से चित्रित हैं। कन्दरिया मंदिर में एक मिथुन, जिसमें दो धड़ और तीन टांगें हैं तथा एक दूसरी मूर्ति, जिसमें मल्ल-युद्ध का दृश्य है, चकित कर देनेवाली कला के नमूने हैं। फूलों के अलंकरण की विविधता के लिए वामन मंदिर की शोभा-पट्टियां विशेष उल्लेखनीय हैं। यहां अप्सराओं की आकृतियां भी बहुत आकर्षक हैं। उनके सुडौल-पतले शरीर मन को लुभा देते हैं। उनके अंग-प्रत्यंग की लचक, उभार, हाव-भाव, भाव-भंगिमा और चेष्टाओं को प्रत्यक्ष करने में शिल्पकार ने कमाल कर दिया है। इन मंदिरों की कल्पना की समृद्धि को समझाने के लिए इतना कहना पर्याप्त है कि अकेले कन्दरिया मंदिर में लगभग ८७२ मूर्तियाँ है।

खजुराहो की कला देश के पराभव-दिनों की है, फिर भी महान् है। उसमें सामाजिक जीवन के माध्यम से युग के दार्शनिक विचारों, धार्मिक मन्तव्य और प्रयोजनों तथा सांस्कृतिक कल्पनाओं की सफल और सुन्दर अभिव्यक्ति हुई है। खजुराहो जैसा-मँजाव और गतिशील सौन्दर्य अन्यत्र दुर्लभ है। वहाँ के प्रत्येक मंदिर की प्रत्येक मूर्ति अपने में पूर्ण है, और अपनी निजी विशेषता लिये है। प्रत्येक मूर्ति में इतनी सजीवता है कि वह गतिमान हो गई है। नृत्य-संबंधी मुद्राओं को देखने से ऐसा प्रतीत होता है, मानो पाषाण-प्रतिमाएँ वास्तव में नृत्य कर रही हैं। इन प्रतिमाओं को चाहे जितनी बार देखा जाय, मन नहीं भरता। प्रत्येक बार देखने से एक नवीनता मिलती है। प्रत्येक मूर्ति कुछ कहती-सी जान पड़ती है और प्रत्येक बार नया सन्देश देती है। दर्शक को लुभाने के साथ-साथ प्रत्येक मूर्ति मंदिर की उत्तरोत्तर उँचाई में अपना योग देती है। दर्शक वहाँ जाकर उलझ जाता है। अपने को भटकने से बचाने के लिए यह आवश्यक है कि प्रत्येक शिल्प-कृति का पूरा अध्ययन किया जाय और तभी आगे बढ़ा जाय।

वासुदेव गोस्वामी

वीरसिंहदेव और उनके लोक-निर्माण कार्य

प्रस्तुत निबन्ध मे जिन वीरसिहदेव से अभिप्राय है, वे बुन्देलखण्ड के विदेह भक्त महाराजा मधुकरशाह के पुत्र थे । वृद्धावस्था मे वैराग्य भाव की प्रबलता के कारण महाराजा मधुकरशाह ने वैशाख शुक्ल ३ संवत् १६५० को अपने ज्येष्ठ पुत्र रामशाह को ओरछा के सिंहासन पर आसीन किया । रामशाह के अतिरिक्त मधुकरशाह के सात अन्य पुत्र थे––वीरसिंहदेव, होरलदेव, इन्द्रजीत, हरसिहदेव, प्रताप राव, रणधीरसिंह, रतनसिह । रतनसिह ने १५ वर्ष की अवस्था में ही मुगल-सेना से युद्ध करते हुए वीरगति प्राप्त की । उस युद्ध के वर्णन में महाकवि केशवदास ने रतन-बावनी की रचना की थी । मधुकरशाह ने रामशाह को गद्दी पर बैठाया और अपने अन्य पुत्रों को भी जागीरें दी । इनमें से वीरसिहदेव को बड़ौनी की जागीर मिली । उनकी इस जागीर मे मूलतः १७ गांव थे, किन्तु वीरसिहदेव एक वीर और उत्कर्षाकांक्षी पुरुष थे । उन्होंने शीघ्र ही अपने आसपास के क्षेत्रो पर अधिकार करना प्रारम्भ कर दिया । पवायाँ, तोमरगढ़, बेरछा, करहरा, हथनौरा, भाडेर एवं एरछ पर अपना अधिकार जमा लिया । नरवर, केलारस आदि इनके पराक्रम की धाक मानते थे। ग्वालियर का सूबा भी खतरे से खाली नही था ।

अपने राज्य की सीमा का इन्हें इस प्रकार विस्तार करते हुए देखकर मुगल सम्राट् अकबर ने रामशाह को आदेश दिया कि वे अपने भाई को नियंत्रण में रखें; किन्तु रामशाह के वश की यह बात थी नही । अतः मुगल सम्राट् ने उनकी सहायता के लिए अपनी सेना भेजी । वीरसिंहदेव ने इस संगठित सेना से खुलकर युद्ध करना उस समय उचित नही समझा । इसलिए वे मुगल-सेना पर छापे मारकर उसे परेशान करने लगे । जब यह सूचना सम्राट् अकबर को मिली, तब वि० स० १६५१ मे उसने अबुलफजल के साथ एक बडी सेना वीरसिहदेव के विरुद्ध भेजी । मुगल-सेना न पवायां में पड़ाव किया । इस सेना में ओरछा-नरेश रामशाह भी थे । उन्होने उस विशाल मुगल-सेना की शक्ति को देखकर आत्मीयता के वशीभूत होकर वीरसिहदेव से यह कहलाया कि उनके बड़ौनी छोड़ जाने में इस समय उनका हित है । परन्तु वीरसिहदेव ने यह सलाह न मानी । जब मुगल-सेना ने बड़ौनी पर घेरा डाला तब यह उससे बचकर निकल गये और शाही सेना पर आक्रमण करने लगे । अन्त में अबुलफजल को परेशान होकर वीरसिहदेव को मुगल सम्राट् अकबर के दरबार में सम्मान दिलाने का वादा कर युद्ध को बन्द कर देना पड़ा । वह वीरसिहदेव को मनसब दिलवाकर शाही सेना के साथ दक्षिण की ओर ले गया और इधर बड़ौनी पर शाही अधिकार भी जमा लिया । जब वीरसिहदेव को इस चाल का पता चला, तब वे बड़े दुखी हुए ।

यद्यपि इनकी वीरता के फलस्वरूप दक्षिण में जीते गये दो ग्रामों को इन्हे ही जागीर के रूप में दिये जाने का वादा कर दिया गया था, फिर भी ये बड़ौनी पर इस प्रकार धोखे से किसी का अधिकार कर लेना स्वीकार नहीं कर सकते थे । बहाना करके यह दक्षिण से बड़ौनी लौट आये । इनके यहां पहुंचते ही बड़ौनी पर अधिकार करनेवाले शाही सैनिक भाग गये और बिना युद्ध किये ही इन्हें बड़ौनी पूर्ववत प्राप्त हो गई । मुगल-सेनापति अब्दुल्ला खां ने वीरसिंहदेव के भतीजे एवं रामशाह के पुत्र संग्राम शाह को बड़ौनी की जागीर देने का वादा करते हुए राजसिंह के नेतृत्व में शाही सेना को सहायता देकर बड़ौनी पर आक्रमण कराया । वीरसिहदेव ने डटकर उसका सामना

किया और राजसिंह को हरा दिया। वह जान बचाकर ग्वालियर में जा छिपा।

मुगल-सम्राट् से टक्कर लेते-लेते वीरसिंह भी कुछ परेशान हो गये थे; अतः उन्होंने सम्राट् के ज्येष्ठ पुत्र सलीम से मित्रता करने का विचार किया; क्योंकि सलीम और अकबर में मनोमालिन्य था। सलीम का ख्याल था कि उसके विरुद्ध उसके पिता अकबर को भड़काने में अबुलफजल का विशेष हाथ है, अतः वह चाहता था कि किसी प्रकार अबुल फजल को मार डाला जाय। शाही संरक्षण में रहनेवाले तथा सम्राट् के परम कृपा-पात्र उस मंत्री को मारने का ैसला रखनेवाला व्यक्ति भी तो चाहिये था। जब वीर-सिंहदेव सलीम से प्रयाग में मिले, तब सलीम ने इनसे अपनी इच्छा व्यक्त की। वीरसिंहदेव ने अबुलफजल को मारने का बीड़ा उठाया।

इधर अकबर ने दक्षिण से अबुलफजल को वापस बुलाया। उसके लौटने का मार्ग वीरसिंहदेव की जागीर के समीप से पड़ता था। जब वह सेना-समेत वहां से गुजरा, तो उसने आन्तरी के पास रात्रि में विश्राम किया। दूसरे दिन प्रातःकाल फौज कूच करने के लिए तैयार हो रही थी कि यकायक वीरसिंहदेव ने अपने चुने हुए सिपाहियों को साथ लेकर उसे आ घेरा। घमामान युद्ध हुआ। भाले के प्रहार से अबुलफजल गिर पड़ा। महाराज ने उसका मस्तक अपनी गोद में रखकर कपड़े से शेख का मुह पोंछा। घायल ने आंखें खोली। वीरसिंहदेव ने अभिवादन कर उससे सलीम के पास चलने के लिए कहा। इस पर शेख क्रुद्ध हो उठा। तभी एक बुन्देला सैनिक ने अबुलफजल का सर काट लिया। शाही सेना में भगदड़ मच गई। १२ अगस्त सन् १६०२ ई० की यह घटना है। सर को लेकर वीरसिंहदेव अपनी जागीर बड़ौनीं को चले गये। वहा से चंपतराय के द्वारा उन्होंने वह सर सलीम के पास प्रयाग भेज दिया। इसे देख कर सलीम बहुत प्रसन्न हुआ। उसने चंपतराय की बिदा बड़े सम्मान के साथ की और वीरसिंहदेव के प्रति अपनी कृतज्ञता प्रकट करने के हेतु चँवर, छत्र, डंका, निशान एवं रत्न-जटित तलवार पुरस्कार के रूप में भेजकर उनका राजतिलक कराने की आज्ञा दी। बड़ौनी में वीरसिंहदेव का राजतिलक हुआ।

अबुलफजल की इस प्रकार मृत्यु का समाचार पाकर अकबर क्रोध से आग बबूला हो गया। उसने वीरसिंहदेव को पकड़ लाने के लिए सेना भेजी। आसपास के राजा-रईसों को भी वीरसिंह देव को पकड़ लाने के लिए फरमान भेजे गये। शाही फौज तथा अन्य राजा लोग अपनी-अपनी सेना लेकर आन्तरी पर एकत्र हुए। वे बड़ौनी पर घेरा डालने की योजना बनाने लगे। वीरसिंहदेव ने भी मोर्चा लेने के लिए सलीम से सलाह मांगी। किन्तु सलीम ने युद्ध करने की राय नहीं दी और कह दिया कि वे बड़ौनी छोड़कर दतिया चले जायँ वहाँ अवसर देखकर वह उनसे भेंट कर लेगा, तब आगे की समस्त योजना बनाई जायेगी। वीरसिंहदेव ने ऐसा ही किया। शाही सेना को भी इनके दतिया में होने का पता चल गया। इससे जब उसने यहां इनका पीछा किया, तब यह एरछ चले गये। यहां भी वह फौज इनका पीछा करती हुई आई। वीरसिंहदेव को यहां शाही सेना ने घेर लिया। उनके छोटे भाई हरसिंहदेव ने मुगल-सेना से मोर्चा लिया। वीरसिंहदेव उस घेरे से निकलकर दूनी नामक ग्राम में होते हुए दतिया पुनः वापस आ गये। शाहजादा सलीम ने दतिया में वीरसिंहदेव से भेंट करने की सूचना पहले ही दे रखी थी। वह दतिया में वीरसिंहदेव से मिला और वहां से आगरा चला गया।

जब वीरसिंहदेव का कोई पता न चला, तब शाही सेना भी वापस हो गई। वीरसिंहदेव फिर प्रकट हो गये और इन्होंने उन सब स्थानों से मुगल सिपाहियों को मार भगाया, जिन पर उन्होंने इस बीच अधिकार किया था।

अकबर ने अपने पुत्र सलीम से कहलवाया कि वह वीर-सिंहदेव का साथ छोड़ दे। किन्तु इससे कोई सार न निकला। फलतः बाप-बेटों का मनोमालिन्य और अधिक बढ गया। बादशाह ने वीरसिंहदेव को पकड़ने के प्रयत्न जारी रखे। इस कार्य में वह जीवनपर्यन्त असफल रहा। मुगल-सेना को वीरसिंहदेव ने युद्ध में हरा दिया। इस प्रकार वीरसिंह-देव के जीवन का यह भाग कि कट संघर्ष में बीता।

वि० सं० १६६२ में अकबर की मृत्यु के उपरान्त सलीम भारत का सम्राट् हुआ। उसने जहांगीर की उपाधि धारण की। राजसिंहासन पर बैठते ही उसने वीरसिंहदेव को आम-न्त्रित किया। यह आगरे पहुंचे। जहांगीर ने इनका बड़ा सम्मान किया और इन्हें समस्त बुन्देलखण्ड का राज्य देकर विदा किया। जैसा कि ऊपर प्रकट किया जा चुका है,

उन दिनों बुन्देलखण्ड की राजधानी ओरछा थी। राजसिंहासन पर इनके बड़े भाई रामशाह थे। उन्हें भी इनसे युद्ध करना पड़ा। अब मुगल-सेना भी इनकी सहायता में थी। ओरछा के राजसिंहासन पर यह आसीन हुए और समस्त बुन्देलखंड के शासन की बागडोर संभाली जहांगीर ने रामशाह को चंदेरी-बानपुर का राज्य दिया।

वीरसिंहदेव जैसे वीर थे, वैसे ही सुयोग्य शासक भी। उन्होंने राज्य की अव्यवस्था को दूर किया। उनके न्याय और दया के कथानकों से बुन्देलखंड का लोक-साहित्य भरा हुआ है। न्याय की रक्षा के लिए उन्होंने अपने पुत्र को मृत्यु का दण्ड देकर एक अपूर्व आदर्श उपस्थित किया था। लोक-कल्याण की भावना उनके हृदय मे पूर्ण रूप से विकसित थी। उनके बनवाए हुए विशाल भवन, मन्दिर, तालाब, बुन्देलखण्ड, ब्रजभूमि एवं अन्य स्थानों मे वर्तमान है। कहा जाता है कि उन्होंने माघ सुदी ५ संवत् १६७५ विक्रमी के शुभ मुहूर्त में ५२ इमारतों का शिलान्यास कराया था। इनमें से कितनी ही कृतियां पुरातत्व की दृष्टि से लोक-निर्माण के गौरवमय उदाहरण है। विभिन्न सूत्रों के आधार पर उक्त ५२ नीवों का संक्षिप्त परिचय यहां उपस्थित किया जा रहा है—

(१) मथुरा में इन्होने केशवदेव का मन्दिर बनवाया। इसे मुगल-सम्राट् औरंगजेब की धर्मान्धता का शिकार होना पड़ा। संवत् १७२६ में उसने उस मन्दिर को तुड़वा डाला। इस मन्दिर के निर्माण में ३३ लाख रुपया व्यय हुआ था। अब उस मन्दिर की केवल चौकी वर्तमान है और उस पर बनी हुई है एक मस्जिद।

(२) दतिया का नृसिंहदेव महल नौ खण्डों का एक अत्यन्त विशाल भवन है। यह स्वस्तिक के आकार को आधार लेकर विन्ध्याचल के एक पहाड़ी पर निर्मित हुआ है। दतिया में आजकल यह पुराने महल अथवा ओल्ड पैलेस के नाम से भी प्रसिद्ध है। मआसिरुलउमरा में वीरसिंहदेव के परिचय में लिखा है कि दतिया का राजमहल इन्ही का बनवाया है, जिसके चारो ओर ३४ फुट ऊंची दीवार दी गई है। इसके बनने में लगभग ९ वर्ष लगे थे और ३५ लाख से अधिक रुपये व्यय हुए थे। अनुमानतः वीरसिंहदेव न उस स्थान पर यह महल बनवाया होगा, जहां पर प्रथम बार अपने राज्य में उसने शाहजादा सलीम से दतिया में भेंट की होगी।

(३) ओरछा का जहांगीर महल बहुत कुछ दतिया के पुराने महल से मिलता-जुलता है। कहा जाता है कि यहां जहांगीर ने वीरसिंहदेव का आतिथ्य स्वीकार किया था। उन्हीं के नाम पर इस भवन का नामकरण हुआ।

(४) ओरछा का प्रसिद्ध फूलबाग भी इन्ही के द्वारा निर्मित हुआ कहा जाता है।

(५) सन् १८५७ के गदर मे जिस दुर्ग से झांसी मे महारानी लक्ष्मीबाई ने अंगरेजों पर गोले बरसाए थे, वह किला वीरसिंहदेव ने ही बनवाया था।

(६) दतिया से दरयावपुर होते हुए भांडेर जानेवाले मार्ग पर इन्होंने एक बावडी बनवाई, जो 'चंदेवा की बावरी' के नाम से प्रसिद्ध है। यह स्थान दतिया से ५-६ मील की दूरी पर एक निर्जन बन मे है। इस विशाल बावड़ी के चारो ओर भूमि के नीचे विस्तृत दालानें बनी है।

(७) मिरौल की बावरी, (८) धूम शिवालय, तथा (९) रामगढ की माता जैसे स्थान भी इन ५२ नीवो में गिने जाते है। रामगढ़ की माता का स्थान दतिया से भांडेर की ओर २ मील की दूरी पर है। यहां एक प्राचीन शिलालेख भी है। क्रान्तिकारी नेता चन्द्रशेखर आजाद ने यहा ६ मास तक अज्ञात वास किया था। वीरसिंहदेव ने (१०) मड़िया में वीरसागर, (११) कुडार में सिंह सागर, और (१२) दिनारे मे देवसागर नामक तीन विशाल तालाबों को बनवाया। (१३) धामोंनी का किला, (१४) ओरछा मे राय चतुर्भुजजी का मन्दिर, (१५) काशी में मणिकर्णिका घाट तथा (१६) विश्वेश्वर मन्दिर भी इसी समुदाय में हें।

इनकी बावन नींवों में के अधिकांश निर्माण ब्रजभूमि मे हुए है। वृन्दावन में (१७) हरिराम व्यास जी की समाधि, (१८) कालीदह घाट, (१९) इमला घाट, (२०) ऊँची हवेली, (२१) महाप्रभु का स्थान, (२२) बुन्देला बाग, जो बाद मे फुटल्ला बाग के नाम से जाना जाता रहा, इन्ही के द्वारा निर्मित कराये गये थे। (२३) व्यास दास जी के नाम पर एक सुन्दर बगीची, जो जमुना में बह चुकी है, तथा (२४) चतुरदासजी की बगीची, जिसको जमुना जी ने पूर्ण रूप से प्रवाहित कर दिया है, इन्होंने बनवाई थी। (२५)

वेंन कूप सन्तों में प्रसिद्ध था। (२६) बनखण्डी महादेव व्यासघेरा नामक मुहल्ला में वृन्दावन में विराजमान है। श्री राधावल्लभजी के मन्दिर के समीप एक गली इन्होंने बनवाई थी, जिसका नाम (२७) वीरसिंहदेव गली था। टकसार गली में स्थित (२८) बड़ी बाखर इन्ही की बनवाई बताई जाती है। सेठ दिवाले के पास (२९) इन्होंने ब्रह्मकुण्ड बनवाया। मथुरा में (३०) विश्रान्त घाट, (३१) कोसी में शेषशायी भगवान का मन्दिर, (३२) बरसाने में श्री लाडिलीजी का मन्दिर, (३३) कोकिला-बन में कुण्ड, (३४) बट संकेत, (३५) बरसाने का कुण्ड, (३६) बिमला देवी का मन्दिर, (३७) बच्छ बन मे श्री बिहारीजी का मन्दिर, (३८) गोकुल में गोप कूप, (३९) यमलार्जुन का मन्दिर, (४०) नारद कुण्ड कुसुम सरोवर के पास, (४१) कल्लोल कुण्ड गोबर्धन, (४२) कुण्ड जतीपुरा, (४३) गुलाल कुण्ड गाठौली, (४४) चौरासी खंभा काम बन, (४५) गोविन्द कुण्ड अनोर, (४६) गोबिन्द जी का मन्दिर अनोर, (४७) मदन मोहन जी का मन्दिर महाबन, (४८) अक्रूर घाट पर देवालय, (४९) दाऊजी का मन्दिर हंसगंज।

नर्मदा-तट पर इनके द्वारा कुछ गढ़ों के निर्मित किये जाने की सूचना तो उपलब्ध होती है, किन्तु उनका निश्चित पता अभी नहीं चल सका है। उक्त सूची में ४९ शिला-न्यासों की सूचना संकलित होने के कारण (५०-५२) तीन गढ़ नर्मदा-तट पर उक्त ५२ नींवों में होने का अनुमान किया जा सकता है।

वीरसिंहदेव ने जितनी भी इमारतों का निर्माण कराया था, वे सभी आज वीरान पड़ी हुई हैं। यद्यपि वास्तु-कला एवं निर्माण-शैली के आधार पर उनको हजारों लोग देखने पहुँचते है, किन्तु उन भवनों ने आज तक किसी को आवास-प्रश्रय नहीं दिया। कहा जाता है कि जब ये इमारतें बन-वाई गई थी, तभी एक अन्य ज्योतिषी ने भविष्यवाणी की कि ये इमारतें यद्यपि देश की प्रसिद्ध इमारतें होंगी, किन्तु इनमे कोई भी रह न सकेगा।

वीरसिहदेव ने संवत् १६७१ में ब्रज-यात्रा की थी। वहां वे अपना तुला-दान कर नौ मन सोना दान करना चाहते थे। अपना यह संकल्प उन्होंने अपने नौ पुत्रो को लिख भेजा और उस प्रस्तावित तुलादान के लिए उन्हें सोना भेजने के लिये लिखा। उस पत्र का अभिप्राय सभी पुत्रों ने नौ-नौ मन सोना भेजने का समझा, तदनुसार नौ मन के स्थान पर जब ८१ मन सोना एकत्र हो गया, तब वीरसिहदेव ने मथुरा के विश्रान्त घाट पर इस निमित्त आये हुए समस्त ८१ मन स्वर्ण का तुला-दान किया। उस घाट पर तुला-स्थान बना हुआ है और मथुरा के पंडा यात्रियों को विश्रान्त घाट पर उक्त कथा सुनाकर महाराज वीरसिहदेव की दान-वीरता की कीर्ति का नित प्रति वर्णन करते है। इन्ही युद्ध-वीर, धर्मवीर, दानवीर एवं कर्मवीर श्री वीरसिहदेव की स्मृति में, जो बुन्देलखण्ड के लोक-मानस मे वीर नृसिहदेव के नाम से प्रसिद्ध है, उनके वंशधर ओरछा-नरेश वीरसिंहदेव द्वितीय ने, जिनका देहावसान ७ अक्तूबर १९५६ को हो गया, हिन्दी साहित्य की अभिवृद्धि के हेतु देव-पुरस्कार की योजना बनवाकर साकार रूप दिया। हिन्दी साहित्य के प्रथम आचार्य कवीन्द्र केशव के आश्रय-दाता का यह उचित स्मारक बना। विन्ध्य सरकार ने उसे जारी रखा, जो आज हिन्दी का सब से बड़ा पुरस्कार है।

डा० पट्टाभि सीतारमैया : खजुराहो में

आत्मानन्द मिश्र

विन्ध्य-प्रदेश के ऐतिहासिक मन्दिर

विन्ध्य की धरती को प्रकृति का वरदन तो मिला ही है, साथ ही इस प्रदेश के अंचल में भारतीय संस्कृति के अनेक प्राचीनतम ऐतिहासिक मन्दिर और कला-केन्द्र स्थित हैं, जहां आज भी प्राचीन भारतीय कला के अवशेष युग-युग की समृद्धि की गाथा गाते हैं। यहां के खण्डहरों व ध्वंसावशेषों की एक-एक ईंट अपनी मूक भाषा में बीती कहानी सुना रही है। किसी प्रदेश के सम्पूर्ण ऐतिहासिक तथ्यों का क्रम यदि कही प्राप्त हो सकता है, तो वह विन्ध्य की वसुन्धरा है, जहां प्रत्येक युग ने अपनी छाप छोड़ी है। यहां की न जाने कितनी ऐतिहासिक मूर्तियां विदेशों के बडे-बड़े संग्रहालयों मे पहुंचकर भारतीय शिल्प एवं स्थापत्य-कला का परिचय दे रही है।

विन्ध्य-प्रदेश के कमनीय कलेवर में बहुत-से ऐतिहासिक और धार्मिक महत्व के मन्दिर बिखरे पड़े हैं, जिसका संक्षिप्त परिचय इस प्रकार है।

खजुराहो

कला-वैभव की यह नगरी छतरपुर से २७ मील व बमीठा से ७ मील की दूरी पर बसी हुई है। छतरपुर-पन्ना-मार्ग पर बमीठा थाने से एक छोटी सड़क खजुराहो की ओर जाती है। खजुराहो के मन्दिर मध्यकालीन स्थापत्य-कला के सबसे उत्कृष्ट उदाहरण हैं। खजुराहो के प्राचीन मन्दिरों का निर्माण चन्देलों के समय में दसवी-ग्यारहवीं शताब्दी में हुआ था। जैन-मन्दिर-समूह इसके कुछ बाद का है। चौसठ जोगिनी का मन्दिर सबसे प्राचीन है। खजुराहो में कुल मिलाकर ८५ मन्दिरों का निर्माण हुआ था, जिनमें अब केवल २५ ही रह गये है। खजुराहों मे वैष्णव, शैव, जैन तथा बौद्ध मन्दिरों का संगम है। भारतवर्ष में शायद ही कोई ऐसा तीर्थ हो, जहां सभी धर्म समान रूप से फले-फूले हों, लेकिन खजुराहो की यह अपनी विशेषता है। वर्तमान मन्दिरो में कन्दरिया महादेव का मन्दिर सब से बडा है। शेष मन्दिरो मे विश्वनाथ, मातंगेश्वर, चतुर्भुज, दूलहदेव, लक्ष्मणेश्वर सूर्य, वाराह मंदिर, जगदम्बा मन्दिर, पार्श्वनाथ, शान्तिनाथ मन्दिर महत्वपूर्ण हैं। यहां के मन्दिरों में उत्सवों, लोक-नृत्यों का और शृंगार करती हुई अप्सराओं, अतिथि-सेवा, भगवद्भक्ति आदि के जो उत्कृष्ट नमूने मिलते है, अन्यत्र दुर्लभ है। शताब्दियां गुजर गईं, लेकिन उन कलाकारो की कृतियां आज भी बोलती-सी हैं। एक-एक प्रस्तर-प्रतिमा के सामने खडे हो जाइये और तूलिका या छेनी से प्रसूत साकार सौन्दर्य के माध्यम से उस कलाकार का सान्निध्य अनुभव कीजिये।

अमरकण्टक

प्रदेश के दक्षिण मे अमरकंटक के विशाल मन्दिर हैं। यहा प्राकृतिक सौन्दर्य बिखरा पडा है। अमरकटक नर्मदा, सोन और जुहिला नदियों का उद्गम-स्थल है। कपिलधारा एवं दुग्धधारा प्रपात सोनमूडा, माई की बगिया, नर्मदाकुण्ड कबीर चौरा एवं कलचुरिकालीन ऐतिहासिक मन्दिरों की स्थापत्य-कला अमरकण्टक के आकर्षण के केन्द्र बने हुए हैं। ये मन्दिर दसवी ग्यारहवी शताब्दी में कलचुरि-शासक कर्णदेव द्वारा बनवाये गये थे। यहा के कुछ पुराने मन्दिर उससे भी पूर्व के हैं। नर्मदा के आदि स्रोत कुण्ड के पार्श्व में जो पातालेश्वर मन्दिर है, वह शिल्प में खजुराहो के समकक्ष है। अमरकंटक के ऐतिहासिक मन्दिरो मे कर्णीश्वर, केशवनारायण मन्दिर तथा मछेन्द्रनाथ के मन्दिर हैं। विन्ध्य सरकार अमरकंटक को एक भव्य नगर बनाने की दिशा मे प्रयत्नशील है। शिवरात्रि को यहां प्रख्यात मेला लगता है।

ओरछा

प्राकृतिक सौन्दर्य के बाहुल्य के बीच स्थित बुंदेला-इतिहास के अत्याकर्षक पृष्ठ ओरछा के ऐतिहासिक मन्दिरों को

अमरता प्राप्त है। टीकमगढ़ जिले में बेत्रवती के किनारे ओरछा का अतीत अपने वैभव की कहानी कह रहा है। ओरछा के मन्दिरों में चतुर्भुज का मन्दिर, राममन्दिर तथा लक्ष्मीनारायण का मन्दिर बुंदेला-स्थापत्य-कला के जीते-जागते स्मारक है।

चतुर्भुज मन्दिर का निर्माण १७वीं शताब्दी में ओरछा-नरेश श्री वीरसिंहदेव ने कराया था। यह ठीक पश्चिम में है। स्थापत्य-कला की दृष्टि से यह मन्दिर एक विशेष महत्व का है। इस बुन्देला-स्थापत्य-कला में वातायन और गुम्बद नागर-शैली में नई कड़ी के योग है। यह अन्य मन्दिरों से ऊंचा है।

राममन्दिर में भगवान राम की मूर्ति है। इसे महाराज मधुकरशाह की रानी गणेशकुवरि अयोध्या से लाई थी। यह पहले सुन्दर महल था, जिसे महाराज भारतीचन्द ने बनवाया था और जो रानी गणेशकुवरि का निवास-स्थान था। इसका विस्तार व्यापक है। रामनवमी को यहां विशाल मेला लगता है।

लक्ष्मीनारायण का मन्दिर ओरछा में उत्तर-पश्चिमी कोने में है। इसका भी निर्माण महाराज वीरसिंहदेव द्वारा कराया गया था। मन्दिर में प्रवेश करते ही चित्रकारी प्रारंभ हो जाती है। इसके अन्दर १८वीं १९वीं शताब्दी के सुन्दर भित्ति-चित्र अंकित हैं। इसमें हिन्दू देवी-देवताओं के सुन्दर तथा स्पष्ट चित्र बने है। बाहर से देखने पर यह मन्दिर त्रिकोण दिखाई देता है, जब कि वास्तव में है चतुष्कोण। शिल्प-कला की दृष्टि से लक्ष्मीनारायण का मन्दिर विशेष महत्वपूर्ण है।

पन्ना

महाराज छत्रसाल की हीरों की नगरी पन्ना अपने ऐतिहासिक मन्दिरों के लिये प्रसिद्ध है। पन्ना के ऐतिहासिक मन्दिरों में स्वामी प्राणनाथ एवं जुगुल किशोर जी के मन्दिर महत्व के है। प्राणनाथ के मन्दिर का निर्माण विक्रमी सम्वत् १७८४ के लगभग हुआ था। स्वामी प्राणनाथ महाराज छत्र-साल के धर्मोपदेशक थे। उन्ही के लिये इस मन्दिर का निर्माण कराया गया था। स्वामी प्राणनाथ ने प्रणामी सम्प्रदाय का प्रवर्तन किया, जिसके माननेवाले भारत में कई लाख व्यक्ति है। मंदिर के मध्य में स्वामी जी का समाधि-स्थल है। स्थापत्य-कला के अतिरिक्त चित्रकारी के उत्कृष्ट नमूने यहां विद्यमान है। पन्ना-नगरी प्रणामी सम्प्रदाय के अनुयायियों के लिये एक पवित्र और पुनीत तीर्थ-स्थली है। जुगुल किशोर जी के मन्दिर में राधाकृष्ण की मूर्तियां है। इन मन्दिरों की नक्काशी और सजावट देखते ही बनती है। पुरातन और मध्यकालीन वास्तु-कला के मन्दिरों के गगनचुम्बी कलशों की शिखरें अत्यन्त शोभा देती है।

दतिया

बुन्देलखण्ड के अन्य दर्शनीय स्थलों में सोनागिरि, अहार क्षेत्र तथा पपौरा के ऐतिहासिक एवं धार्मिक जैन-तीर्थ अपना एक विशिष्ट महत्व रखते है।

सोनागिरि के जैन-मन्दिर दतिया से ६ मील दूर और सोनागिरि स्टेशन से ३ मील दूर एक मनोरम पहाड़ी पर अवस्थित है। यह भूमि जैन मुनियों की तपोभूमि है। यहां के मन्दिरों की क्रमबद्ध पंक्ति दर्शकों का मन मोह लेती है, यहां के गगनचुम्बी मन्दिरों की छटा देखते ही बनती है। सोनागिरि पर्वत पर ७७ शिखर-सहित जैन मन्दिर है। चन्द्रप्रभु का विशाल एवं दर्शनीय मन्दिर विशेष उल्लेखनीय है। इसी के पास नवनिर्मित विशाल मान-स्तम्भ तथा श्री बाहुबलि भगवान की मूर्ति स्थापित है। जैन-परम्परा के अनुसार सोनागिरि पर लाखों साधुओं ने निर्वाण प्राप्त किया है। पहाड़ी पर बने ५० से अधिक मन्दिरों का पुनर्निर्माण हो रहा है तथा नये मन्दिर भी बन रहे है। इस क्षेत्र का प्रबन्ध स्वयं-जैन-समाज करता है। प्रति वर्ष यहां चैत्र वदी १ से ५ तक मेला होता है, जिसमें भारत के कोने-कोने से हजारों यात्री दर्शनार्थ आते हैं।

दतिया नगर में भी ऐसे मन्दिर है, जो अपनी स्थापत्य-कला के लिए प्रसिद्ध है। श्री बड़े गोविन्दजी का मन्दिर, श्री बिहारी जी का मन्दिर, श्री विजयगोविन्द जी का मन्दिर तथा श्री राजराजेश्वर महादेव के मन्दिर गौरव एवं श्रद्धा के योग्य हैं। श्री राजराजेश्वर महादेव के मन्दिर में स्थित शिवलिंग अत्यन्त विशाल है।

दतिया से ग्यारह मील पूर्व पहूज के किनारे स्थित उनाव में श्री ब्रह्मबाला जी की मूर्ति भारतवर्ष में अनोखी हैं। सूर्य भगवान की कृपा और पहूज के पवित्र जल से कुष्ठ के रोगियों को लाभ पहुँचता है।

टीकमगढ़

जैनियों का तीर्थ अहार क्षेत्र टीकमगढ़ जिले में अवस्थित

है; यहां जैनियों के प्राचीन मन्दिर है, जिनमें अधिकांश खण्डहर हो गये है। ये मन्दिर १२वी—१३वी शताब्दी के बने कहे जाते है। अब भी कुछ जैन मुनि लोग यहां रहते है। मकर सक्रान्ति को मेला लगता है। जैन-काल की प्राचीन कृतियां यहा बहुसंख्या मे मौजूद है। यह जैनियों का ऐतिहासिक तीर्थ है।

पपौरा भी जैनियों का तीर्थ-स्थान है। यह ऐतिहासिक स्थान टीकमगढ़ से २ मील दूर ठीक पूर्व की ओर स्थित है, जहा जैनियों के लगभग २०० वीरान मन्दिर है। यहां के मन्दिरों के कलश दूर से बड़े ही मनोरम प्रतीत होते हैं। प्रत्येक मन्दिर में संगमरमर की बनी हुई जैन-तीर्थंकरों की मूर्तिया हैं। प्रत्येक मन्दिर की शिल्प-कला अपनी सजीवता को स्पष्ट करती है।

वाकाटक-प्रभाव के मन्दिरों मे मडखेरा (टीकमगढ) का सूर्य-मन्दिर भी है। यहा के सूर्य-मन्दिर मे सूर्य के रथ के चक्र का अंकन कोणार्क के चक्र के समान है। मड़खेरा की मूर्ति का स्थापत्य नचना के महादेव मन्दिर के सदृश ही है, जिसमें केवल एक ही शिखर है। इन मन्दिरों का सबसे सुन्दर शिल्प उन्मत्त मयूर का है। इसमें बादल को देखकर उन्मत्त भाव से पंख फैलाकर नाचनेवाले मयूर का अंकन बहुत ही सुन्दर हुआ है।

छतरपुर

द्रोणगिरि के जैन-मन्दिर छतरपुर जिलेमे छतरपुर-सागर रोड पर मलेहरा से पूर्व ४ मील की दूरी पर स्थित है। ये मन्दिर दक्षिण की ओर २ फर्लांग मे पर्वत पर है, जहा २६ मन्दिर बने है और २३२ सीढ़ियों की चढाई है। भिन्न-भिन्न काल की शिल्प-कलाओं के नमूने यहां उपलब्ध है। सबसे प्राचीन मंदिर तिगोड़ावालों का है। इसमे स्थित प्रतिमा सम्वत् १५४९ की है। इस मन्दिर मे आदिनाथ स्वामी की मूर्ति है। एक मन्दिर पार्श्वनाथ स्वामी का है। यह जैनियों का प्रसिद्ध तीर्थ-स्थान है। चैत्र शुक्ल १२ से १४ तक धूमधाम के साथ यहां मेला लगता है। सरकार और क्षेत्र की ओर से सुरक्षा का भी प्रबन्ध है।

सीधी

चन्द्रेह का शिव-मन्दिर कलचुरिकालीन स्थापत्य-कला का एक स्मारक है। रीवा-सीधी रोड पर शिकारगंज की ओर जहां कुछ दूर पर बनास व सोन नदियों का संगम है, वहीं पर यह मन्दिर अपनी मूक कहानी कह रहा है। जिस समय त्रिपुरी• परमार राजा के हाथ में चली गई थी, उस समय राजधानी गुर्गी मे स्थापित हुई। इसने गुर्गी मे अच्छे-अच्छे महलो का निर्माण कराया। तभी इसने प्रशान्त शिव के लिये एक प्रशान्ताश्रम की स्थापना की। चन्द्रेह मे भगवान शंकर का प्रबोध शिव मन्दिर अब भी सुरक्षित है।

सतना

मैहर का मन्दिर शारदा पहाडी पर स्थित है, जिसका प्राचीन नाम महेन्द्रगिरि है। वि० स० ५८९ चैत्र कृष्ण चतुर्दशी के दिन हूण तोरमणि राजा के मंत्री नृपलदेव ने सामवेदी सरस्वती देवी की स्थापना की थी। मन्दिर तक पहुंचने के लिये ३६० सीढियां है। देवी जी के दर्शनार्थ दूर-दूर से तीर्थयात्री अब भी आते है। यहा रामनवमी, कार्तिक एवं नवरात्रि मे भारी मेला लगता है। यह क्षेत्र भारत के प्रसिद्ध शक्तिपीठो मे से है।

शहडोल

स्थापत्य-कला की दृष्टि से इस मन्दिर का निर्माण कलचुरियो के शासन-काल में ८वी-९वी शताब्दी के बीच हुआ प्रतीत होता है। इस मन्दिर के निर्माण मे केवल पत्थरो का उपयोग हुआ है। पत्थर पर पत्थर बडी ही कुशलता से बैठाये गये है। कहा जाता है कि महाभारत-काल मे विराट नगरी के अधीक्षक बसन्त वैराट के उपास्यदेव भगवान शंकर का यह स्थान है। पारम्परिक दृष्टि मे चाहे शिवलिंग महाभारतकालीन ही क्यो न हो, जैसा कि विराटेश्वर नाम भी है और जिसका अर्थ भी विराट के देवता से होता है, मन्दिर का निर्माण बहुत ही पीछे हुआ प्रतीत होता है। यह भी जनश्रुति है कि महाभारत-काल मे पाण्डवों ने अपने वनवास-जीवन मे यहा आश्रय लिया था। मन्दिर मे थोडी दूर पर वाणगंगा नदी के सम्बन्ध मे भी यही कहा जाता है कि अपने वनवास-काल में अर्जुन ने अपने वाण से पृथ्वी का अंचल फाड़कर इसका उद्भव किया था। मन्दिर के सम्बन्ध मे कुछ ऐतिहासिक का मत है कि विक्रम की दूसरी और तीसरी शताब्दी मे जिस समय नवनाग-वंशीय राजाओं के अठारह आटविक राज्यों की स्थापना हुई थी, उसी समय किसी नागवंशी शासक द्वारा इस स्थान का निर्माण कराया गया होगा; किन्तु इसके

सम्बन्ध मे ऐतिहासिक प्रमाणों की नितान्त कमी है, यद्यपि इस काल के नागवंशीय राजाओं के कुछ शिलालेख सिलहरा (शिलागृह) मे उपलब्ध है। विराट मन्दिर में लाल, पीले और नीले पत्थर लगे है। यद्यपि यह मन्दिर जीर्णावस्था को प्राप्त हो रहा है, फिर भी स्थापत्य-कला का बोध अवश्य किया जा सकता है। मंदिर का द्वार पूर्व की ओर है। मन्दिर के ऊपर रहने का स्थान है। चक्राकार गुम्बज किसी प्राचीन सिद्धान्त का द्योतक है। गर्भगृह भाग सुरक्षित है; किन्तु मण्डप जीर्णावस्था को प्राप्त हो चुका है। मन्दिर के पीछे के भाग में कुछ मूर्तियां हैं। ऐसा प्रतीत होता है कि इन मूर्तियों की स्थापत्य-कला वाममार्गी सिद्धान्तों पर आधारित है। शिवरात्रि एवं वसंतपंचमी को यहां भारी मेला लगा करता है। राज्य-सरकार के पुरातत्व-विभाग द्वारा जीर्णोद्धार की दिशा में कुछ प्रयत्न किये गये है।

विन्ध्य-प्रदेश के गौरव ये प्राचीन ऐतिहासिक मन्दिर इस बात के द्योतक है कि यहां की जनता सदैव से धर्मपरायण रही है; तभी तो उसने ऐसे तीर्थ-स्थलों का निर्माण कराया, जहा के अनुभवी कलाकारों ने निष्प्राण पत्थरो मे प्राण फूक दिये है, जहां के पत्थरों मे कलाकार का हृदय झलक उठा है और कला को पाकर मानो उन प्रस्तरों का प्रत्येक कण कृतकृत्य हो गया हो। ऐसे पुण्य-स्थल विन्ध्य की धरोहर नही हैं, तो क्या है?

ब्रजकिशोर वर्मा 'श्याम'

विन्ध्य-प्रदेश का दुर्ग-वैभव

विन्ध्य-प्रदेश का अतीत हमारे देश का सांस्कृतिक वैभव है। विन्ध्य-मेखला के बीच प्रसारित यह प्रदेश जिस प्रकार भारत का हृदय माना जाता है, उसी प्रकार भारतीय इतिहास, साहित्य, कला-कृति और वीरता-वैभव का भी यह यशस्वी केन्द्र रहा है। ऐतिहासिक तत्वान्वेषियों से यह छिपा नही है कि इतिहास के अनादि स्रोत ने भी इस भूखण्ड को अभिनन्दित किया है। तब से अब तक जाने कितनी संक्रान्तियां इस प्रदेश से होकर निकल गयीं, अगणित वर्षाओं की स्मृतियां आम्रकूट के उत्तुग सानुओं पर काले वर्ण के अमिट अक्षरों में अंकित हुईं; अलक्षित बसन्तों की वनश्री सूखकर मुरझा गई; सैकड़ों क्रान्तियां हुईं, और इस प्रदेश पर अपनी स्मृति अंकित कर के अदृश्य हो गयीं। वीर योद्धा भीमसेन की चढ़ाई, पुष्यमित्र और अग्निमित्र की दिग्विजय-यात्रा, अशोक की धर्म-विजय, कनिष्क की धर्म-यात्रा, कलचुरियों के आधिपत्य, चन्देलों के पराभव तथा बुन्देलों, बघेलों, सेंगरां और गोंडों के प्रभुत्व-संदेशों की कहानी आज भी इस प्रदेश के पत्थर पर अंकित है। उन गौरव-शाली युगों के स्मारक-स्वरूप आज भी यहां के दुर्ग, और उनक खण्डहर यत्र-तत्र बिखरे हुए हैं, जिनको देखकर 'खण्डहर बता रहा है, इमारत बुलन्द थी' का स्मरण हो आता है।

विन्ध्य-प्रदेश का दुर्ग-वैभव अतीत काल से भारत का महानतम गौरव रहा है। यहां के दुर्गों ने जाने कितनी संस्कृतियों का मिलन-विछोह, विध्वन्स-ह्रास देखा है और जाने कितनी अमर संजीवनी मूर्छनाओं की प्रतिध्वनि अपने खण्डहरों में छिप रखा है, कितनी आहुतियों की दीपमालाएं अपने वक्षस्थल पर आलोकित की हैं। मालवों, भारशिवों, वाकाटकों, परमारों, चन्देलों, बुन्देलों और बघेलों की वीर-गाथाओं के जाने कितने परिच्छेद इन दुर्ग-खण्डहरों के बिखरे पत्थरों पर अंकित हैं। ये दुर्ग साक्षी हैं कि विदेशी आक्रमण-कारी मगध और उसके पूर्व धमक गए, थार की वंजर भूमि को पदाक्रान्त कर गए, मालवा को अपनी राज्यश्री का सुमेर बना गए, पर विन्ध्य-भूमि की महान् शक्ति से टकराने की हिम्मत न हुई। यदि किसी ने शौर्य के उन्माद में इधर पग बढ़ाया, तो उसे निराशा के सिवा और कुछ न मिला। महान् विजेता समुद्र को इस वन-प्रदेश के शौर्य के सामने घुटने टेकने पड़े, आततायी विजेता तुर्कों और यवनों की विजय-वाहिनियां विन्ध्य-भूमि के इन्हीं शक्ति-पाषाण दुर्गों से टकरा कर जाने कितनी बार चूर-चूर हुई हैं। मुगलों का महान् सैनिक दर्प, जो नर्वदा के पार तक आतंकित करने में सफल रहा, विन्ध्य-प्रदेश के इन दुर्गों से टकराकर बार-बार विचूर्ण हुआ है। इसमें संदेह नही कि इन दुर्गों की दीवारें खून से धो डाली गयीं, लेकिन उनके स्वाभिमान का सिहासन नही झुका। ये दुर्ग आज भी किसी न किसी रूप में पड़े-पडे उन दिनों की स्मृतियां जगा रहे हैं। आज सामूहिक दृष्टि से इनका महत्व भले ही न हो, लेकिन ऐतिहासिक और सांस्कृतिक दृष्टि से तो इनका महत्व कभी कम नहीं हो सकता। अतः विन्ध्य-प्रदेश के अतीत गौरव की जानकारी के लिए यहां के कुछ प्रसिद्ध दुर्गों का परिचय दिया जाता है।

बांधवगढ़

यह दुर्ग विन्ध्य के प्राचीन गौरवपूर्ण इतिहास का प्रतीक है। इस दुर्ग का निर्माण कब और किसने कराया, यह अभी तक विवादग्रस्त है, फिर भी इतना तो सर्वमान्य है कि इस दुर्ग ने सदियों के उत्थान और पतन देखे हैं। तब से अब तक जाने कितने राज्य बने और बिगड़े, उसके समकालीन जाने

कितने गढ़ों के अस्तित्व पुरातत्ववेत्ताओं की खोज के मसाले बन गए, लेकिन वांधवगढ़ आज भी विन्ध्य की २७०० मील की ऊँची चोटी पर विन्ध्य की शक्ति, प्राचीनता और दृढ़ता का साक्षी बना अडिग खड़ा है।

ईसा की दूसरी शताब्दी में बांधवगढ़ पर मघ वंश का राज्य था, जिसके अनेक प्रमाण हैं। इसके बाद दसवी और ग्यारहवीं शताब्दी में यह दुर्ग कलचुरियों के आधिपत्य में आया। कलचुरियों से यह गढ़ बघेल-शासकों के प्रभुत्व में आया और कहना चाहिए कि बघेल-शासकों के शासन-काल में ही इस दुर्ग की महत्ता काफी बढ़ी। महाराजा वीरसिंह और महाराज रामचन्द्र के शासन-काल की अनेक शौर्य-कथाएं बाधवगढ़ की दीवारों पर आज भी अंकित है।

बांधवगढ़ एक प्राकृतिक दुर्ग है। इसमें मनुष्य का निर्माण प्रायः नहीं के बराबर है। इस गढ़ के चारो ओर घोर जंगल है; केवल एक ही मार्ग है, जिसके द्वारा ऊपर चढ़ा जा सकता है। नीचे चारो ओर दलदलों का प्राकृतिक घेरा है, जो सदैव दुर्ग की रक्षा करता रहता है। यह दलदल ही है, जो बांधवगढ़ को सदैव अजेय बनाए रहा। प्राचीन काल मे पैदल लड़ाई करनेवालों के लिए वांधवगढ़ पर विजय पाना आसान नहीं था।

इस दुर्ग का मुख्य द्वार अत्यन्त विशाल है, जहां आज भी एक संतरी पहरा देता है। गढ़ के ऊपर पहुंचने पर श्री लक्ष्मण जी का मंदिर मिलता है। इस मंदिर के निकट ही एक ओर एक लम्बा और गहरा तालाब है। यहां से पूर्व की ओर कुछ दूर आगे चलने पर एक तोपखाना है, जहां पहले बारूद बनायी जाती थी और अब भी यहां अनेक छोटी-बड़ी तोपे रखी हुई है। ये भयंकर तोपें अचूक और प्रबल बताई जाती हैं, जो आज से लगभग सौ वर्ष पूर्व गजराज नामक कारीगर द्वारा बनाई गई थीं।

किला के करीब तीन हिस्सा नीचे छोटी शेष-साई (क्षीर सागर) है। लगभग ४०–५० फीट लम्बा-चौड़ा एक कुण्ड पत्थर काटकर बना है। बीच कुण्ड में क्षीरशायी भगवान की मूर्ति है। क्षीर सागर के दाहिनी ओर बड़ा क्षीर सागर है। वहां पर एक सुन्दर कोठी बनी हुई थी, जो अब बिल्कुल नष्ट-भ्रष्ट हो गयी है।

बांधवगढ़ में टीपू सुल्तान की लखवरिया दर्शनीय चीज है। पत्थर काट-काटकर छोटी-बड़ी रहाइसें गढ़ के चारो ओर बनायी गयी है और यही रहाइसें लखवरिया के नाम से प्रसिद्ध हैं। दन्तकथा है कि बांधवगढ़ में सवा लाख लखवरिया बनी है।

इस अभेद्य गढ़ को जीतने के लिए समय-समय पर कई भयंकर युद्ध हुए है। महाराज सारंगदेव के शासन-काल में परिमर्दिदेव चंदेल राजा ने इस गढ़ पर चढ़ाई करने के लिए अपने प्रसिद्ध सेनापति ऊदल को भेजा था। घोर संग्राम के बाद ऊदल पराजित हुआ और उसे पकड़कर किले की एक कोठरी में बन्द कर दिया गया। जिस कोठरी में ऊदल बन्द किया गया था, उमे आज भी ऊदल की कोटरी कहते है।

महाराजा वीरसिह के शासन मे कुरु-वंशियों ने इस दुर्ग पर चढ़ाई की, लेकिन उसे भी बुरी तरह हार खाकर लौटना पड़ा। इस तरह और भी अनेक लड़ाइयां इस किले के जीतने के लिए हुई, लेकिन वह सर्वदा ही अजेय बना रहा।

गुर्गी

गुर्गी यद्यपि आज खण्डहर के रूप में ही शेष है, फिर भी वहां कलचुरि-नरेशों के वैभवशाली दिनों की याद दिलाने के लिये काफी है। ये खण्डहर आज भी बोलते है और अपने पुरातन शौर्य की कहानी कहते नहीं थकने। हमारी दृष्टि जब भी इसकी ओर जाती है, हम देखते है कि इसके चप्पे-चप्पे मे दीर्घकालीन स्पर्द्धा मुखरित हो रही है और पग रखते ही आपको उसकी प्रतिध्वनि सुनाई देगी।

कलचुरि-शासन में गुर्गी एक वैभवशाली विशाल नगर था। यहां एक विशाल दुर्ग का खण्डहर आज भी मौजूद है, जिसे रेहुँटा का विदा कहते है। यद्यपि कलचुरियों की मुख्य राजधानी त्रिपुरी थी, लेकिन सांस्कृतिक केन्द्र और प्रमुख नगर होने का गौरव गुर्गी को ही प्राप्त था। कलचुरियों के शासन-काल में शिल्प और स्थापत्य-कला उन्नति की किस चरम सीमा पर थी, इसका अन्दाजा गुर्गी के खण्डहरों में बिखरी कारीगरियों से बहुत कुछ लगाया जा सकता है। गुर्गी के खण्डहरों में बिखरी कला-कृतियों को देखकर मन मुग्ध हो जाता है। रीवा किले का पतुरिया दरवाजा गुर्गी के खण्डहरों की ही निधि है। विन्ध्य-प्रदेश के पुरातत्व-संग्रहालय में अधिकांश मूर्तियां गुर्गी की ही हैं। हर-गौरी

की विशाल मूर्ति, जो रीवा के पद्मधर पार्क को आलोकित कर रही है, इसी गुर्गी की विभूति है।

गुर्गी मे प्राचीन शहर के निशान आज भी पाए जाते है। यहां के खेतों आदि के नाम उन दिनों की गलियों, चौहट्टों आदि नाम से आज भी पुकारे जाते है।

चंदेरी

चंदेरी प्राकृतिक दृष्टि से रमणीक तथा ऐतिहासिक दृष्टि से अत्यन्त महत्वपूर्ण है। चंदेरी से प्रायः ९ मील पर चंदेरी दुर्ग के कोट और खण्डहर अब भी पाए जाते है। यहां की ऊंची-नीची जमीन खण्डहरों और कब्रिस्तानों से भरी पड़ी है।

जिन दिनों बुन्देले चंदेरी में आए थे, चंदेरी में तीन सौ-चौरासी बाजार, बारह सौ मसजिदे तथा तीन सौ साठ सरायें और आतिथ्य-गृह थे। ऐसा लेख आईने अकबरी और इकवालनामा जहांगीरी में है।

चंदेरी का किला दो सौ फीट ऊंचा है। किले पर जाने के लिए तीन फाटक है। पहला फाटक महाराज रामशाह बुंदेला का बनवाया हुआ है। दूसरे फाटक को खूनी दरवाजा कहते है। इस दरवाजे के पास महाराज मेदिनीराय को बाबर की फौज ने मार डाला था। शायद इसी से इस दरवाजे का नाम खूनी दरवाजा पड़ गया। तीसरे दरवाजे से निकलकर उत्तर की और बुन्देला-राजाओं के महल हैं। इन्हीं महलों के नीचे दक्षिण की ओर जारे तलैया है, जिस पर महाराजा मेदिनीराय के रनिवास की बारह सौ वीरांगनाओं ने अपने प्राणों की आहुति दे दी थी। उनकी स्मृति में स्मारक-स्वरूप जौहर-कुण्ड बना हुआ है।

किले के नीचे पश्चिम-दक्षिण की ओर कीर्ति सागर नामक पुराना तालाब है। यह किला और तालाब राजा कीर्तिपाल परिहार का बनवाया हुआ कहा जाता है।

चंदेरी के कोट के उत्तर शेखबर्गउद्दीन मकदूमशाह की दरगाह है। यहां से उत्तर परमेसरा तालाब है। इसे राजा कुर्म ने बनवाया था। राजा कुर्म को कुष्ट था। सुनते हैं, इस स्थान के पानी से उनका कुष्ट अच्छा हो गया।

इसके अतिरिक्त सुल्तान गयास शाह बाउरी, सिह महल प्रान निवास महल, प्रान सागर शिकरगाह आदि और भी अनेक स्थान देखने योग्य है, जो अपने युग की याद दिलाते है।

देवगढ़

देवगढ़ का प्राचीन दुर्ग जिस पर्वत पर है, बेतवा ठीक उसके नीचे होकर बहती है। जैनियों के प्राचीन मंदिर, जिनके कारण देवगढ़ काफी प्रसिद्ध हैं, इस पहाड़ी पर भी बने है। ऐसा प्रतीत होता है कि देवगढ़ का प्राचीन नगर भी यहीं बसा होगा।

पहाड पर चढ़ने के लिए पश्चिम ओर मे एक मार्ग बना हुआ है। पर्वत की उँचाई पार करने पर एक टूटा हुआ द्वार मिलता है। यह पर्वत की परिधि को घेरे हुए दुर्ग कोट का द्वार है। इसका तोरण अब भी अच्छी हालत में है। इस द्वार को पार करने पर तीन कोट और मिलते हैं। जैनियों के प्राचीन मंदिर तीसरे कोट के भीतर है। अधिकांश मंदिर नष्ट हो गए है। जगह-जगह टूटी हुई मूर्तियों और इमारतों के स्तूपाकार ढेर अब भी पड़े हुए है।

किले के पूर्वी भाग में एक जैन मंदिर है। उसके एक खंभे पर राजा भोजदेव के समय का एक महत्वपूर्ण लेख है। यह लेख सम्वत् ९१९ का है। यहीं पर एक मंदिर में बारहवीं शताब्दी की लिपि में एक लेख है, जिसमें एक दानशाला के बनाए जाने का विवरण है।

किले के जिस ओर बेतवा बहती है, वहां तीन घाटियाँ है। इनमें से नाहर घाटी पहाड़ की ऊँची दीवार को काटकर बनाई गई है। यहा एक गुफा के भीतर एक सूर्य की मूर्ति, एक शंकर-लिंग और सप्तमातृकाओं की मूर्तियों के कुछ चिह्न है। यही पर गुप्तवन्शी राजाओं के समय का एक लेख है, जिसमें सूर्यवंशी स्वामिभट्ट की चर्चा है।

गुफा के बाहर सम्वत् १३४५ का एक शिलालेख है, जिसमें राजा वीर द्वारा गढ़ कुण्डार की विजय का उल्लेख है।

दूसरी घाटी में, जो राजघाटी के नाम से प्रसिद्ध है, चंदेल-राजा कीर्तिवर्मन के समय का एक लेख है, जिसमें उसके मंत्री वत्सराज द्वारा इस स्थान के बनवाये जाने का जिक्र है।

चन्देलों के पूर्व यह दुर्ग किसके अधीन था, कहा नहीं जा सकता। फिर भी देवगढ़ का नाम जैनियों के साथ विशेष रूप से सम्बद्ध है। उनकी जनश्रुति के अनुसार देवपत और क्षेत्रपत दो भाई थे। उनके पास पारस मणि थी, जिससे वे असंख्य द्रव्य के स्वामी बन गए थे। देवगढ़ का किला और मंदिर उन्हीं के बनवाये है। जो भी हो, लेकिन इतना तो

पष्ट है कि यह दुर्ग बहुत प्राचीन है और आज उसके खण्डहरों ं भी भारतीय संस्कृति की एक बहुत बड़ी निधि सुरक्षित ।

प्रजयगढ़

यशस्वी चंदेलों का ८ किलों पर शासन था। उनमें अजय-ढ़ का स्थान तीसरा माना जाता है। सामरिक दृष्टि से ह दुर्ग अपने समय का अजेय दुर्ग माना गया है, जैसा कि सके नाम से भी प्रकट होता है। इसका निर्माण किसने और ब कराया, नहीं कहा जा सकता। कुछ लोगों का कहना है के यह दुर्ग राजा अजयपाल का बनवाया हुआ है।

यह दुर्ग पहाड़ी पर स्थित है, जिसके भीतर कर्म-भवन एवं ंदिर बने हुए हैं। किला तीन ओर से खुला हुआ है और एक ोर घने जंगल से आच्छादित है। यहां प्राचीन शिल्प-कला एवं पुरातत्व की पर्याप्त सामग्रियां बिखरी पड़ी है, जो ुर्ग की प्राचीनता की साक्षी हैं।

ओरछा

ओरछा दुर्ग प्रतापी बुन्देलों के स्वर्ण-युग की याद दिलाता है। इस दुर्ग का शिलान्यास महाराजा रुद्रप्रताप ने विक्रम संवत् १५८८ में किया था। इस किले को बनकर तैयार होने में आठ वर्ष का समय लगा था। इसके दो भाग हैं—राज मंदिर और जहांगीर महल। राज मंदिर में दो दालानों में कुछ भित्ति-चित्र हैं, जो बुन्देली चित्रकला के श्रेष्ठ नमूने माने जाते है। एक कमरे में जल-विहार के कुछ चित्र अंकित हैं, जो बड़े ही आकर्षक हैं। जहांगीर महल महा-राजा वीरसिंह देव की कृति है। इसी महल का एक भाग शीश महल के नाम से प्रसिद्ध है।

किले के आसपास अनेक स्थान ऐसे है, जिनका ऐतिहासिक महत्व है और जिनसे ओरछा का अतीत गौरव प्रकट होता है। फूलबाग, चतुर्भुज का मंदिर, लक्ष्मी जी का मंदिर, आचार्य केशव दास का घर ऐसे ही दर्शनीय स्थानों में है।

फूलबाग में वीर हरदौल की समाधि है, जो आज भी उनके प्रेम, साहस और त्याग की ज्योति जगा रही है। राममंदिर में भगवान राम की मूर्ति है, जिसे महाराज मधुकर शाह की रानी गणेश कुवरि अयोध्या से लायी थीं। यह मंदिर पहले महल था, जिसे महाराज भारतीचन्द ने बनवाया था। चतुर्भुज जी के मंदिर का निर्माण महाराज वीरसिह ने कराया था। स्थापत्य की दृष्टि से इसका बड़ा महत्व है।

उपर्युक्त दुर्गों के अतिरिक्त विन्ध्य-प्रदेश की सीमा के अन्तर्गत और भी जाने कितने ऐतिहासिक दुर्गो के खण्डहर मौजूद है । धमौनी, राहनगढ़, गढ़ाकोटा, जतारा आदि दुर्गों का ऐतिहासिक महत्व किसी से कम नहीं है। इनके भीतर विन्ध्य-प्रदेश के प्रभुताशाली दिनों के इतिहास के कई परिच्छेद हैं।

संस्कृति एवं साहित्य-खण्ड

भगवती प्रसाद शुक्ल

विन्ध्य-प्रदेश का सांस्कृतिक परिचय

अपनी भौगोलिक स्थिति, ऐतिहासिक परम्परा और साहित्यिक देन के कारण विंध्य का सांस्कृतिक रूप गौरव-पूर्ण रहा है। यहां की प्राकृतिक शोभा-सम्पन्न धरती ने जहां एक ओर वीर पुरुषों को जन्म दिया है, वही प्रकृति के मनोरम दृश्यों में रमनेवाले कवियों और साहित्यिकों को भी पैदा किया है और उन्हें प्रेरणा दी है। इसी से यहां का समाज और इतिहास अपनी सांस्कृतिक परम्परा के लिए विख्यात है।

विंध्य की सांस्कृतिक परम्परा दो भागों में विभक्त रही हे--

(१) बुंदेलखड ,और (२) बघेलखंड। इन दोनों में दो प्रकार की सांस्कृतिक विचारधाराएँ चलती रही है--

(१) सामंतवादी सांस्कृतिक विचार-धारा, और

(२) जनवादी सास्कृतिक विचार-धारा।

सामंतवादी सांस्कृतिक विचारधारा का सबंध विंध्य के राजाओं से रहा है। बुंदेलखंड के बुंदेल-राजाओं और बघेलखंड के बघेल-राजाओं में जो सामाजिक, ऐतिहासिक और धार्मिक तत्व काम कर रहे थे, उनकी मूल-वृत्ति प्राय: समान थी। इनमें वीरता और स्वाभिमान के भाव सदा बने रहे। हां, बहुत समय तक इन राजाओं ने अपनी वीरता का उपयोग आपसी संघर्ष और कलह में किया, किंतु मुसलमानी शासन-काल में महाराज छत्रसाल ने जिस वीरता का परिचय दिया, वह विंध्य का गौरव है। बघेलखंड में राजा वीरभान और उनके भाई जमुनीभान का मुसलमानों से युद्ध विख्यात है। पूना के यशवंत राव नायक से युद्ध के लिए वीरों को उत्तेजित कर रानी कुंदन कुंवरि ने यहां के गौरव की रक्षा की। १८५७ के प्रथम स्वतंत्रता-संग्राम में भी यहां के कुछ राजाओं ने पर्याप्त सहायता की ; किंतु सामंतवादी परम्परा में जहां कुछ राजे स्वतंत्रताप्रिय और वीर थे, वहीं कुछ राष्ट्रवादी शक्तियों के प्रतिकूल मुसलमानों या अंग्रेजों के पक्ष के थे।

यहां की जनवादी सांस्कृतिक परम्परा महान् रही है। बुंदेलखंड और बघेलखंड की संस्कृति के कुछ सामान्य तत्वों का परिचय हम यहां दे रहे हैं--

१--यहां के समाज में जातीय भेद-विभेद अधिक प्रचलित हैं। अकेले ब्राह्मणों मे ३१३ प्रकार की उपजातिया मिलती हैं। दीवान जीतन सिंह ने ब्राह्मणों के ११८ भेद, क्षत्रियों के ६३, कोरियों के १४ और तेलियों के २४ बताये हे।

जाति-प्रथा की कट्टरता भी इस क्षेत्र में अधिक है।

२--सामाजिक जीवन का उद्देश्य विवाह समझा जाता है। जाति-प्रथा की कट्टरता के कारण अपनी ही जाति या उपजाति में विवाह हो सकता है। दूसरी जातियो में विवाह कर लेने पर जातीय पंचायतों मे दंड दिया जाता है। ये दंड इतने प्रकार के हो सकते है--

(१) तुलसी का विवाह और गंगा-स्नान,

(२) ब्राह्मण-भोजन कराना,

(३) भंडारा (सभी जाति के लोगों को खिलाना),

(४) जाति-भोज कराना,

(५) जातिच्युत कर दिया जाना,

(६) तीर्थ-यात्रा,

३--वैवाहिक जीवन का उद्देश्य संतानोत्पत्ति समझा जाता है। जिसके संतान न हो, उसका मुख देखना भी पाप माना जाता है। कुछ विशेष लक्षणों से यह अनुमान कर लेते हे, कभी-कभी तो जान लेते हैं कि पेट में लड़का है या लड़की। इस अनुमान या जानकारी-संबंधी प्रमुख मान्यतायें ये हैं--

(क) यदि गर्भस्थ शिशु गर्भाशय की दाहिनी कुक्षि में स्थित हो, तो पुत्र, अन्यथा कन्या होगी।

(ख) यदि गर्भवती स्त्री की आंखें झुंझलाई या श्वेत आभा की हो जायं, तो पुत्र, अन्यथा कन्या होगी।

(ग) यदि गर्भवती स्त्री के हाथों की गदेलियां लाल पड़ जायं अथवा दुर्बल दीख पड़ें, तो पुत्र के लक्षण हैं।

(घ) मिष्ठान्न भोजन की इच्छा होने से पुत्र, नमकीन पदार्थों की इच्छा होने से कन्या उत्पन्न होने की संभावना है।

(ङ) गर्भस्थ पुत्र के होने से गर्भाशय में तथा कन्या के रहने से अँतड़ियों में वेदना होती है।

(च) दाहिनी कुक्षि की अँतड़ियों में रुकावट बोध होने पर पुत्र और बाईं ओर होने पर कन्या की संभावना रहती है।

(छ) पुलिंग पदार्थों का, जैसे नारियल, केला, सर्प इत्यादि का स्वप्न होने से गर्भवती स्त्री को पुत्र होगा ; किन्तु स्त्रीलिंग पदार्थों का, जैसे नारंगी, नासपाती इत्यादि का स्वप्न देखनेवाली स्त्री के कन्या होगी।

४—बुन्देलखंड के लोगों में कृष्ण-पूजा का प्रचलन अधिक है। वहां के लोक-साहित्य और लोक-जीवन में भी कृष्ण का विशेष महत्व है ; क्योंकि बुन्देलखंड में ब्रज-भूमि, ब्रज-भाषा और ब्रज-साहित्य का अधिक प्रभाव है। बघेलखंड में राम का प्रभाव है। यहां के लोक-साहित्य, शिष्ट जनता के साहित्य और लोक-जीवन में राम व्याप्त हैं। बघेली में अवधी भाषा और साहित्य का भी पर्याप्त प्रभाव परिलक्षित होता है।

इसी से बुन्देली साहित्य में सरसता की अभिव्यक्ति अधिक है; पर बघेलखंड में निर्मित साहित्य मर्यादा से बँधा है।

५—यहां ऋतुओं और त्योहारों के अनुसार भी देव-पूजा की प्रथा मिलती है । वसन्त पंचमी, और शिवरात्रि के दिन कट्टर वैष्णवों के यहां भी शिव-पूजा होती है। इसी तरह कृष्ण-जन्माष्टमी या रामनवमी के दिन पक्के शैव भी कृष्ण और राम की पूजा करते है।

६—यहां उद्योग-धंधों के अभाव के कारण व्यक्तियों का जीवन आर्थिक कठिनाइयों से संत्रस्त है ; अतः रहन-सहन ऊंचा नहीं है। गांवों के कृषक या कृषक मजदूर कठिनाई से दोनों वक्त भोजन कर पाते है।

७—विंध्य-प्रदेश में आदिवासी पर्याप्त मात्रा में रहते हैं। इनका जीवन-क्रम इन जातियों से भिन्न है। वे स्वाभिमानी होते है ; भूखों मर जायं, पर किसी की चाकरी करना इन्हें पसन्द नहीं है। ये बघेसुर, लछिमन जती, दुलहा बाबा, महामाई, कालका, शारदा, छोटकी, चउबोली, मउकी, बड़की और बिचकी देवियो की पूजा करते है। राम के प्रति बहुत अधिक श्रद्धा नहीं व्यक्त करते। राम के सम्बन्ध मे आदिवासियों में एक कथा प्रचलित है कि जब लछिमन जती बारह वर्ष की तपस्या में तन्मय थे, तब उनकी सेवा में सीता जाया करती थीं। जैतपुर की उस कुटी में, जो जंगल के बीच थी, लछिमन जती वंशी बजाया करते थे, जिसका नाम किंगरी था। उनकी किंगरी को सुनकर इन्द्रकामिनी मोहित हो गई। वह लछिमन के चारो प्रहरियों—सांप, बन्दर, शेर और बुढ़िया—को प्रसन्न करके वहां पहुंची, जहां वे अपनी साधना में तन्मय थे। इन्द्रकामिनी ने बड़ा प्रयत्न किया, पर लक्ष्मण की समाधि न टूटी। इन्द्रकामिनी ने इस अपमान का बदला लेने का निश्चय किया। उसने लक्ष्मण के बिस्तर को अस्त-व्यस्त कर दिया और अपना एक कर्णाभूषण बिस्तर में ही छोड़कर चली आई। दूसरे दिन जब सीता आयीं, तो यह सब देखकर भौचक्की रह गयीं । उन्होंने जाकर सब कुछ राम से कहा।

राम ने जैतपुर के सभी मुखिया गोंड़ों को बुलाया और कहा कि 'गांव भर की स्त्रियों को बुलाओ।' स्त्रियाँ बुलाई गयीं। यह घोषणा कर दी गई कि 'यह कर्णाभूषण जिसके कान में ठीक बैठ जायगा, उसी से लक्ष्मण की शादी कर दी जायगी।' गांव की किसी स्त्री के यह आभूषण ठीक न हुआ। हां, सीता के कान में वह अवश्य ठीक हो गया। राम को गुस्सा आया—'उन्होंने कहा कि 'लक्ष्मण भ्रष्ट है'। लक्ष्मण की अग्नि-परीक्षा हुई, पर उनका बाल वांका न हुआ। तब राम और चिढ़ गये। उन्होंने लक्ष्मण को जंगल में बँधवा दिया और आग लगवा दी, फिर भी वे बच गये। तब लक्ष्मण ने कहा—'राम, तुम मेरें भाई नहीं, शत्रु हो; मै चाहे काले नाग के साथ रह आऊं, पर तुम्हारे साथ नहीं रह सकता।' यह कहकर वे चले गये और एक सांप के साथ रहने लगे। राम ने वहां भी पीछा किया, पर लक्ष्मण का कुछ न बिगाड़ सके ; क्योंकि नाग उनकी सहायता कर रहा था। नागदेव ने प्रसन्न होकर लक्ष्मण को

अपनी कन्या दी, पर उनकी असावधानी से वह कन्या उड़ गई। जब लक्ष्मण एक जंगल मे बैठे थे, तभी गोंड़ों के एक दल ने उन्हें घेर लिया और जैतपुर चलने के लिए विवश किया। जब लक्ष्मण का गोंड़ों के साथ आगमन राम ने सुना, तब वे भाग खड़े हुए।

८—यहां के लोक-जीवन में जादू-टोने, टोटके और मंत्र-जंत्र का पर्याप्त प्रभाव है। यदि किसी घर में कोई बीमार पड़े, तो उसकी झाड़-फूंक अविलम्ब होने लगती है। सूप बैठने का प्रचलन भी कई क्षेत्रों में पाया जाता है। एक सूप लेकर भुंइया (जादू-टोना जाननेवाला) बैठ जाता है, उसमें चावल या जौ रख लेता है, कुछ गुनगुनाता जाता है और झाड़ता जाता है। सांप काटने पर एक चारपाई में उसे लिटा देते है, चारो कोनों में एक घडा रख देते है तथा मंत्र-गीत गाते हुए चारो ओर चक्कर काटते है। कुछ देर मे सांप काटे हुए व्यक्ति को होश आने लगता है। देवी निकलने पर भगत गाते है; दवा करना अशुभ समझा जाता है।

९—ब्राह्मण और क्षत्रियों को छोड़कर सभी मे सामाजिक बंधन ढीले हैं। आदिवासियों में नारी-स्वातंत्र्य अधिक मिलता है। एक पति के रहते हुए पत्नी दूसरे के यहा जा सकती है, पति के मर जाने पर दूसरा विवाह कर सकती है। नारियां अकेले खेतों, जंगलो और नदी-तालाब मे जाती है। उनमें साहस और आत्मविश्वास अधिक है।

१०—यहां के लोगों में संगीत और गीत के प्रति एक लगन है। लोक-कला के अन्तर्गत संगीत, नृत्य और अभिनय का प्रदर्शन यहां के गांवों में पर्याप्त मात्रा में होता है। राई, फाग, दादरा, करमा, शैला, केहरा, बरेइया, सुआ (सुगरा) यहां के प्रसिद्ध नृत्य तथा गीत है।

समष्टि रूप से यहा की सांस्कृतिक परम्परा भारत की सांस्कृतिक परम्परा का ही एक अंग है। उसमें भौगोलिक परिस्थिति, ऐतिहासिक परम्परा और स्थानीय धार्मिक परम्परा के कारण कुछ विशेषता आ गई है।

बी० पी० शुक्ल

विन्ध्य की लोक-कला : एक परिचय

विंध्य-प्रदेश की लोक-कला में शास्त्रीय कला की अपेक्षा परिव्याप्ति, मनोरंजन, उपयोगिता और भाव-प्रवणता अधिक मिलती है। लोक-कला के अंतर्गत चित्र-कला के प्राचीन रूपों का विश्लेषण करने से नृतत्व पर पर्याप्त प्रकाश पड़ता है। नृत्य और संगीत-कला में भौगोलिक परिस्थिति और ऐतिहासिक परम्परा से अनुबद्ध रहने पर भी भारतीय संस्कृति को व्यापक रूप से समझने में सहायता मिलती है। साथ ही लोक-साहित्य में अभिव्यक्त काव्य-कला के अध्ययन से स्पष्ट होता है कि वह विश्व के लोकवार्ता-साहित्य का एक अंग है; किन्तु इस निबन्ध में हम लोक-कला का परिचय मात्र देंगे। पहले हम बघेलखंड की लोक-कला को लेंगे।

चित्र-कला

बघेलखंड की लोक-चित्र-कला के संकलन या अध्ययन का प्रयत्न बिल्कुल नहीं हुआ है। सुविधा की दृष्टि से यहां की लोक-चित्र-कला के तीन वर्ग हो सकते हैं—

(१) संस्कारों से संबंधित चित्र,

(२) विशेष अवसरों पर बनाये जानेवाले चित्र, और

(३) मंदिरों या मकानों मे बनाये गए कुछ अन्य चित्र।

विवाह के समय यहां कई प्रकार के चित्र बनाये जाते हैं। यथा—(१) दुआरी चित्र,

(२) तेल-बाती चित्र,

(३) दूल्हा-देव के चित्र।

दुआरी चित्र मे मनुष्य की आकृति बनी रहती है। लगता है, आदिम मनुष्य की आकृति है। यह चित्र द्वार पर बना रहता है। विवाह के समय लड़की और लड़का दोनों के घरों में बनता है।

तेल-बाती चित्र कोहवर में बनाया जाता है, जब बर-वधू कोहवर में जाते है। वे वहां इस चित्र की पूजा करते हैं, घी या तेल उस पर छोड़ते हैं। उसी समय वर चित्र पर चढ़े हुए एक दीप की दोनों बातियों को एक करता है। यह चित्र भी मनुष्य की आकृति से मिलता-जुलता है, पर दुआरी चित्र से कुछ भिन्न है। इसमें स्त्री का चित्र भी बना रहता है, जिससे दोनों के स्नेह-मिलन का भाव स्पष्ट हो सके।

विवाह के अवसर पर दूल्हा देव की पूजा श्रद्धा से की जाती है। दूल्हा देव का चित्र कोहवर के समीप बना रहता है। इस चित्र मे देवत्व का भाव लाने के लिए एक वृत्त बना रहता है। इस चित्र मे चार हाथ रहते हैं।

चौक भरने के समय जो चित्र बनाया जाता है, उसमें एक दूसरे से सटे हुए चार स्वस्तिक चिह्न रहते हैं, जिन्हें सेंदुर और आटे से सजाया जाता है।

विशेष अवसरों पर बनाये गए चित्रों में नागपंचमी के अवसर का नाग-चित्र विशेष उल्लेखनीय है, जिसमें एक सुन्दरी नागदेव को कटोरे मे दूध पिलाती हुई दिखाई जाती है।

मंदिरों में स्वस्तिक चिह्न बने रहते है। उनके रूप में पवित्रता रहती है।

घरों में—विशेष रूप से आदिवासियों के घरों में—बैल और उसकेऊ पर एक सवार बना रहता है। कभी-कभी बैल के नीचे या आस-पास खड़ी नारी का चित्र रहता है। इससे नृतत्व के स्तर पर प्रकाश पड़ता है। लखौरा के आदि-वासियों के यहा प्राचीन भाले-बर्छियों के चित्र बने मिले है।

नृत्य-कला

बघेलखंड के नृत्य दो वर्गों में विभक्त किये जा सकते हैं :—

(१) आदिवासियों के लोक-नृत्य,
(२) इतर जातियों के नृत्य।
आदिवासियों के नृत्य ये हैं—
(१) करमा नृत्य
(२) शैला नृत्य
(३) अटारी नृत्य
(४) सुआ नृत्य
(५) ददरिया नृत्य
(६) हिंगाला नृत्य
(६) नैनजुगानी नृत्य।

इतर जातियों के नृत्य ये हैं—
(८) केहरा नृत्य
(९) दादरा नृत्य
(१०) बधाव नृत्य
(११) राई नृत्य
(१२) झुमकिया नृत्य
(१३) बरेइया नृत्य।

करमा

करम राजा और करम रानी को प्रसन्न करने के लिए यह नृत्य किया जाता है। इसमें प्रायः ८ पुरुष और ८ स्त्रियां रहती हैं। नृत्य की गति में वे आगे-पीछे चलने से एक-दूसरे के अंगूठे को छूने का प्रयत्न करते हैं।

शैला

शैला आदि देव को प्रसन्न करने के लिए नाचा जाता है। कहते हैं कि सुरगुजा की रानी से अप्रसन्न होकर आदिदेव—बघेसुर—अमरकंटक चले आए थे। वहां के बांसों को कटाकर इस नृत्य का प्रचलन किया गया।

अटारी नृत्य

इसमें एक-दूसरे के ऊपर चढ़कर अटारी-जैसा दृश्य बनाते हैं। डा० इलविन का मत है कि इस नृत्य में अटारी से वियोगिनी का अपने प्रियतम को झांकने का भाव है। किसी-किसी ने इसे कृष्ण की रासलीला से भी संबद्ध करने का प्रयत्न किया है। इसमें स्त्रियां भाग नहीं लेतीं।

सुआ नृत्य

इसमें तीन या पांच स्त्रियां अपने सिर पर एक टोकरी रखकर नचाती हैं।। उसमें जौ और उसके ऊपर सुआ रख लेती है। इस समय सुआ-नृत्य बिना टोकरी या जौ के ही होता है। इसमें पाँवों की गति तीव्र रहती है।

ददरिया नृत्य

स्त्री-पुरुष दोनों मिलकर नाचते हैं। इसमें दो वर्ग अलग-अलग रहते हैं। मंथर गाति से आगे बढ़ते हैं। इसमें करमा की भांति क्षिप्रता नहीं रहती।

हिंगाला

यह अमरकंटक के आस-पास नाचा जाता है। इसमें पांच हाथ के लम्बे डण्डे लेकर लोग उछल-कूद मचाते हैं, वृत्ताकार खड़े होकर चक्कर काटते हैं। हिंगाला आदिवासियों का देवता है, जिसे प्रसन्न करने के लिए ही ये गीत गाये जाते हैं।

नैनजुगानी

केवल स्त्रियां नाचती हैं। इस नृत्य में पूजा का भाव रहता है।

इतर जातियों में प्रचलित नृत्यों में पांव मंथर गति से चलते हैं। ये नृत्य वाद्य के आधार पर चलते हैं। इनमें नाचते-नाचते गाने का विधान नहीं है, जैसा कि आदिवासियों के नृत्य में मिलता है।

केहरा

इसमें केवल स्त्रिया नाचती हैं। इसमें फुरहरी लेने का प्रचलन है। नाचने के पहले स्त्रिया 'केहरा' गाती है—

'केहरा मचा बाग मा,
कउने बिध देखन जाँउ।'

इतना कहते-कहते वे, फुरहरी लेने लगती हैं, कभी-कभी एक दूसरे का हाथ पकड़कर भी चक्कर मारती हैं।

दादरा

यह नृत्य मंथर गाति से चलता है। इसमे अंगुलियां ऊपर की ओर ले जाते हैं।

बधाव नृत्य

किसी के यहां पुत्र-जन्म का उत्सव मनाते समय ही बधाव-नृत्य होता है। बधाव बाजा बजने पर ही बधाव-गीत गाते है, तभी यह नृत्य होता है। इसमें 'बाजी बधइया अवधपुर' कहकर स्त्रियां एक-दूसरे का हाथ पकड़कर फुरहरी लेती हैं।

राई नृत्य

यह अहीर नाचते हैं; कहीं-कहीं ब्राह्मण जाति की स्त्रियों में भी प्रचलन है। पुत्र-जन्म पर प्रायः वैश्यों के यहां भी यह नृत्य होता है। इसमें हाथों का ऐसा प्रदर्शन होता है, जिनसे विलास-भावना की अभिव्यक्ति होती है। राई गीतों का प्रारम्भ इस तरह होता है—

'राई गाइउ ना जाइ,
राई गाइउ ना जाइ,
मारें शरम के मारे।'

झुमकिया नृत्य

झूम-झूमकर नाचने के कारण ही इसका नाम झुमकिया नृत्य पड़ा है। यह केवल स्त्रियों के द्वारा ही नाचा जाता है। इसमें घूंघट खोलकर वे क्षिप्र गति से नाचती हैं—

'घुंघटा बइरी मोर,
खुल कै नजरिया ना मारइँ देइ।'

इसमें स्त्रियों की संख्या पांच या सात रहती है।

बरइया नृत्य

इसमें स्त्रियां अपने शरीर और वस्त्रों को हाथ से—कहीं-कहीं नीम की लँउची से—झाड़ती हुई नृत्य करती हैं। वे प्रदर्शित करती है कि 'बरै' उनके ऊपर लिपटी है, कुछ ने काट लिया है, उनसे मुक्ति पाने के लिए वे अपने अंगों को झाड़ती हैं।

इस तरह बघेली में नृत्य-कला के अंतर्गत अनेक प्रकार के नृत्य आते हैं। करमा तथा शैला-नृत्य उड़ीसा, बिहार और सौराष्ट्र के आदिवासियों में भी प्रचलित हें।

काव्य-कला

काव्य-कला के अन्तर्गत बघेली लोक-साहित्य के विविध प्रकार आते हैं—

(१) लोक-गीत
(२) लोक-कथा
(३) कहावत-मुहावरे
(४) विशिष्ट शब्द-कोष

इनके अध्ययन के विविध प्रयत्न समय-समय पर होते रहे हैं। डा० ग्रियर्सन ने 'लिंग्विस्टिक सर्वे आफ इंडिया' में बघेली बोली के उदाहरण में कुछ लोक-कथाओं का उल्लेख किया है। डा० धीरेन्द्र वर्मा ने 'ग्रामीण हिन्दी' में बघेली की कुछ कथायें प्रस्तुत की हैं। डा० उदयनारायण तिवारी ने अपने 'भोजपुरी भाषा और साहित्य' के परिशिष्ट में एक बघेली लोक-कथा का संकलन किया है। पं० रामनरेश त्रिपाठी ने अपने 'ग्राम-साहित्य' में कई बघेली लोक-गीतों को सम्मिलित किया है।

बघेली लोक-गीतों पर अलग से, कुछ व्यवस्थित ढंग से श्री लखनप्रताप सिंह 'उरगेश' का 'बघेली लोकगीत' प्रथम भाग निकला है। इस दिशा में प्रो० श्रीचंद जैन ने पर्याप्त कार्य किया है। उन्होंने बघेली लोकगीतों और कथाओं का अच्छा संकलन किया है।

इस निबंध के लेखक ने अपने पी-एच० डी० के शोध-ग्रंथ के लिए दो हजार गीत, नौ सौ लोक-कथायें, तीन हजार कहावत-मुहावरे और एक हजार विशिष्ट शब्द-कोष का संकलन किया हैं। अभी तक 'बघेली लोक-रागिनी' दो भागों में प्रकाशित हुई है।

बघेली लोक-साहित्य के संकलन और अध्ययन से पता चलता है कि उसका वर्ण्य विषय तीन भागों में विभक्त किया जा सकता है :—

(१) पौराणिक,
(२) सामाजिक,
(३) ऐतिहासिक ।

जादू और चमत्कार का प्रभाव इन सभी विभागों में समान रूप से मिलता है।

रस की दृष्टि से यहां करुण और शृंगार का प्राधान्य है। वीर, हास्य, रौद्र और भयानक भी कुछ गीतों में मिल जाते हैं। भावों की तीन अवस्थायें मिलती हैं :—

(१) उल्लासावस्था,
(२) ओजावस्था,
(३) क्षोभावस्था ।

अभिव्यक्ति या शैली के भी कई रूप मिलते हैं—

(१) अनुष्ठानिक,
(२) वर्णनात्मक,
(३) भावात्मक,

बघेली का विशिष्ट शब्द-कोष इस तरह है—

(१) विविध श्रम में लगे हुए श्रमजीवियों के समाज में प्रचलित शब्द ।

(क) खेतिहर-मजदूर
(ख) खेतिहर-किसान

(ग) लोहार-बढ़ई
(घ) बनिज-व्यापार

(२) फल-फूलों और प्राकृतिक दृश्यों से संबंधित शब्दावली
(३) भोजन-संबंधी शब्द
(४) घरेलू वस्तुओं और जीवन के शब्द
(५) वे शब्द, जिनके पीछे कथा या इतिहास हो
(६) धार्मिक जीवन से संबद्ध शब्द
(७) कुछ विशिष्ट विशेषण
(८) फुटकर

बुन्देली चित्र-कला

बुंदेली लोक-कला का भी विशेष महत्व है। बघेली चित्रकला की ही भांति बुंदेली की लोक-चित्र- कला में भित्ति-चित्र मिलते हैं। इनका संबंध अवसरविशेष के संस्कारों या लोकाचारों से रहता है। दीपावली, नागपंचमी, विवाह तथा जन्मोत्सव के समय दीवाल पर या चौक में चित्र बनाने की परम्परा बुंदेलखंड में भी मिलती है।

बुंदेलखंड की लोक-चित्र-कला का सर्वोत्कृष्ट नमूना सुराती है। यह दीपावली के समय 'लक्ष्मीपूजन' में बनाया जाता है। सुराती में कई प्रकार की भावनाओं का समन्वय किया गया है।

नागपंचमी के दिन समूचे बुंदेलखंड में नाग का चित्र बनता है, अधिकांशतः भित्ति में, और कहीं-कहीं कागज में। बघेलखंड में नाग को एक कटोरे में दूध पिलाती हुई स्त्री भी चित्रित की जाती है; पर बुंदेलखंड में ऐसा नहीं होता।

हरछठ के दिन भी बुंदेलखंड में चित्र बनाने का प्रचलन है। इस दिन हल की आकृति बनाते है, बीच में एक झाड़ी का दृश्य चित्रित करते है।

बुंदेलखंड में सुराती गेरू से और नागपंचमी तथा हरछठ के चित्र दूध तथा कोयले को मिलाकर बनाते हैं। ओरछा के आस-पास के गांवों में कुछ वीरपुरुषों की आकृतियां भी चित्रित की जाती हैं।

बुन्देली नृत्य-कला

बुंदेली लोक-कला के अन्तर्गत तीन प्रकार की प्रमुख नृत्य-विधायें आती हैं—

(१) बेड़नी कौ नाच,
(२) जोगिया,
(३) लांगी,

'बेड़नी कौ नाच' केवल स्त्रियों में प्रचलित है। टीकमगढ़ में इस नाच को 'राई, कहते हैं; दतिया, ओरछा और सेंवढ़ा में 'जोड़नी कौ नाच' के नाम से यह प्रसिद्ध है। वाद्य की गति के अनुसार ही यह नृत्य चलता है।

जोगिया नृत्य में अभिनय कला भी सम्मलित है। जिस दिन बारात लड़कीवाले के यहां पहुंचती है, उस दिन लड़के वाले के घर स्त्रियां नाचती, गाती और अभिनय करती हैं। कोई लड़के की सास बनती है, कोई ससुर, कोई पति—गाती, नाचती और उछलती नारियां 'जोगिया' के द्वारा अपनी प्रसन्नता व्यक्त करती हैं। कोई-कोई इन्हें 'जोगीड़ा' भी कहते हैं।

लांगी नृत्य होली के दिनों में नाचा जाता है। स्त्री और पुरुष दोनों मिलकर नाचते हैं। अंग-संचालन में विलासिता की अभिव्यक्ति रहती है। पाँवों की गति तीव्र रहती है। एक पंक्ति में स्त्रियां रहती हैं, दूसरी में पुरुष। जब पुरुष बढ़ते हैं, तब नाचती हुई स्त्रियां पीछे हटती है और जब स्त्रियां आगे बढ़ती हैं, तब पुरुष पीछे हटते हैं।

दीपावली के अवसर पर बुंदेलखंड के अहीर राई और जगउनी नाचते हैं।

बुन्देली लोक-काव्य-कला

बुदेली लोक-काव्य-कला पर पर्याप्त कार्य हुआ है। सर्वश्री कृष्णानन्द गुप्त, बनारसीदास चतुर्वेदी, शिवसहाय चतुर्वेदी, गौरीशंकर द्विवेदी, उमेश मिश्र, सत्यव्रत अवस्थी, दुर्गाशंकर समाधिया, हरगोविंद गुप्त, लक्ष्मी नारायण, लक्ष्मीनारायण पथिक, अम्बाप्रसाद श्रीवास्तव, श्रीचंद जैन, प्रभुदयाल गोस्वामी ने लोक-साहित्य की दिशा में महत्वपूर्ण कार्य किये हैं।

बुंदेली लोकगीतों पर उमेश मिश्र, हरगोविंद गुप्त, प्रभूदयाल गोस्वामी के संकलन मिलते हैं। श्री शिवसहाय चतुर्वेदी ने लोक-कथाओं पर विशेष रूप से कार्य किया है। बुदेली लोक-कथायें, पाषाण-नगरी और गौने की बिदा उनके प्रसिद्ध कथा-संग्रह हैं। श्रीचंद जैन और अम्बाप्रसाद जी की विध्य-भूमि की अमर कथाओं का भी विशेष महत्व है।

कहवात और मुहावरों पर दुर्गाशंकर समाधिया का कार्य उल्लेखनीय है। इनके दो संकलन प्राप्त हैं। इन्होंने कहा-

वतों और मुहावरों का वैज्ञानिक वर्गीकरण भी किया है। सबसे महत्व का कार्य स्वर्गीय समाधिया ने 'बुदेली शब्द-कोष' के संग्रह में किया है। इनके अप्रकाशित बुदेली-शब्द-कोष के अध्ययन से इस जन-भाषा के अगाध भंडार का पता चलता है। श्री समाधिया ने लोक-गीतों तथा बुंदेली की अन्य कविताओं का उदाहरण भी शब्दों के अर्थ और प्रयोग की उपयुक्तता सिद्ध करने के लिए दिया है।

बुंदेली लोक-साहित्य में भी पौराणिक गाथाओं का आधार अधिक मिलता है; किन्तु जहां बघेली में राम से संबंधित कथायें अधिक हैं, वहां बुंदेली में कृष्ण से संबंधित। इसी-लिए बघेली लोक-साहित्य की अभिव्यक्ति मे मर्यादा का भाव है, बुंदेली में सौदर्य का।

बघेली में जादू-टोने या टोटके का प्रभाव अधिक मिलता है, बुंदेली में कम। इसी तरह आदिम मनोवृत्तियों के अव-शेष जितने बघेलखड में मिलते है, उतने बुदेलखंड में नहीं।

मनोविज्ञान या रस के विचार से बुंदेली की लोक-काव्य-कला में क्षोभावस्था और उल्लासावस्था के भाव अधिक मिलते हैं। उनके गीतों में कृष्ण के प्रभाव के कारण करुणा का भी पर्याप्त समावेश मिलता है। उल्लासावस्था के अन्तर्गत श्रृंगार के ही गीत अधिक मिलते हैं। बघेलखंड में ओजावस्था और उल्लासावस्था के ही गीत अधिक हैं। आदिवासियों के गीतों में कठिनाई से ही करुण-भाव मिलते हैं। अबाध श्रृंगार और ओज ही उनके गीतों के स्वर हैं।

सामाजिक जीवन से प्रेरणा लेनेवाले गीतों और लोक-कथाओं में विभिन्न प्रकार के सामाजिक स्तरों का समावेश बघेलखंड की ही भांति बुंदेलखंड में भी मिलता है। इसी से भंगी, चमार, डोमार, सुहार, कोल, भील, क्षत्रिय, वैश्य और ब्राह्मणों के गीतों और कथाओं को सहज ही अलग किया जा सकता है। इनमें जातिगत संस्कारों और विचारों की छाप बराबर मिलती है।

इस तरह बुंदेली और बघेली लोक-कला अपने आप में महत्वपूर्ण हैं तथा भारत की लोक-कला में उनका प्रमुख स्थान है।

राजीवलोचन अग्निहोत्री

विन्ध्य के प्राचीन साहित्यकार

प्रस्तुत लेख का संबंध उन रससिद्ध कवीश्वरों से है, जिन्होंने विन्ध्य-प्रदेश के वर्तमान क्षेत्र में सम्मिलित देशी राज्यों को अपने जन्म, निवास अथवा साहित्य से धन्य किया है, जो खड़ी बोली के पूर्व की हिन्दी भाषाओं के कवि थे। ये सभी सन् १९०० के पूर्व के हैं।

विन्ध्य प्रदेश की वर्तमान सीमा के अन्तर्गत गाथा के कवि नहीं हुए है। जगनिक कालिजर और महोबे से संबंधित था, यद्यपि उसका आल्हखंड पूरे विन्ध्य-प्रदेश में लोकप्रिय है। अस्तु-विन्ध्य का हिन्दी-साहित्य मध्यकालीन साहित्य है। इसमे निर्गुण धारा की ज्ञानमार्गी और प्रेममार्गी शाखाएँ तथा सगुण धारा की रामभक्ति और कृष्णभक्ति शाखाएँ सम्मिलित है। यहां यह स्पष्ट रूप से समझ लेना होगा कि बघेलखंड रामभक्ति का केन्द्र रहा है, यद्यपि कृष्ण-भक्ति की पर्याप्त मात्रा भी मिलती है। साथ ही इधर अवधी का ब्रज की अपेक्षा अधिक प्रयोग है, जिसमें बघेलखंडी का भी पुट है। दूसरी ओर बुन्देलखंड के साहित्य को हम एकान्त भाव से कृष्ण-साहित्य कह सकते है। उधर वृन्दावन और ब्रजभूमि की संस्कृति का शत प्रति शत प्रभाव रहा है। रीति के कवि भी इस क्षेत्र में विशेष महत्व रखते हैं।

निर्गुण धारा

विन्ध्य-वसुन्धरा में निर्गुण धारा का प्रवाह मन्द रहा है। इस धारा के कवियों की वाणी १६वीं शती से २०वीं शती विक्रमाब्द तक यत्र-तत्र सुनाई अवश्य देती रही है।

इन क्षेत्रों में ज्ञानाश्रयी शाखा के प्रथम कवि धरमदास हैं। ये कबीर के शिष्य और बान्धवनरेश वीरसिंह देव (सं० १५२४–१५८७) के समकालीन थे। वीरसिंह बोध (प्रकाशित) इन्हीं की रचना बताई जाती है। कुछ लोगों के मत से इनका जन्म संवत् १४९० है। ये बान्धवगढ़ के अथवा बान्धव-राज्य के किसी स्थान के कसौधन बनिया थे और छत्तीसगढ़ में कबीर के एकेश्वरवाद और रहस्यवाद के प्रचारक थे। सं० १५७५ में ये कबीर की गद्दी पर आसीन हुए और १५९५ वि० के निकट परलोकवासी हुए। इनकी बानी में पूरबी और अवधी दोनों भाषाएँ मिलती हैं। उँचेहरा-निवासी सुखमनिदास इनकी वंश-परम्परा और पंथ के अनुयायियों में है। धरमदास जी के कविता-संग्रह कबीर के द्वादश पंथ, निर्भय ज्ञान, आत्मबोध और कबीर बानी है। इनकी कविता में भाव सरल है और कबीर की कर्कशता नहीं है। इनकी प्रकाशित 'धनी धरमदास जी की शब्दावली' से एक उदाहरण प्रस्तुत किया जाता है :—

> 'झरि लागै महलिया गगन घहराय।
> खन गरजै खन बिजुली चमकै लहरि उठे सोभा बरनि न जाय।
> सुन्न महल से अमृत बरसै प्रेम अनन्द ह्वे साधु नहाय।
> खुली केवरिया मिटी अँधियरिया धनि सतगुरु जिन दिया लखाय
> धरमदास बिनवै कर जोरी सतगुरु चरन में रहत समाय।

ज्ञानाश्रयी शाखा के दूसरे कवि महात्मा अक्षर अनन्य का जन्म ओरछे के मानसाह कायस्थ के पुत्र रूप में संवत् १७१० के आसपास हुआ था। आप सेंवढ़ा राज्य के नरेश श्री पृथ्वी सिंह रसनिधि के गुरु और पन्ना-नरेश छत्रसाल के समकालीन थे। इनकी कविता में निर्गुण सिद्धान्तों का सरलतम विवेचन और सरस प्रवाह है। इनके ३१ ग्रन्थों का उल्लेख मिलता है, जिनमें से २२ प्राप्त हैं। 'प्रेम दीपिका' खण्ड काव्य और दुर्गा सप्तशती का भावानुवाद 'उत्तम चरित्र' प्रकाशित हैं। 'अनन्य ग्रन्थावली' के चौदह अध्यायों में से चार नागरी-प्रचारिणी सभा द्वारा प्रकाशित किये जा चुके हैं तथा शेष के प्रकाशन का भी निर्णय हो चुका है। सम्पादन

का कार्य-भार श्री अम्बा प्रसाद श्रीवास्तव को दिया गया है। अनन्य की रचना का एक उदाहरण प्रस्तुत किया जाता है—

ब्रह्मा विष्णु रुद्र तीनों रूप ये त्रिगुण भेद
त्रिगुण को रूप एक निर्गुण निदान है।
एक ही ते तीन होत तीन मिलि एक होत
तीन चार नाहीं एक कारण प्रमान है।।
जैसे एक सूत को जनेऊ तीन ताग जान
तीनहू को सूत एक जाहिर जहान है।
अक्षर अनन्य ज्ञानवन्त गति एक लहै
भिन्न भिन्न मानत ते मानस अजान है।।

हिन्दी की प्रेममार्गी शाखा में पन्ना के प्राणनाथ स्वामी का नाम हमें मिलता है। आप आचार्य निजानन्द द्वारा प्रवर्तित 'परिणामी' मत के प्रचारक थे। आपका जन्म सं० १६७५ में जामनगर में क्षत्रिय कुल में हुआ था और पहला नाम मिहिरराज था। कुछ दिन आप जामनगर के प्रधान मंत्री भी रहे। औरंगजेब के विरुद्ध रणचण्डी जगाने में आप छत्रसाल के प्रेरक और मंत्रदाता बने और गुरु भी बन गए। आपका आश्रम किलकिला नदी के तट पर था। स्वामी प्राणनाथ का मंदिर आज भी पन्ना में भव्य रूप में खड़ा है, जहां मुकुट की पूजा होती है। आपके अप्रकाशित विशाल ग्रन्थ 'कुलजम स्वरूप' में १८००० छन्द बताए जाते हैं। भाषा में फकीरी लटके का पुट और उर्दू, राजस्थानी,अवधी और ब्रज का सम्मिश्रण है—

'फुरमान मेरे महबूब का लै आया अरस से रसूल।
भज्या अपणी अरवाहों पर साहिब हुए सनकूल।।'

आपके अन्य ग्रन्थ कीर्तन, कयामतनामा, पदावली, प्रगटबानी, ब्रह्मबानी, राजविनोद आदि हैं।

प्रेम-मार्ग की सूफी परम्परा में रीवा के महाराज विश्वनाथ सिंह के समकालीन शाह नजफ अली सलोनी विक्रम की १९वीं शती के अन्त और २०वीं शती के प्रारम्भ में हुए। सलोन (रायबरेली) के शाह करीम अली इनके पीर थे। ये अन्धे थे और रीवा के घोघर मुहल्ले में रहते थे। सूफी-मत में सर्वोत्तम फारसी प्रेमकाव्य रूमी की मसनवी है। शाह नजफ अली ने अवधी में दोहे-चौपाइयों में इसका अनुवाद 'प्रेम-चिनगारी' नाम से किया है। यह हिजरी सन् १२६१ (सं० १९०२) को पूर्ण हुआ। दूसरा काव्यग्रन्थ 'अखरावट' है, जिसमें फारसी की बर्णमाला के प्रत्येक अक्षर पर कुछ छन्द हैं। प्रेम चिनगारी से एक उदाहरण प्रस्तुत किया जाता है—

'जेहिं हिय प्रेम न आगि लगावै। सुफल होय जो जन्म न पावै।
प्रेमभेद का भेदी सोई। रहै अचेत चेत सब कोई।।'
प्रेम बचन सरवन सुन पावै। सो रसना कर मोल चुकावै।'

इसी प्रेममार्गी शाखा के अंतर्गत दतिया के फकीर ऐनसाई को माना जा सकता है। इनका जन्म ग्वालियर में सं० १९०० के निकट हुआ था। ये दतिया आकर आसिफशाह की टौरिया पर रहा करते थे। प्राय: ६० वर्ष की आयु में इनका निधन हुआ। 'ऐनसाई' की हिलोरें विख्यात हैं। आपने गीता का पद्यानुवाद कुंडलिया छंद में किया है। दतिया में इनके शिष्य अभी वर्तमान हैं।

सगुण धारा

विन्ध्य-प्रदेश में हिंदी-काव्य की सगुण धारा मुक्त रूप से प्रवाहित हुई है, यहां तक कि रीति-ग्रन्थों के रचयिता कवि भी राम और कृष्ण की भक्ति की तरंगों में डुबकी लगाते हुए दृष्टिगट होते है। सगुण धारा तथा रीति-ग्रंथों के रचयिता कवि समस्त हिंदी साहित्य-जगत् मे अपना तथा अपनी जननी विंध्य-भूमि का नाम उज्वल कर गये हैं। आचार्य कवि केशवदास, पद्माकर, लोक-साहित्य के कवि ईसुरी, महाराज विश्वनाथ सिंह, महाराज रघुराज सिह तथा भक्त कवि हरिराम व्यास की रसवती वाणी ने हिंदी-साहित्य का भंडार भरने में अपने-अपने क्षेत्र में अद्वितीय प्रतिभा और लगन का परिचय दिया है। कहना न होगा कि इस काव्य की कविता बहुत बड़े अंश में राजाओं के मानस में अथवा राज्याश्रय में पल्लवित हुई है। इस दृष्टिकोण से हम रीवा, ओरछा, पन्ना और दतिया राज-दरबारों को विशेष महत्व देते हैं।

रीवा राज-दरबार

इसके पूर्व कि हम रीवा राज्य के राज-दरबार का प्रसंग उठायें, हमें एक बार रीवा राज्य नाम पड़ने के पूर्व के इतिहास की ओर देखना होगा। बान्धवगढ़ राजधानी में महाराज रामचन्द्र का राज्याभिषेक सम्वत् १६०८ में हुआ था। 'वीर-भानूदय काव्यम्' नाम का संस्कृत ग्रंथ देखने से पता चलता है कि जब रामचन्द्र युवराज थे, तब संगीत सम्राट् ध्रुपद गायकी के विशेष मर्मज्ञ तानसेन युवराज के साथ रहते थे और उनसे अत्यंत सम्मानित थे। ये सम्वत्

१६१८ में अकबर के दरबार में भेजे गये। सम्भवतः वांधवगढ़ के इस निवास-काल में ही तानसेन ने संगीत-सार नामक ध्रुपद गीतों का संग्रह तथा राग-रागिनियों का पद्यवद्ध विवेचन तैयार किया। इस ग्रंथ में राजाराम (चन्द्र) का पर्याप्त उल्लेख है। इन्होंने रागमाला और श्री गणेश स्तोत्र भी लिखे है। ये रचनाएं सं० १६१७ की है।

इसी काल में जब महाराज रामचन्द्र के पिता वीर भानुदेव का शासन था, तब सन् १५४२ में हुमायूं के दरबारी कवि नरहरि बंदीजन अकबर की माता हमीदा बानू बेगम को वीरभानु के संरक्षण में गहोरा और बान्धवगढ़ लाये थे। उन्होंने वीरभानु की प्रशंसा में अनेक छंद रचे थे। रामचन्द्र पर भी इनकी रचनाएं मिलती है। नरहरि के पुत्र हरिनाथ, जो अकबर के दरबार के कवि थे, महाराज रामचंद्र की सभा में अपनी विपत्ति सुनाने आये थे और एक ही उक्ति पर एक लाख सिक्के ले गये थे। रामचंद्र के दरबार में हिंदी के अन्य कवि भी थे, जिनका उल्लेख तो मिलता है, पर कवितायें नहीं।

इन्हीं रामचन्द्र के एक नौकर सेन नापित थे। धीरे-धीरे ये बहुत बड़े महात्मा सिद्ध हुए। इनका नाम सेन भगत पड़ा। ये स्वामी रामानंद के शिष्य थे। सेन की रचना में ब्रजभाषा का मधुर प्रयोग है। इनकी कविता सिखों के ग्रंथ साहब में है—

'जब सों गोपाल मधुवन को सिधारे आली
मधुवन भयो मधु दानव विषय सों।
सेन कहै सारिका सिखंडी खंजरीट सुक
मिलि के कलेस कीन्हों कालिन्दी कदम सों।।'

संवत् १६९८ में नीलकण्ठ ने अमरुशतक का हिन्दी पद्यानुवाद 'अमरेश विलास' अथवा 'अमरसिंह देव विलास' नामक ग्रन्थ लिखा। नागरी-प्रचारिणी सभा, काशी ने सन् १९०३ की खोज-रिपोर्ट में इसका उल्लेख किया था। इसकी सूचना चन्द्रधर शर्मा गुलेरी ने दी थी। मिश्रबंधु-विनोद, द्वितीय भाग में भी इसका उल्लेख है। मिश्र-बन्धुओं का यह अनुमान ठीक प्रतीत होता है कि ये नीलकण्ठ भूषण के भाई नीलकण्ठ त्रिपाठी उपनाम जटाशंकर थे। अमर सिंह देव संवत् १६७३ में रीवा की गद्दी पर बैठे। अमरेश विलास में इनके पूर्वज बघेल-नरेशों की यशोगाथा प्रारम्भ में वर्णित है। अन्तिम छन्द इस प्रकार है—

'काम के प्यास ते कामिनि के जबहीं ते पिये अधरा सधरा मैं।
जौन सुधारस हूँ ते अनूपम या बिधि और कहौ रस का मैं।।
'कंठ' कहे तब ते बहुती बिधि दूगुन आस बढ़ी फिरि वामैं।
ताको अचंभो कहा करिये हौ जुपै वह लोन लुनाई है तामैं।।'

इसके पश्चात् १९वी शती में महाराज जयसिंह देव, विश्वनाथ सिंह और रघुराज सिंह की त्रयी विख्यात है। ये तीनों नरेश स्वयं हिन्दी के उत्कृष्ट कवि और अनगिनत कवियों के आश्रयदाता थे। पूरी १९वीं शती हिन्दी-काव्य की श्री-वृद्धि की दृष्टि से अत्यधिक महत्वपूर्ण है।

महाराज जयसिंह देव (राज्य-काल सं० १८६६–९१) का सबसे महत्वपूर्ण विशाल ग्रन्थ हरिचरितामृत है, जिसमें दोहे-चौपाइयों में २४ अवतारों की कथा पृथक् रूप से वर्णित है। इसमें से कृष्णावतार की कथा 'हरिचरित चन्द्रिका' का केवल पूर्वार्द्ध प्राप्त है, जो प्रकाशित है। इसमें और रामावतार की कथा 'रामाश्वमेध' में काव्य-छटा उत्कृष्ट है। 'कृष्ण सिगार तरंगिनी' पृथक् रसमयी रचना है। गंगालहरी, त्रयवेदान्त-प्रकाश, निर्णय-सिद्धान्त, अनुभव-प्रकाश और चतुःश्लोकी भागवत अन्य ग्रन्थ है। भापा ललित,सरस और कथा प्रवाह से पूर्ण है। कुछ दोहे बहुत अच्छे है—

'अँग अँग रूप अनूप में झलकति जोबन ज्योति।
डाँक दिये जिमि नगन में चटक चौगुनी होति।।
यक भौंहनि तन अधर दल बिबस राग रिसि जोर।
बिषम कटाछन हनत सी रही हेरि हरि ओर।।
रास रसिक रस रमित मन ज्ञान निरत किमि होय।
मधुप सुधारस छोंड़ि कै छाँछ न पीवत कोय।।
ऊधो इन अँखियानि सों तुम निरखहु नँदलाल
बहुरि ज्ञानपथ मन रहै तौ उपदेसहु बाल।।'

जयसिंह देव के पुत्र महाराज विश्वनाथ सिंह का जन्म संवत् १८४६ में हुआ था। इनका राज्य-काल १८९१ से १९११ वि० तक है। संवत् १८७० से इन्होंने युवराज अवस्था में ही संस्कृत और हिन्दी के ग्रन्थों की रचनाएँ प्रारम्भ कीं। हिन्दी में इनके ग्रन्थ ५० से ऊपर हैं, जिनमें से अधिकांश अप्राप्य हैं। हिन्दी के प्रथम नाटक 'आनन्द रघुनन्दन' के रचयिता ये ही थे। आपने कबीर के बीजक की टीका की है, जो प्रकाशित है। कबीर के मतों की व्याख्या के रूप में ही इन्होंने ककहरा, रमैनी, शब्द, मंगल आदि ग्रन्थों की रचना की। विनय-पत्रिका की भी आपने टीका लिखी है।

संगीत-शास्त्र पर भी आपने कविताएँ लिखी है। काव्य की दृष्टि से उत्तम काव्य प्रकाश, गीतावली, आनन्द रामायण, भुशुण्डि रामायण और रस धुनि अच्छे ग्रन्थ है। संस्कृत में इनका राधावल्लभीय भाष्य दर्शन-शास्त्र का अत्यधिक महत्वपूर्ण ग्रन्थ है।

महाराज विश्वनाथ सिह के सुपुत्र महाराज रघुराज सिंह का जन्म संवत् १८८० में हुआ था। आपका राज्य-काल १९११ से १९३३ वि० तक है। आप संवत् १९०० से कविताएं करने लगे थे। रामरसिकावली (भक्तमाला), आनन्दाम्बुनिधि (भाषा भागवत), रुक्मिणी परिणय, यदुराज विलास और रामस्वयंवर आपके प्रसिद्ध और प्रकाशित ग्रंथ हैं। रामस्वयंवर की काव्य-छटा सर्वोत्तम है—

'दोहुंन के बाँके नैन दोहुंन को देखि थाके
दोहूँन के हीन उपमा के सोभ साके हैं।
कंज मीन नाके भरे प्रेम के सुधा के
मंद करन मृगा के न गिरा के न उमा के हैं॥
भनै 'रघुराज' अनुराग के मजा के मढ़े
काके समता के एक एक छबि छाके है।
मेरे मनसा के गुणे कहौं न मृषा के बैन
शील करुणा के कछु अधिक सिया के है॥'

रघुराज सिंह के अन्य हिन्दी काव्य-ग्रन्थ सुन्दर शतक, जगन्नाथ शतक, विनय-पत्रिका, भक्ति-विलास, रघुराज-विलास, गंगा-शतक, पदावली एवं स्फुट हैं। आपने परम प्रबोध नाटक की लिखा है तथा भागवत की ब्रजभाषा में टीका 'व्यंग्यार्थचन्द्रिका' नाम से लिखी है। आपने संस्कृत में भी ८ काव्य-ग्रंथ लिखे हैं, जिनमें जगदीश शतक उत्तम है।

उक्त तीनों नरेश भक्त थे और रामकृष्ण के उपासक कवि थे। ये सखी सम्प्रदाय को मानते थे। तीनों की भाषा में ब्रज और अवधी का मिश्रण तथा बघेली का पुट है। कवित्व की दृष्टि से रघुराज सिंह प्रथम, जयसिंह देव द्वितीय और विश्वनाथ सिंह तृतीय ठहरते हैं।

विश्वनाथ सिंह और रघुराज सिंह के कविता-काल में हिन्दी-कवियों की बाढ़ आ गयी। दुर्गादास ने 'अजीत फतेह' अथवा 'नायक रायसा' नामक ओजपूर्ण ग्रन्थ लिखा, जो प्रकाशित है। नरहरि बंदीजन के वंशज अजबेश के दो ग्रन्थ 'स्वरूप विनोद' (उदयपुर के राणा स्वरूप सिंह का चरित्र) और 'रीवा राज्य-वंशावली' प्राप्त हैं। आपके ओजपूर्ण कवित्त अधिक अच्छे हैं। आपके पुत्र महासुख भी इसी काल के अच्छे कवि थे। अजबेश के पिता शिवनाथ अपने अन्तिम काल में रीवा आ गये थे और जयसिंह देव के दरबार में काव्य-रचना करते थे। इस वंश पर सरस्वती सदा प्रसन्न रही हैं।

रामनाथ प्रधान विश्वनाथ सिंह के मंत्री थे। आपने १२ काव्य-ग्रन्थ रचे है, जिनमें से नीति-संबंधी छन्द 'प्रधान नीति' नाम से प्रसिद्ध है। 'राम होरी रहस्य' (१९१२) में कवित्व अच्छा बन पड़ा है, समस्या-पूर्तियां सुन्दर हैं। बख्शी समन सिंह 'समनेश' विश्वनाथ सिंह के समय के और 'पिंगल काव्य-विभूषण' के रचयिता थे। आपके पुत्र गोपालदत्त ने श्रृंगार पचीसी' की रचना की। इसी परिवार में गदाधर और कामताप्रसाद अच्छे कवि हुए। बख्शी हनुमान प्रसाद का 'साहित्य सरोज' अच्छा काव्य-ग्रन्थ है। आपने समस्याओं की सुन्दर पूर्तियां लिखी हैं।

इस काल के उच्च कोटि के कवियों में संत कवि का स्थान प्रथम है। आपका 'नर्मदाशतक' प्रकाशित है। 'लक्ष्मेश्वर भूषण' और 'भवानी नखशिख' अन्य संग्रह है। इनकी रचना की एक बानगी देखिये—

'पँचरंगी कंचुकी मैं उन्नत उरोज कसे,
लसैं केसपास बनरुह कुसुमालिका।
गुंजन के हार हलैं हियरे गरे मैं सीप,
पोही बिच बीच लरैं पोतन की जालिका।
रेसमी किनारीदार सारी की कछोरी कसे,
थहरै नितम्ब गावैं दै दै करतालिका।
रेवा की तरंगनि मैं अंगनि को धोइ चलैं,
नीर-भरी गागरी लै तीर भिल्ल-बालिका॥'

इनके अतिरिक्त खासकलम जुगुलदास 'युगुलेश' ने 'विश्वनाथ सिंह चरित्र' और 'बघेल वंशागम निर्देश' लिखा है। भौन कवि के कवित्त प्रसिद्ध है। पं० गंगाराम चौबे के पुत्र तुलाराम चौबे ने 'संगीत-रत्नाकर' का हिन्दी अनुवाद किया। एक कवि ने हितोपदेश का पद्यानुवाद किया। हर प्रसाद 'हरिचन्द' ने साहित्य सुधानिधि, कालिका नखशिख, श्रृंगार-चन्द्रोदय आदि सुन्दर काव्य-ग्रन्थ लिखे हैं। गोविन्द कवि हास्य के कवि थे। आपने 'रेलपचीसी' और 'गोविन्दविनोद' लिखे हैं। श्रृंगार रस के कवि किशोर के कवित्त, छप्पय और कुंडलियां प्रसिद्ध हैं। गया प्रसाद ने नर्मदाष्टक और

नृसिंहाष्टक लिखे है। एक अन्य कवि गोविन्द पांडेय ने लक्षण ग्रन्थ 'रस-कल्पद्रुम' और 'गर्भसंहिता' का अनुवाद 'रसिक सुधार्णव' नाम से किया है तथा अन्य ग्रन्थ भी लिखे हैं। इन्हीं दरबारी कवियों की सूची में माधव, फेरन, घनश्याम शुक्ल, जमुनेश, वृन्द, रसिक, सुमति और गोकुल प्रसाद के नाम आते हैं। इसी काल में बघेलखंड के प्रसिद्ध भजनानन्दी गायक संत मधुर अली थे। ये गोविन्दगढ़ में एक मन्दिर में रहते थे और रघुराज सिंह से आर्थिक सहायता प्राप्त करते थे। आपका महाराज से अच्छा साथ था। आप सखी भाव के भक्त थे और अपने बनाए भजन गाकर विभोर होकर नृत्य करते थे। इन भजनों का संग्रह 'युगल-विनोद' नाम से प्रकाशित है और वे भजन गवैयों के कंठों मे आज भी बसे हैं। आपका एक गीत इस प्रकार है--

'जुगुल छबि जोहन जोग अली।
अति मनहरन लाल दसरथ के, सोइ मिथिलेस लली॥
नील कमल सम छटा राम की, सिय जनु चम्प कली।
दम्पति बदन बिलोकि मनोहर, जीवत मधुर अली॥'

रामनगर के विहारी कवि और सरमनलाला भी इसी काल में हुए।

कवित्व की उक्त धारा का प्रभाव इन नरेशों के अपने परिवार पर पड़े बिना नहीं रहा। महाराज विश्वनाथ सिंह के अनुज माधवगढ़ के रावेन्द्र लछिमन सिंह हिन्दी के उत्कृष्ट कवि थे। आपका 'कृष्णायन' नामक काव्य-संग्रह दोहे-चौपाइयों में १६ खंडों में अप्रकाशित रूप में रीवा के सरस्वती-भंडार में रखा है। महाराज रघुराज सिंह की चंदेलिन महरानी शिवदानि कुंवरि (जो व्यंकट रमण सिंह की माता थीं) कवयित्री थीं। आपने 'सिया स्वयंवर' ग्रंथ संवत १९४४–४७ में लिखा। यह १७ अध्यायों में है। रघुराज सिंह की कन्या विष्णु कुवरि संभवतः बूंदी में ब्याही थीं। उन्होंने 'पद-मुक्तावली' और 'श्याम आनन्दिनी' दो ग्रन्थों में संगीत और भक्ति इससे पूर्ण पद लिखे हैं। इनके पदों में मीरा का स्वर गुंजरित है। उनकी भाषा में राजस्थानी की प्रचुरता और अवधी का मिश्रण है--

'मधुकर गुंजत जोर से सखी री
पपीआ करत किलोल जी।
बन डोलत पवन झकझोरे आली री
जिय थिर नां रहे मोर जी॥'

मैहर के अखाड़े के संस्थापक रामसखे महाराज भक्त कवि थे और मधुर अली के समान ही मधुर भजन लिखते थे। आपके पद भी इस क्षेत्र के गवैयों के कंठों में बसे हैं। इनका जन्म गोड़ ब्राह्मण कुल में जयपुर राज्य में संवत् १७५६ में हुआ था। मैहर में बहुत वर्ष बिताने के पश्चात् संवत् १८४२ में आप साकेतवासी हुए। श्रीमन्नृत्यराघव मिलन, दोहावली, कवितावली आदि आपके ग्रंथ है। आप संगीतविद्या में पारंगत थे। आपकी संप्रदाय-परम्परा मैहर में चलती जा रही है।

ओरछा की कवि-परम्परा

गढ कुडार के महाराज रुद्रप्रताप के उत्तराधिकारी भारतीचन्द के राज्य-काल में ओरछा राजधानी बनी। भारतीचन्द संवत् १५८८ से १६११ तक शासन करते रहे। आप कवियों के आश्रयदाता थे। गुलाब कवि कायस्थ और मनसाराम सिद्ध ने ओजस्विनी रचनाएँ इनके दरबार में लिखी है। गुलाब कवि का संबंध मलखान सिंह से भी था। आपका 'सेरबध' ग्रन्थ प्राप्त है। मनसाराम के ग्रन्थ गुप्तभेद सरोदय, युद्ध विजय, अजपा जोग और आवागमन मिटावनी हैं। इसी काल में खेमराज ब्राह्मण ने 'प्रताप हजारा' ग्रन्थ लिखा है, जिसमें रुद्रप्रताप और उनके पुत्रों तथा राजधानियों का वर्णन है। रस-रीति के प्रथम आचार्य कृपाराम ने १५९८ वि० में ३९९ छन्दों का ग्रन्थ 'हिततरंगिणी' लिखा। इनके सरस दोहों की बानगी देखिये---

'लोचन चपल कटाक्ष सर अनयारे विष पूर।
मन मृग बेधें मुनिन के जग जन सहित बिसूर॥
नय कंकन उर हार हँसि इक सौ लेत रवाय।
इक सौं भूषण अपर तन मांगत उर सौं लाय।'

ओरछा में काव्य-कला के विकास की दृष्टि से भारतीचन्द के उत्तराधिकारी महाराज मधुकरशाह (१६११–४९वि०) का काल बहुत महत्वपूर्ण है। मधुकरशाह संत-नरेश और कवि थे। आपकी कविताएँ बहुत हैं, जो ग्रंथ रूप में न होकर स्फुट हैं। आप पद अधिक लिखते थे।

भक्त कवि महात्मा हरिराम व्यास मधुकरशाह के गुरु थे। इनका जन्म सं० १५६७ में ओरछे में हुआ था। पिता का नाम समोखन सुकुल और माता का देविका था। ये सनाढ्य ब्राह्मण थे और व्यास उपाधि से विभूषित हुए। गोस्वामी भी इनकी उपाधि थी। ये संस्कृत के प्रकांड विद्वान्

थे और कृष्ण की 'विशाखा' सखी के अवतार माने जाते थे। हित हरिवंश पर इनकी श्रद्धा थी और उनके राधावल्लभीय सम्प्रदाय के प्रचार में ये सहायक थे। सं० १६१२ में आप वृन्दावन चले गए और अंत तक वहीं रहे। इनका निधन सं० १६६९ में हुआ। इनकी दो कृतियां मानी जाती हैं—व्यास-वाणी, जिसमें ७५८ पद और १४८ दोहे हैं तथा 'राग-माला, जिसमें ६०४ दोहे हैं। दोनों प्रकाशित हैं। इनका कविता-काल १५९० से १६६३ वि० तक है। व्यास जी का काव्य उनके हृदय की स्वाभाविक अनुभूतियों का उद्गार है। उन्होंने राधाकृष्ण की ललित लीलाओं का वर्णन सरस प्रवाह के साथ कोमल कांत पदावली में किया है। यहां एक उदाहरण प्रस्तुत किया जाता है—

'सुनि गोरी तैं एक किसोरी बन में देखी जात।
ता बिनु दीन छीन ह्यौं डोलत कोऊ न बूझत बात॥
तेरी सी उनिहारि नारि के सबै लुभारे गात।
चितवत चलत अधिक छबि उपजति कोटि मदन सर घात॥
तू अपनी ब्यौरौ कहि मो सों अधर नैन मुसिक्यात।
व्यास स्वामिनिहिं बार न लागी स्याम कंठ लपटात॥'

महाराज मधुकरशाह के अश्रित कवि मोहनदास मिश्र ने गीत-गोविन्द की छाया के रूप में 'भावचन्द्रिका' तथा 'रामाश्वमेध' लिखे हैं। मधुकरशाह के दरबार की वेश्यायें भी कवयित्रियां थीं। तानतरंग ने संगीत अखाड़ा ग्रन्थ, विचित्रनयना ने कोकशास्त्र और मधुर अली ने रामचरित्र और गनेसदेवमाला ग्रंथ लिखे हैं। मधुकरशाह के अन्य आश्रित कवि सुकदेव व्यास, कपूर साव, बनवारी कायस्थ, मलके छिपी और परम कचेरे भी हैं।

मधुकरशाह के ज्येष्ठ पुत्र महाराज रामशाह (१६४९—६२ वि०) भक्त कवि थे। आपके पदों का संग्रह अप्राप्य है। मधुकरशाह के दूसरे पुत्र होरल देव ने 'प्रीतजग्य' ग्रंथ लिखा है। महाराज रामाह अकबर के दरबार में रहा करते थे। उनकी ओर से उनके छोटे भाई इन्द्रजीत सिंह ओरछा पर शासन करते थे। आप 'धीरजनरिन्द' नाम से कविताएँ लिखते थे।

सं० १६६२ में जहांगीर का शासन प्रारम्भ हुआ। उसने अपने मित्र वीरसिंहदेव को ओरछा की गद्दी सौंपी। वीरसिंहदेव बहुत प्रतापी, पराक्रमी, शौकीन और साहित्य-प्रेमी थे।

रामशाह, इन्द्रजीत सिंह और वीरसिंहदेव के दरबार से संबंधित आचार्य केशवदास का उदय इस काल में हुआ। यद्यपि कुछ पूर्व थोड़े-से कवियों ने लक्षण ग्रन्थों में रस-निरूपण किया था, तो भी शास्त्रीय पद्धति से लक्षण ग्रन्थ सर्वप्रथम पूर्ण रूप में केशवदास ने ही लिखे। अतः वे रस-रीति के प्रथम आचार्य कहे जाते हैं। केशवदास का जन्म ओरछे में सनाढ्य ब्राह्मण वंश के पंडित काशीनाथ के घर संवत् १६१२ में हुआ। इनके बड़े भाई बलभद्र मिश्र भी कवि थे। उन्होंने भागवत भाष्य, बलभद्री व्याकरण, हनुमन्नाटक टीका, गोवर्द्धन सतसई, भागवत पुराण, दूषणाविचार-जैसे पांडित्य-पूर्ण ग्रन्थ लिखे हैं। केशवदास के छोटे भाई कल्याणदास भी कवि थे। केशवदास ने ८ ग्रन्थ लिखे है, जिनमें से राम-चन्द्रिका (१६५८) उत्तम और महत्वपूर्ण प्रबन्ध काव्य है। अन्य प्रबन्ध काव्य वीरसिंहदेव-चरित (१६६४), रतन बावनी (१६३७) (राजकुमाररतन सेन की वीरता का वर्णन) और जहांगीर-जस-चन्द्रिका (१६६९) हे। रसिक-प्रिया (१६४८), कवि-प्रिया (१६५८) और नख-शिख उनके रीति-ग्रंथ हैं। इनमे अलंकार पर मौलिक विचार और रस-निरूपण है। विज्ञानगीता (१६६७) आपका दर्शन-ग्रन्थ है। केशवदास का नाम हिन्दी के उत्कृष्टतम कवियों के साथ लिया जाता है। आपकी एक रचना यहां प्रस्तुत की जा रही है—

'छवि सों छबीली वृषभानु की कुंवरि आजु
रही हुती रूप मद मानमद छकि कै।
मारहूं ते सुकुमार नन्द के कुमार ताहि
आये री मनावन सयान सब नकि कै॥
हँसि हँसि सोहैं करि करि पांय परि परि
केसोराय की सौं जत्र रहे जिय जकि कै।
ताहि समै उठे धन घोर दामिनी-सी धाइ
उर लागी घनस्याम तन सों लपकि कै॥'

कुछ विद्वानों के मत में बिहारीलाल इन्ही केशवदास के पुत्र है, किन्तु अभी तक प्रमाण पर्याप्त रूप से नहीं जुटाये जा सके है। इस काल में कवियों की बाढ़-सी आई थी। बलभद्र मिश्र के पुत्र बालकृष्ण ने 'रसचन्द्रिका' नामक पिंगल-ग्रन्थ लिखा। बलभद्र कायस्थ ने 'अबुलफजल-विजय' और मतंग कवि ने 'वीरसिह-विजय' नामक ग्रंथ लिखे। जन-खण्डन, गुलाब कवि (द्वितीय), केहरी, पतिराम सुनार,

रतनेश, परमेश, चतुर्भुज और मोहन भी इसी काल के अच्छे कवि थे। इन सभी की केवल स्फुट रचनाएँ ही मिलती हैं। केशवदास की पुत्रबधू भी कवयित्री थीं। महाराज इन्द्रजीत सिंह की प्रेयसी वेश्या प्रवीण राय केशवदास की शिष्या और अच्छी कवयित्री थी। कहा जाता है कि 'कवि-प्रिया'की रचना इसी के संबन्ध में हुई थी। इसके सौन्दर्य पर मुग्ध होकर अकबर ने इसे आगरे बुलवा लिया था; पर प्रवीण का निम्नलिखित दोहा सुनकर उसे लौटा देना पड़ा—

'बिनती राय प्रवीन की सुनिये शाह सुजान।
जूठी पातर भखत हे बारी बायस स्वान॥'

महाराज पहाड़ सिंह के राज्य-काल (सं० १६९८–१७२०) में गोविन्द कवि ने 'पहाड़सिंह चरित्र' काव्य लिखा। परबते कवि ने 'दशावतार कथा' और 'रामरहस्य कलेवा' ग्रंथ लिखे। इस समय राघवदास और सुखदेव कवि भी थे।

सुजान सिंह के शासन-काल (१७२०–२९ वि०) में मेघराज प्रधान ने 'मृगावती की कथा' और 'मकरध्वज की कथा' प्रबंध काव्य लिखे। प्रवीण कवि की रचनाएँ हजारा में संग्रहीत हैं। बंसी कायस्थ ने 'सजन बहोरा' ग्रंथ और सुदर्शन वैद्य ने 'चिकित्सादर्पण' तथा 'सुजानविजय,' काव्य-ग्रंथ लिखे। परमेश्वर और रामजू कवि भी इसी काल में थे।

महाराज इन्द्रमणि (१७२९–३२वि०) स्वयं कवि थे। इनके दरबारी कवि विष्णुदास ने मकरध्वज चरित्र, स्वर्गारोहिणी और भूगोल पुराण ग्रंथ लिखे। महाराज जसवन्त सिंह (१७४१–५६ वि०) ने स्वयं 'जसवन्त-भास्कर' ग्रंथ लिखा है। इसी समय रघुराम कायस्थ ने 'कृष्णमोदिका' काव्य और वैकुंठमणि शुक्ल ने ब्रजभाषा गद्य में 'अगहन माहात्म्य' तथा 'वैशाख माहात्म्य' पुस्तकें लिखी हैं।

जसवंत सिंह के उत्तराधिकारी उदोत सिंह (सं० १७५६–९१) तथा उनकी महारानी दोनों कविताएँ करते थे। इनके दरबार के मुख्य कवि केशव के वंशज हरिसेवक मिश्र हैं। इन्होंने 'कामरूप-कथा' प्रबंध काव्य और 'हनुमानजी की स्तुति' दो ग्रंथ लिखे हैं। गोर कवि ने 'रामभूषण' और 'अलंकार चन्द्रिका' दो ग्रंथ लिखे हैं। रंग राय के दो रसमय ग्रंथ 'रास दीपक' और 'नायिका दीपक' हैं। धनराम कायस्थ ने 'लीलावती' और दिग्गज कवि ने 'भारत-विलास' ग्रंथ लिखे। कृष्ण कवि सनाढ्य ने विदुर प्रजागर और धर्म-संवाद लिखे तथा कोविद मिश्र उपनाम चन्द्रमणि ने भाषा हितोपदेश, नायिका भेद, राजभूषण और मुहूर्तदर्पण चार ग्रंथ लिखे हैं।

उदोत सिंह के उत्तराधिकारी नरेश देवी सिंह (सं०१७९१–९३) भी कवि थे। महाराज पृथ्वी सिंह (१७९२–१८९९ वि०) के समय में रतन कवि ने रसमंजरी, चूकविवेक और विष्णु पद (दोहे) लिखे। पंचम सिंह कायस्थ ने नौरता की कथा, बल्लभ कवि ने लग्न-मंजरी ग्रन्थ लिखे और दूलह कवि ने भगवद्गीता का पद्यानुवाद किया। इसी समय गोपाल भाट, ब्रजेश, रूपनारायण मिश्र और ललित मोहिनी दास अच्छे कवि थे। तत्पश्चात् महाराज भारतीचन्द द्वितीय (१८२२–३३ वि०) स्वतः कवि थे। आपने 'रसश्रृंगार' ग्रन्थ लिखा है। महाराज विक्रमाजीत, जिन्होंने अपनी राजधानी ओरछे से बदलकर टीकमगढ़ की, सं० १८३३ से १८७४ तक शासन करते रहे। आप 'लघु' नाम से कविता करते थे। आपके ग्रन्थ 'लघु सतसई' (७२० दोहे), 'माधवलीला' और 'स्फुट-पदावली' प्राप्य हैं। शिवराम और सर्वसुख कवि इनके दरबार में थे। तदनन्तर संवत् १८३० के निकट कुंज कुंवर (कुंजदास) कवि ने 'ऊषाचरित्र' और संवत् १८४० के निकट नीलसखी कवि ने ११० पदों की बानी लिखी है। ललित मोहिनी दास के शिष्य भगवत रसिक एक प्रेमयोगी कवि थे। इनका कविता-काल सं० १८३० से ५० तक है।

ओरछा के एक अन्य विख्यात कवि ठाकुर हैं। उनका पूरा नाम ठाकुरदास कायस्थ था। उनके पिता गुलाब राय काकोरी (जिला लखनऊ) के निवासी थे और ओरछे में विवाहित थे। वे ओरछे में ही आ बसे। यहीं सवत् १८२३ में ठाकुर का जन्म हुआ। ठाकुर जैतपुर, बिजावर आदि अनेक राजघरानों से सम्बन्धित रहे। पद्माकर कवि को जवाब देकर उन्होंने चुप कर दिया था। उनकी रचनाएँ 'ठाकुर ठसक' नाम से संग्रहीत हैं, जो सरस एवं मधुर हैं। सं० १८८० के निकट वे स्वर्गवासी हुए। उनकी सजीव रचनाओं का एक उदाहरण प्रस्तुत किया जाता है—

'अपने अपने निज गेहन में चढ़े दोऊ सनेह की नाव पै री।
अँगनान में भोजत प्रेम भरे समयो लखि मैं बलि जावं पै री॥
कह 'ठाकुर' दोउन की रुचि सों रँग ह्वै उमड़े दोउ ठाँव पै री।
सखी कारी घटा बरसै बरसाने पै गोरी घटा नँदगांव पै री॥'

पन्ना के कवि

पन्ना का साहित्यिक इतिहास छत्रसाल से प्रारम्भ होता है। महाराज छत्रसाल का जन्म संवत् १७०६ में

दतिया की काव्य-कला

ओरछा के महाराज वीरसिंहदेव के पुत्र भगवानराव ने दतिया राज्य की स्थापना की थी। दलपतिराव (१७४०–६३ वि०) के राज्य-काल में दतिया प्रसिद्ध हुआ। इनके दरबार में रहकर कानपुर के शिवदास ने शालिहोत्र ग्रन्थ लिखा। दलपतिराव के तृतीय पुत्र पृथ्वीसिंह सेंवढ़ा जागीर के अधिकारी बने। आपने स्वयं १००० दोहों का विशाल ग्रन्थ रतनहजारा लिखा है। आपका कविनाम रसनिधि था। ये अक्षर अनन्य को गुरु मानते थे और कृष्ण के उपासक थे। रतनहजारा के अतिरिक्त आपके अन्य ग्रन्थ विष्णुपद, हिंडोरा, अरिल्ल, रसनिधि सागर, रसनिधि के दोहे, रसनिधि की कविता और रतन सागर हैं। इनमें से रसनिधि सागर सर्वोत्तम कृति है। आपका सम्पूर्ण साहित्य सरस है। कुछ दोहे यहां उदाहरणार्थ प्रस्तुत हैं—

'सुन्दर जोबन रूप जो बसुधा मे न समाइ।
दृग तारन तिल बिच तिन्है नेही धरत लुकाइ।।
सरस रूप को भार पल सहि न सकै सुकुमार।
याही तै ये पलक जनु झुकि आवै हर बार।।
यह बूझन को नैन ये लग लग कानन जात।
काहू के मुख तुम सुनी प्रिय आवन की बात।।'

दतिया के एक अन्य कवि कृष्णदास ने दानलीला, तीजा की कथा, महालक्ष्मी की कथा, एकादशी माहात्म्य, हरिचन्द कथा आदि ग्रन्थ लिखे है। खण्डन कायस्थ ने नाम प्रकाश, जैमिनि अश्वमेध, राजा मोहमर्दन की कथा, भूषण दाम और सुदामा चरित्र-जैसे ग्रन्थों की रचना की। महाराज शत्रुजीत ने १८०० वि० के निकट रसराज की टीका लिखी। महाराज पारीछत के वकील शिवप्रसाद कायस्थ ने १८४० वि० के निकट रसभूषण और अद्भुत रामायण की रचना की। इन्ही महाराज के आश्रित कवि खेतसिंह, गणेश, जानकीदास और सीताराम थे। इसी राजवंश में कृष्ण की अनन्य भक्त बखत कुवरि (उपनाम प्रियासखी) हुई। इनका जन्म संवत् १८०० बताया जाता है। इनकी बानी प्रसिद्ध है। महाराज भवानी सिंह (सं० १९१४–६४) के दरबार में प्रतीतराम, लक्ष्मण सिंह, गरीबदास गोस्वामी, राधालाल गोस्वामी, गदाधर भट्ट, बैजनाथ भोडेले, कन्हैयालाल गोस्वामी, प्रभाकर भट्ट और बिहारीलाल भट्ट अच्छे कवि थे।

अन्य कवि

राजनगर के अमरसिंह (सं० १८२९–९७) ने सुदामा चरित और अमर चन्द्रिका दो ग्रन्थ लिखे है। बिजावर राज्य के आश्रय में बखतेश, प्रयागदास और बिहारी कवि हुए। यहां के राजा लक्ष्मण सिह स्वयं कवि थे। सं० १८३० के निकट यहीं पर जगन्नाथ लिटौरिया ने रसामृत भक्ति ग्रन्थ लिखा। छतरपुर के गंगाधर व्यास सं० १९०० के निकट अच्छे लोक-कवि थे। प्रसिद्ध लोक-कवि ईसुरी के साथ इनका कविता-दंगल होता था।

चंदेरे के राजा देवीसिह १८वी शती के पूर्वार्द्ध में हुए। इन्होंने देवीसिंह विलास, आयुर्वेद विलास, नृसिह लीला, रहस्यलीला और बारहमासी नामक ग्रन्थ लिखे है। इनके आश्रय में अनेक कवि थे। इन्ही के वंशज दुर्जन सिह के सेनापति छत्रसाल मिश्र ने औषधसार, शकुनपरीक्षा और स्वप्नपरीक्षा की रचना की।

अजयगढ़ के नरेश भी कवि हुए हैं। सं० १६२० के निकट यहां पुरुषोत्तम कवि ने राजविवेक ग्रन्थ लिखा है। मदन सिंह भी इसी समय के अच्छे कवि थे। सं० १८३० के निकट प्रेमदास अग्रवाल ने यहां प्रेमसागर नासकेत की कथा और श्रीकृष्ण-लीला जैसे ग्रन्थ लिखे हैं, जो प्रसिद्ध हो गए हैं।

बुन्देलखंड में अपना स्थायी प्रभाव छोड़नेवाले और हिन्दी-साहित्य की विभूति पद्माकर, ईसुरी, मंडन मिश्र, सेवक, बेनी, ऋषिनाथ और बैरीसाल अच्छे कवि हुए हैं, यद्यपि वे विंध्य की वर्तमान सीमा में नहीं आते।

इस प्रकार विक्रम की १७वी, १८वीं और १९वीं शती में भक्ति और रीति, काव्यों की अजस्र धारा विंध्य के पवित्र अंचल में बहती रही है।

शेषमणि शर्मा

विन्ध्य-प्रदेश के आधुनिक साहित्यकार

[प्रस्तुत लेख के लेखक श्री शेषमणि शर्मा 'मणि रायपुरी' इस प्रदेश के सुविख्यात कवि हैं। आपका जीवन विकट संघर्षों में बीता है। आप सन् ४२ के स्वतंत्रता-आंदोलन मे जेल-यात्रा भी कर चुके हैं। आप प्रयाग से प्रकाशित होनेवाले 'अभ्युदय' तथा 'जननी' के प्रतिनिधि रह चुके हैं और लखनऊ से प्रकाशित 'दैनिक अधिकार' एवं रीवा से प्रकाशित 'प्रकाश' एवं 'बान्धव' में भी कार्य कर चुके है। आपने एक अरसे तक रीवा से प्रकाशित 'नवज्योति' पाक्षिक का सम्पादन भी किया था। मणि जी राष्ट्रीय भावना के कवि हैं। आपकी रचनाएँ अत्यन्त भाव-प्रवण एवं मार्मिक रहती हैं। आपकी वाणी में शक्ति, ओज, प्रगल्भता एवं अभिव्यंजन-शैली का सुष्ठु सौन्दर्य देखने में आता है। आपका राजनैतिक खण्ड-काव्य 'कैकेयी' तथा स्फुट रचनाओं के संग्रह 'मणि-किरण' एवं 'द्वितीया' के नाम से प्रकाशित हुए हैं। 'जग-जीवन', 'बदलती दुनिया' तथा 'प्रवीणा' काव्य-संग्रह अप्रकाशित है। आपकी 'बागी की डायरी' नामक पुस्तक में जीवन के संस्मरण एवं 'पागल के पत्र' में स्नेहियों को लिखे गये पत्र संग्रहीत है, जो अभी अप्रकाशित ह—**संपादक**]

विंध्य-प्रदेशीय साहित्य के आधुनिक युग में ब्रजभाषा और खड़ी बोली के कवि, प्रबन्ध काव्यों के रचयिता, उपन्यास, नाटक, कहानी और रेखाचित्रों के लेखक, निबन्धकार, समालोचक तथा लोक-साहित्य के क्षेत्र में अन्वेषण करनेवाले सभी मिलते हैं। विंध्य-प्रदेश के इन आधुनिक साहित्यकारों ने अनेक अभावों के कारण चाहे कम ख्याति पाई हो, किन्तु उन्होने स्वान्तःसुखाय ही हिन्दी-साहित्य का कोष अवश्य भरा है। इन साहित्यकारों में से अनेक उच्च कोटि के ख्याति-प्राप्त हैं, और अनेक ऐसे भी हैं, जो उच्च कोटि के साहित्यकार होते हुए भी दुर्योगवश समुचित ख्याति नही प्राप्त कर सके।

सम्वत् १९०० के निकट रीवा के महाराज विश्वनाथ सिंह ने ब्रजभाषा मे हिन्दी का प्रथम नाटक 'आनन्द रघुनन्दन' लिखा था। उनके सुपुत्र महाराज रघुराज सिंह ने ब्रजभाषा मे ही श्रीमद्भागवत की टीका 'व्यंग्यार्थ चन्द्रिका' और 'परम प्रबोध' नामक नाटक लिखा था। इस तरह विंध्य-प्रदेश में गद्य की धारा अपने आविर्भाव काल में ही प्रवाहित हो चली थी।

गद्य-साहित्य के लेखकों में रीवा के पं० मधुर प्रसाद और टीकमगढ़ के श्री शोभाचन्द्र जोशी का नाम मुख्यतः आता है। स्व० 'मधुर' जी ने 'अजीत विजय' उपन्यास, रीवा राज्य का इतिहास, प्राचीन शिलालेखों का संग्रह-जैसी पुस्तकें लिखी थीं। आपकी कविताएं रसिक-मित्र, सरस्वती, सुकवि एवं कवि-कौमुदी में प्रकाशित होती थीं। आप रीवा के 'शुभचिन्तक' पत्र के सम्पादक थे और महावीर प्रसाद द्विवेदी ने इनकी प्रशंसा की थी। स्व० जोशी जी एक सफल रेखाचित्र-लेखक थे। इनकी जिन्दगी विकट संघर्षो के बीच बीती। सूतपुत्र के नाम से इनका रेखाचित्र, शतरंज का खेल नाम से स्टीफन ज्विग की कहानियों का अनुवाद तथा सप्तर्षि लोक और बुद्धिहीन नामक कहानी संग्रह प्रकाशित हो चुके हैं।

इसी युग में 'साहित्य-सरोज' के रचयिता बख्शी हनुमान प्रसाद, रसिक सुधार्णव और रसकल्पद्रुम के रचयिता श्री गोविंद प्रसाद पाडेय, रत्नत्रयी, पिंगल रामायण, पिंगल भागवत, रसेन्द्र सतसई आदि २० ग्रन्थों के रचयिता श्री शारदाप्रसाद जी 'रसेन्द्र', ओरछे का

इतिहास, पलेरा-समर आदि १२ ग्रन्थों के रचयिता श्री रामदयाल, माधव विनोद के रचयिता श्री माधव प्रसाद पौराणिक-जैसे अनेक विद्वान् हो चुके है, जो अब इस संसार में नही है।

ब्रजभाषा के वर्त्तमान साहित्यकारों में 'रस-रसांग-निर्णय' के रचयिता महाकवि ब्रजेश जी है। 'साहित्य दर्पण' के रचयिता पं० विश्वनाथ, अकबरी दरबार के कविवर नरहरि बन्दीजन तथा विश्वनाथ सिंह की सभा के अलंकार 'अजबेश' इनके पूर्वजों में से है। ब्रजेश जी ओरछा के राजकवि रह चुके है तथा रीवा-दरबार मे भी सम्मानित रहे है। आप काव्य-शास्त्र के आचार्य है। आपने छन्दों, अलंकारों एवं रसों के सम्बन्ध में उठाई गई शंकाओं का विद्वत्तापूर्वक समाधान करने का प्रयत्न किया है। ब्रजेश जी के मुख्य ग्रन्थ 'रस-रसाग-निर्णय','अलंकार-निर्णय', 'शृंगार-शिरोमणि', 'विश्वनाथ शरण-भूषण' और 'रमेश रत्नाकर' है, जिनमें केवल अन्तिम प्रकाशित है। ब्रजभाषा के एक अन्य प्रसिद्ध कवि श्री बिहारीलाल जी है। आप बिजावर महाराज के दरबारी कवि थे। आपने लगभग दो सहस्र छन्दों का रीति-ग्रन्थ 'साहित्य-सागर' लिखा है। आधुनिक युग में जितने भी लक्षण ग्रन्थ लिखे गये है, प्रायः वे सब विद्यार्थियों के लिए ही उपादेय है, किन्तु साहित्य-सागर में लक्षणों के साथ उनके उदाहरण इतने ललित, परिमार्जित एवं सुगठित शैली मे है कि वह ग्रन्थ उच्च कोटि के साहित्यिकों के लिए भी उपयोगी सिद्ध हुआ है। रीवा के श्री रामाधीन लाल खरे भी ब्रजभाषा के कवि है। आप ओरछा के राजकवि रह चुके है तथा रीवा-दरबार से भी सम्मानित हुए है। आपके ९ काव्य-ग्रन्थ प्रकाशित तथा ३१ अप्रकाशित है, जिनमें प्रमुख 'छत्रसाल वंश', पद्मिनी चमत्कार, धर्मवीर हरदौल तथा किरातार्जुनीय भाषा है। आप फारसी, उर्दू, हिन्दी तथा संस्कृत के ज्ञाता है।

साहित्य-जगत के सुपरिचित छतरपुर के श्री 'वियोगी हरि' ने वीर सतसई नामक ब्रजभाषा के काव्य-ग्रन्थ पर मंगलाप्रसाद पारितोषिक प्राप्त किया है। सतसई के दोहे ओज से ओत-प्रोत है। वियोगी हरि का पूरा नाम श्री हरि प्रसाद द्विवेदी है। आपने माध्व सम्प्रदाय के अन्तर्गत संन्यास ग्रहण कर लिया है तथा राजनीति और समाज-सेवा के क्षेत्र में भारत के अग्रगण्य नेताओं में गिने जाते हैं। आपने सम्मेलन-पत्रिका के सम्पादन-काल में संक्षिप्त सूर-सागर का भी सम्पादन किया था। आपने १४ काव्य-ग्रन्थ, तरंगिणी आदि चार गद्य-काव्य, साहित्य-विहार निबन्ध-ग्रन्थ, दो नाटक तथा अनेक गद्य-ग्रन्थों की रचना की है; साथ ही साहित्य के उत्कृष्ट १२ ग्रन्थो का सम्पादन भी किया है। वियोगी हरि सन्त-साहित्य के मर्मज्ञ विद्वानों में से है; आपके 'सन्त-सुधासार' तथा 'तुलसी-सूक्ति-सुधा'-जैसी पुस्तकों पर प्रदेश को ही नहीं, हिन्दी-जगत् को गर्व है। ब्रजभाषा के एक अन्य प्रसिद्ध कवि श्री अम्बिकाप्रसाद भट्ट 'अम्बिकेश' है, जिनका 'ज्योति' नामक स्फुट काव्य-संग्रह प्रकाशित हो चुका है। आप रीवा के वर्त्तमान महाराज मार्त्तण्ड सिंह द्वारा 'राजकवि' और 'कवि-मार्त्तण्ड' उपाधियों से सम्मानित किये जा चुके है। ओरछा और सुरगुजा के राज-दरबार मे भी आपको विशेष सम्मान मिल चुका है। आप खड़ी बोली मे भी सुन्दर रचनाएं लिखते है। ओज आपकी कविताओं का प्रधान गुण है। दतिया राज-दरबार के प्रख्यात स्व० कवि श्री गोविंद प्रसाद एवं लक्ष्मण प्रसाद ब्रजभाषा के सुन्दर कवियों में से रहे है। राज्याश्रम मे रहकर आपने हजारों छन्दों की रचना की थी। आपकी कविताएं ओजपूर्ण होती थी। कुछ अन्य कवि भी ब्रजभाषा मे स्फुट रचनाएं लिखते रहते है; परम्परा चलती जा रही है।

विंध्य-प्रदेश में खड़ी बोली की काव्य-धारा प्रवाहित करनेवाले कवियो मे प्रथम नाम ठाकुर गोपालशरण सिंह का आता है। आप द्विवेदी-युग के प्रतिष्ठित साहित्यकारों में से है। साहित्य-सृजन और काव्य-प्रतिभा दोनों दृष्टियों से आप हरिऔध और मैथिलीशरण गुप्त के साथ गिने जाते है। आपकी कविता का भाव-पक्ष पवित्र और उदात्त है। सब से बड़ी विशेषता यह है कि ब्रजभाषा का माधुर्य और सौकुमार्य आपने खड़ी बोली मे भर दिया है। माधवी, कादम्बिनी, मानवी, ज्योतिष्मती, संचिता, सुमना, सागरिका, ग्रामिका और जगदालोक (महाकाव्य) आपके प्रकाशित ग्रन्थ है। जगदालोक पर देव पुरस्कार मिल चुका है। विश्वगीत, प्रेमांजलि, शान्ति गीत और मीरा आपकी अप्रकाशित काव्य-कृतिया है। आपके सुपुत्र कुंवर सोमेश्वर सिंह की रचनाएं सरस्वती, वीणा आदि प्रमुख पत्र-पत्रिकाओं में प्रकाशित होती रहती हैं। आपके

काव्य-ग्रन्थ रत्ना, दृगजल, सरोज प्रकाशित हो चुके हैं। 'खुसरो' खण्ड काव्य भी प्रकाशित है। कुंवर साहब विंध्य प्रदेश की विधान सभा के सदस्य भी है।

हिन्दी-जगत के सुविख्यात लेखक और कवि डा० शिवमंगल सिंह 'सुमन' को 'हिन्दी में गीति-काव्य का विकास' विषय पर पी-एच० डी० की उपाधि प्राप्त हुई है। 'सुमन' जी के कविता-संग्रह हिल्लोल, जीवन के गान, पुलक-सृजन और 'युग का मोल' प्रकाशित हो चुके हैं। आपकी भाषा में सशक्तता और प्रवाह है। आजकल आप नेपाल के भारतीय दूतावास में सांस्कृतिक सलाहकार है। कोठी राज्य के श्री गंगाप्रसाद पांडेय भी सुविख्यात समालोचक और कवि है। पर्णिका और वासन्तिका आपके काव्य-संग्रह हैं। महाप्राण निराला, महादेवी वर्मा, छायावाद-रहस्यवाद आदि १० समालोचना-ग्रन्थ भी आप लिख चुके हैं। आजकल साहित्यकार संसद् भवन, प्रयाग में रहकर साहित्य-सेवा कर रहे है।

रायपुर कर्चुलियान के श्री चन्द्रशेखर शर्मा रीवा-दरबार से अनेक बार पुरस्कृत हो चुके है। आपका 'मानस-मंजरी' काव्य-संग्रह तथा 'काव्यांग कल्पतरु' लक्षण ग्रन्थ अप्रकाशित हैं। शर्मा जी का कवित्व प्रभावोत्पादक एवं प्रौढ़ है। दतिया जिलान्तर्गत ग्राम वरदा निवासी श्री हरनाथ जी वीररस के कवि है। राज-दरबारों से आपको 'कवीन्द्र', 'कविराज' आदि उपाधियां प्राप्त हुई है तथा झालावाड़-नरेश के दरबार में प्रमुख राज-कवि रह चुके है। आपकी रचनाएं बड़ी ओजपूर्ण होती है। प्रताप-पताका', छत्रसाल बावनी आदि ९ काव्य-ग्रन्थ प्रकाशित तथा सिंह शिवराज, महारानी लक्ष्मी, साहित्य-सूर्य आदि ९ ग्रन्थ अप्रकाशित हैं। माधवगढ़ (जिला सतना) के श्री हरशरण शर्मा 'शिव' के 'सुषमा' तथा 'मधु-श्री' काव्य-संग्रह प्रकाशित हो चुके हैं तथा अन्य कई ग्रन्थ अप्रकाशित हैं। आपकी रचनाएं माधुरी, सरस्वती, वीणा, भारत आदि पत्रों में प्रकाशित होती रही हैं। दतिया के श्री चतुर्भुज शर्मा 'चतुरेश' हास्यरस के प्रसिद्ध कवि हैं। आपकी हास्य-व्यंजना बड़ी ही अनूठी है। 'हँसी का फव्वारा' तथा 'चटनी' आपकी प्रकाशित तथा 'मुरब्बा' अप्रकाशित कृतियां हैं।

अजयगढ़ के श्री अम्बिका प्रसाद 'दिव्य' बुन्देली संस्कृति, लोक-साहित्य और कला के अच्छे जानकर है। आपने बुन्देली मुहावरों, कहावतों और गीतों का सुन्दर संग्रह किया है। निमिया और अनुवेदना आपके प्रकाशित उपन्यास हैं। दिव्य-दोहावली, पिपासा, स्रोतस्विनी और पावस काव्य-संग्रह प्रकाशित हो चुके है। लोकोक्ति-सागर तथा नाटक-संग्रह अप्रकाशित है। दिव्य जी विंध्य-प्रदेश के उच्च कोटि के कवि एवं उपन्यासकार है। श्री वैद्यनाथ प्रसाद 'बैजू' बघेलखण्डी के सुपरिचित कवि है। आपका काव्य-संग्रह 'बैजू की सूक्तियां' नाम से प्रकाशित है, जिसमें बघेली लोक-जीवन का सजीव चित्रण है। कोठी के श्री रामाश्रम पयासी 'रत्नकान्त' की तीन काव्य-कृतियां प्रकाशित तथा कुणाल, रत्नकान्त सतसई, काव्यानुशीलन आदि कई पुस्तकें अप्रकाशित है। टीकमगढ़ के श्री सुधाकर शुक्ल संस्कृत और हिन्दी के अच्छे विद्वान् है। आपका खण्ड काव्य 'कसक' और पद्यात्मक कोष 'शब्द-सुधाकर' प्रकाशित है। चन्द्रबाला (प्रबन्ध काव्य), लवंग-लता (नाटक) तथा केलि-कलश और उर्वशी संस्कृत खण्ड काव्य अप्रकाशित है। आपने संस्कृत में 'गाँधी -सौगन्धिकम्' नामक एक महा-काव्य की भी रचना की है, जो अभी अप्रकाशित है।

दतिया के श्री वासुदेव गोस्वामी ब्रजभाषा, बुन्देली एवं खडी बोली में रचनाएं लिखने है। आप हास्य रस तथा गम्भीर दोनों प्रकार की सुन्दर रचनाएं प्रभावोत्पादक ढंग से लिखते है। 'त्रिवेणी के संगम पर' काव्य-संग्रह प्रकाशित है। आपके शोध-ग्रन्थ 'भक्त-कवि व्यासजी' पर केशव पुरस्कार प्राप्त हो चुका है। इसके अतिरिक्त 'विद्रोही बानपुर' और 'बुद्धि के ठेकेदार' कृतियां भी पुरस्कृत हैं। 'निगुम्फ' निबन्ध-संग्रह तथा 'साधना' और 'चुटकी' काव्य-संग्रह अप्रकाशित है। सेंवढ़ा (जिला दतिया) के श्री राम भरोसे पाठक का कविता-संग्रह 'पागल के गीत' नाम से प्रकाशित हो चुका है तथा अन्य रचनाएं अप्रकाशित हैं। सेंवढ़ा के एक अन्य कवि श्री गंगाराम शर्मा की काव्य-शैली अत्यन्त सुगठित एवं प्रौढ़ है। आपने अब तक लगभग ढाई सौ गीतों की रचना की है। कटिया (जिला सतना) के श्री लखनप्रताप सिंह 'उरगेश' के दो कविता-संग्रह—उल्कापात और आभा—प्रकाशित हो चुके हैं। प्रसाद, अभिनयशाला एवं मानस-परिचय अप्रकाशित हैं। लोक-गीतों का एक संग्रह 'बाघेली लोकगीत' भी प्रकाशित है। लोक-साहित्य पर आपका अध्ययन अच्छा है तथा आपने

बघेलखंडी मुहावरों, कहावतों तथा पहेलियों का सुन्दर संग्रह किया है। श्री रघुवीरशरण सक्सेना का 'उत्तरा' नामक खण्ड-काव्य प्रकाशित हो चुका है। आप सेंवढ़ा जिला दतिया के निवासी हैं।

दतिया के श्री भैयालाल व्यास बुन्देली तथा खड़ी बोली के अच्छे कवि हैं। आपकी रचनाओ में करुण रस फूट पड़ा है। आपके काव्य-संग्रह 'जीवन के क्रम' और 'आग-पानी' प्रकाशित हो चुके है तथा 'माता के आंसू', 'हरदौल' और 'बिखरे तिनके' अप्रकाशित हैं। श्री 'व्यास' बुन्देलखंड के कोकिल' कहे जाते है। रीवा के श्री जगदीशचन्द्र जोशी की रचनाओं में जन-जीवन की भावनाएं मूर्त्त रूप से व्यक्त हुई है। आपकी भाषा परिमार्जित एवं गतिशील है। आपका अप्रकाशित खण्ड-काव्य 'विन्ध्याचल' विंध्य-सरकार द्वारा पुरस्कृत हो चुका है। स्फुट रचनाओं का संग्रह 'मिट्टी के गीत' भी अभी अप्रकाशित है। श्री जोशी सोशलिस्ट पार्टी की राष्ट्रीय कार्य-समिति के सदस्य एवं प्रादेशिक साहित्यकार संघ के अध्यक्ष है। आप विन्ध्य विधान-सभा मे विरोधी दल के नेता रह चुके है।

सेंवढ़ा जिला दतिया के निवासी श्री अम्बा प्रसाद श्रीवास्तव रसनिधि और अक्षर अनन्य पर खोज कर चुके है। आप 'मतवाला' उपनाम से कवितायें लिखते है। इनकी रचनायें भाव-प्रधान एवं करुण-रस से पूर्ण होती है । 'स्मृति-कण' नामक आपका कविता-संग्रह अप्रकाशित है। इसके अतिरिक्त 'लोक-संस्कृति के खण्डहर', 'ब्रजभाषा गद्य का विकास' तथा 'नारी एक चल सम्पत्ति' आपकी अप्रकाशित पुस्तकें है। आपने 'अनन्य-ग्रंथावली' और 'अष्टांग-योग' का सम्पादन भी किया है। आपकी अनन्य-ग्रन्थावली के प्रकाशन का कार्य काशी नागरी-प्रचारिणी सभा द्वारा हो रहा है। श्रीवास्तव जी विध्य-सरकार के शिक्षा-विभाग द्वारा प्रकाशित 'विंध्य-शिक्षा' नामक पत्रिका के सम्पादक रह चुके हैं तथा सूचना एवं प्रचार-विभाग के पदाधिकारी हैं। नगौद के श्री धन्यकुमार जैन 'सुधेश' की रचनाओं में देश-प्रेम का स्वर रहता है। आपके काव्य-ग्रन्थ विराग, शहीद-गाथा, वीरायण, मुण्डमाल , आर्यिका तथा भामाशाह प्रकाशित हो चुके हैं। छत्र-चूड़ामणि अभी अप्रकाशित है।

छतरपुर के श्री ज्योतिप्रकाश सक्सेना की रचनायें पत्र-पत्रिकाओं में प्रकाशित होती रहती हैं। आपकी रचनाओं में मानववाद का नया स्वर है। आप निबन्ध भी लिखते है। स्फुट रचनाओं का काव्य-संग्रह अप्रकाशित है। रीवा के श्री रामप्रताप खरे एक उदीयमान तरुण कवि हैं। आपकी भाव-व्यंजना बड़ी मार्मिक होती है। खरे जी के काव्य-संग्रह 'ओस की परियां' , 'उमर खैय्याम की रुबाइयां' और 'शान्तनु' अप्रकाशित है। सेंवढ़ा के श्री धनश्याम सक्सेना की रचनाओं में नवयुग की पुकार है। आप रुबाइयां भी लिखते हैं। 'धरती के गीत' नामक काव्य-संग्रह अप्रकाशित है। आप झांसी से प्रकाशित होनेवाले 'अमर वाणी' नामक पत्र के संपादक रह चुके है। श्री कृष्णनारायण सिह शास्त्री की हास्य-रस की रचनाएं भी लोकप्रिय सिद्ध हुई हैं। आपके परिचय, प्रलय-काव्य तथा चेतक के ऊपर लिखे गये कतिपय छन्द सुन्दर बन पड़े है। आपकी कविता-पाठ की शैली भी आकर्षक है। रीवा के डा० जानकी प्रसाद द्विवेदी 'निर्द्वन्द्व' भी हास्य-रस के अच्छे कवि हैं। आप सरस्वती-सेवा-समिति के संस्थापकों में से हैं। रीवा के ही श्री माधव प्रसाद नापित ने महाभारत उत्तरार्द्ध नाटक, चन्द्रभूषण-स्तव, मालती-माधव नाटक और चक्र-व्यूह खण्ड-काव्य लिखा है, जो अभी अप्रकाशित हैं। दतिया के श्री शशि त्रिपाठी ने प्रारम्भ में बहुत बेजोड़ गीत लिखे थे; किन्तु बाद मे उनके जीवन का मोड़ ही बदल गया, इसका हमें दुख है। जानकी प्रसाद 'ब्रजेश' ने भी बहुत-से सरस गीतों की रचना की है। मोहनलाल श्रीवास्तव की कविताओं मे मौलिक भावनाएं एवं हृदय-स्पर्शी दृश्य चित्रवत् वर्णित होते है। इनके गीतों में वाणी है जिसमें बल है। इनके शब्द इतने सशक्त होते है कि भाव आंखों के समक्ष नाच उठते है।

इसके अतिरिक्त अन्य अनेक कवि एवं लेखक है, जिनकी साहित्यिक प्रतिभा का विकास निरन्तर होता चला जा रहा है। सर्वश्री श्रीनिवास शुक्ल, विश्वनाथ शरण चतुर्वेदी, सच्चिदानन्द श्रीवास्तव, आदित्य प्रताप सिह 'अनाम', घनश्याम सिंह, रामप्रकाश 'उन्मत्त', बाबूलाल निर्मोही, सतीन्द्र कुमार सिंह, हनुमान प्रसाद तिवारी, बाल्मीकि प्रसाद मिश्र, लक्ष्मीनारायण शर्मा, बाला प्रसाद द्विवेदी, शिवकुमार शर्मा, स्वामीशरण सक्सेना, शारदा प्रसाद 'मनोज', अवध किशोर सक्सेना, रघुवंश मिश्र 'नीलेश',

ब्रजकिशोर निगम 'आजाद' तथा नत्थूलाल वर्मा 'सुधांशु' से हमें बड़ी-बड़ी आशाएं हैं।

कविता के क्षेत्र में एक ओर जहां उपर्युक्त कवियों ने सरस्वती का भाण्डार भरा है, वहां कवयित्रियों का भी योग-दान उल्लेखनीय है। रीवा की महारानी कीर्ति कुमारी ने भक्ति रस से आप्लावित ३५ काव्य-ग्रंथ लिखे है, जो सभी प्रकाशित हैं। कीर्त्तिकुमारी जी रीवा-नरेश स्व० व्यंकटरमण सिंह की छोटी महारानी है। महाराज व्यंकटरमण सिंह की पुत्री बीकानेर की राजमाता महारानी सुदर्शन कुमारी भी अच्छी कवयित्री है, जिनके कई काव्य-संग्रह प्रकाशित हो चुके हैं। रीवा की श्रीमती विष्णुकान्ता देवी 'उषा' एक सफल कवयित्री तथा कहानी-लेखिका है। इनके कई काव्य-संग्रह तथा 'पतवार' नामक कहानी-संग्रह अप्रकाशित हैं। उषा जी रीवा में महिला-जागरण की प्रथम अग्रदूतिका तथा प्रादेशिक साहित्यकार संघ की उपाध्यक्षा हैं। श्रीमती कृष्णा कुमारी जी की कहानियां प्रतिष्ठित पत्र-पत्रिकाओं में प्रकाशित होती रहती है। आप इस समय संसद-सदस्या हैं। कुमारी शकुन्तला सक्सेना यहां की प्रसिद्ध नवीन कवयित्रियों में से है, जिनकी 'अवकाश के क्षण' नामक पुस्तक पर उत्तर प्रदेश तथा विंध्य-प्रदेश-सरकार द्वारा पुरस्कार प्रदान किया जा चुका है। आप लखनऊ में प्राध्यापिका हैं और हिन्दी में शोध-कार्य भी कर रही हैं। कुमारी उर्मिला बनर्जी की रचनाएं ओजमयी रहती है। आपका कहानी-संग्रह 'लक्ष्यहीन' और 'बैशाखी' उपन्यास प्रकाशित हो चुका है तथा 'अपना-पराया' अप्रकाशित है।

गद्य-साहित्य के क्षेत्र में रायपुर (रीवा) के कुंवर सूर्यबली सिंह की सेवाएं स्मरणीय है। आप आचार्य रामचन्द्र शुक्ल की शैली के एक कुशल समालोचक है। आपकी 'हिन्दी की प्राचीन और नवीन काव्य-धारा', 'जीवन-ज्योति' (अनुवाद), 'राजनीति-विमर्श' और 'विद्यापति' कृतियां प्रकाशित हो चुकी हैं। श्री शत्रुसूदन सिंह कर्चुली ने महाराज रघुराज सिंह के ग्रन्थों पर 'रघुराज-रत्नावली' के नाम से समालोचना-पुस्तक लिखी है। आपके श्रीकृष्ण (महाकाव्य), द्रौपदी वस्त्राकर्षण तथा आनन्द-सागर (काव्य-संग्रह), कालिन्दी और वीर विक्रम (उपन्यास) एवं भीष्म, गुप्तवास, ध्रुव, प्रह्लाद और बालकृष्ण नामक पौराणिक नाटक अप्रकाशित हैं। दतिया के श्री हरिमोहन लाल श्रीवास्तव के समालोचनात्मक निबन्ध प्रारम्भ में साहित्य-सन्देश, माधुरी आदि पत्र-पत्रिकाओं में प्रकाशित होते रहे; किन्तु बाद में छात्रोपयोगी साहित्य के सृजन की ओर आपकी प्रवृत्ति हो गई। आपके 'प्रायश्चित' तथा 'अपराधी कौन' उपन्यास तथा 'हिन्दी की योग्यता कैसे बढ़ायें', 'दतिया का जन-आंदोलन' 'झांसी की रानी लक्ष्मीबाई' तथा 'भारत-भक्ति' ग्रन्थ प्रकाशित हो चुके है।

श्री भगवती प्रसाद शुक्ल का लोक-साहित्य के क्षेत्र में गम्भीर अध्ययन है। आप 'बघेली लोक-साहित्य' पर शोध-कार्य कर रहे हैं। आपकी पुस्तकें—'बघेली लोक-रागिनी' दो भागों में तथा 'बलिदान' नाटक—प्रकाशित हो चुके है एवं बघेली लोक-गीत : एक विवेचन, बघेली लोक-कथा, बघेली लोक-साहित्य का अध्ययन अप्रकाशित समालोचना-ग्रन्थ है। 'टीले के पार' नाम से आपका कहानी-संग्रह भी है। आपके निबन्ध पत्र-पत्रिकाओं में प्रकाशित होते रहते है। श्री राजीवलोचन अग्निहोत्री ने 'संस्कृत साहित्य को बान्धव-नरेशों की देन' नामक पुस्तक में एक ऐतिहासिक अध्ययन प्रस्तुत किया है। आपने महाराज विश्वनाथ सिंह के ब्रह्मसूत्र पर 'राधावल्लभीय भाष्य' का हिन्दी अनुवाद किया है। 'शकारि विक्रमादित्य' नामक ऐतिहासिक उपन्यास प्रकाशित हो रहा है। आपकी कविताएं, कहानियां और निबन्ध समय-समय पर प्रकाशित होते रहते है। अग्निहोत्री जी नागपुर के दैनिक 'युग-धर्म' एवं लखनऊ से प्रकाशित 'राष्ट्र-धर्म' एवं 'पाञ्चजन्य' के संपादक रह चुके हैं।

श्री सिद्धविनायक द्विवेदी एक उच्च कोटि के उपन्यास-लेखक हैं। कापके उपन्यासों में विद्रोह का चरम स्वर है। सजनी, विद्रोही, अवसान, वीतरागी, श्वेतपद्मा, मुक्तिदान तथा अहिंसा की राह पर आपके प्रकाशित उपन्यास हैं। आजादी के बलिदानी वीर, विरह वह्नि, पातिव्रत, प्रतिज्ञा, पथराये नेत्र तथा अहिंसक अराजकता बनाम रामराज्य' आपकी अप्रकाशित कृतियां हैं। द्विवेदीजी की एकान्त साधना ने यद्यपि उन्हें साहित्यिक जगत से दूर रखा है, फिर भी आप निरन्तर लगन के साथ लिखते रहते हैं।

लाल यादवेन्द्र सिंह की कहानियों में प्रेम का अनूठा आदर्श एवं सामाजिक क्रांति की सफल अभिव्यंजना है।

हार, बलिदान, दश कण तथा नींव के पत्थर आपके कहानी-संग्रह प्रकाशित हो चुके हैं। आपने 'रीवा तथा रीवा राज्य का इतिहास' (दो भाग) नामक ऐतिहासिक कृतियां भी लिखी हैं। आप रीवा-राज्य के शिक्षा-मंत्री रह चुके हैं तथा इस समय प्रादेशिक कांग्रेस के अध्यक्ष एवं विंध्य-विधान सभा के सदस्य हैं। श्री रामसागर शास्त्री के लेख प्रतिष्ठित पत्र-पत्रिकाओं में प्रकाशित होते रहते हैं। आपके 'सती के नाम पर' तथा 'कर्म-साधना' उपन्यास प्रकाशित हो चुके है। श्री रामानन्द द्विवेदी के 'आठ एकांकी' पुरस्कृत हो चुके है। 'नया कदम' (एकांकी),'अजीत विजय' (नाटक) तथा 'श्रृंगार-संगीत' कविता-संग्रह अप्रकाशित है।

संस्मरण और यात्रा-साहित्य के क्षेत्र में श्री महेन्द्र कुमार 'मानव' ने हिन्दी-साहित्य को जो दिया है, उसका भी विंध्य-प्रदेश के साहित्यिक योगदान में एक विशेष स्थान है। प्रारम्भ में आपकी रचनायें माधुरी, सुधा, विशाल भारत आदि प्रमुख पत्रिकाओं में प्रकाशित होती रही। आपने 'जैन साहित्य में कृष्ण' विषय पर बंबई विश्वविद्यालय से शोध-कार्य किया है। संस्कृत से भवभूति-ग्रन्थावली का, अंग्रेजी से 'खलील जिब्रान' की पुस्तकों का तथा बहुत-सी गुजराती भाषा की पुस्तकों का हिन्दी-अनुवाद किया है। मानव जी विंध्य-सरकार के वित्त एवं समाज-सेवा मंत्री रह चुके है ।

श्री मदन मोहन मिश्र ने 'बान्धव वैभव' के नाम से विंध्य के साहित्यकों का परिचय लिखा है। आपका 'अनुभूति' गद्य-काव्य तथा 'विन्ध्य-प्रदेश की अमर आत्मायें' पुस्तकें प्रकाशित हो चुकी हैं। इनके अतिरिक्त 'अतीत की स्मृतियां' (कहानी-संग्रह), चन्द्रशेखर आजाद एवं भरहुत (एकांकी) तथा 'सिंहासन का मूल्य' एवं 'चन्द्र-ज्योत्स्ना' उपन्यास अप्रकाशित है। सतना के श्री भगवान दास सफ़ड़िया व्यवसायी होते हुए भी साहित्य के लिये समय निकाल लेते है। 'बाल्मीकि तुलसी भये' आपका नाटक अभी हाल ही में प्रकाशित हुआ है। 'काश्मीर हमारा' नामक एक नाटक और भी इन्होंने लिखा है, जो अप्रकाशित है।

ऐतिहासिक शोध के क्षेत्र में पं० ब्रजेन्द्रनाथ चतुर्वेदी ने बहुत काम किया है। आपने बघेल-नरेशों से सम्बन्धित साहित्य और वंशावलियों की खोज की है। प्रो० अख्तर हुसेन निजामी ने विंध्य-प्रदेश के अनेक राज-घरानों से सम्बन्धित ऐतिहासिक शोधों पर निबन्ध लिखे है, जो प्रामाणिक है। गुरु रामप्यारे अग्निहोत्री का 'विन्ध्य-प्रदेश का इतिहास' प्रकाशित है। लाल भानुसिंह बघेल के ऐतिहासिक और यात्रा-सम्बन्धी निबन्ध-संग्रह प्रकाशित हैं। लाल कृष्णवंश सिह बघेल ने 'हिमालय के प्रदेश में', 'तुलसी पंच-पत्र' तथा 'तिब्बत मे तेइस दिन' नामक पुस्तकें लिखी है। श्री रामभद्र गौड के भी ऐतिहासिक निबन्ध प्रकाशित होते रहे है। श्री महेश प्रसाद श्रीवास्तव की 'मेरी रूस-यात्रा' भी प्रकाशित हो चुकी है।

विंध्य-प्रदेश के निवासी न होते हुए भी जिन साहित्यकारो ने विंध्य की प्राकृतिक सुषमा से प्रेरणायें प्राप्त की है अथवा साहित्य-सृजन में सक्रिय योगदान दिया है, उनमे श्री बनारसीदास चतुर्वेदी का नाम प्रमुख है। चतुर्वेदीजी ने बहुत समय तक टीकमगढ़ मे प्रकाशित होनेवाले 'मधुकर' तथा 'विंध्यवाणी' का संपादन किया था। आपके संस्मरण तथा रेखाचित्र अपना विशिष्ट स्थान रखते है। आजकल आप राज्य-सभा के सदस्य है और दिल्ली में रहा करते है।

श्री श्रीचन्द्र जैन ने विंध्य के लोक-साहित्य पर दर्जनों पुस्तकें लिखी है। इनकी कई पुस्तकें विन्ध्य-प्रदेश सरकार द्वारा एवं भारत-सरकार द्वारा पुरस्कृत हो चुकी है। श्री कृष्णचन्द्र वर्मा से विन्ध्य की साहित्यिक प्रगति को बहुत बड़ा योगदान मिला है। वर्मा जी का 'आचार्य कवि केशवदास' पुरस्कृत हो चुका है। इसके अतिरिक्त उनकी 'उद्धव-शतक-मीमांसा' तथा 'अयोध्या-काण्ड की भूमिका' प्रकाशित हो चुकी हैं। वर्मा जी ब्रज-भाषा के सुन्दर कवि भी है। श्री ब्रजकिशोर वर्मा 'श्याम' के लेख उच्च कोटि की पत्र-पत्रिकाओं में प्रकाशित होते रहते हैं। आपके 'विप्लव के अग्रदूत' पर पुरस्कार भी प्राप्त हो चुका है। प्रो० महावीर प्रसाद अग्रवाल ने 'आठ सेर चावल' के नाम से भूतपूर्व उपराज्यपाल श्री कस्तूरी सन्तानम् की कहानियों का अनुवाद किया है। आपके संस्मरण, रेखाचित्र तथा निबन्धों की शैली अनूठी होती है। सूचना-विभाग के श्री शुकदेव दुबे की बाल-साहित्य पर पचीसों पुस्तकें प्रकाशित हैं, जिनमे से दो—खोज के पथ पर, खुदीराम बोस—विंध्य-प्रदेश सरकार द्वारा पुरस्कृत भी हो चुकी हैं। इन्होंने पद्माकर कवि पर एक

आलोचना-ग्रन्थ भी लिखा है, जो अभी प्रकाशित हुआ है। इस पुस्तक में पद्माकर की विशद आलोचना, जीवन-परिचय, तत्कालीन परिस्थिति आदि के साथ-साथ चयन भी है। डाक्टर उदयनारायण तिवारी के साथ इन्होंने 'तुलसी-दल' नाम से तुलसी के बरवै रामायण, जानकी-मंगल, पार्वती-मंगल का संपादन भी किया है। इनके अतिरिक्त इन्होंने काव्य शास्त्र पर एक छोटी पुस्तक 'काव्यांग-प्रकाश' भी लिखी है, जिसकी विशेषता यह है कि इसके उदाहरण पिटे-पिटाये नहीं, बल्कि नवीन एवं खड़ी बोली के हैं। इन्होंने कई पाठ्य-पुस्तकें भी लिखी और सम्पादित की हैं, जो विभिन्न राज्यों की विभिन्न कक्षाओं में पाठ्य अथवा सहायक के रूप में पढ़ायी जाती हैं। इनका एक कहानी-संग्रह भी अप्रकाशित है। सर्वश्री पुरुषोत्तम दास कठल, नीरज जैन, वासुदेव प्रसाद खरे, रज्जन श्रीवास्तव, रामशरण सिंह, रमाशंकर पाठक, कुमारी राज सोंधी तथा लीला सिंघवी ने अपनी मनोहर रचनाओं से विंध्य के साहित्य-भांडार की श्री-वृद्धि की है।

मैं उन लेखकों तथा कवियों से क्षमा-प्रार्थी हूं, जिनके सम्बन्ध में इस लेख में संयोगवश अथवा विशेष जानकारी न प्राप्त होने के कारण चर्चा नहीं की जा सकी है।

आर० एल० अग्निहोत्री

साहित्य के विकास को सरकारी योग-दान

विंध्य-प्रदेश की जनतंत्रीय सरकार की स्थापना फरवरी सन् १९५२ में हुई थी। तब से राज्य के विकास की अनेक योजनाओं के साथ-साथ हिन्दी-साहित्य के विकास की भी योजनाएं बनीं और कार्यान्वित हुई। इन योजनाओं के दो स्वरूप थे—साहित्यकारों को प्रोत्साहन और उसके साथ-साथ साहित्यिक प्रकाशन, जो अपने आप में साहित्यिकों को प्रेरणा देने का कारण बनता था।

हिन्दी-पुरस्कार-प्रतियोगिता

इस प्रतियोगिता की आधार-शिला १९५२–५३ वर्ष में तैयार की गई और प्रतियोगिता के विजेताओं को पुरस्कृत करने के लिये १०१०१ रुपये की राशि स्वीकृत की गई। इस राशि का विभाजन इस प्रकार था:—

(क) देव पुरस्कार (अखिल भारतीय)	२१०१)
(ख) अन्य साहित्य पुरस्कार	५०००)
(ग) बाल पुरस्कार	३०००)
	१०१०१)

प्रतियोगिताओं का मूल उद्देश्य यह था कि विंध्य-प्रदेश के साहित्यिक साहित्य-सृजन करें तथा राज्य के बाहर के साहित्यिक विन्ध्य-प्रदेश की विभूतियों को प्रकाश में लाने के लिये नई कृतियों से हिन्दी का कोष भरे। इसलिये जहां राज्य की सर्वोत्तम कृतियों पर पुरस्कार दिये जाते थे, वहां बाहर की उन सर्वोत्तम कृतियों पर भी पुरस्कार दिये जाते थे, जिनका विषय विन्ध्य-प्रदेश से संबंधित होता था।

देव पुरस्कार महाकवि केशवदास के आश्रयदाता वीरसिंह जू देव की स्मृति में ओरछा-दरबार द्वारा संचालित किया गया था। धन-राशि और मूल्यांकन दोनों ही दृष्टियों से यह पुरस्कार भारत भर के हिन्दी-पुरस्कारों में सर्वश्रेष्ठ है। विन्ध्य-प्रदेश सरकार ने सर्वोत्तम प्रकाशित अभिनव अखिल भारतीय हिन्दी-कृति पर यह पुरस्कार देना स्वीकार कर लिया।

विंध्य की साहित्यिक विभूतियों—केशवदास, रघुराज सिंह, छत्रसाल, ईसुरी, हरिराम व्यास, गोरेलाल और ठाकुर—की स्मृति में अन्य साहित्य पुरस्कार संचालित किये गये। उसी प्रकार विश्वनाथ सिंह, अक्षर अनन्य, पद्माकर और रसनिधि की स्मृति में बाल पुरस्कार संचालित हुए।

प्रथम वर्ष (१९५२–५३) के पुरस्कार

३१ मार्च, सन् १९५३ को विन्ध्य-प्रदेश-सरकार के सूचना एवं प्रचार-विभाग द्वारा संचालित प्रथम वर्ष के पुरस्कार निम्नलिखित रूप में वितरित किये गये—

१. देव पुरस्कार—श्री चन्द्रबली पांडेय, बनारस को 'केशवदास' पर २१०१)।

२. रघुराज पुरस्कार—श्री वासुदेव गोस्वामी, दतिया को 'भक्त कवि व्यास जी' पर ७५०)।

३. छत्रसाल पुरस्कार—प्रत्येक ५०० रुपये (१) श्री बिहारीलाल, बिजावर को 'साहित्य सागर' पर; (२) (स्व०) श्री शोभाचन्द्र जोशी, टीकमगढ़ को 'सप्तर्षि लोक' पर।

४. ईसुरी पुरस्कार—प्रत्येक २५० रुपये (१) श्री लक्ष्मी नारायण मिश्र, इलाहाबाद को 'दशाश्वमेध' पर; (२) श्री सूर्यबली सिंह, रीवा को 'हिन्दी की प्राचीन और नवीन काव्यधारा' पर; (३) श्री गौरीशंकर द्विवेदी, झांसी को 'बुन्देल-वैभव' पर; (४) श्री लखन प्रताप सिंह, उरगेश', कृपालपुर को 'बघेली गीत' पर।

५. व्यास पुरस्कार—प्रत्येक १०० रुपये (१) श्री रामाधीन लाल खरे, रीवा को 'ऋतुविहार' पर; (२)

श्री अम्बिकेश, रीवा को 'ज्योति' पर; (३) श्री ब्रजेश, रीवा को 'मोहन चरित्रमाला' पर; (४) श्री सुधाकर शुक्ल, टीकमगढ़ को 'कसक' पर; (५) श्री भैयालाल व्यास, दतिया को 'आग-पानी' पर; (६) श्री शेषमणि शर्मा, रायपुर को 'कैकेयी' पर।

६. लाल पुरस्कार—प्रत्येक ५० रुपये (१) श्री चतुरेश, दतिया को 'चटनी' पर; (२) श्री रामप्रताप खरे, रीवा को 'ओस की परियां' पर; (३) श्री अम्बिका प्रसाद दिव्य, छतरपुर को 'पावस' पर; (४) श्री हरशरण शर्मा शिव, माधवगढ़ को 'मधुकर' पर; (५) श्री धन्यकुमार जैन, नागौद को 'विराग' पर; (६) श्री मदनमोहन मिश्र, रीवा को 'बान्धव वैभव' पर; (७) श्री रामसागर शास्त्री, रीवा को 'अमर-रत्न' पर; (८) श्री महेश प्रसाद, रीवा को 'मेरी रूस-यात्रा' पर।

७. ठाकुर पुरस्कार—प्रत्येक २५ रुपये (१) श्री रामसागर शास्त्री, रीवा को 'कर्मसाधना' पर; (२) श्री हरिमोहन लाल श्रीवास्तव, दतिया को 'प्रायश्चित्त' पर; (३) श्री रामनाथ गुप्त, हरदेव छतरपुर को 'करवाल किरण' पर; (४) श्री श्रीचन्द जैन, रीवा तथा श्री अम्बा प्रसाद श्रीवास्तव, दतिया को 'विन्ध्य-भूमि की लोक-कथाएं' पर; (५) श्री मदनमोहन मिश्र, रीवा को 'अतीत की स्मृतियां' पर; (६) सुश्री शकुन्तला सक्सेना, रीवा को 'अवकाश के क्षण' पर; (७) श्री गोविंद चतुर्वेदी, रीवा को 'मेरे गीत' पर; (८) श्री बी० एम० लायल, झांसी को 'बुन्देलखंडी पहेलियां' पर; (९) श्री गुरु रामप्यारे अग्निहोत्री, रीवा को 'विन्ध्य-प्रदेश' पर; (१०) श्री रामानन्द द्विवेदी, सतना को 'आठ एकांकी' पर।

८. अनन्य पुरस्कार—प्रत्येक २५० रुपये (१) श्री श्रीचन्द जैन, रीवा को "विन्ध्य-भूमि की अमर कथाएं' पर; (२) श्री नर्मदाप्रसाद मिश्र, जबलपुर को 'भारतीय वीरों की कहानियां' पर; (३) श्री लक्ष्मीशंकर मिश्र अरुण, बंबई को 'हिन्दुस्तान के जानवर' पर।

९. पद्माकर पुरस्कार—श्री हरिमोहनलाल श्रीवास्तव, दतिया को 'भारत-भक्ति' पर १००)।

१०. विश्वनाथ पुरस्कार—श्री निरंकारदेव सेवक, बरेली को 'रिमझिम' पर ५००)।

१२. पद्माकर पुरस्कार—प्रत्येक १०० रुपये (१) श्री हरिदास समानिक, बनारस को 'भारत की प्राचीन झलक' पर; (२) श्री रघुवीर शरण मित्र, मेरठ को 'वीर बालक' पर; (३) श्री नर्मदा प्रसाद मिश्र, जबलपुर को 'कलियुग के सतयुगी सपूत' पर; (४) श्री अयोध्या प्रसाद झा, पटना को 'वे तीनों' पर।

द्वितीय वर्ष (१९५३-५४) के पुरस्कार

इस वर्ष देव पुरस्कार २१००) का निश्चित कर वार्षिक क्रम से काव्य, रचनात्मक गद्य और विवेचनात्मक गद्य पर देने की घोषणा की गई। अन्य साहित्य पुरस्कार के विषय-समूह निश्चित कर ५६००) की राशि केशव (काव्य), रघुराज (समीक्षात्मक गद्य), व्यास (रचनात्मक गद्य), ईसुरी (लोक-साहित्य), ठाकुर (ललित-कला), छत्रसाल (इतिहास, समाज-शास्त्र तथा सदृश विषय) और लाल (विज्ञान)—कुल सात कोटियों में प्रथम ५००), द्वितीय २००) और तृतीय १००) के क्रम से विभाजित कर दी गई। इसी प्रकार बाल-साहित्य पुरस्कार की २३००) की धन-राशि विश्वनाथ (वार्षिक क्रम से सर्वश्रेष्ठ बाल-मनोविज्ञान या बालोपयोगी मौलिक साहित्य), पद्माकर (बालोपयोगी ललित-साहित्य), रसनिधि (रोचक इतिहास, विज्ञान, भूगोल आदि), अनन्य (अनूदित बाल-साहित्य)—कुल चार कोटियों में विभाजित की गई। इनमें से प्रथम ५००) का अखिल भारतीय पुरस्कार रखा गया और शेष तीन प्रादेशिक श्रेणी पर आधारित प्रथम ३००), द्वितीय २००) तृतीय १००) के क्रम से रखे गए। विस्तृत नियमावली भी प्रकाशित की गई। इस वर्ष विन्ध्य प्रादेशिक हिन्दी-साहित्य सम्मेलन के अनुरोध के आधार पर पांडुलिपियां भी स्वीकार की गयीं। कुल १००००) की राशि पुरस्कारार्थ स्वीकृत की गयी। इसका वितरण इस प्रकार हुआ—

१. देव पुरस्कार (काव्य)—ठाकुर गोपालशरण सिंह, नई गढ़ी, रीवा को 'जगदालोक' पर २१००);

२. केशव पुरस्कार (काव्य)—(१) श्री ब्रजेश, रीवा को 'रस-रसांग-निर्णय' पर ५००); (२) श्री शेषमणि शर्मा, रायपुर को 'जग और जीवन' पर २००); (३) श्री पुरुषोत्तमदास कठल, रीवा को 'मील के पत्थर' पर १००);

३. रघुराज पुरस्कार (समीक्षात्मक गद्य)—(१) श्री कृष्णवंश सिह, भरतपुर, रीवा को 'तुलसी पंचम्पत्र' पर

५००); (२) श्री रामाश्रय पयासी, कोठी को 'काव्यानुशीलन' पर २००); (३) श्री कृष्णचन्द्र वर्मा, रीवा को 'आचार्य कवि केशवदास' पर १००);

४. व्यास पुरस्कार (रचनात्मक गद्य)—(१) श्री बनारसीदास चतुर्वेदी, टीकमगढ़ को 'रेखाचित्र' पर ५००); (२) श्री राजीवलोचन अग्निहोत्री, रजरवार, सतना को 'शकारि विक्रमादित्य' पर २००); (३) श्री रामसागर शास्त्री, मऊगंज, रीवा को 'विन्ध्य-दर्शन' पर १००);

५. ईसुरी पुरस्कार (लोक-साहित्य)—(१) श्री शिवसहाय चतुर्वेदी, सागर को 'गौने की विदा' पर ५००); (२) श्री उमाशंकर शुक्ल, सागर को 'बुन्देलखंड के लोकगीत' पर २००); (३) श्री श्रीचन्द जैन, रीवा को 'भुइयां परे हैं लाल' पर १००);

६. ठाकुर पुरस्कार (ललित-कला)—(१) श्री बालचन्द्र जैन, कटनी को 'विन्ध्य प्रदेश के प्राचीन कला-केन्द्र और कला-कृतियां' पर २००); (२) श्री इकबाल बहादुर देवसरे, रीवा को 'भारतीय चित्र-कला' पर १००);

७. छत्रसाल पुरस्कार (इतिहास आदि)—(१) श्री वासुदेव गोस्वामी, दतिया को 'विद्रोही बानपुर' पर ५००); (२) श्री बालचन्द्र जैन, कटनी को 'कलिंग चक्रवर्ती, पर २००); (३) श्री रामायण प्रसाद, छतरपुर को 'हमारा संविधान' पर १००);

८. लाल पुरस्कार (विज्ञान)—(१) श्री जनार्दन प्रसाद श्रीवास्तव, नौगांव को 'भू-सैद्धान्तिकी', पर १००);

९. विश्वनाथ पुरस्कार (बाल-मनोविज्ञान)—(१) डा० पुरुषोत्तमलाल चोपरा, जबलपुर को 'बाल-विकास' पर ५००);

१०. पद्माकर पुरस्कार (बालोपयोगी ललित साहित्य)—(१) श्री मदनमोहन मिश्र, रीवा को 'विन्ध्य प्रदेश की अमर-आत्माएं' पर ३००); (२) श्री रामशरण सिंह, रीवा को 'गौरव-गीत' पर २००); (३) श्री हरिमोहन लाल श्रीबास्तव, दतिया को 'विन्ध्य-वैभव' पर १००);

११. रसनिधि पुरस्कार (बालोपयोगी विज्ञान, इतिहास आदि)—(१) श्री श्रीकृष्ण देवसरे, रीवा को 'बेसिक कला-कौशल' पर ३००); (२) श्री हरिमोहन लाल श्रीवास्तव, दतिया को 'शिशु-त्रोध' पर २००); (३) श्री कृष्ण मुरारी सक्सेना, रीवा को 'भारत-दर्शन' पर १००);

तृतीय वर्ष (१९५४-५५) के पुरस्कार

१९५४-५५ के वित्तीय वर्ष में तत्कालीन उपराज्यपाल महोदय श्री कस्तूरी संतानम् के इच्छानुसार नियमों में सामान्य संशोधन किये गये। संस्कृत-साहित्य से संबंधित ग्रन्थों के लिये मित्र पुरस्कार की घोषणा की गई। यह भी नियम रखा गया कि जिन पुरस्कारों मे महिलाएं भी भाग ले रही हों, उनमें तृतीय स्थान उनके लिये सुरक्षित कर दिया जाय। इस बर्ष पांडुलिपियां स्वीकार नही की गई थीं। प्रतियोगिताओं में कम ग्रन्थ आने के कारण सभी पुरस्कार अखिल भारतीय घोषित कर दिये गये। इस वर्ष का परिणाम इस प्रकार रहा—

१. देव पुरस्कार (रचनात्मक गद्य)—श्री यशपाल, लखनऊ को 'चित्र का शीर्षक '(कहानी संग्रह)'पर २१००);

२. केशव पुरस्कार (काव्य)—(१) कुंवर सोमेश्वर सिंह, नई गढ़ी, रीवा को 'सरोज' पर ६००); (२) श्री रूपनारायण त्रिपाठी, जौनपुर को 'माटी की मुसकान' पर २००); (३) श्रीमती कमला चौधरी, एम० पी०, नई दिल्ली को 'आपन मरण जगत कै हाँसी' पर १००);

३. रघुराज पुरस्कार (आलोचनात्मक गद्य)—(१) श्री रामलाल सिह, सागर को 'समीक्षा-दर्शन' पर ५००); (२) श्री श्रीपाल सिह क्षेम, जौनपुर को 'छायावाद की काव्य-साधना' पर २००); (३) श्रीमती कान्ति श्रीवास्तव, नौगांव को 'अर्थ, ध्वनि एवं विचार' पर १००);

४. व्यास पुरस्कार (रचनात्मक गद्य)—(१) श्री शान्तिप्रिय द्विवेदी, बनारस को 'प्रतिष्ठान' पर ५००); (२) श्री चन्द्रबली त्रिपाठी, बस्ती को 'धर्मराज युधिष्ठिर' पर २००); (३) श्रीमती नमिता लुम्बा, इलाहाबाद को 'जिन्दगी के अनुभव, पर १००);

५. ईसुरी पुरस्कार (लोक-साहित्य)—(१) श्री हरगोविद गुप्त, झांसी को 'गांव का मेरुदंड किसान' पर ५००); (२) श्री महावीर प्रसाद अग्रवाल, रीवा को 'आठ सेर चावल' पर २००); (३) श्रीमती लीला सिन्ववी, रीवा को 'सुहाग रागिनी' पर १००);

६. ठाकुर पुरस्कार (ललित-कला)—(१) श्री हंसकुमार तिवारी, गया को 'कला' पर ५००); (२) श्री जगदीश मित्तल तथा श्रीमती कमला मित्तल, हैदराबाद को 'भारतीय कसीदा' पर २००);

७. छत्रसाल पुरस्कार (इतिहस-समाज-विज्ञान)—(१) श्री केशवचन्द्र मिश्र, देवरिया को 'चन्देल और उनका राजत्वकाल' पर ५००); (२) श्री ब्रह्मदत्त दीक्षित, बनारस को 'वनवासी भारत' पर, (३) श्री सोहनलाल गुप्त, जबलपुर को 'भारतीय कृषि की समस्याएं' पर—अन्तिम दोनों पुस्तकों पर २००);

८. लाल पुरस्कार (विज्ञान)—(१) श्री गुरु प्रसाद श्रीवास्तव, रीवा को 'सामान्य विज्ञान' पर ५००); (२) श्री महेन्द्रनाथ पांडेय, इलाहाबाद को 'रोगी-सुश्रूषा' पर २००); (३) श्रीमती अन्नपूर्णा देवी श्रीवास्तव, रीवा को 'स्वास्थ्य प्रवेशिका' पर १००);

९. मित्र पुरस्कार (संस्कृत)—(१) आचार्य विश्वेश्वर, वृन्दावन को 'ध्वन्यालोक' पर ५००); (२) आचार्य विश्वेश्वर, वृन्दावन को 'तर्कभाषा' पर २००);

१०. विश्वनाथ पुरस्कार (बालोपयोगी मौलिक)—(१) श्री मन्मथनाथ गुप्त, दिल्ली को 'बाल-कथा कहानियां' पर ५००);

११. पद्माकर पुरस्कार (ललित बाल-साहित्य)—(१) सैयद कासिम अली, जबलपुर को 'बाल एकांकी' पर ३००); (२) श्री हरिकृष्ण देवसरे, रीवा को 'सफेद रसगुल्ला' पर २००); (३) कुसुम कुमारी चतुर्वेदी, इन्दौर को 'बाबा तुलसी' पर १००);

१२. रसनिधि पुरस्कार (उपयोगी बाल-साहित्य)—(१)श्री शुकदेव दुबे, रीवा को 'खोज के पथ पर' पर ३००); (२) श्री ब्रजकिशोर वर्मा 'श्याम', रीवा को 'विल्पव के अग्रदूत' पर २००);

१३. अनन्य पुरस्कार (अनूदित बाल-साहित्य)—(१) श्री अयोध्या प्रसाद झा, पटना को 'स्वर्ण अभियान' पर ३००); (२) श्री नन्दलाल जैन, छतरपुर को 'सुखी राजकुमार' पर २००); (३) श्रीमती सावित्री देवी वर्मा, दिल्ली को 'शेक्सपियर की कहानियां, पर १००);

चतुर्थ वर्ष (१९५५-५६) के पुरस्कार

सन् १९५५–५६ में प्रदेश के लेखकों की परिस्थितियों पर विचार करते हुए लाल पुरस्कार पद्यात्मक और ठाकुर पुरस्कार गद्यात्मक रचनाओं की पाण्डुलिपियों के लिये सुरक्षित कर दिया गया। इस वर्ष का निर्णय निम्नलिखित रहा :–

१. देव पुरस्कार (आलोचनात्मक गद्य)–डा० उदयनारायण तिवारी, प्रयाग को 'भोजपुरी भाषा और साहित्य' पर २१००);

२. विश्वनाथ पुरस्कार (बाल-मनोविज्ञान)—श्रीमती सावित्री देवी, दिल्ली को 'आपका मुन्ना' पर ५००);

३. केशव पुरस्कार (काव्य)–(१) श्री रामशरण सिंह, रीवा को 'गांव कै धरती' पर ५००); (२) श्री भैयालाल व्यास, दतिया को 'जीवन के क्रम' पर २००); (३) कुमारी राज सोंधी, रीवा को 'पथ के गीत' पर १००);

४. रघुराज पुरस्कार (विवेचनात्मक गद्य)–(१) श्री श्रीचन्द जैन, रीवा को 'विन्ध्य के लोक-कवि' पर २००); (२) श्री भानुसिंह बघेल, भरतपुर, सीधी को 'मयूखमाला' पर १००);

५. व्यास पुरस्कार (रचनात्मक गद्य)–(१) श्रीमती शीला शर्मा, रीवा को 'एक था' पर ५००); (२) श्री वासुदेव गोस्वामी, दतिया को 'बुद्धि के ठेकेदार' पर २००); (३) श्री रामस्वरूप वर्मा 'दीपक', दतिया को 'समाज-सेवा' पर १००);

६. छत्रसाल पुरस्कार (विविध विषय)–(१) श्री जनार्दन प्रसाद श्रीवास्तव, नौगांव को 'उदधि' पर ५००); (२) श्री नरेन्द्र कुमार, छतरपुर को 'अछूत कोई नही' पर २००); (३) श्री सिराजुद्दीन सिद्दीकी, रीवा को 'आंगुल्य छाप-विमर्श' पर १००);

७. लाल पुरस्कार (हस्तलिखित पद्य)–(१) श्री जगदीशचन्द्र जोशी, रीवा को 'विन्ध्याचल' पर २००); (२) श्री ब्रजेश, रीवा को 'ब्रजेश-विनोद' पर १००);

८. ठाकुर पुरस्कार (हस्तलिखित गद्य)–(१) श्री राजीवलोचन अग्निहोत्री, रजरवार, सतना को 'संस्कृत साहित्य को बान्धव-नरेशों की देन' पर २००); (२) कुमारी उर्मिला बनर्जी, रीवा को 'अपना पराया' पर १००);

९. पद्माकर पुरस्कार (बालोपयोगी ललित साहित्य)–(१) श्री शुकदेव दुबे, रीवा को 'खुदीराम बोस' पर ३००); (२) श्री प्रभुदयाल गोस्वामी, रीवा को 'खलिहान की रात' पर २००); (३) श्री कृष्णवंश सिंह बघेल, भरतपुर, सीधी को 'हिमालय के प्रदेश में' पर १००);

इस वर्ष भी प्रति वर्ष की भांति पुरस्कारों की प्रतियोगिता रखी गई है। इस वर्ष देव और विश्वनाथ पुरस्कारों को

छोड़कर सभी पुरस्कारों के लिये पाण्डुलिपियां स्वीकृत की गई हैं। भारतीय राज्यों के पुनर्गठन के प्रश्न को देखते हुए प्रतियोगिता के लिये रचनाएं १५ जुलाई १९५६ तक ही ले ली गई हैं। इस वर्ष देव पुरस्कार की २१००) की राशि काव्य पर दी जायगी।

साहित्यिक प्रकाशन

विन्ध्य-प्रदेश सरकार के सूचना एवं प्रचार-विभाग की ओर से साहित्यिक प्रकाशन भी किये गये, जिनमें प्रदेश-सम्बन्धी विस्तृत साहित्यिक जानकारियां प्रकाशित की गई। ये प्रकाशन निम्नलिखित हैं—

१. **विन्ध्य-भूमि**—यह सूचना-विभाग द्वारा प्रकाशित त्रैमासिक पत्रिका है। इसका प्रथम अंक मार्च सन् ५३ में प्रकाशित कर राजेन्द्रग्राम (शहडोल) में राष्ट्रपति डा० राजेन्द्र प्रसाद को भेंट किया गया था। प्रस्तुत अंक इसका चौथे वर्ष का द्वितीय-तृतीय संयुक्तांक (चौदहवां-पन्द्रहवाँ अंक) है। इसके पूर्व लोक-संस्कृति अंक, पुरातत्व अंक और साहित्य अंक-जैसे संग्राह्य अंक प्रकाशित हो चुके हैं। इसके लेखकों को पारिश्रमिक भी दिया जाता है।

२. **विन्ध्य-प्रदेश**—यह पाक्षिक पत्रिका सूचना-विभाग की ओर से २६ जनवरी १९५३ को प्रारम्भ की गई थी। अब यह अगस्त सन् १९५५ से मासिक पत्रिका के रूप में चलती है। इसमें महत्वपूर्ण सरकारी घोषणाओं की जानकारी रहती है, साथ ही ग्राम-विकास की योजनाओं-संबंधी जानकारियां रहती हैं। लेखकों को पारिश्रमिक दिया जाता है।

३. **विन्ध्य-साहित्य-संकलन (प्राचीन)**—विन्ध्य-प्रदेश के जिन प्राचीन रससिद्ध कवीश्वरों की पावन स्मृति में हिन्दी-पुरस्कार-प्रतियोगिताएँ चलाई गयीं, उनके परिचय के रूप में यह २४० पृष्ठों की पुस्तक मार्च १९५३ में प्रकाशित की गई। परिचय के साथ कवियों की चुनी कविताएँ भी हैं, इन कवीश्वरों के नाम निम्नलिखित हैं—

(१) हरिराम व्यास (श्री वासुदेव गोस्वामी)
(२) केशवदास (श्री दीपचन्द जैन)
(३) विश्वनाथ सिंह (श्री मदन मोहन मिश्र)
(४) पद्माकर (श्री कृष्णचन्द्र वर्मा)
(५) रघुराज सिंह (श्री राममित्र चतुर्वेदी)
(६) अक्षर अनन्य (श्री अम्बा प्रसाद श्रीवास्तव)
(७) ठाकुर (श्री रामसागर शास्त्री)
(८) रसनिधि (श्री अम्बाप्रसाद श्रीवास्तव)
(९) लाल (श्री देवव्रत शास्त्री)
(१०) छत्रसाल (श्री राजीवलोचन अग्निहोत्री)
(११) ईसुरी (श्री गौरीशंकर द्विवेदी 'शंकर')

४. **ओरछा**—अप्रैल सन् १९५४ में विन्ध्य प्रादेशिक हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन के ओरछा अधिवेशन के अवसर पर सम्मेलन के तत्कालीन प्रधान मंत्री श्री राममित्र चतुर्वेदी के सम्पादकत्व में ९२ पृष्ठों की यह पुस्तिका सूचना-विभाग द्वारा प्रकाशित की गई। इसमें साहित्य की राजधानी ओरछा की साहित्यिक एवं सांस्कृतिक विभूतियों तथा प्रेरणा-स्रोतस्विनी बेतवा के महत्व पर लेख और कविताएँ प्रकाशित हैं।

५. **अमरकंटक का आमंत्रण**—इस छोटी-सी पुस्तिका में विन्ध्य-प्रदेश के ग्रीष्म-निवास अमरकंटक, नर्मदा नदी, शिखरमालाओं, प्रपातों, अमरकंटक नगर-विकास-योजना तथा आदिवासियों के जीवन पर प्रकाश डाला गया है।

६. **खजुराहो**—विन्ध्य-प्रदेश के अमर शिल्पियों की देन खजुराहो के मन्दिरों और मूर्तियों की कला और इतिहास पर प्रकाश डालते हुए अंगरेजी और हिन्दी में दो प्रचार-पुस्तिकाएँ प्रकाशित की गई।

७. **दतिया पुस्तकालय**—श्री प्रेमनारायण सिलार-पुरिया के संपादकत्व में दतिया पुस्तकालय में संग्रहीत बहुमूल्य पांडुलिपियों की सूची प्रकाशित की गई।

८. **प्रकृति एवं कला की रंगभूमि विन्ध्य-प्रदेश**—यह विन्ध्य-प्रदेश के ऐतिहासिक एवं प्राकृतिक स्थलों का अलबम है। इन स्थलों का संक्षिप्त परिचय भी इसमें दिया हुआ है।

९. **विन्ध्य-प्रदेश रेडियो-वार्ता**—इस पुस्तक मे विन्ध्य-प्रदेश के सम्बन्ध में जिन मंत्रियों और अधिकारियों ने सरकारी तौर पर अपनी वार्ता रेडियो से प्रसारित की है, उन्हें तिथि-क्रम से संकलित किया गया है। इससे प्रदेश की प्रगति का रूप स्पष्ट हो जाता है।

उक्त प्रकाशनों के अतिरिक्त विन्ध्य-प्रदेश की विभूतियों की जानकारी देनेवाली निम्नलिखित पुस्तकें भी सूचना एवं प्रचार-विभाग द्वारा लिखवाकर प्रकाशित की गयीं और लेखकों को पुरस्कृत किया गया—

१. **हरिराम व्यास (जीवन और कृति)**—सूचना

एवं प्रचार-विभाग की ओर से विन्ध्य के कवियों पर विस्तृत जानकारी देनेवाली पुस्तकें प्रकाशित करने की एक योजना थी। इसी योजना के अनुसार 'विन्ध्य के कवि' ग्रन्थमाला के प्रथम पुष्प के रूप में ओरछा के भक्त कवि हरिराम व्यास के जीवन और कृति का परिचय देनेवाली यह १५० पृष्ठों की पुस्तक प्रकाशित की गई। इसके लेखक श्री वासुदेव गोस्वामी (दतिया) हैं, जो अच्छे कवि और लेखक हैं।

२. बघेली लोक-रागिनी (दो भाग)—लेखक श्री भगवती प्रसाद शुक्ल हैं। आप विन्ध्य प्रादेशिक हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन के प्रधान मंत्री तथा दरबार कालेज, रीवा में हिन्दी के प्राध्यापक हैं। आप बघेली लोक-साहित्य पर शोधकार्य भी कर रहे हैं। उक्त दोनों पुस्तकों में बघेलखण्ड में प्रचलित संस्कार-गीतों एवं विभिन्न जातियों में प्रचलित गीतों पर प्रकाश डाला गया है तथा गीत भी दिये गये है।

विन्ध्य-शिक्षा—विन्ध्य-प्रदेश सरकार ने शिक्षा-संबंधी विकास और सरकारी योजनाओं को प्रोत्साहन देने के लिये तथा देश में प्रसृत शिक्षा-संबंधी विचारधाराओं के प्रकाशन के लिये २६ जनवरी सन् १९५३ से श्री अम्बा प्रसाद श्रीवास्तव के संपादकत्व में विन्ध्य-शिक्षा नामक मासिक पत्रिका संचालित की। जनवरी सन् १९५४ से यह प्रो० राममित्र चतुर्वेदी के संपादकत्व मे चल रही है। इसके सभी अंक संग्राह्य है। विन्ध्य-शिक्षा के लेखकों को भी पारिश्रमिक दिया जाता है।

साहित्यिक संस्थाओं को सहायता

साहित्य के विकास को दृष्टि में रखकर ही राज्य-सरकार राज्य की विभिन्न साहित्यिक संस्थाओं को अनुदान देती रही है।

१. **विन्ध्य-प्रादेशिक हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन**—यह प्रदेश की सब से महत्वपूर्ण साहित्यिक संस्था है। इसे १९५४ से विन्ध्य-सरकार १२००) का वार्षिक और १०००) का अधिवेशन के लिये अनुदान देती रही है। सम्मेलन ने विन्ध्य के आधुनिक कवि, अभिज्ञान के ३ अंक और विन्ध्य भारती के २ अंक प्रकाशित किये हैं।

२. **विन्ध्य-संस्कृत परिषद्**—दिसंबर सन् ५२ से संस्कृत का प्रदेश में विकास करनेवाली यह संस्था चल रही है। मई सन् ५६ में सरकार ने बुद्ध-जयंती पर नाटक खेलने के लिये इसे २००) का अनुदान दिया, जिससे बुद्ध के जीवन पर लिखित परिव्राजक नाटक खेला गया। पुस्तक-प्रकाशन के लिए सरकार ने इस वर्ष ३०००) का अनुदान देना स्वीकार किया है।

३. **नागरी प्रचारिणी सभा, काशी**—इस संस्था की ओर से विन्ध्य-प्रदेश में प्राचीन हस्तलिखित ग्रन्थों की खोज चल रही है। श्री रघुनाथ शास्त्री इस कार्य के लिये भ्रमण करते रहते हैं। शोध से प्राप्त ग्रन्थों की सूचियां भी प्रकाशित होती रहती है। इस संस्था को उक्त कार्य के लिये राज्य-सरकार ने २०००) का अनुदान दिया है।

पुराने कवियों को सहायता

रीवा के वयोवृद्ध महाकवि 'ब्रजेश' अकबर के दरबारी कवि नरहरि महापात्र के वंशधर हैं। आपने अनेक ग्रन्थ रचे है। आप ब्रजभाषा के आचार्य कवि हैं। दूसरे वयोवृद्ध कवि श्री रामाधीन लाल खरे हैं। इनका जीवन भी कविता करते ही बीता है तथा परम्परा से साहित्यिक है। तीसरे श्री अम्बिकाप्रसाद भट्ट 'अम्बिकेश' रीवा राजघराने से परम्परा से संबंधित है। महाराज विश्वनाथ सिंह के समकालीन, अम्बिकेश जी के पूर्वज शिवदीन कवि ने अपनी वंशावली लिखी है, जिसके अनुसार अम्बिकेश के पूर्वज बघेल-नरेशों के पूर्वज व्याघ्रदेव के साथ गुजरात मे आए थे। श्री अम्बिकेश को रीवा-महाराज ने 'राजकवि' उपाधि से सम्मानित किया था।

उक्त तीनों कवि रीवा और ओरछा राजघरानों से सम्मानित एवं पुरस्कृत होते रहे है। इन तीनों की अनेक रचनाएँ विन्ध्य-सरकार द्वारा भी पुरस्कृत हुई है। इनकी मान्यता को स्थिर करते हुए वर्तमान राज्य सरकार ने प्रत्येक को ५०) प्रति मास की वृत्ति देना प्रारम्भ किया। अब यह वृत्ति ७५) प्रति मास हो गई है।

आकाशवाणी से

अखिल भारतीय आकाशवाणी की प्रयाग शाखा मे जून, ५६ में श्री विद्यानिवास मिश्र की 'विन्ध्य के वाग्देवता' नामक रेडियो-वार्त्ता प्रसारित की थी, जिसमें विन्ध्य के प्राचीन कवि नाटिका के रूप में प्रस्तुत किये गये थे। उसके साथ ही विन्ध्य के नये कवियों का सम्मेलन भी आयोजित किया गया था। राज्य के देव पुरस्कार-विजेता यशस्वी कवि ठाकुर गोपाल शरण सिंह इसके अध्यक्ष थे। उनके अतिरिक्त सर्वश्री राम प्रताप खरे, रीवा, शेषमणि शर्मा, रायपुर, वासुदेव

गोस्वामी, दतिया, भैयालाल व्यास, दतिया और ज्योति प्रकाश सक्सेना, छतरपुर की रचनाएँ प्रसारित की गई थीं।

पुस्तकालयों को सहायता

विन्ध्य-प्रदेश सरकार के शिक्षा-विभाग से सरकार द्वारा मान्यता-प्राप्त पुस्तकालयों को पुस्तकों और पत्रिकाओं की खरीद के लिये प्रति वर्ष सरकारी अनुदान मिलते हैं। पिछले तीन-चार वर्षों में इस अनुदान से पुस्तकालयों में पुस्तकों के संग्रह में अत्यधिक वृद्धि हुई है, जिससे जनता लाभान्वित हुई है। प्रत्येक जिलों के विभिन्न पुस्तकालयों के अतिरिक्त रीवा नगर के बाल-समिति पुस्तकालय, उपरहटी, शिक्षा-सागर पुस्तकालय, पांडेन टोला और रघुराज साहित्य परिषद्, चौहट्टा को यह सहायता प्राप्त है। इसके अतिरिक्त रीवा नगर में वेंकट विद्या सदन सरकारी पुस्तकालय है। साथ ही सचिवालय, सूचना-विभाग और विधान-सभा में विभागीय पुस्तकालय स्थापित हैं। दरबार कालेज, रीवा और महाराजा कालेज, छतरपुर के पुस्तकालयों को भी अच्छी राशि अनुदान के रूप मे प्राप्त होती है।

उपर्युक्त विवरण से प्रकट है कि विन्ध्य-प्रदेश में जनतंत्रीय सरकार की स्थापना के पश्चात् राज्य के साहित्यिक विकास को पर्याप्त सरकारी प्रोत्साहन मिला है।

विश्वनाथ शरण चतुर्वेदी

विन्ध्य-प्रदेश में पत्रकारिता का विकास

विन्ध्य-वसुन्धरा सदैव से भारत के सांस्कृतिक, सामाजिक राजनैतिक एवं साहित्यिक जागरण में अपना एक महत्व रखती है। समय-समय पर विन्ध्य की पत्रकारिता भी अपने विशेष श्रद्धा की पुष्पांजलि से भारतीयता के पोषण का महान् कार्य करती रही है।

सन् १८८७ में जब देश मे यत्र-तत्र गिनी-गिनायी पत्र-पत्रिकाओं की संख्या थी, उसी समय रीवा राज्य की राजधानी रीवा से प्रमुख इलाकेदार, हिन्दी-साहित्य-प्रेमी एवं विकासवादी धारणा की साधना में लीन लाल बल्देव सिंह ने 'भारत-भ्राता' नामक साप्ताहिक पत्र का प्रकाशन अपने ही सम्पादकत्व मे आरम्भ किया। इस पत्र के संचालन मे उन्हे अनेकानेक सामयिक कठिनाइयों का सामना करना पड़ा। इन दिनों साहित्यिक चर्चा में गति की कमी, लोगों मे साधारणतया सामयिक विचारों एवं समाचारों से परिचित होने का अभाव तथा सांस्कृतिक वातावरण से दूर-से हो जाने की क्रिया-शीलता ने जोर पकड़ रखा था। आवागमन के साधनों की हीनता एवं कोई स्थानीय पत्र न होने से लोगों को भारतीयता से सुपरिचित होने का अवसर पूर्णतया न मिल पाता था। इस प्रकार के विभिन्न अभावों की पूर्ति के लिए 'भारत-भ्राता' ने एक आन्दोलन-सा छेड़ा और जन-साधारण के सन्देश से राज्य को ज्योतित करने में अपनी अनूठी अविरल साधना के अथक प्रयत्नों से काफी सफलता पायी। 'भारत-भ्राता' के साहित्यिक स्तम्भ में न केवल विभिन्न विषयों की मर्मज्ञता प्रकट करनेवाले लेख, कवितायें और कहानियां ही रहती थीं, वरन् सामयिक विचार विमर्श एवं भिन्न-भिन्न दूर-दूर के समाचारों से भी पाठकों को परिचित कराने की समुचित व्यवस्था की गई थी। साप्ताहिक 'भारत-भ्राता' के प्रकाशन एवं सम्पादन के द्वारा १५ वर्षों तक लगातार राज्य को एक नवीन चेतना दे जीवन तक को प्रेरित करना लाल बल्देव सिंह की आन्तरिक देश-भक्ति एवं साहित्यिक रुचि का परिचायक है। सांस्कृतिक पर्वों पर इस पत्र के विशेषांक प्रकाशित होते थे, जिनको विशेष रूप से आदर्श की ओर समाज को अग्रसर होने के लिये आकर्षक सामग्री से सजाया जाता था। विन्ध्याचल की रियासतों के अतिरिक्त भारतवर्ष के विभिन्न हिस्सों में भी पत्र की प्रतियां पहुंचती थी। इसकी खपत तीन हजार तक बढ़ गई थी। सहायक सम्पादक के रूप में आरम्भ के कुछ समय तक श्री भवानी सिंह, तत्पश्चात् श्री भगवान सिह की सेवाओं से इस साप्ताहिक को बहुत कुछ बल मिला।

इसके पश्चात् विन्ध्य की रम्यस्थली में ६ वर्षों तक पत्र-पत्रिकाओं की गति स्थगित-सी रही; परन्तु लोग 'भारत-भ्राता' द्वारा स्थापित की हुई पारस्परिक चेतना को न भूल सके थे। परिणाम-स्वरूप रीवा राज्य के शुभचिंतक एवं प्रसिद्ध साहित्यकार पं० मधुर प्रसाद पाण्डेय के सम्पादन में सन् १९१० में 'शुभचिन्तक' साप्ताहिक रीवा से प्रकाशित होने लगा। इस प्रकार साहित्यिक चर्चा को पुनः गतिमय प्रोत्साहन मिला तथा लोगों ने विभिन्न विषयों पर ज्ञान-दर्शन एवं विन्ध्य-गौरव की पराकाष्ठा से सुपरिचित होने के साथ-साथ भारत के विभिन्न हिस्सों के समाचारों से परिचित होने का शुभ अवसर प्राप्त किया। साहित्य ने भी करवट बदली और नवीन पंखुड़ियों से सुसज्जित कलियां प्रफुल्लित हो खिलने लगीं। पाण्डेयजी के निरंतर लगनशील रहने से पाठकों ने सहर्ष आठ वर्षों तक 'शुभचिन्तक' का स्वागत करते हुए ज्ञानोपार्जम किया। इस पत्र की प्रसिद्धि शीघ्रता

से बढ़ी और इसकी प्रकाशन-संख्या डेढ़ हजार तक रही। वर्ष में दीपावली, जन्माष्टमी आदि के समय एक-दो विशेषांकों को साहित्यिक एवं सामाजिक समस्याओं के हल के अतिरिक्त सांस्कृतिक दृष्टि से भी रोचक बनाया जाता था। सन् १९१८ में 'शुभचिन्तक' का प्रकाशन बन्द हो गया।

इसके बाद कई वर्षों तक पत्र-पत्रिकाओं की ओर लोगों का ध्यान, विशेष रूप से आर्थिक समस्याओं के कारण, नहीं जा सका। तत्काल ही रीवा के महाराजा साहब गुलाब सिंह का ध्यान राज्य में एक साप्ताहिक पत्र की आवश्यकता पर गया। इसी समय श्री नरसिंह राम शुक्ल (सम्पादक सजनी, इलाहाबाद) ने इस अभाव की पूर्ति की ओर अपनी रुचि प्रकट की। फलस्वरूप महाराजा साहब के लगभग चार हजार वार्षिक सहायता देने की स्वीकृति के साथ ही सन् १९३२ में विजय-दशमी के पूर्व से 'प्रकाश' साप्ताहिक पत्र का प्रकाशन आरम्भ हो गया। तीन वर्षों तक लगातार श्री शुक्ल ने इस पत्र का सम्पादन किया। सन् १९३५ से ४२ तक ठा० अर्जुन सिंह इसके सम्पादन का कार्य-भार सम्हाले रहे। इसी समय भारतीय स्वाधीनता-संग्राम में आप जेल चले गये। श्री केशव प्रसाद चतुर्वेदी अपनी सम्पादकीय लेखनी द्वारा सन् १९४५ तक 'प्रकाश' से प्रकाश फैलाते रहे। इसके बाद सन् १९४७ तक राजकीय सहायता बन्द हो जाने पर भी सन् '४९ तक ठा० अर्जुन सिंह सम्पादन एवं प्रकाशन द्वारा पत्र का सफलतापूर्वक पोषण करते रहे। रीवा से प्रकाशित होनेवाले इस साप्ताहिक पत्र से साहित्य-जगत को प्रोत्साहन के साथ-साथ राज्य-पारिवार की विशेषताओं से लोगों को सुपरिचित होने का अवसर प्राप्त हुआ। विजय-दशमी के पर्व के अतिरिक्त राजकीय परिवार के जन्मोत्सव, कर्ण-छेदन, विवाह आदि के अवसरों पर भी वर्ष में दो-तीन बार इसके विशेषांक निकलते थे।

पत्रकारिता की धूम केवल रीवा राज्य में ही नहीं रही, वरन् विन्ध्याचल के विभिन्न हिस्सों में भी गति आयी, सन् १९३० से लगातार साहित्य-प्रधान 'मधुकर' पाक्षिक पत्रिका टीकमगढ़ से श्री बनारसीदास चतुर्वेदी (वर्तमान संसद्-सदस्य) के सम्पादकत्व में प्रकाशित होनी आरम्भ हुई। दो अंक के बाद 'मधुकर' मासिक पत्रिका के रूप में परिणत हो गई और लगभग आठ वर्षों तक निरन्तर गतिशील रही। सन् १९४० में दतिया से 'लोकेन्द्र' साप्ताहिक पत्र का प्रकाशन आरम्भ हुआ, जिसके श्री किशोरीशरण लिटौरिया तीन वर्षों तक सम्पादक रहे। इस पत्र को दतिया-नरेश से आर्थिक सहायता मिलती थी। दतिया-नरेश का प्रशंसा-प्रधान होते हुए भी इसने साहित्य की ओर बहुत कुछ ध्यान रखा, परन्तु राजकीय सहायता बन्द होने के उपरान्त अधिक समय तक न चल सका। सन् १९४१ से रामवन आश्रम (जिला सतना) से मानस प्रकाशन लिमिटेड की ओर से 'मानस-मणि' नामक मासिक पत्रिका अविराम गति से प्रकाशित हो रही है। इसके संचालक एवं प्रकाशक मानस-संघ, रामवन के मंत्री श्री शारदा प्रसाद जी हैं। सम्पादकों में श्री सुदर्शन सिंह चक्र और पं० तरुणेन्द्र शेखर तिवारी का नाम विशेष उल्लेखनीय है। 'मानस-मणि' मे तुलसी-साहित्य और विशेषतः रामचरित-मानस से सम्बन्धित विषयों पर प्रत्येक अंक में प्रकाश डाला जाता है। सन्तों और विद्वानों के लिए यह पत्रिका विशेष उपयोगी है। सन् १९४२ में साहित्य-प्रधान 'बान्धव' नामक मासिक पत्रिका रीवा से एक नवीन चेतना लेकर सामने आई, जिसने कर्नल बलवन्त सिह (वर्तमान वि० प्र० विधान-सभा के सदस्य) के प्रधान सम्पादन तथा प्रकाशन से प्रस्फुटित हो कर एवं लाल यादवेन्द्र सिंह (वर्तमान वि०प्र० विधान-सभा के सदस्य एवं प्रदेश कांग्रेस के अध्यक्ष) के सहायक सम्पादन के साथ अपनी अनूठी विशेषताओं से साहित्य-जगत को दो साल तक सुसज्जित किया। दतिया से सन् १९४४ मे राजकीय पत्र 'विजय' पाक्षिक श्री हरिमोहन श्रीवास्तव के सम्पादन में प्रकाशित हुआ, जो उस समय दतिया-नरेश के सूचना-विभाग के पदाधिकारी थे। यह पत्र राजकीय परिचय के अतिरिक्त साहित्य की ओर भी लगातार सन् ४८ तक अग्रसर रहा और फिर रियासतों के एक सूत्र में गठित होने के साथ बन्द हो गया। सन् १९४५ से 'विन्ध्य-भूमि' नामक साहित्यक एवं सांस्कृतिक मासिक पत्रिका डा० हरीराम मिश्र के सम्पादकत्व में कभी-कभी विशेषांकों की सजावट के साथ पन्ना से अविरल तीन वर्षों तक निकलती रही।

रीवा से पं० शम्भूनाथ एडवोकेट (वर्तमान मुख्य मंत्री) वि०प्र०) के सम्पादन, प्रकाशन एवं संरक्षता के अन्तर्गत विजय-दशमी सन् १९४६ से साप्ताहिक 'भास्कर' का अभ्युदय

एक नवीन ज्योति लेकर स्वतंत्र रूप से विन्ध्याचल की सर्वांगीण सेवा करने हेतु हुआ। छः महीने बाद श्री जगदीश चन्द्र जोशी (वर्तमान वि० प्र० समाजवादी दल के प्रमुख नेता) के सम्पादन से एक तरुण प्रेरणा विन्ध्य को मिली। तत्पश्चात् श्री यादवेन्द्र सिंह ने इसका सम्पादन किया। श्री राम प्रसाद पाण्डेय तथा श्री गया प्रसाद पाण्डेय ने 'भास्कर' को प्रगति की ओर अग्रसर किया। सन् १९५२ से श्री जागेश्वर प्रसाद पाण्डेय भास्कर का सम्पादन-कार्य कुशलतापूर्वक सम्हाल रहे हैं। यह पत्र कांग्रेस विचार-धारा के साथ-साथ यत्र-तत्र विभिन्न समाचारों के अतिरिक्त साहित्य की ओर भी ध्यान रखता है। आठ माह पूर्व से श्री श्यामसुन्दर पटेल भी संयुक्त सम्पादक के रूप में कार्य कर रहे हैं। एक माह से श्री शत्रुसूदन सिंह कर्चुली प्रधान सम्पादक हैं। प्रथम आम चुनाव के समय में दैनिक रूप से कांग्रेस विचार-धारा का प्रचार करने के लिए भास्कर की वितरण-संख्या लगभग पांच हजार तक हो गई थी। १४ मार्च १९५२ से 'भास्कर' साप्ताहिक भास्कर कम्पनी लि० की ओर से अनवरत रूप से प्रकाशित हो रहा है।

टीकमगढ़ से 'विन्ध्य-वाणी' नामक साप्ताहिक पत्र सन् १९४८ से प्रकाशित होना आरम्भ हुआ, जिसके सम्पादक क्रमशः श्री खरे, श्री चतुर्भुज पाठक तथा श्री बनारसीदास चतुर्वेदी (वर्तमान संसद्-सदस्य) रहे। यह पत्र लगातार चार साल तक विन्ध्य को अपने साहित्यिक, राजनैतिक आदि विचारों से परिचित कराता रहा। सन् १९४८ से दतिया से कर्मचारी संघ के 'उदय' पत्र के एक-दो अंक बुलेटिन के रूप में निकले थे। सन् १९५० के आसपास भूतपूर्व संसद्-सदस्य श्री बैजनाथ दुबे के संचालन तथा श्री जोशी के सम्पादकत्व में 'किसान-पंचायत' साप्ताहिक समाजवादी विचार-धारा का पत्र रीवा से प्रकाशित हुआ। सन् ५३ से श्री मुनि प्रसाद शुक्ल के व्यवस्थात्मक संरक्षण एवं श्री जनार्दन प्रसाद पाण्डेय के सम्पादन में पत्र सन् ५४ तक चला।

छतरपुर से सन् १९५१ में श्री मन्नू लाल द्विवेदी एवं श्री महेन्द्र कुमार मानव (वि०प्र० के भूतपूर्व वित्त मंत्री) के सम्पादन में 'विन्ध्याचल' साप्ताहिक का प्रकाशन विन्ध्याचल के विकास में सहयोग प्रदान करने के लिए आरम्भ हुआ। इसके प्रकाशन का भार श्री मानव पर ही रहा। इसके बाद श्री सुरेन्द्र कुमार जैन ने कुछ अंकों तक सम्पादन-कार्य को सम्हाला। बाद में श्री दशरथ जैन (वर्तमान गृह-मंत्री वि० प्र०) ने सम्पादन प्रारम्भ किया और पत्र की गति समाचार-प्रकाशन के अतिरिक्त साहित्यिक भी सन् ५५ तक रही। इस साप्ताहिक का प्रकाशन कुछ वर्षों तक छतरपुर से हुआ, फिर रीवा से होने लगा था। साप्ताहिक पत्र 'आधुनिक कवि' दतिया से सन् १९५१ से प्रकाशित होना आरम्भ हुआ। इसके सम्पादक श्री शम्भूदयाल ब्रजेश रहे। यह पत्र दो-तीन अंक निकलने के बाद 'आधुनिक' साप्ताहिक के नाम से सन् १९५४ तक चलता रहा। फिर आर्थिक समस्या दीवार बनकर खड़ी हो गई और मार्ग अवरुद्ध हो गया। इसी समय दतिया का 'प्रवाह' पाक्षिक पत्र श्री शिवचरण दीक्षित के सम्पादन में सन् १९५१ से दो वर्ष तक सजीव हो अपने प्रवाह से परिचित कराने के बाद बन्द हो गया। संस्कृति एवं साहित्य-प्रधान गान्धी पुस्तकालय दतिया की 'गान्धी पुस्तकालय पत्रिका' अर्द्धवार्षिक रूप में श्री हरिमोहन लाल वर्मा के सम्पादन में १५ अगस्त १९५१ से ५४ तक चलती रही। इसके अंक १५ अगस्त एवं २६ जनवरी को निकलते थे। श्री रामकृष्ण वर्मा के सम्पादन मे दतिया से 'जन-विजय' साप्ताहिक पत्र सन् १९५२ में प्रारंभ हुआ। ढाई वर्ष तक लगातार प्रकाशन के उपरान्त सम्पादक की मृत्यु हो जाने के कारण वह बन्द हो गया। दतिया के इन पत्रों ने आसपास के स्थानों में भी विकास में योग दिया है।

सतना से निर्माण-भावना से प्रेरित होकर 'निर्माण' साप्ताहिक का १८ फरवरी ५२ को अभ्युदय हुआ। इसके सम्पादक एवं प्रकाशक श्री ललित किशोर टंडन तीन माह तक रहे। इसके बाद श्री जागेश्वर प्रसाद पांडेय के सम्पादकत्व में पत्र ने अपनी निर्माण-साधना १३ जून ५३ तक की। 'गरीब' साप्ताहिक पत्र रीवा से इसी समय श्री जागेश्वर प्रसाद पांडेय के सम्पादन में आरम्भ हुआ और ३ दिसम्बर ५५ तक निर्भीक स्वतंत्र साप्ताहिक रूप में निरन्तर विकास की ओर अग्रसर रहा। 'नव-ज्योति' पाक्षिक रामराज्य परिषदीय विचार-धारा के साथ १५ जून १९५२ को रीवा से प्रकाशित हुआ। इसके संचालक श्री त्रिवेणी दास, प्रबन्ध सम्पादक डा० फतेह बहादुर सिंह एवं सम्पादक डा० जानकी प्रसाद द्विवेदी थे। यह पत्र छः माह चला।

विन्ध्य-प्रदेश-सरकार के सूचना एवं प्रचार-विभाग द्वारा 'विन्ध्य-प्रदेश' नाम के पत्र का प्रकाशन जनवरी १९५३ को आरम्भ हुआ, जिसके सम्पादक श्री विद्यानिवास मिश्र, विन्ध्य-प्रदेश सरकार के तत्कालीन सूचना एवं प्रचार-पदाधिकारी रहे। यह पत्र जुलाई ५५ तक पाक्षिक रूप में रहा। इसकी ओर से राजकीय सार्वजनिक सेवाओं की रूप-रेखा स्थापित करने आदि के अतिरिक्त साहित्यिकों को प्रोत्साहित करने के लिए लेखकों एवं कवियों को पुरस्कार देने की भी व्यवस्था है। अगस्त ५५ से 'विन्ध्य-प्रदेश' मासिक के रूप मे बदल गया। जुलाई ५६ से इसके सम्पादक वर्तमान सूचना एवं प्रचार-पदाधिकारी श्री अम्बाप्रसाद श्रीवास्तव हैं। इसके अलावा 'विंध्य-भूमि' नामक त्रैमासिक साहित्यिक एवं सांस्कृतिक पत्रिका भी मार्च सन् ५३ से विन्ध्य-सरकार के सूचना-विभाग की ओर से श्री विद्यानिवास मिश्र के सम्पादन में प्रकाशित होती रही। इसके सभी अंक विशेषांक और संग्रहणीय हैं। वर्तमान सूचना एवं प्रचार-पदाधिकारी श्री अम्बाप्रसाद श्रीवास्तव अब इसके सम्पादक हैं, जिन्होंने इस प्रदेश-परिचय अंक को निकालने की योजना बनायी है। इस त्रैमासिक पत्रिका में भी साहित्यकारों को लेखों एंव कविताओं पर पुरस्कार दिया जाता है। जनवरी १९५२ से 'विन्ध्य-शिक्षा' नामक मासिक पत्रिका श्री अम्बाप्रसाद श्रीवास्तव के सम्पादन में विन्ध्य की शिक्षा का स्तर ऊंचा करने के लिये शिक्षा-विभाग द्वारा प्रकाशित होनी आरम्भ हुई। बाद में 'विन्ध्य-शिक्षा' का सम्पादन-कार्य प्रो० राममित्र चतुर्वेदी (अब उप-शिक्षा संचालक, वि० प्र०) ने संभाला। इस पत्रिका में प्रगति की ओर शिक्षा-सम्बन्धी सर्वांगीण विकासार्थ लेख एवं कविताओं को पुरस्कृत करने का प्रबन्ध है। 'विंध्य-वार्त्ता' नामक राजकीय साप्ताहिक पत्र मार्च १९५२ में प्रकाशित हुआ, जिसके सम्पादक प्रो० महावीर प्रसाद अग्रवाल रहे। इस पत्र ने साधारण वार्त्तालाप के रूप में सरल भाषा में ग्राम-पंचायत एवं चुनाव-कानून को जनता को एक वर्ष तक समझाने की निरन्तर कोशिश की। यह पत्र राज्य की ओर से निःशुल्क वितरित किया जाता था।

विन्ध्य-प्रदेश ने १५ अगस्त १९५३ का राष्ट्रीय पर्व धूमधाम से मनाया और नई प्रेरणा लेकर विकास-साधना की ओर अग्रसर हुआ। सितम्बर १९५३ से 'दैनिक जागरण' जन-चेतना का राष्ट्रीय मंत्र फूंकने का व्रत लेकर अपने अनूठे ढंग से प्रकाशित होने लगा। विन्ध्य की राजधानी रीवा से इस स्वतंत्र दैनिक के प्रबन्ध सम्पादन आदि व्यवस्था का कार्य श्री गुरुदेव गुप्त के द्वारा सम्पन्न होना आरम्भ हुआ। विन्ध्य-प्रदेश मे दैनिक पत्र के रूप में यह पहला पत्र है। विन्ध्याचल के 'जागरण' से प्रभावित होने के कारण इसके प्रचुर प्रचार में देर न लगी। यह पत्र देश-विदेशों के समाचार देने के कारण समाचार-प्रधान तो था ही, साथ-साथ ऐतिहासिक, साहित्यिक एवं सांस्कृतिक योग प्रदान कर विन्ध्य को विकास की ओर मार्ग-दर्शन एवं विचार-विमर्श आदि में पर्याप्त सामग्री की क्रमबद्धता से प्रदेश की सेवा निरन्तर कर रहा है। 'स्वतंत्र' साप्ताहिक' भी श्री गुरुदेव गुप्त के सम्पादन में विन्ध्य को स्वाधीनता का सन्देश एक वर्ष तक सुनाता रहा। तत्पश्चात् 'दैनिक जागरण' के राष्ट्रीय, सांस्कृतिक आदि पर्वों पर विशेषांकों को विशेष रूप से सजाने पर अधिक बल देने के लिए 'स्वतंत्र' की पृथक् आवश्यकता न प्रतीत हुई। 'राष्ट्र-दीप' जनसंघ के साप्ताहिक मुख पत्र के रूप में निरन्तर छः मास तक सन् १९५३ से सतना से श्री रामशंकर अग्निहोत्री के सम्पादन में निकला। फिर १९५५ में एक दीपावली अंक श्री गुप्ता ने निकाला था। विन्ध्य प्रदेश हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन से वार्षिक पत्र 'अभिज्ञान' के सन् १९५३ से साहित्य के विकास में योग प्रदान करने की दृष्टि से पं० राममित्र चतुर्वेदी के सम्पादन में दो वार्षिक अंक निकले। तीसरे अंक का सम्पादन श्री वासुदेव गोस्वामी एवं श्री विद्यानिवास मिश्र ने किया। यह पत्र वार्षिक होते हुए भी हिन्दी के विकास में पठनीय सामग्री प्रदान करने में योगदान दे रहा है। नवम्बर १९५४ में शहडोल से साप्ताहिक 'समय' का प्रकाशन एक विशेष उत्साह लेकर श्री पद्मनाभ-पति त्रिपाठी के सम्पादन में प्रकाशित हुआ। इसने देश-विदेश के समाचार, सामयिक विचार-विमर्श एवं साहित्य की ओर लोगों का ध्यान आकर्षित किया और अविरल सेवारत है। रीवा से 'विन्ध्य-पंचायत' श्री भारतभूषण के सम्पादन से १५ अगस्त १९५४ से प्रकाशित हुआ। पहले कुछ अंकों तक यह पाक्षिक रहा,

बाद में यह पत्र साप्ताहिक हो गया है। हिन्दी पत्र-पत्रिकाओं के अतिरिक्त १९ नवम्बर १९५४ को श्री आनन्द चन्द्र जोशी (वर्तमान संसद्-सदस्य) के सम्पादन में अंग्रेजी साप्ताहिक पत्र 'टाइड' प्रदेश की राजधानी रीवा से प्रकाशित हुआ। इसमें श्री मुरलीधर पांडेय के आर्थिक सहयोग एवं श्री बल्देव प्रसाद अवस्थी के प्रकाशन एवं सम्पादन-सम्बन्धी सहयोग से पत्र को बल मिला।

'विन्ध्य-भारती' त्रैमासिक पत्रिका विन्ध्य के प्राचीन तथा अर्वाचीन साहित्य एवं उदीयमान कवियों तथा लेखकों को प्रोत्साहित करने के अतिरिक्त पुस्तक-समीक्षा, लोक-साहित्य आदि के शोध-कार्य के उद्देश्य से प्रो० महावीर प्रसाद अग्रवाल एवं श्री कृष्णचन्द्र वर्मा के संपादन में विन्ध्य प्रादेशिक हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन की मुख पत्रिका के रूप में रीवा से मई १९५५ से प्रकाशित होनी आरम्भ हुई है। इस पत्रिका का उद्घाटन राजर्षि पुरुषोत्तमदास टंडन ने सम्मेलन के छतरपुर अधिवेशन के अवसर पर मार्च ५५ में किया था। रीवा से श्री रामधनी मिश्र (पत्रकार-संघ विन्ध्य प्रदेश के वर्तमान अध्यक्ष) के सम्पादन में २४ मई ५५ से 'उदय' साप्ताहिक का प्रकाशन स्वतंत्र प्रगतिशील के रूप में हुआ। इसका प्रकाशन जनता के आर्थिक सहयोग से समय-समय पर विशेषांकों को साहित्यिक दृष्टि से सजाते हुए सन् १९५६ से आरम्भ तक निरन्तर होता रहा।

४ दिसम्बर सन् १९५५ से साप्ताहिक 'गरीब' श्री जागेश्वर प्रसाद पांडेय के अथक प्रयत्नों एवं जनता के सहयोग से 'दैनिक गरीब' के रूप में विन्ध्य की सेवा में लीन है। रीवा से श्री ब्रह्मकुमार शर्मा के प्रबन्ध-सम्पादन में १९ सितम्बर ५५ से 'दैनिक आलोक' विन्ध्याचल को आलोकित करने के ध्येय से प्रेरित होकर प्रकाशित हो रहा है। यह पत्र देश-विदेश के समाचारों के अतिरिक्त साहित्यिक प्रेरणा को प्रोत्साहन देने में अपने विशेषांकों के साथ निरन्तर प्रयत्नशील है। इसके सहायक सम्पादक श्री गणेश प्रसाद साहा हैं।

विन्ध्य की राजधानी रीवा से पत्रकारिता की सुनहली चहल-पहल के मध्य समाजवादी विचारधारा से ओत-प्रोत प्रादेशिक समाजवादी दल के मुख पत्र 'धरती' साप्ताहिक का प्रकाशन एक चेतना भर देने के उद्देश्य से २६ जनवरी १९५६ से हुआ। इसके प्रधान सम्पादक श्री जगदीशचन्द्र जोशी एवं सम्पादक एवं प्रकाशक श्री रामधनी मिश्र हैं। 'धरती' विन्ध्याचल के कोने-कोने में समाजवादी विचार-विमर्श से जनता को वास्तविकता से परिचित कराने के अतिरिक्त साहित्य की दिशा में भी रुचि रखता है। इसी साल के अन्दर दतिया से 'उदय' साप्ताहिक श्री किशोरीशरण लिटौरिया के सम्पादन में तीन अंक निकलकर समाप्त हो गया। श्री रामेश्वर प्रसाद शर्मा (झांसी) ने सतना से 'संयम' साप्ताहिक के कुछ अंकों का प्रकाशन किया। शहडोल से कुछ वर्ष पूर्व 'संग्राम' नामक साप्ताहिक पत्र श्री सत्य-नारायण एवं श्री दुर्गा प्रसाद के सम्पादन में डेढ़ वर्ष तक चला। 'सरपंच' नामक पत्र जिला सीधी की ब्योहारी ग्राम-पंचायत की ओर से तीन वर्ष से लगातार प्रकाशित हो रहा है।

विंध्य-प्रदेश की वर्तमान पत्रकारिता की प्रगति पर बिना प्रकाश डाले इस लेख को समाप्त करना उचित न होगा। विंध्य के पत्रकार 'विन्ध्य-प्रदेश पत्रकार संघ' एवं 'विन्ध्य प्रदेश श्रमजीवी पत्रकार संघ' नामक संस्थाओं से संबद्ध हैं और प्रदेश के गौरव बढ़ाने के लिए सहयोग प्रदान कर अपना विशेष महत्व रखते हैं। पत्रकारिता के क्षेत्र में यद्यपि हमारा राज्य दूसरे प्रदेशों से पिछड़ा है, पर इधर तीन-चार वर्षों से हमारे राज्य में पत्रकारिता का बहुत कुछ विकास हुआ है। यही कारण है कि इस समय हमारे राज्य से दैनिक, साप्ताहिक, पाक्षिक एवं मासिक पत्र-पत्रिकायें निकलकर राष्ट्र-निर्माण में योग दे रही हैं। विंध्य-प्रदेश-पत्रकार-संघ का प्रथम सम्मेलन अक्टूबर ५५ में रीवा में श्री तुषारकान्ति घोष (संपादक, अमृत बाजार पत्रिका, इलाहाबाद) की अध्यक्षता में हुआ था, जिसका उद्घाटन श्री कस्तूरी सन्थानम् (भूत-पूर्व उपराज्यपाल विन्ध्य-प्रदेश) ने किया था। इस सम्मेलन में विन्ध्य-प्रदेश के अतिरिक्त इलाहाबाद, कलकत्ता, कानपुर एवं जबलपुर आदि स्थानों के प्रतिष्ठित पत्रों के प्रतिनिधियों ने भाग लिया था। इस सम्मेलन से विन्ध्य की पत्रकारिता को विकास के लिए बल मिला। वर्तमान पत्रकारिता में योग देनेवालों में स्थानीय पत्र-पत्रिकाओं के सम्पादक-एवं सहायक संपादकों के अतिरिक्त अन्य पत्रों के प्रतिनिधि भी हैं, जिनमें श्री नारायण प्रसाद चतुर्वेदी (अमृत बाजार

पत्रिका, इलाहाबाद), श्री बाल मुकुन्द भारतीय (लीडर एवं भारत, इलाहावाद ; आज, बनारस,), श्री पीताम्बर अध्वर्यु (टाइम्स आफ इंडिया, दिल्ली), श्री चन्द्रकिशोर टंडन स्टेट्समैन, बंबई), श्री राजकृष्ण तनखा (हिन्दुस्तान टाइम्स) के नाम उल्लेखनीय हैं।

इस प्रकार यह स्पष्ट है कि विन्ध्य प्रदेश की पत्रकारिता ६८ वर्ष पूर्व से विकास की ओर ही अग्रसर रही और विन्ध्य-पर्वत-श्रेणियों की रम्यता से परिपूर्ण अरण्य एवं खनिज आदि प्राकृतिक वस्तुओं से विभूषित प्रदेश की प्राकृतिक, कलात्मक, साहित्यिक, राजनैतिक एवं सामाजिक गति-विधियों को जन-जन तक पहुँचाने में रत है।

जिन पत्र-पत्रिकाओं अथवा पत्रकारों की जानकारी या विशेष परिचय न प्राप्त होने से अथवा संयोगवश विवेचन न हो सका हो, वे क्षमा करेंगे।

रामेश्वर ओझा

विन्ध्य-प्रदेश में महिला-जागरण

अनादि काल से यह भारतीय परम्परा चली आ रही है कि समाज में नारी का एक विशेष स्थान है और वह परम्परा आज भी उसी प्रकार वर्तमान है। नारी पुरुष के कार्यों में सजीवता प्रदान करती है। साथ ही ऐसे कार्य भी नारी ही द्वारा सम्पादित होते देखे गये हैं, जहां पुरुष मौन हो रहता है।

समाज का निर्माण नारी बिना अधूरा ही रहता है। पुरुषों के समान नारी ने भी अपने कार्यो का ऐसा परिचय दिया है, जिसे देखकर यह मानना पड़ता है कि नारी अपनी जाति का ही नहीं, वरन् समस्त मानव-समाज का कल्याण उसी प्रकार कर सकती है, जिस प्रकार पुरुष उसे करने का दम रखते है। भारत की यह परम्परा हर प्रदेश में मौजूद है। विन्ध्य प्रदेश भी इससे कभी पीछे न रहा। इसके प्राचीन इतिहास इस बात के साक्षी हैं। नैकहाई का युद्ध आज भी उस वीरांगना महारानी की याद दिलाता है, जिसके द्वारा देश की रक्षा हुई। इस प्रकार की अनेक घटनाएं इतिहास में है।

प्रस्तुत निबन्ध का मुख्य आशय, वर्तमान समय में महिला-जगत द्वारा समाज का क्या कल्याण हो रहा है, विंध्य प्रदेश में यहां की महिलाएं इस ओर कहां तक पहुंची हैं तथा उनका क्या स्थान है, इसकी जानकारी कराना है। भारत की स्वतंत्रता-प्राप्ति के बाद भारत की महिलाओं का ध्यान भी ग्रामवासियों की ओर आकृष्ट हुआ। परिणाम-स्वरूप राज्य समाज कल्याण परामर्शदातृ-मंडल की स्थापना हुई, जिसकी शाखाएं प्रदेशों में खुलीं। राष्ट्र के नवनिर्माण में महिलाओं का सहयोग परम आवश्यक था। ग्रामवासिनी महिलाओं की दशा सुधारने, उन्हें शिक्षित करने एवं उनके जीवन-स्तर को ऊंचा उठाने, स्वावलम्बी बनाने की ओर ध्यान देना ही इस मंडल का उद्देश्य है। अविद्या एवं अज्ञानता को दूर कर नारी-जाति को उठाना ही इसका मूल मंत्र है। बच्चों के पालन-पोषण की समुचित शिक्षा देना इसका कर्तव्य है। इन सारी समस्याओं पर इस मंडल ने ध्यान दिया।

उक्त मंडल की स्थापना केन्द्र द्वारा दिल्ली में हुई, जिसकी अध्यक्षा श्रीमती दुर्गाबाई देशमुख हैं। विंध्य-प्रदेश में इस मंडल की स्थापना हुए अभी बहुत दिन नहीं हुए, फिर भी जो कुछ प्रगति यहां की महिलाओं द्वारा हुई, वह प्रशंसनीय है। इस प्रगति को देखकर यह निरसंकोच कहा और माना जा सकता है कि हमारे प्रदेश की महिलाओं में समाज के प्रति कितनी लगन है, कितनी दिलचस्पी है।

विन्ध्य-प्रदेश की शाखा की अध्यक्षा श्रीमती दानबहादुर सिंह मनोनीत हुईं। उनके सतत प्रयत्न और अनवरत लगन का ही परिणाम है कि उनके द्वारा निर्मित समिति के सहयोग से इस अल्प काल में ही विध्य-प्रदेश में महिलाओं में काफी जागरण के लक्षण दृष्टिगत हो रहे है। २० जुलाई १९५४ को इस मंडल की स्थापना विध्य-प्रदेश में हुई तथा इस मंडल ने अपना कार्य १५ अगस्त १९५४ से प्रारम्भ किया। इस मंडल का मुख्य उद्देश्य सभी समाज-कल्याण-कार्य करनेवाली संस्थाओं का निरीक्षण करना, उनके कार्य-संचालन के लिए सहायता देना तथा उन्हें मार्ग-प्रदर्शन करना रहा। इसका प्रधान कार्यालय कला-मन्दिर, रीवा में है। पांच क्षेत्रों में कार्य बांटे गये, ताकि कार्य का संचालन ठीक रूप से चल सके :—

१—सीधी—श्रीमती दानबहादुर सिंह, रीवा
२—रीवा—श्रीमती बी० एल० खन्ना, रीवा

३—सतना, पन्ना—श्रीमती सिद्धेश्वरी देवी, छतरपुर

४—टीकमगढ़-दतिया—श्रीमती लीलावती दोसज

५—शहडोल—श्रीमती के० के० शर्मा, रीवा

उपरोक्त महिलाओं ने भिन्न-भिन्न क्षेत्रों में कार्य करने का भार लिया और अपने प्रयत्नों में काफी सफलता भी पाई। इस योजना को चलाने के लिए केंद्रीय सरकार द्वारा ३२,७००) मिले। यह राशि १९५४–५५ में प्राप्त हुई थी, जिसके द्वारा विकास-केन्द्रों की उन्नति की जा सके तथा १९५६ मे ९८,५००) की और धन-राशि प्राप्त हुई।

केन्द्रीय सरकार द्वारा जो धन-राशि मिली, उसके अतिरिक्त विन्ध्य-प्रदेश सरकार ने १९५४–५५ में ३२५००) की तथा १९५५–५६ में ९३८२५) की सहायता दी। इसके अलावा ५०००) बाल-उद्यान के निमित्त भी प्राप्त हुए। इन सब मदों के अतिरिक्त राज्य सरकार ने ८०००) बोर्ड के कार्यालय-भवन-निर्माण हेतु प्रदान किये।

गत वर्ष ६ महिलाएं ग्रामसेविका की ट्रेनिंग में भेजी गयी थीं—४ बनारस और २ इन्दौर। वे सभी प्रदेश के विभिन्न प्रोजेक्टों में कार्य कर रही हैं। इस बार ५ महिलाएं कस्तूरबा ग्राम-सेविका विद्यालय, इन्दौर को प्रशिक्षणार्थ भेजी गयी हैं।

इस समय रीवा, सतना, पन्ना, टीकमगढ़, दतिया तथा सीधी प्रत्येक में ५ केन्द्र, शहडोल से ६ और छतरपुर में ७ केन्द्र स्थापित हैं। इस प्रकार कुल मिलाकर ४३ केन्द्र काम कर रहे हैं। उनका विवरण निम्न प्रकार है :—

रीवा—पड़रा, उर्रहट, चिरहुला, सोनौरा, सिलपरा।

सतना—सतना साइडिग, माधोगढ़, कुलगवां, भटनवारा, सज्जनपुर।

पन्ना—अजयगढ़, सिहपुर, पन्ना, बदबार, दलन चौकी।

छतरपुर—गड़गांव, निवारी, सरानी, हमा, धरारी, गठेवरा, डेरी।

टीकमगढ़—गणेशगंज, नवाईं, करी, पाठा, असथों।

दतिया—चिरौला, उनाव, सोनागिर, सरोनी, सरसरी।

सीधी—माधुरी, कोटरकलां, सुखवारी, रामपुर, गांधी-ग्राम।

शहडोल—गुई बांध, जमुई, बुढ़ार, सोहागपुर, खैरहा, लालपुर।

संयोजक को लेकर प्रोजेक्ट इम्प्लीमेंटिंग कमेटी में नौ सदस्याएं हैं। प्रत्येक पी० आई० सी० की सदस्याएं हैं तथा योग्य और सामाजिक कार्यों में निपुण हैं। उन लोगों के द्वारा बड़े ही सुचारु रूप से प्रत्येक प्रोजेक्ट का कार्य चल रहा है। ये सदस्याएं अपने-अपने क्षेत्र के गांवों का दौरा करती तथा ग्रामीण महिलाओ से अपना सम्पर्क स्थापित कर इनकी तथा शिशुओं की उन्नति का ढंग बताती है।

एक चीज का अभाव अब भी खटकता है। योग्य और प्रशिक्षित महिलाओं का अभाव है, जिसके कारण कभी-कभी कार्य मे दिक्कत का सामना करना पड़ता है। इस समिति के पास चार प्रधान संगठनकर्ता हैं। इसके अतिरिक्त दाइया तथा संगठनकर्ता प्रत्येक केन्द्र में है। दाइयां सरकारी लेडी डाक्टरों द्वारा परामर्श पाती रहती है। ये डाक्टर समय-समय पर गावों का दौरा किया करती है, जिसमें इनके कार्यो मे बाधा न उपस्थित हो। ये डाक्टर इस समिति की सदस्या है।

गावों मे बाल-क्रीड़ा-केन्द्रों से ग्रामीण विशेष दिलचस्पी लेते है। इन स्थानों पर बच्चे काफी संख्या मे उपस्थित होते तथा पाउडर अथवा ताजे दूध का लभ उठाते है। यही नही, आमोद-प्रमोद मे भी वे काफी भाग लेते है। सीधी के दो केन्द्रो मे तो काम करनेवाली स्त्रियां अपने छोटे बच्चे को केन्द्रों में छोड़ जाती है, जहां ग्राम-सेविकाए और दाइयां उनकी देख-भाल करती हैं। शिशुओं की माताएं काम से लौटते समय अपने बच्चों को लेकर घर चली जाती है।

देहातो में पहले पहल बड़ी दिक्कतों का सामना करना पड़ा। वहां की महिलाओं ने केन्द्र के कार्यों मे कोई दिलचस्पी ही न ली। परन्तु धीरे-धीरे जब केन्द्र की सदस्याओं तथा ग्राम-सेविकाओं के सतत प्रयत्न जारी रहे, तब उनका भी ध्यान इधर खिंचने लगा और धीरे-धीरे उनकी रुचि इस ओर बढ़ने लगी। केन्द्रों द्वारा निम्न कार्यों की ओर विशेष ध्यान दिवा जाता है :—

१—सिलाई और बुनाई।

२—कालीन, दरी तथा निवार का बुनना।

३—खिलौने तथा टोकरियों का बनाना।

४—प्रौढ़ महिलाओं की शिक्षा।

५—संगीत।

६—शिशु और महिलाओं के लिए केन्द्र की स्थापना।

धार्मिक पुस्तकों का पठन-पाठन, कीर्तन, भजन आदि के द्वारा ग्रामीण महिलाओं की उपस्थिति अधिक संख्या में केन्द्रों में होती है, जहां वे ऊपर की कलाओं के सम्बन्ध में जानकारी हासिल करती है।

आज विन्ध्य-प्रदेश के करीब ३५० गांवों में इन केन्द्रों द्वाराकार्य होता है। आठों जिलों में कुल ११७ कार्य-कर्तृयां हैं, जिनमे आधी तो प्रशिक्षित है और शेष अप्रशिक्षित।

अध्यक्षा श्रीमती दुर्गाबाई देशमुख और श्रीमती इन्दिरा गांधी रीवा-केन्द्र में पधार चुकी हैं। रीवा ही नहीं, इन्होंने पन्ना और छतरपुर के केन्द्रों का भी निरीक्षण किया है। साथ ही केन्द्रों के कार्य से बहुत ही प्रभावित हुई। श्रीमती इन्दिरा गांधी तो विशेष तौर से रीवा के मूंज के काम से अत्यधिक प्रभावित हुई।

अपने इन केन्द्रों द्वारा यहां के महिला-समाज के भीतर स्वावलम्बन की शिक्षा देना, उन्हें भिन्न-भिन्न तरह के कुटीर-उद्योगों में लगाकर उनकी आर्थिक स्थिति को मजबूत करना, उनकी अशिक्षा को दूर करना तथा शिशुओं की देख-भाल की शिक्षा देने की ओर इस समाज-कल्याण परामर्शदातृ समिति का निरन्तर ध्यान रहा। आज गौरव के साथ अन्य प्रान्त की महिलाओं के समक्ष विन्ध्य की महिलाएं भी यह कहने का दावा रखती हैं कि उन्होंने भी अपने प्रान्त में अपनी ग्रामीण बहिनों के लिए कुछ कम नहीं किया।

द्वितीय पंचवर्षीय योजना में यहां की सरकार ने १६ और नये प्रोजेक्टों के खोलने का निश्चय किया है। इसकी ओर कदम भी उठाया जा चुका है। सन् १९५६-५७ में ८ नये प्रोजेक्ट खोले जायंगे और यही काम अगले वर्षों के लिए भी होगा।

दाइयों के प्रशिक्षण के सम्बन्ध में केन्द्रीय समाज-कल्याण-समिति ने प्रसन्नतापूर्वक दस प्रशिक्षिकाओं को गांधी स्मारक अस्पताल, रीवा के लिए प्रदान किया है, जो प्रदेश के लिए दाइयों को प्रशिक्षित करेंगी। यह कार्य प्रारम्भ हो गया है।

इसके अतिरिक्त महिला-जागरण की प्रगति से प्रभावित हो स्थान-स्थान पर इसे मकान, जमीन आदि सहायता के रूप में प्राप्त हुए हैं। छतरपुर जिला में दो मकान करीब ४०००) के मिले हैं। प्रोजेक्ट-इम्प्लीमेंटिंग कमेटी के कार्यों के लिए सतना प्रोजेक्ट को २२०० वर्गफीट जमीन भवन-निर्माण के हेतु मिली है। भवन-निर्माण-हेतु करीब २०००) का वचन मिल चुका है। इसी प्रकार अन्य कई स्थानों में भी स्थान अथवा भवन मिले हैं।

नारी-जागरण की यह भावना दिनों दिन जिस गति से बढ़ रही है, यह देखकर कहना पड़ता है कि वह दिन दूर नहीं, जब महिलाओं के सतत प्रयत्न से ग्रामीणों की अशिक्षा और गरीबी वास्तव में दूर हो जायगी।

अर्थ-खण्ड

एवं सांस्कृतिक गरिमाओं की प्रतीक होने के साथ ही राज्य को प्रति वर्ष लगभग ९० लाख रुपयों की राशि प्रदान करती है।

यह हुई धरती के ऊपर बिखरे हुए हरे-पीले सोने की बात। परन्तु उसकी सतह के नीचे भी तो कुछ है--बहुत कुछ। यह बात दूसरी है कि युग-युगों का कोहरा उस पर सिमटकर रह गया हो और हमारी नजरें उसको पूरी तरह से न देख पा रही हों। कहने का मतलब, इस भूमि में सब प्रकार के छोटे-बड़े खनिज उपलब्ध है। यहां कोयला और लोहा भी मिलता है और चूना और कुरन्द भी पाया जाता है। यहां हीरा भी उपलब्ध है और सिलिमैनाइट, बाक्साइट भी। इसके अतिरिक्त यहां अनेक प्रकार की मिट्टियां भी मिलती है, जिनमें उच्च कोटि की कोमलता होती है। कई क्षेत्रों में कांच-उद्योग के लिए उपयोगी बालू, और गेरू, रामरज, शेलखरी भी पाई जाती है। मकान बनानेवाले पत्थरों का तो कहना ही क्या--उम्दा से उम्दा प्राप्त किये जाते है। अभी हाल में तो यहां यूरेनियम, मोनाजाइट, गैलियम, वेनैडियम, तांबा, अभ्रक आदि बहुमूल्य खनिजों के उपलब्ध होने का भी संकेत मिला है।

कुटीर-उद्योगों का इतिहास तो हमारी सभ्यता का इतिहास है, हमारे गौरवपूर्ण अतीत की एक सुन्दर कहानी। कहा जाता है कि 'जिस काल में योरुप के पश्चिम मे, जो नवीन औद्योगिक प्रणाली का जन्म-स्थान है, असभ्य जातियों का अधिवास था, उस समय भारत अपने कारीगरों की कलापूर्ण चातुरी के लिए विख्यात था।' सौभाग्यवश, विन्ध्य-प्रदेश प्राचीन भारत की औद्योगिक परम्पराओं का समर्थ वाहक बना हुआ है और आज भी हमारे यहां कताई, बुनाई, बढ़ईगीरी, लोहारी, सोनारी, चमड़ा, कत्था, बीड़ी, पीतल, मिट्टी एवं कांसे के वर्तन, छपाई, रंगाई, कागज, टोकरी, खिलौना आदि उद्योग अनेकानेक प्रतिकूलताओं को पिघलाकर चल रहे है और राज्य के काफी लोगों की रोटी-रोजी की समस्या को हल कर रहे है।

यह सब कह चुकने के वाद एक बात जो दिमाग में आती है, वह यह कि प्रकृति ने कितना असीम स्नेह दिया है इस भूमि को। शताब्दियां ढल गई, इतिहास बदल गया, लेकिन यह स्नेह अक्षुण्ण ही बना रहा। हां, हम ही इसका कुछ लाभ नहीं उठा पाये; हम ही घर आई हुई लक्ष्मी को न अपना सके। कुछ तो इस भू-भाग का देशी राज्यों के रूप में छोटे-छोटे टुकड़ों में विभक्त रहने के कारण और कुछ यातायात के साधनों के अभाव और बिजली की कमी के कारण। फलस्वरूप, कृषि योग्य कुल भूमि का अधिकांश यों ही पड़ा रहा। सम्पन्न वन यों ही बेरहमी से कट-कट कर बरबाद होते रहे। समृद्ध खनिज-श्री यों ही सोती रही। हमारी अर्थ-व्यवस्था जर्जरित होती चली गई। भाग्यवश, जमाना फिर बदला; युग ने फिर करवट ली। हमारी नींद टूटी और प्रदेश के सर्वतोमुखी विकास के लिए प्रयत्न आरम्भ हो गए। विकास का मंगलमय प्रभात मुस्कुराया। पंचवर्षीय योजना की शुरुआत हुई और विन्ध्य के इतिहास में पहली बार, इतने बड़े पैमाने पर और दूर तक फैले पूरे प्रदेश में, एक ही योजना के अन्तर्गत निर्माण-कार्य प्रारम्भ किया गया। खेती के उपकरणों मे सुधार किये गये; ऊसर भूमि को उपजाऊ बनाया गया; खाद और उन्नत बीजों का उत्पादन बढ़ाया गया; सिंचाई के साधनों में वृद्धि की गई। मतलब यह कि जमीन का कस निकालने के यथा-सम्भव प्रयत्न किये गये। इसी प्रकार वन और खनिज के क्षेत्रो में भी बहुत कुछ किया गया। वनों की रक्षा और वर्गीकरण का प्रबन्ध किया गया। वन-पथ और भवनों का निर्माण हुआ। वन-क्षेत्रों की सीमा निर्धारित की गई। जगलों का विस्तार, नर्सरी और सांस्कृतिक कार्यक्रम अपनाये गये। खनिजों के उचित उपयोग और विकास के लिए प्रयत्न किये गये। खान खोदने की आधुनिक प्रणाली को प्रारम्भ किया गया। कुटीर-उद्योगों का भी पर्यवेक्षण हुआ और दरी, कालीन, कागज, चमड़ा, बुनाई, बढ़ईगीरी आदि के उत्पादन तथा शिक्षण-केन्द्र खोले गये। साथ ही, यातायात और संवहन के साधनों में समुचित विस्तार किया गया। प्रथम पंचवर्षीय योजना का अवधि-काल बीता। हमारे अभिलषित स्वप्नों में से अधिकांश सत्य भी बने। लेकिन फिर भी विन्ध्य वह नहीं हुआ, जो हो सकता है, जो होना चाहिये। विन्ध्य-जैसे प्रकृति-प्रदत्त साधनों से सम्पन्न प्रदेश के लिए १ लोहा बनाने का कारखाना, ९ कोयले की और १८ चूने की खदानें और चन्द छोटे-मोटे उद्योग किसी भी दशा में काफी नहीं।

इसलिए, आज आवश्यकता इस बात की है कि राज्य की खनिज और वन-सम्पत्ति का अच्छी तरह से विदोहन हो, सिचाई एवं विद्युत्-योजनाएं कार्यान्वित की जायं, यातायात और संवहन के साधनों का विस्तार हो, कुटीर-उद्योगों को यथासम्भव प्रोत्साहन मिले, आदि आदि। तभी भारत के इस हृदयस्थल की वास्तविक क्षमता प्रकाश में आयेगी, तभी वह देश की प्रगति में अपना अमूल्य योगदान दे पायेगा।

सुरेशचंद्र शर्मा

विन्ध्य-प्रदेश के खनिज पदार्थ

विन्ध्य-प्रदेश के भौगोलिक एवं प्राकृतिक साधन की कथा भी अत्यन्त महत्वपूर्ण है। इस छोटे-से भू-खंड के समान खनिज पदार्थों की निधियों से भरपूर कदाचित ही कोई अन्य राज्य हो। शहडोल जिले और सिंगरौली का कोयला-क्षेत्र, सतना जिले का चूने का पत्थर, प्रायः सभी जिलों में इमारती एवं सड़कों के बनाने का सामान, पन्ना जिले का हीरोत्पादक क्षेत्र एवं अमरकंटक का बैक्साइट इस प्रदेश की विशेष संपत्ति के भंडार हैं। इन निधियों के विकास की ओर यदि हम अपना पूरा-पूरा ध्यान लगा सकें, तो यह हमारा दृढ़ विश्वास है कि केवल नवीन मध्य प्रदेश का ही नहीं, वरन् समूचे राष्ट्र के कोष को उन्नत करने में हमारा हाथ सदैव सब से आगे रहेगा एवं व्यापक रूप से देश के औद्योगिक विकास का स्वप्न भी सत्य हो सकेगा। इन तत्वों का अभी तक जितना विकास हो सका है, उससे कई गुना अधिक संपत्ति अपने विकास के उपयोगी साधनों की प्रतीक्षा में पृथ्वी के अन्दर दबी हुई पड़ी है, क्योंकि सीधी-क्षेत्र का कुरंद और सिलीमिनाइट, जैतवारा का अच्छे प्रकार का गेरू और रामरज पूरे-पूरे व्यावसायिक साधनों को पाकर चमक उठनेवाले पदार्थ हैं।

लगभग २२ प्रकार के भिन्न-भिन्न पदार्थ विन्ध्य-प्रदेश की खनिज-संपत्ति के रूप में अभी तक उपलब्ध हो सके हैं। यहां प्रत्येक निधि का संक्षिप्त वर्णन दिया जा रहा है:—

कोयला—लगभग २२३० वर्गमील के क्षेत्र में कोयले का अपार भंडार भरा हुआ है। इन क्षेत्रों में सुहागपुर और सिंगरौली के क्षेत्र सब से बड़े कोयला-क्षेत्र हैं। इनका क्षेत्रफल क्रमशः लगभग १३०० और ९०० वर्गमील है। यह अभी निश्चय नहीं कहा जा सकता कि इन क्षेत्रों में कोयले का परिमाण कितना है, फिर भी सिंगरौली के क्षेत्र को छोड़कर अन्य क्षेत्रों में लगभग ४१०० लाख टन कोयला भरा हुआ अनुमान किया गया है। केवल शहडोल जिले के कुछ हिस्से में, जहां रेलवे लाइन के कारण यातायात की सुविधायें प्राप्त हैं, कोयले की खदानों का विकास हो सका है। इस समय केवल ८००,००० टन कोयला ही प्रति वर्ष भूमि से निकल रहा है। परन्तु रेलवे के सुगम साधन प्राप्त होने पर आशातीत परिमाण में कोयले का भंडार प्राप्त हो सकेगा क्योंकि अभी तो लगभग ५० वर्गमील का क्षेत्र ही खनिज व्यवहार में है। यदि इस समूचे क्षेत्र को विकास एवं यातायात के सुगम साधन उपलब्ध हो जायँ, तो प्रदेश की आर्थिक समस्या भी शीघ्र सुलझ जायँ एवं हर प्रकार की औद्योगिक उन्नति के साधन चमक उठें। सिंगरौली का लगभग ९०० वर्गमील का क्षेत्र तो अभी तक सर्वथा अविकसित पड़ा हुआ है। यह स्थान वर्तमान रिहन्द डाम से लगभग ३० या ४० मील की दूरी पर है। डाम की विद्युत्-शक्ति से इस स्थान का विकास अवश्य होगा, परन्तु रेलवे का साधन जब तक पूरा न हो, तब तक इस क्षेत्र को व्यावसायिक जगत में स्थान प्राप्त न होगा। उसके साथ-साथ इस खंड में पेट्रोलियम की भी पूरी-पूरी संभावनाएँ हैं।

चूने का पत्थर—विन्ध्य-प्रदेश में सफेद चूने और सिमेंट बनाने के पत्थर का बहुत बड़ा भंडार है। सतना और मैहर के रेलवे स्टेशनों के निकट कई चूने के भट्ठे हैं। इसके अतिरिक्त लगभग १२ लाख टन पत्थर प्रति वर्गमील के हिसाब से पृथ्वी के अन्दर दबे पड़े हैं, ऐसा भूगर्भ-शास्त्रियों का अनुमान है। आधुनिक काल में प्रायः८ लाख टन चूना प्रति वर्ष इन भट्ठों से बनाकर देश भर में भेजा जाता है। हाल ही में भारत सरकार का ध्यान इस भंडार की ओर आकृष्ट हुआ है। इसलिये औद्योगिक विकास के आधार पर दो बड़े-

बड़े कारखानों के निर्माण के लिये प्रदेश सरकार ने लाइसेंस दिये हैं, जिनसे ३,७०,००० टन सिमेंट प्रति वर्ष अथवा १२०० टन प्रति दिवस उत्पादन की व्यवस्था का प्रबन्ध हो रहा है। इससे लगभग ५ लाख रुपये प्रति वर्ष राज्य की आय-वृद्धि होगी। यदि औद्योगिक व्यवसायियों तथा शासन की ओर से और भी अधिक प्रोत्साहन प्राप्त हुआ, तो इस धंधे का विकास आशातीत सफलता प्राप्त करेगा।

हीरा—पन्ना जिले में मझगवां नामक ग्राम से (वर्तमान नगर से दक्षिण-पश्चिम की ओर १८ मील दूर) इलाहाबाद-सतना-मार्ग के मझगंवा नामक सैन्ट्रेल रेलवे स्टेशन तक लगभग २५० वर्गमील का क्षेत्र १७वीं सदी से अब तक बराबर लाखों रुपये साल के हीरे उगलता चला आ रहा है। सम्राट् औरंगजेब के शासन-काल में स्वामी प्राणनाथ नामक एक महात्मा ने बुन्देल-केसरी महाराज छत्रसाल को इन हीरे की खदानों का परिचय प्राप्त कराया था। महाराज छत्रसाल उस समय सैन्य संग्रह के लिये प्रचुर धन-राशि के संग्रह की चिन्ता से युक्त थे। इस बड़े रत्नकोष को पाकर ही वे उस समय चम्बल से नर्वदा और यमुना से टमस तक का एक स्वतंत्र हिन्दू-राज्य स्थापित करने मे समर्थ हो सके। यह बात इतिहास-प्रसिद्ध है। हाल मे भारत सरकार के आग्रह पर आये हुए रूसी विशेपज्ञों ने तो इस भूमि का वैज्ञानिक अनुसंधान करके हमारे अर्थ-शास्त्रियों को जैसे चौका दिया है। उनका कहना है कि यदि यांत्रिक प्रसाधनों द्वारा मझगवाँ के आदि-स्रोत एवं अन्य हीरा-उत्पादक क्षेत्रों का विकास किया गया, तो अरबों रुपये की वार्षिक आय के हीरे यहां से प्राप्त होंगे।

दुर्भाग्यवश गत शासन-काल में इस धंधे का विकास नहीं हो सका। उसका एक कारण तो राज्यों की शोपण-नीति ही थी, जो ८३% तक राजस्व-कर वसूल करती थी। ब्रिटिश सरकार की प्रपंची वृत्ति भी देशी नरेशों को औद्योगिक विकास की ओर न ले जा सकी। साथ ही महाराज छत्रसाल के बाद यह भूखंड भाई-बेटों में बंटते-बंटते पैंतीस राज्यों में विभक्त हो गया था, जिसमें यह क्षेत्र पन्ना-चरखारी-बिजावर-अजयगढ़-बरौंधा और चौबियाने की जागीर के हिस्सों में आ गया। ये राजनैतिक कारण भी विकास में बाधक बने रहे। परन्तु विलीनीकारण के साथ-साथ थोड़ी-सी आशा की किरण चमकी, फिर भी 'ग' श्रेणी का राज्य इस धंधे में लगाने के लिये अपार निधि का भार कैसे वहन कर सकता था! हाल ही में गत अप्रैल मास के अन्तर्गत प्राकृतिक साधन एवं अनुसंधान मंत्री श्रीयुत् पं० केशवदेव मालवीय ने संसद् में हीरा-उद्योग के राष्ट्रीयकरण की जो घोषणा की है, उससे यह विश्वास होता है कि भारत सरकार भी इस प्रयत्न की ओर कोई ठोस कदम उठाने जा रही है।

एलमोनियम—पृथ्वी के गर्भ से निकले हुए विभिन्न तत्वों से एलमोनियम निकालने के लिये बैक्साइट एक अत्यन्त आवश्यक एवं उपयोगी तत्व है। पैट्रोलियम से गंधकीय अंशों को पृथक् करके उसका रंग बदलने के लिये इसका प्रयोग अत्यन्त महत्वपूर्ण है। अमेरिका व फ्रांस में प्राप्त होनेवाले वैक्साइट से यह किसी भी प्रकार कम नही है। अमरकंटक की भूमि इस निधि से भरी हुई है।

सिमेंट का पत्थर—विन्ध्य-प्रदेश के लगभग ४०० वर्गमील के क्षेत्र में उत्तम प्रकार का सिमेंट बनाने का पत्थर उपलब्ध है। अभी तक मैहर और सतना रेलवे स्टेशनों के बीच के क्षेत्रों में ही इसका व्यवहार किया जा रहा है। परन्तु अन्य क्षेत्रों में भी इसकी बहुतायत है। बहुत शीघ्र ही एक बड़ा कारखाना इसको बनाने का कार्य प्रारम्भ करने के लिये हाल में खोला जा रहा हैं।

शीशे का बालू—डभौरा और शंकरगढ़ के पास शीशा बनाने का बालू प्रचुर मात्रा में पाया जाता है। इससे बोतलें, चिमनी, चूड़ियां आदि बनाने का काम सुगमता से हो सकता है। पन्ना जिले में भी कहीं-कहीं पर यह बालू पाया जाता है।

चीनी मिट्टी—कटनी के पास चाँदिया और कोतमा रेलवे स्टेशनों के निकट चीनी मिट्टी का भंडार है, जिससे चीनी के बर्तन बनाने का काम आसानी से लिया जा सकता है।

सिलीमेनाइट—सीधी जिले के अन्तर्गत पिपरा में सिलीमेनाइट की खदानें हैं।

कुरंद—सीधी के आसपास तथा पिपरा में कुरंद पर्याप्त संख्या में प्राप्त होता है। पिपरा के अतिरिक्त करकोटा और बीजापुर में भी कुरंद मिलता है। विन्ध्य-प्रदेश का कुरंद

भारत में सर्व-विख्यात है। यद्यपि आधुनिक काल में लगभग १०० से २०० टन प्रति वर्ष ही इसके निष्कासन का प्रबन्ध है, परन्तु बहुविकास योजना में यदि इस पर ध्यान दिया गया, तो यह उपयोगी पदार्थ लगभग १००,००० टन प्रति वर्ष के परिमाण में प्राप्त हो सकता है।

इनके अतिरिक्त तांबा-लोहा-अभ्रक-सोप स्टोन आदि भी विभिन्न स्थानों में प्रचुर मात्रा में उपलब्ध हैं; किन्तु उनके विकास की समुचित व्यवस्था अभी नहीं हो सकी है। यदि उद्योगी एवं पूजीपति अथवा सहयोगी समितियां इस कार्य-भार को सम्हालें, तो सरकार की ओर से अनेक प्रकार की सहायताएँ दी जा सकती हें। किन्तु सहयोगी समितियों के ढंग से कार्य करने का उत्साह अभी लोगों में पैदा नहीं हुआ है, जिसके लिये हमें सतत प्रयत्न करना चाहिये, तभी हम अपने प्रदेश को हरा-भरा करने में समर्थ हो सकते हैं।

१ नवम्बर सन् १९५६ से नये मध्य-प्रदेश का निर्माण होने जा रहा है। कुछ लोगों का यह विचार है कि इस राजनैतिक परिवर्तन का प्रभाव हमारे प्रदेश के आर्थिक ढांचे पर व्यापक रूप से पड़ेगा। परन्तु ३० करोड़ रुपये की राशि भारत सरकार ने विन्ध्य-निधियों के विकास हेतु स्वीकार करके जनता को यह आश्वासन दिलाया है कि वह सब राशि अग्रिम पंचवर्षीय योजना में यहां अवश्य व्यय होगी। ऐसी दशा में यह भय निर्मूल है। हम लोगों से यह आशा करते हैं कि वह निर्भय होकर विकास के कार्यों में सहयोग देंगे, ताकि अग्रिम भविष्य में हम प्रदेश के समस्त प्रसाधनों को उन्नत करने में समर्थ हो सकें।

प्रशासन-खण्ड

डा० राजेन्द्रप्रसाद

बी० एम० भारतीय
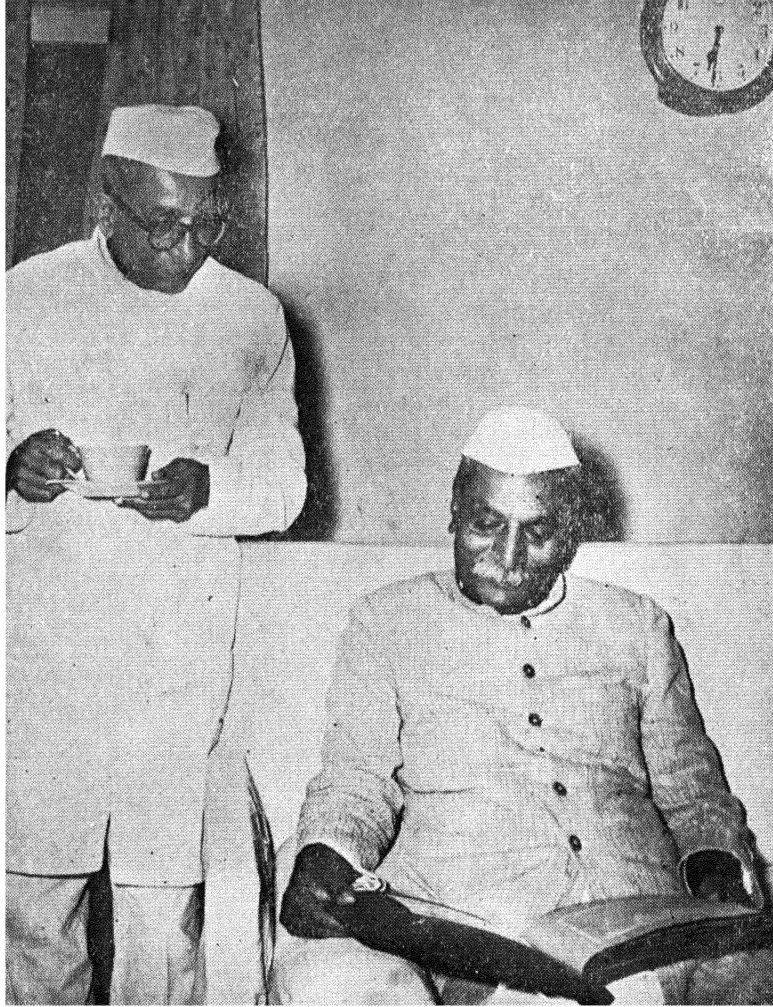
विधान-सभा और उसके कार्य

प्रजातांत्रिक युग में उपयुक्त एवं सफल विधि-व्यवस्था कायम करने की दृष्टि से विधान सभाओं का अत्यधिक महत्व है। आज प्रजातंत्र की लहर से प्रभावित संसार का शायद ही कोई ऐसा देश हो, जहां विधि-व्यवस्था के लिए कोई अन्य माध्यम अपनाया गया हो। यदि कोई स्थान आज ऐसा है, जहां हम 'जनता का शासन' का आभास पा सकते हैं, तो वह स्थान हमारी विधान-सभाएं ही हैं। एक प्रकार से शासन की सारी शक्ति सिमटकर इन विधान-सभाओं में ही निहित रहती है। पूर्व इसके कि हम विन्ध्य विधान-सभा और उसके कार्यों पर प्रकाश डालें, शासन के सैद्धान्तिक पहलू पर विचार कर लेना असंगत नहीं होगा।

शासन के तीन अंग होते हैं—व्यवस्थापिका, कार्यपालिका और न्यायपालिका। जैसा कहा जा चुका है, प्रजातांत्रिक व्यवस्था में व्यवस्थापिका का स्थान अत्यन्त महत्वपूर्ण होता है। उसका कार्य कानून बनाना है, जिससे शासन सुचारु रूप से चलता है और राज्य में शान्ति-व्यवस्था रहती है। व्यवस्थापिका जनता के व्यवहार एवं चरित्र को राष्ट्रीय ढांचे के अनुरूप बनाने के लिए भी नियम बनाती है। यही नहीं, वह शासन के संचालन के लिए नीति निश्चित करती हैं, जिसके अनुसार कार्यपालिका कार्य करती है। मंत्रिमंडल, जिस पर शासन के संचालन का भार होता है, व्यवस्थापिका के सदस्यों में से निर्मित किया जाता है और वह अपने कार्यों के लिए इसी के प्रति उत्तरदायी होता है। व्यवस्थापिका दूसरे प्रकार से भी शासन पर अंकुश रखती है। जनता पर कर लागू करने और संचित निधि से धन निकालने का अधिकार केवल व्यवस्थापिका को रहता है। ऐसी स्थिति में धन के लिए दूसरे अंग इसके मुखापेक्षी रहते हैं। शासन की आलोचना, प्रश्नोत्तरों एवं विभिन्न समितियों की सहायता से भी व्यवस्थापिका पूरे शासन को नियंत्रित करती है। हमारे देश में राष्ट्रपति का चुनाव भी व्यवस्थापिका द्वारा ही किया जाता है। वास्तव में व्यवस्थापिका जनता का सीधा प्रतिनिधित्व करती है और उसकी ओर से शासन का संचालन तथा नियंत्रण करती है। इस प्रकार व्यवस्थापिका का स्थान दोनों अंगों की अपेक्षा श्रेष्ठ कहा जा सकता है—वह प्रजातांत्रिक शासन की नींव है।

व्यवस्थापिका का संगठन दो प्रकार से होता है, या तो उसमें एक सदन रहता है अथवा दो। हमारे देश में संसद् के दो सदन हैं। अधिकांश 'अ' श्रेणी राज्यों में भी दो ही सदन हैं। विन्ध्य-प्रदेश में केवल एक सदन है। राज्यों में जहां दो सदन हैं, वहां एक सदन विधान-सभा और दूसरा विधान-परिषद् कहलाता है और जहां केवल एक सदन है, वहां विधान-सभा कहलाता है। सदन और उसके सदस्यों के अपने अधिकार होते हैं, जिनका उल्लेख संविधान में किया गया है। सदन के अपने पदाधिकारी होते हैं और वह अपने सीमा-क्षेत्र में स्वतंत्र होते हैं। उसके आन्तरिक नियमन के लिए प्रक्रिया-नियमावली होती है। यह नियमावली संविधान के तत्सम्बन्धी उपबन्धों के अनुरूप बनाई जाती है।

विन्ध्य-प्रदेश में विधान-सभा का स्वरूप बिलकुल नया है। ४ अप्रैल, १९४८ से पूर्व देश के मानचित्र पर विन्ध्य-प्रदेश-जैसा कोई प्रदेश नहीं था। यह भूभाग मध्य भारत एजेन्सी के बुन्देलखंड और बघेलखंड के ३६ छोटे-बड़े देशी-राज्यों में विभक्त था। स्वाधीनता-प्राप्ति के उपरान्त भारत सरकार के तत्कालीन गृह मंत्री स्वर्गीय सरदार पटेल की दूरदर्शिता से अन्य देशी राज्यों की भांति इनका भी एकीकरण हुआ और ४ अप्रैल १९४८ को वर्तमान विन्ध्य-प्रदेश की स्थापना हुई। उस समय कोई विधान-सभा नहीं बनी

थी। प्रारम्भिक काल में बुन्देलखंड और बघेलखंड का शासन पृथक्-पृथक् चलता रहा। किन्तु वह प्रणाली बोझिल थी और उसका अधिक दिन चलना संभव नहीं था। इसलिए पूरे प्रदेश के लिए एक संयुक्त मंत्रिमंडल की स्थापना की गई। किन्हीं कारणों से वह मंत्रिमंडल अस्थायी सिद्ध हुआ और उसके बाद मुख्य मंत्री के स्थान पर प्रादेशिक आयुक्त कार्य करते रहे। सन् १९५० में यह राज्य 'ब' से 'स' श्रेणी में कर दिया गया। १९५१ के अन्त में जब देश भर में वयस्क मताधिकार के आधार पर आम निर्वाचन हुए, तब यहां भी विधान-सभा के लिए ६० सदस्य चुने गए। १ मार्च, १९५२ से यह राज्य उपराज्यपाल का प्रदेश बना दिया गया।

आम निर्वाचन के साथ इस प्रदेश में एक नए युग का सूत्रपात हुआ। प्रथम बार पूर्ण जनप्रिय शासन और जन-प्रतिनिधित्वपूर्ण विधान-सभा की स्थापना हुई। इस समय से शासक और शासित का भेद दूर हुआ और राज्य की सार्वभौम सत्ता जनता में निहित हुई। इससे जनता को अपनी उन्नति करने का अवसर मिला और प्रगति की दिशा में ठोस कदम उठने प्रारम्भ हुए।

विधान-सभा की प्रथम बैठक २१ अप्रैल, १९५२ को अपराह्न ११ बजे से वर्तमान विधान-सभा-भवन में प्रारम्भ हुई। प्रारम्भिक कार्य-संचालन के लिए उपराज्यपाल महोदय ने श्री राजेन्द्र बहादुर सिह (स्वतंत्र) को मनोनीत किया। उनकी देख-रेख में सदस्यों ने शपथ ग्रहण की और दूसरे दिन अध्यक्ष का चुनाव किया। श्री शिवानन्द (कांग्रेस) अपने प्रतिद्वन्द्वी श्री चन्द्रप्रताप तिवारी (समाजवादी) को ११ के विरुद्ध ४४ मतों से पराजित कर निर्वाचित हुए। कुछ दिनों पश्चात् उपाध्यक्ष का चुनाव हुआ और श्री श्यामसुन्दर 'श्याम' (कांग्रेस) सर्वसम्मति से निर्वाचित किए गए।

उस समय से श्री शिवानन्द और श्री श्यामजी की देख-रेख में विधान-सभा का कार्य बड़ी सफलता एवं तीव्रगति से चल रहा है। सौभाग्य से विधान-सभा-सचिवालय को श्री रमेशचन्द्र श्रीवास्तव के रूप में कुशल सचिव प्राप्त हुआ। उन्होंने अपने सचिवालय का संगठन और संचालन बड़ी दक्षता से किया तथा सदन के कार्य में सहायता पहुंचाई। विधान-सभा की सभी बैठकें सफल और सजीव रहीं। उनमें विवाद का स्तर ऊंचा और सदन की मर्यादा के अनुकूल रहा। प्रायः सभी सदस्यों ने विधान-सभा के कार्य में पूरी रुचि ली और यह प्रमाणित कर दिया कि विन्ध्य-प्रदेश की जनता प्रजातांत्रिक शासन को चलाने में पूर्ण समर्थ है।

इन साढ़े चार वर्षों में सदन की करीब १७० बैठकें हुईं, जिनमें ९४ प्रतिशत बैठकों में सरकारी और शेष में गैर-सरकारी कार्य हुए। राज्य की बढ़ती हुई गति-विधि के कारण अधिक समय सरकारी कार्य में लगना स्वाभाविक था। इनमें एक-तिहाई बैठकों में वित्तीय कार्य किया गया, जिनमें अनुदानों के लिए मांगों तथा पूरक मांगों पर विचार तथा मतदान हुए; शेष बैठकों में विधानात्मक कार्य हुए। सदस्यों की औसत उपस्थिति लगभग ७८ प्रति शत रही। कुछ इने-गिने दिनों को छोड़कर सभी बैठकों में प्रश्नोत्तर हुए, जिनमें शासन के विभिन्न क्रिया-कलापों के सम्बन्ध में जानकारी प्राप्त की गई।

इस अवधि में विधान-सभा ने जो कार्य किये, उन सब पर यहां प्रकाश डालना सम्भव नहीं है। स्वीकृत किए गए विधेयकों की संख्या ही इतनी है कि हम उनका उल्लेख मात्र कर रहे हैं। फिर भी कुछ विधेयक अत्यन्त महत्वपूर्ण हैं और उनके सम्बन्ध में कुछ कहना आवश्यक है।

इनमें सर्वाधिक महत्व का जागीरदारी-उन्मूलन एवं भूमि-सुधार विधेयक है, जिससे प्रदेश में एक सामाजिक क्रान्ति हुई। कृषि-व्यवस्था में आमूल परिवर्तन हुआ और किसान तथा सरकार के बीच सीधा सम्पर्क स्थापित हुआ। भूमि का जोता भूमि का मालिक बना। जागीरदारी तथा पवाईदारी-व्यवस्था उचित प्रतिकर देकर समाप्त कर दी गई। यह विधेयक ५ नवम्बर, १९५२ को मुख्य मंत्री द्वारा सदन में पुरःस्थापित किया गया। विधेयक के महत्व को ध्यान में रखते हुए वह बिना विवाद ही १५ सदस्यों की एक प्रवर समिति को निर्दिष्ट कर दिया गया, जिसके सभापति श्री श्यामजी थे। प्रवर समिति ने जो प्रतिवेदित विधेयक सदन में प्रस्तुत किया, वह ३ अप्रैल, १९५३ को पारित किया गया। २९ जून, १९५३ को राष्ट्रपति की स्वीकृति मिलने के उपरान्त वह कानून बनकर १ जुलाई, १९५३ से लागू हो गया। सर्वप्रथम ५ हजार से अधिक वार्षिक आय वाली जागीरें हस्तगत की गयीं। जागीरदारों ने न्याय-आयुक्त के न्यायालय में इसे चुनौती दी, जिसके परिणाम-स्वरूप एक संशोधन विधेयक और पारित किया गया। १ जनवरी,

१९५४ को १ हजार से अधिक आयवाली और १ जुलाई से शेष जगीरें भी सरकार ने अपने अधीन कर लीं। इस प्रकार बहुत ही अल्प समय में करीब २२०० छोटी-बड़ी जागीरें समाप्त कर दी गई। इस अधिनियम से भूमि-सुधार की दिशा में बड़ी सहायता मिली।

इसी प्रकार भूमि-राजस्व और काश्तकारी विधेयक महत्वपूर्ण हैं। उससे राज्य की राजस्व तथा कृषि-व्यवस्था में सुधार हुआ और काश्तकारों के अधिकारों में वृद्धि हुई तथा उनकी स्थिति में एक स्थायित्व आया। प्रदेश के विभिन्न भागों में प्रचलित नियमों में एकरूपता आई और किसानों की स्थिति सुधरी। यह विधेयक ३० नवम्बर, १९५३ को मुख्य मंत्री द्वारा सदन में पुरःस्थापित किया गया। प्रथम वाचन के उपरान्त एक प्रवर समिति को सौंप दिया गया, जिसके सभापति श्री श्यामजी थे। समिति द्वारा प्रतिवेदित विधेयक १७ नवम्बर, १९५४ को सदन द्वारा पारित किया गया और १४ मार्च, १९५५ को राष्ट्रपति की स्वीकृति मिलने के उपरान्त लागू कर दिया गया।

सामाजिक दृष्टिकोण से प्राथमिक शिक्षा-विधेयक बहुत महत्वपूर्ण है। इससे सार्वजनीन प्राथमिक शिक्षा समस्त प्रदेश में अनिवार्य करने के लिए क्रमिक कदम उठे। ग्राम-पंचायत एवं नगरपालिका (संशोधन)-सम्बन्धी विधेयकों से स्वायत्त शासन में सुधार हुआ। सीर भूमि विधेयक, पशु रोग विधेयक, भूदान विधेयक आदि अन्य महत्वपूर्ण विधेयक हैं।

अभी तक कुल ४४ विधेयक पारित हुए, जो इस प्रकार है :—

क्रमांक	विधेयक	पुरःस्थापन की तिथि	पारित होने की तिथि	राष्ट्रपति की स्वीकृति मिलने की तिथि
१.	विन्ध्य-प्रदेश सीर (बेदखली रोकने के लिए) विधेयक, १९५२	२८. ४. ५२	६. ५. ५२	२२. ८. ५२
२.	विन्ध्य-प्रदेश पशु-रोग विधेयक, १९५२	२. ५. ५२	८. ५. ५२	९.१०.५२
३.	वि० प्र० विनियोग विधेयक, १९५२	५. ५. ५२	७. ५. ५२	३१. ५. ५२
४.	वि० प्र० प्राथमिक शिक्षा विधेयक, १९५२	५.११.५२	६.११.५२	२०.१२.५२
५.	वि० प्र० जलकर विधेयक, १९५२	५.११.५२	१२.११.५२	७. १. ५३
६.	वि० प्र० सीर (बेदखली रोकने के लिए संशोधन) विधेयक, १९५२	५.११.५२	१३.११.५२	१२. १. ५३
७.	वि० प्र० नियम (लागू) विधेयक, १९५२	५.११.५२	१३.११.५२	८. १. ५३
८.	अमरकंटक-नगर-विकास-मंडल विधेयक, १९५२	५.११.५२	२५. २. ५३	३१. ३. ५३
९.	वि० प्र० मंत्री, और विधान-सभा के अध्यक्ष,उपाध्यक्ष तथा सदस्य (वेतन एवं भत्ता) विधेयक, १९५२	५.११.५२	१९.११.५२	१२. १. ५३
१०.	वि० प्र० जागीरदारी-उन्मूलन एवं भूमि-सुधार विधेयक, १९५२	५.११.५२	३. ४. ५३	२९. ६. ५३
११.	वि० प्र० पशु-रोग (संशोधन) विधेयक, १९५२	१८. २. ५३	१८. २. ५३	२३. ४. ५३
१२.	न्यायालय शुल्क (वि०प्र० संशोधन) विधेयक,१९५३	१८. २. ५३	२६. २. ५३	१०. ५. ५३
१३.	वि० प्र० विधि–लागू (संशोधन) विधेयक, १९५३	१८. २. ५३	४. ३. ५३	१८. ४. ५३
१४.	वि० प्र० अचल सम्पत्ति	१८. २. ५३	२५. २. ५३	७. ३. ५३
१५.	भारतीय मुद्रांक (वि० प्र० संशोधन) विधेयक, १९५३	२६. २. ५३	१६. ३. ५३	२२. ५. ५३
१६.	वि० प्र० विनियोग (द्वितीय) विधेयक, १९५२	७. ३. ५३	१६. ३. ५३	३१. ३. ५३

१७.	वि० प्र० सामान्य उपबन्ध विधेयक, १९५३	९. ३. ५३	२. ४. ५३	२४. ५. ५३
१८.	वि० प्र० विनियोग विधेयक, १९५३	१६. ३. ५३	१९. ३. ५३	३१. ३. ५३
१९.	वि० प्र०, अध्यक्ष, उपाध्यक्ष एवं विधान-सभा-सदस्य (वेतन एवं भत्ता) संशोधन विधेयक	७. ९. ५३	८. ९. ५३	१९. ४. ५४
२०.	वि०प्र० सामान्य उपबन्ध (संशोधन) विधेयक, १९५३	७. ९. ५३	८. ९. ५३	९. १०.५३
२१.	मध्य-प्रदेश एवं बरार बिक्री-कर (संशोधन) विधेयक, १९५३	७. ९. ५३	१५. ९. ५३	२३.१२.५३
२२.	वि० प्र० जागीरदारी-उन्मूलन एवं भूमि-सुधार (संशोधन) विधेयक, १९५३	१५. ९. ५३	१.१२.५३	३. २. ५४
२३.	वि० प्र० तेंदू पत्ती विधेयक, १९५३	३०.११.५३	२५. ३. ५४	५. ५. ५४
२४.	रीवा राज्य-नगरपालिका (संशोधन) विधेयक, १९५३	३०.११.५३	२.१२.५३	२०. २. ५४
२५.	वि०प्र० भूमि-राजस्व एवं काश्तकारी विधेयक, १९५३	३०.११.५३	१७.११.५४	४. ३. ५५
२६.	वि० प्र० विनियोग (द्वितीय) विधेयक, १९५३	८. ३. ५४	१६. ३. ५४	३१. ३. ५४
२७.	वि० प्र० विनियोग विधेयक, १९५४	१६. ३. ५४	१७. ३. ५४	३१. ३. ५४
२८.	रीवा राज्य आबकारी (वि० प्र० संशोधन) विधेयक, १९५४	२५. ३ ५४	८. ९. ५४	५. २. ५५
२९.	वि० प्र० विनियोग (द्वितीय) विधेयक, १९५४	१५. ९. ५४	१६. ९. ५४	२ १०.५४
३०.	वि० प्र० कंटिजेंसी फंड बिल, १९५४	—	—	—
३१.	वि० प्र० विनियोग (तृतीय) विधेयक, १९५४	२६.११.५४	२९.११.५४	—
३२.	वि० प्र० भूदान-यज्ञ विधेयक, १९५५	२. २. ५५	२५. ८. ५५	५. १. ५६
३३.	रीवा राज्य-नगरपालिका (वि० प्र० द्वितीय संशोधन) विधेयक, १९५५	२३. २. ५५	१. ३. ५६	—
३४.	वि० प्र० ग्राम-पंचायत (प्रथम मंशोधन) विधेयक, १९५५	२३. २. ५५	१. ३. ५६	—
३५.	वि० प्र० विनियोग (चतुर्थ) विधेयक, १९५४	२. ३. ५५	२१. ३. ५५	२९. ३. ५५
३६.	वि० प्र० विनियोग विधेयक, १९५५	२१. ३. ५५	२२. ३. ५५	२७. ३. ५५
३७.	उत्तर-प्रदेश कृषि-आयकर (वि० प्र० संशोधन) विधेयक, १९५६	२३. ८. ५५	२. ९. ५५	२२.१०.५३
३८.	वि० प्र० विनियोग (द्वितीय) विधेयक, १९५५	१. ९. ५५	२. ९. ५५	१७.१०.५५
३९.	वि० प्र० मोटरगाड़ी-कर (संशोधन) विधेयक, १९५६	२३. २. ५६	२८. २. ५६	४. ५. ५६
४०.	पशु-अवैध-प्रवेश (वि० प्र० संशोधन) विधेयक, १९५६	२३. २. ५६	२१. ३. ५६	२. ६. ५६
४१.	वि० प्र० भूदान-यज्ञ (संशोधन) विधेयक, १९५६	२८. २. ५६	१. ३. ५६	५. ५. ५६
४२.	वि० प्र० विनियोग विधेयक, १९५६	१६. ३. ५६	१९. ३. ५६	३०. ३. ५६
४३.	वि० प्र० विनियोग (द्वितीय) विधेयक, १९५६	१९. ३. ५६	३१. ३. ५६	२७. ४. ५६
४४.	वि० प्र० विनियोग (तृतीय) विधेयक, १९५६	२१. ३. ५६	२३. ३. ५६	२९. ३. ५६

इनमें से ६ विधेयक प्रवर समितियों को निर्दिष्ट किये गये थे और प्रवर समितियों द्वारा परिवर्तन-परिवर्द्धन के पश्चात् सदन ने उन्हें पारित किया।

समितियाँ—विधान-सभा के कार्य को सरल बनाने में समितियां बहुत सहायक होती हैं। उनमें इने-गिने सदस्य रहते हैं और किसी विधेयक अथवा अन्य प्रश्न पर विस्तृत रूप से विचार होता है। इसी कारण सभी महत्वपूर्ण विधेयक प्रथम वाचन के पश्चात् प्रवर समितियों को निर्दिष्ट कर दिए जाते हैं। विभिन्न विधेयकों के लिए निर्मित प्रवर समितियों के अतिरिक्त सदन की कुछ स्थायी अथवा विशेष समितियां होती हैं, जिनके सदस्य प्रत्येक वर्ष सदन द्वारा चुने अथवा अध्यक्ष द्वारा मनोनीत किए जाते हैं। इन चार वर्षों के भीतर निम्न समितियां बनीं :—

१. विशेषाधिकार समिति
२. प्रार्थना-पत्र समिति
३. राजकीय आश्वासन समिति
४. सार्वजनिक लेखा-समिति
५. प्राक्कलन समिति, और
६. वित्त समिति

विशेषाधिकार समिति का कार्य सदन तथा उसके सदस्यों के अधिकारों की रक्षा और उनकी व्याख्या करना है। यह समिति सन् १९५२ में निर्मित हुई। श्री श्यामजी प्रारम्भ से ही इसके सभापति हैं। प्रारम्भ के तीन वर्ष में समिति की कोई बैठक नहीं हुई। विशेषाधिकार उल्लंघन सम्बन्धी प्रश्न समिति के समक्ष सर्वप्रथम नवम्बर १९५४ में आया। उसके बाद कई अन्य प्रश्न आए। समिति ने अभी तक ६ प्रतिवेदन प्रस्तुत किए।

प्रार्थना-पत्र समिति सदन को दिए गए किसी विशेष प्रार्थना-पत्र पर विचार करती है। ऐसा कोई प्रार्थना-पत्र अभी तक सदन के सामने नहीं आया और इसलिए समिति की कोई बैठक नहीं हुई।

राजकीय आश्वासन समिति प्रथम बार सन् १९५४ में निर्मित हुई। इसका सभापतित्व पहले श्री श्यामजी ने किया और अब विगत वर्ष से श्री रामकिशोर शुक्ल कर रहे हैं। यह समिति माननीय मंत्रियों द्वारा सदन में दिए गए आश्वासनों की कार्यान्विति के सम्बन्ध में सदन को प्रतिवेदन देती है। अभी तक समिति ५ प्रतिवेदन प्रस्तुत कर चुकी है।

सार्वजनिक लेखा समिति सदन द्वारा स्वीकृत अनुदानों की मांगों तथा पूरक मांगों के अन्तर्गत शासन के विभिन्न अंगों के लिए निर्धारित धन-राशि के व्यय के औचित्य को देखती है। इसके सभापति पहले श्री कामताप्रसाद सक्सेना रहे और अब सन् १९५३ से श्री श्यामजी हैं। प्रथम तीन वर्षों में समिति की कोई बैठक नही हुई। विगत वर्ष से यह समिति कार्यरत है और अभी तक दो प्रतिवेदन सदन को प्रस्तुत कर चुकी है।

प्राक्कलन समिति विभिन्न विभागों की व्यवस्था तथा उनके कार्यों पर दृष्टि रखती है। यही एक ऐसी समिति है, जो प्रारम्भ से ही कार्यशील है और जिसकी सबसे अधिक बैठकें हुईं। इसके सभापति प्रारम्भ से श्री श्यामजी रहे हैं और इस वर्ष श्री सरस्वती प्रसाद पटेल है। यह समिति शिक्षा, कृषि, खाद्य एवं पूर्ति, सिंचाई और बंधान, सूचना एवं प्रचार-विभाग तथा सामान्य प्रशासन पर ६ प्रतिवेदन दे चुकी है।

वित्त-समिति सन् १९५२ में निर्मित की गई और केवल १९५३ तक चली। इसके प्रथम सभापति श्री गोविन्द नारायण सिंह रहे।

इन समितियों के अतिरिक्त प्रक्रिया नियमावली बनाने के लिए एक समिति निर्मित की गई थी। इसके सभापति स्वयं अध्यक्ष श्री शिवानन्दजी थे। समिति ने जो नियमावली प्रस्तावित की, वह सदन द्वारा ३ दिसम्बर, १९५३ को स्वीकार कर ली गई।

संकल्प—सदन ने अन्य कार्यों के अतिरिक्त कई महत्वपूर्ण संकल्प भी स्वीकृत किए। इनमें तीन उल्लेखनीय हैं। प्रथम संकल्प द्वारा केन्द्रीय सरकार से विन्ध्य-प्रदेश को 'ग' से उठाकर 'अ' श्रेणी का राज्य करने का अनुरोध किया गया। द्वितीय संकल्प में सन् १९५० में विन्ध्य-प्रदेश की द्वीपवत् इकाइयों को समीपवर्ती राज्यों में विलीन करने के बदले में विन्ध्य-प्रदेश को कुछ न मिलने का विरोध किया गया तथा केन्द्रीय सरकार से अनुरोध किया गया कि वह इन राज्यों के प्रतिनिधियों की एक सभा करे, जिससे असन्तोष दूर हो। तीसरा संकल्प राज्य-पुनर्गठन-सम्बन्धी था। इसमें कहा गया है कि विन्ध्य-प्रदेश की वर्तमान इकाई अक्षुण्ण रखी जाय, सिवाय इसके कि समीपवर्ती राज्यों की द्वीपवत् इकाइयां विन्ध्य-प्रदेश में विलीन की जायँ और यदि आवश्यक हो, तो दतिया जिला को मूल भूभाग से सम्बद्ध करने के लिए कुछ भूभाग भी विन्ध्य-प्रदेश में मिला दिया जाय।

दलीय स्थिति—जैसा कहा जा चुका है, विधान सभा के लिए आम चुनाव में ६० सदस्य चुने गए। इनमें ४० कांग्रेस, ११ समाजवादी, ३ किसान-मजदूर-प्रजा पार्टी, २ स्वतंत्र, २ रामराज्य परिषद् तथा २ जन-संघ के थे। कांग्रेस का पूर्ण बहुमत होने के कारण शासन के संचालन का दायित्व उस पर आया। कांग्रेस के बाद समाजवादी सदस्यों की संख्या सब से अधिक थी, इसलिए वह मुख्य विरोधी दल और उसके नेता श्री जगदीश चन्द्र जोशी विरोधी दल के नेता स्वीकार किए गए। समय-समय पर होनेवाले उपचुनावों से सदन में राजनीतिक दलों की स्थिति परिवर्तित होती रही। सन् १९५२ में श्री साहिब सिंह का निधन हो गया। सन् १९५३ में श्री जगदीश चन्द्र जोशी, श्री पद्मचन्द पाटनी और श्री गंगाधर के चुनाव अवैध घोषित हुए, जिससे रीवा, जैतपुर-कोतमा और देवसर क्षेत्रों में उपचुनाव हुए। इनमें रीवा से श्री मुनिप्रसाद शुक्ल, जैतपुर-कोतमा से श्री बाबूलाल उदानिया और श्री रतन सिंह तथा देवसर से श्री जगदीश प्रसाद खरे चुने गए। इसी वर्ष श्री पन्नालाल, श्री गोविन्द, श्री कामता प्रसाद सक्सेना, श्री बसन्तलाल, श्री लक्ष्मीनारायण तथा श्री रामदास न्यायाधिकरण द्वारा अयोग्य घोषित कर दिए गए। इनके रिक्त स्थानों की पूर्ति के लिए उपचुनाव हुए, जिनमें छतरपुर से श्री दशरथ जैन और श्री पिरवा, चन्दला से श्री रघुनाथ सिंह, सेंवढ़ा से श्री सूर्यदेव शर्मा तथा श्री ज्वालाप्रसाद एवं मलेहरा से श्री नरेन्द्र कुमार चुने गए। श्री हेतराम के निधन से नागौद का स्थान रिक्त हुआ, जिस पर श्री चंडीदीन आए। सन् १९५४ में श्री महेन्द्रकुमार मानव और श्री मुनिप्रसाद शुक्ल के चुनाव रद्द हुए। श्री मानव पुनः लौंड़ी से चुन लिए गए। रीवा से श्री शुक्ल के स्थान पर श्री यादवेन्द्र सिंह आए। इन परिवर्तनों से शासनारूढ़ दल पर विशेष प्रभाव नहीं पड़ा, केवल विरोधी दल और उसके नेता की स्थिति बदलती रही। श्री जगदीशचन्द्र जोशी के बाद श्री रामकिशोर शुक्ल और उनके बाद श्री चन्द्रप्रताप तिवारी विरोधी दल के नेता हुए। विगत वर्ष प्रजा समाजवादी दल से समाजवादी दल पृथक् हो गया, जिससे सदन मे कोई मुख्य विरोधी दल नहीं रह गया। इस कारण विरोधी दल के नेता की मान्यता समाप्त कर दी गई।

साढ़े चार वर्ष का समय किसी भी प्रदेश के इतिहास में अधिक नहीं होता, विशेषकर ऐसी स्थिति में जब वहां प्रजातांत्रिक व्यवस्था बिलकुल नवीन हो। ऐसी दशा में जनप्रतिनिधित्व-पूर्ण विधान-सभा की स्थापना और उसका इस प्रकार सफलतापूर्वक कार्य करना, सराहनीय है।

प्रेमनारायण सिलारपुरिया

विन्ध्य-प्रदेश में शिक्षा-विकास

देशी राज्यों के विलयन के पूर्व यहां शिक्षा पर विशेष ध्यान नही था। रीवा, छतरपुर, टीकमगढ़, दतिया और पन्ना ही ऐसे राज्य थे, जहां शिक्षा की ओर विशेष ध्यान दिया जाता था। यद्यपि अधिकांश राज्यों में उनके सीमित वित्तीय साधन भी इस दिशा में एक बाधा थे, किन्तु राज्यों के शासकों की शिक्षा-प्रसार के प्रति उदासीनता भी इस दयनीय अवस्था का एक कारण थी। रीवा राज्य में सन् १९४५ मे शिक्षा-विभाग का पुर्नगठन तथा एक पंचवर्षीय विकास-योजना का निर्माण किया गया था। छतरपुर राज्य में सन् १८६५ में सर्व प्रथम एक पाठशाला प्रारम्भ हुई थी, जो आज डिग्री कालेज के रूप में विद्यमान है। इस राज्य में शिक्षा की क्रमबद्ध प्रगति का इतिहास १९२० से १९४७ ई० तक का है।

उपरोक्त पांचों राज्यों में शिक्षा हाई स्कूल तक निःशुल्क दी जाती थी; निर्धन और योग्य छात्रों को वृत्तियां दी जाती थीं। दतिया राज्य में मिडिल और हाई स्कूल परीक्षा के लिये बाहर जानेवाले छात्रों के मार्ग-व्यय और भोजन की व्यवस्था राज्य द्वारा की जाती थी। स्काउट और गाइड के यूनीफार्म का प्रबन्ध सरकार अपने व्यय पर करती थी। विभिन्न खेलों की सामग्री का व्यय-भार राज्य स्वयं वहन करता था। समस्त बुन्देलखण्ड राज्यों के बीच एक प्रशिक्षण संस्था छतरपुर में तथा बघेलखण्ड राज्यों के बीच एक प्रशिक्षण संस्था रीवा में थी। अध्यापकों का वेतन-स्तर सबसे अच्छा रीवा राज्य में था। वहां से नीचा चरखारी, दतिया, छतरपुर, टीकमगढ़ और पन्ना में था। शेष राज्यों में वेतन-स्तर अत्यन्त ही निम्न थे।

देशी राज्यों के विलयन के बाद उत्तरदायी सरकार बनी। यह काल नवीन शिक्षा-सूत्र के प्रारम्भ का था। इस वर्ष के लिये कई राज्यों में शिक्षा-प्रसार की योजनायें पूर्व ही स्वीकृत हो चुकी थीं, जिसके फलस्वरूप विभिन्न स्थानों में नवीन शिक्षण-संस्थायें खोली गयी। इस सन्धिकाल में पाठशालाओं की संख्या निम्न प्रकार थी :—

क्रमांक	संस्था का प्रकार	संख्या
१.	प्राथमिक पाठशालायें	१३९०
२.	मिडिल स्कूल	१४०
३.	हाई स्कूल	१६
४.	इन्टर कालेज	२
५.	डिग्री कालेज	१
६.	शिक्षण-प्रशिक्षण संस्थायें	२
७.	संस्कृत पाठशालायें	११
८.	रात्रि पाठशालाये	९
९.	अन्य	४
	योग	१५७५

जनवरी '४९ मे प्रादेशिक स्तर पर शिक्षा-विभागीय कार्यालयों का संगठन किया गया। प्रदेश की राजधानी रीवा नगर में शिक्षा-संचालक का कार्यालय, बुन्देलखण्ड डिवीजन के लिये एक उप शिक्षा-संचालक नौगांव में तथा बघेलखण्ड डिवीजन के लिये एक सतना में स्थापित किये गये। ८ जिला निरीक्षकों एवं दो डिवीजनल इन्स्पेक्ट्रेस आफ गर्ल्स स्कूल्स के कार्यालय संगठित हुए।

१९४९-५० में सम्मिलित मंत्रिमण्डल ६-७ मास ही कार्य कर पाया था कि केन्द्रीय सरकार ने अप्रैल १९४९ में इस प्रदेश का शासन-भार तत्कालीन प्रादेशिक आयुक्त श्री एन० बी० बनर्जी को सौंप दिया। इनके पश्चात् श्री एस० एन० मेहता यहां के प्रादेशिक आयुक्त नियुक्त हुए। प्रदेश

की राजनीतिक स्थिति इस काल में कुछ हलचलपूर्ण होने लगी थी और उसका अन्त इस प्रदेश को 'ख' श्रेणी से 'ग' श्रेणी के परिवर्तन में हुआ। १-१-५० से श्री वी० के० वी० पिल्लई इस प्रदेश के मुख्य आयुक्त नियुक्त किये गये। शासकों के परिवर्तन के साथ ही शासितों के परिवर्तन की भी समस्या आ खड़ी हुई। जनवरी '५० के अन्तिम सप्ताह में विन्ध्य-प्रदेश के द्वीपवत् अंशों के पड़ोसी प्रान्तों में विलयन का आदेश केन्द्रीय सरकार से आ पहुंचा। फलस्वरूप इसके ४९९ ग्राम अन्य प्रान्तों में मिला दिये गये तथा २,११,५५७ व्यक्तियों का इस प्रदेश से सम्बन्ध-विच्छेद हो गया। कुछ ग्राम अन्य प्रान्तों से इस प्रदेश में भी सम्मिलित किये गये। संक्रमणकाल की ऐसी उथल-पुथलपूर्ण परिस्थितियां किसी भी प्रकार की विकास-योजनाओं के लिये अनुपयुक्त वातावरण की सृष्टि करती हैं, फिर भी प्रदेश में नवीन शिक्षण-संस्थाओं की स्थापना की दिशा में सरकार के कदम बढ़ते रहे। अब तक प्रदेश मे जिलों का पूर्ण रूप से संगठन हो चुका था। छतरपुर में इंटर कालेज को उन्नत करके महाराजा डिग्री कालेज की स्थापना की गई तथा उसकी इण्टर कक्षाओं से नीचे की कक्षायें पृथक् करके एक हाई स्कूल महाराजा हाई स्कूल के नाम से अलग संस्था चालू कर दी गई। जिला टीकमगढ़, सीधी, पन्ना, सतना, शहडोल, छतरपुर और रीवा में भी प्राथमिक और माध्यमिक पाठशालायें खोली गयीं। इस वर्ष का शिक्षा-बजट ३६.५० लाख था। प्राथमिक पाठशालाओं में ६३५०० के लगभग तथा माध्यमिक शालाओं में ३०३०० के लगभग बालक-बालिकायें शिक्षा प्राप्त करते थे।

वर्ष की शिक्षण-संस्थाओं के आंकड़े निम्न प्रकार हैं:—

संस्था	द्वीपवत् अंशों के विलयन के पूर्व की स्थिति	पड़ोसी राज्यों में विलीन संस्थायें	पड़ोसी राज्यों से प्राप्त संस्थायें	वर्ष के अन्त में स्थिति
प्राथमिक स्कूल	१५६१	१५५	१७	१४२३
मिडिल स्कूल	१८५	१०	—	१७५
हाई स्कूल	१७	३	—	१४
इन्टर कालेज	१	—	—	१
डिग्री कालेज	२	—	—	२
प्रशिक्षण संस्थायें	२	—	—	२
संस्कृत पाठशालायें	१५	२	—	१३
रात्रि पाठशालायें	९	१	—	८
अन्य	८	१	—	७
योग	१८००	१७२	१७	१६४५

१९५०-५१ की स्थिति

देश के विकास-क्रम के इतिहास में १९५०-५१ का वर्ष अपना एक विशेष महत्व रखता है; क्योंकि प्रथम पंचवर्षीय योजना की आधार-शिला इसी वर्ष की स्थिति बनी थी। इस वर्ष विन्ध्य-प्रदेश के शिक्षा-बजट में ३९.९५ लाख रुपये का प्रावधान किया गया था। ६ सितम्बर १९५० को डाक्टर ए० पी० माथुर, डी० एस-सी० ने प्रदेश के शिक्षा-संचालक का कार्य-भार संभाला, जिनकी अध्यक्षता में प्रथम पंचवर्षीय योजना का निर्माण हुआ तथा आगामी पांच वर्षों में उसका सफल कार्यान्वियन हुआ। इस वर्ष प्रदेश का शासन मुख्य आयुक्त के ही हाथों में रहा। प्रस्तुत सत्र में ३०० नवीन प्राथमिक पाठशालाएँ खोली गयीं, २ ए० वी० एम० स्कूलों को हाई स्कूलों के स्तर पर लाया गया। रामानुज ट्रेनिंग कालेज में पी० टी० सी० के स्थान में इन्टरमीजियेट अध्यापकों के लिये सी० टी० ट्रेनिंग की व्यवस्था की गई। मार्च १९५१ में प्रदेश में सम्पूर्ण शिक्षण-संस्थाओं की संख्या १९१६ थी, जिनमें १,०३,९१३ विद्यार्थी विद्याध्ययन करते थे।

आलोच्य वर्ष की शिक्षण-संस्थाओं एवं छात्रों की सविवरण संख्या परिशिष्ट 'क' में अंकित है।

१९५१-५२ की स्थिति

इस वर्ष का अधिकांश मुख्य आयुक्त के शासन में बीता। यह वर्ष यद्यपि पंचवर्षीय योजना का प्रथम वर्ष कहलाता है, वर्ष के अन्त तक भी योजना अन्तिम रूप से स्वीकृत नहीं हो सकी थी। इस वर्ष में जो २५ नवीन प्राथमिक पाठशालायें, ३ ए० वी० एम० स्कूल और ५ हाई स्कूल चालू किये गये थे, वही आगे चलकर पंचवर्षीय योजना के प्रथमवर्षीय विकास-कार्य-क्रम मान लिये गये थे। इस वर्ष प्रदेश का शिक्षा-बजट ४३.१० लाख था। सम्पूर्ण शिक्षण-संस्थायें १९४५ थीं, जिनमें १.०३ लाख छात्र शिक्षा ग्रहण करते थे। प्राथमिक स्तर की १७२३ पाठशालाओं में १२२ बालिका-पाठशालाएँ थीं, जिनमें ४२०० के लगभग बालिकायें पढ़ती थीं, २४८९ अध्यापक एवं १४४ अध्यापिकाएँ कार्य करती थीं। इस स्तर पर राज्य १८.७० लाख रुपये व्यय करता था। राज्य में १६९ मिडिल स्कूल, २१ हाई स्कूल तथा १ इन्टरमीजियेट कालेज थे। दो डिग्री कालेजों में भी इन्टरमीजियेट कक्षायें थीं। इन समस्त माध्यमिक संस्थाओं

में ३३ हजार के लगभग विद्यार्थी थे, जिन्हें पढ़ाने के लिये १६८२ अध्यापक एवं १२४ अध्यापिकायें थीं। राज्य ने इस स्तर की शिक्षा के लिये आलोच्य वर्ष में १३.२८ लाख रुपये व्यय किये। विश्वविद्यालय-स्तर की दो संस्थायें थीं, जिनमें स्नातक-कक्षाओं में कला में १५९, विज्ञान में ६७ तथा स्नातकोत्तर कक्षाओं में कला-विषयों के ३२ छात्र थे। कानून की पढ़ाई भी दरबार कालेज, रीवा में होती थी, जिसमें ५७ छात्र थे। दोनों कालेजों में प्राध्यापकों की संख्या ६६ थी। इस स्तर की शिक्षा के लिये राज्य ३.२० लाख रुपये व्यय करता था।

प्रदेश में बेसिक शिक्षा एवं समाज-शिक्षा का पूर्णरूपेण अभाव था। औद्योगिक शिक्षा की उचित व्यवस्था नहीं थी। पाठशाला-भवनों की स्थिति दयनीय थी।

प्रथम पंचवर्षीय योजना और उसकी सफलता

जनवरी '५२ में होनेवाले सार्वजनिक निर्वाचन के फल-स्वरूप प्रदेश के लिये ६० निर्वाचित सदस्यों की एक विधान-सभा एवं १२ फरवरी '५२ को एक मंत्रि-परिषद् का निर्माण हुआ, जिसके मुख्य मंत्री श्री शम्भूनाथ शुक्ल बने। शिक्षा-विभाग के मंत्री श्री महेन्द्रकुमार मानव हुए। लगभग दो वर्ष पश्चात् विभागों में परिवर्तन होने के परिणाम-स्वरूप स्वयं मुख्य मंत्री ही शिक्षा-मंत्री भी हो गये। इसी बीच शिक्षा-सत्र १९५१-५२ का भी अन्त समीप आ पहुंचा और लोक-प्रिय सरकार द्वारा शिक्षा-विकास की योजनायें तत्परता के साथ बनाई जाने लगीं।

यद्यपि पंचवर्षीय योजना को उस समय भारत सरकार के योजना-आयोग की अनुमति प्राप्त नहीं हुई थी, फिर भी विधान-सभा द्वारा १४ लाख रुपये की एक धन-राशि विकास-कार्यों के लिये स्वीकृत कराकर उसी में से शिक्षा-प्रसार का कार्य प्रारम्भ कर दिया गया। ग्रीष्मावकाश के पश्चात् शिक्षा-सत्र प्रारम्भ होते ही जुलाई-अगस्त, १९५२ में १५० नवीन प्राथमिक पाठशालायें प्रारम्भ की गयीं, १५ प्राथमिक पाठशालाओं को मिडिल स्कूल के स्तर पर तथा ७ मिडिल स्कूलों को हाई स्कूलों के स्तर पर लाया गया। प्रदेश में बेसिक शिक्षा का समारम्भ करने के लिये ८ आदर्श बेसिक पाठ-शालायें प्रारम्भ की गयीं। समाज-शिक्षा का श्रीगणेश करने के लिये एक सचल समाज-शिक्षा-दल का संगठन किया गया। औद्योगिक शिक्षा के लिये एक पोलीटेक्निक तथा एक कृषि-विद्यालय खोला गया। बेसिक पाठशालाओं के लिये शिक्षकों की पूर्त्ति करने हेतु कुण्डेश्वर (टीकमगढ़) में एक बेसिक ट्रेनिंग कालेज खोला गया। तात्पर्य यह कि जनता की सरकार बनते ही शिक्षा-विकास-कार्य ने एक नया मोड़ लिया तथा उसकी गति तीव्रतर हो उठी।

दिसम्बर १९५२ में योजना आयोग ने विन्ध्य-प्रदेश के लिये १ करोड़ रुपये की लागत की शिक्षा-प्रसार-संबंधी प्रथम पंचवर्षीय योजना स्वीकृत की, जिसके अन्तर्गत निम्न उपयोजनायें अनुमोदित थीं। बीच-बीच में इस योजना में संशोधन हुआ। उसका जो अन्तिम रूप रहा, वह नीचे अंकित है :—

क्रमांक	उपयोजना	वित्त (लाखों में)
१.	प्रशासन	.३०
२.	प्राथमिक शिक्षा	१५.१७
३.	माध्यमिक शिक्षा	३४.७८
४.	विश्वविद्यालय शिक्षा	१.२२
५.	औद्योगिक एवं व्यावसायिक शिक्षा	७.२६
६.	समाज-शिक्षा	.९६
७.	भवन	३९.७७
८.	साज-सज्जा	२.६८
९.	श्रम-योजना	१.१४
	योग	१०३.२८

प्रथम पंचवर्षीय योजना में निर्धारित लक्ष्य और प्राप्त सफलता के आंकड़े परिशिष्ट 'ख' में अंकित है, जो योजना-अवधि में हुए विकास-कार्य पर प्रकाश डालते हैं।

केन्द्रीय सरकार के शिक्षा-मंत्रालय द्वारा सुझाई हुई ७ अन्य शिक्षा-विकास-योजनाएँ भी इस प्रदेश में कार्यान्वित की गयीं, जिन पर योजना-काल में ४१.३५ लाख रुपये व्यय हुए। इसका आंशिक व्यय-भार केन्द्रीय सरकार ने भी उठाया। इनकी सूची परिशिष्ट 'ग' में दी गई है।

द्वितीय योजना का समारम्भ

वर्तमान वित्तीय वर्ष के प्रारम्भ अर्थात् अप्रैल १९५६ से ही हमारा देश अपने सर्वोन्मुखी विकास की दिशा में दूसरी मंजिल पर पदार्पण कर चुका है। प्रथम योजना के कार्यान्वयन में सामने आनेवाली कठिनाइयों का अनुभव लेकर और प्राप्त सफलता से शक्ति और प्रेरणा पाकर

प्राइमरी स्कूल	सन्
१६६६	१९५०-५१
३६०४	१९५५-५६
माध्यमिक स्कूल	
१०२	५०-५१
२२६	५५-५६
उच्च विद्यालय	
१६	५०-५१
४४	५५-५६
कालेज	
३	५०-५१
६	५५-५६
छात्र	
१००००३	५०-५१
२.३६०००	५५-५६

शिक्षा विभाग की— प्रथम पंच वर्षीय योजना की प्रगति

देश के कर्मठ कार्यकर्त्ता द्वितीय योजना के कार्यान्वियन में जुट गये ।

हमारे प्रदेश की भी एक योजना है, जिसमें वित्तीय दृष्टि से शिक्षा-प्रसार-योजना को प्रथम स्थान प्राप्त है। प्रदेश की समूची द्वितीय योजना का मूल्य २४७० लाख रुपये निश्चित किया गया, जिसमें ३३२.५० लाख केवल शिक्षा-विकास के लिये निर्धारित है । विभिन्न उपशीर्षकों में इसका विभाजन निम्न प्रकार है:—

क्रमांक	उपशीर्षक	वित्त (लाखों में)
१.	प्राथमिक शिक्षा	२१०.००
२.	माध्यमिक शिक्षा	४८.५०
३.	औद्योगिक शिक्षा	४९.५०
४.	विश्वविद्यालय शिक्षा	१४.५०
५.	समाज-शिक्षा	४.५०
६.	विविध योजनायें	५.५०
	योग	३३२.५०

उक्त धन-राशि से ५ वर्षों में क्या-क्या विकास-कार्य संपादित होंगे, इसका ब्यौरा परिशिष्ट 'ग' में दिया गया है।

वर्तमान शिक्षा-सत्र के प्रारम्भ अर्थात् जुलाई १९५६ से प्रदेश में द्वितीय योजना-विकास-कार्यक्रम का समारम्भ हो चुका है । गत मास ३५० नवीन साधारण प्राथमिक पाठशालायें प्रारम्भ की गयी, १६० साधारण पाठशालाओं में प्रथम कक्षा बेसिक में परिवर्तित की गयी । ४ नवीन बुनियादी शिक्षण विद्यालय दतिया, सतना, रीवा और शहडोल में स्थापित किये गये । २६ प्राथमिक पाठशालाओं को जूनियर हाई स्कूल स्तर पर तथा ७ जूनियर हाई स्कूलों को हाई स्कूल स्तर पर उन्नत किया गया ; पन्ना और सीधी के हाई स्कूलों का उन्नयन इण्टर कालेज के रूप में किया गया। दरबार कालेज में बी० टी० प्रशिक्षण कक्षा और ४ विषयो में एम० एस-सी० कक्षाएं प्रारम्भ की जा चुकी हैं। टीकमगढ़, पन्ना, सतना और शहडोल में जूनियर टेक्निकल स्कूल स्थापित हुए हैं । महाराजा कालेज, छतरपुर और दरबार कालेज, रीवा में स्नातक एवं स्नातकोत्तर स्तर की नवीन कक्षायें प्रारम्भ की गई है ।

उन्नति का पर्यवेक्षण

प्रदेश की स्थापना और उसके संगठन के पश्चात् इस राज्य में शिक्षा के प्रत्येक क्षेत्र में आशातीत उन्नति हुई है । नवीन योजनाओं और जन-सहयोग के फलस्वरूप शिक्षण-की संख्या में बड़ीवृद्धि हुई । मार्च ५६ में ७.५ प्रति शत व्यक्ति विभिन्न प्रकार की संस्थाओं में शिक्षा ग्रहण कर रहे थे, जब कि मार्च ५१ में यह केवल २.९ प्रति शत था । १९५०-५१ में शिक्षा-बजट ३९.९४ लाख रुपये था, जब कि इस वर्ष १२३.४० लाख रुपये रहा। १९५०-५१ में सम्पूर्ण शिक्षण-संस्थाओं की संख्या १९१६ थी, जब कि मार्च में यह संख्या ४१७० हो गई थी ।

पंचवर्षीय योजना के पूर्व १९५०-५१ में प्रदेश में ६ से ११ वर्ष के बालक-बालिकाओं की संख्या ४६०.२ हजार थी। उनमें से लगभग ६८ हजार पाठशालाओं में शिक्षा ग्रहण करते थे। १९५५-५६ में यह संख्या बढ़कर ५१०.५ हजार हो गई, जिनमें से १९६ हजार शिक्षा ग्रहण करते थे। यह वृद्धि निश्चित रूप से सरकार के प्रयत्न और जनता की शिक्षा के प्रति बढ़ती हुई रुचि का द्योतक है। जहां तक सरकार

द्वारा इस स्तर की शिक्षा पर व्यय का प्रश्न है, १९५०-५१ में यह व्यय ६.७० लाख रुपये था, जो १९५५-५६ में ३२.९० लाख पर पहुंच गया था।

१९५३-५४ के पूर्व प्रदेश में अनिवार्य शिक्षा नही थी। इसी वर्ष राज्य में अनिवार्य शिक्षा नियम लागू हुआ,जिसके अन्तर्गत प्रत्येक तहसील मे एक-एक अनिवार्य शिक्षा-केन्द्र स्थापित हुआ। इस प्रकार प्रथम बार २६ केन्द्र स्थापित हुए। दूसरे वर्ष १९५४-५५ में प्रत्येक कानूनगो सर्किल के केन्द्र में अनिवार्य शिक्षा लागू की गई तथा पुनः प्रत्येक विकास-खण्ड में प्राथमिक शिक्षा अनिवार्य की गई। मार्च १९५६ में प्रदेश में ८३८ अनिवार्य शिक्षा-केन्द्र थे, जिनमें ११ वर्ष के १,०६,७३५ बालक-बालिकायें शिक्षा पाते थे। प्रदेश में, और विशेष रूप से ग्राम्य क्षेत्र में प्राथमिक शिक्षा-प्रसार की दिशा में केन्द्रीय सरकार की 'शिक्षितों की बेकारी निवारण योजना" ने सराहनीय सहयोग प्रदान किया। इस योजना के अन्तर्गत इस प्रदेश में पिछले ३ वर्ष में २४०० अध्यापक नियुक्त किये गये, जिनमें से १२८३ अध्यापक, एक अध्यापकवाली नवीन प्राथमिक पाठशालाओं को खोलने तथा ११७३ अध्यापक वर्तमान पाठशालाओं में बढ़ती हुई छात्र-संख्या को संभालने के लिये उपयोग में लाये गये।

वर्ष १९६०-६१ अर्थात् द्वितीय योजना की समाप्ति के समय प्रदेश में ६ से ११ वर्ष के ५६०.४ हजार बालक-बालिकाएँ होने का अनुमान है। द्वितीय-योजना काल में १२५ हजार अतिरिक्त संख्या को पाठशालाओं में लाये जाने का अनुमान किया जाता है।

बेसिक शिक्षा

१९५१-५२ तक प्रदेश में बेसिक शिक्षा का पूर्णरूपेण अभाव था। जुलाई ५२ में प्रथम बार प्रत्येक जिला-मुख्य-आवास पर एक-एक आदर्श बेसिक पाठशाला स्थापित की गई, जिनमें उस वर्ष छात्र-संख्या केवल ५६७ थी और १८ अध्यापक कार्य करते थे। १९५३ की जुलाई से केन्द्रीय सरकार द्वारा प्रेरित सघन शिक्षा-योजना प्रदेश में कार्यान्वित की गई, जिसके अन्तर्गत दतिया और पन्ना जिलों में ३०-३० प्राथमिक पाठशालाओं को बेसिक में परिणत किया गया। उनमें बेसिक ट्रेन्ड अध्यापक और शिल्पों के अध्यापन के लिये आवश्यक सामग्री एवं साज-सज्जा की व्यवस्था की गई। जुलाई ५५ से शहडोल में एक ग्रामीण बेसिक स्कूल केन्द्रीय योजना सं० ४ के अन्तर्गत स्थापित किया गया। अध्यापन-सामग्री-निर्माण की योजना भी आदर्श बेसिक पाठशालाओं मे १९५५-५६ में कार्यान्वित की गई। इन समस्त ६९ बेसिक पाठशालाओं में प्रथम योजना-अवधि की समाप्ति पर ६५८७ छात्र शिक्षा प्राप्त कर रहे थे।

द्वितीय योजना में बेसिक शिक्षा पर विशेष बल दिया जायगा, जिसका आभास परिशिष्ट 'घ' में अंकित उप-योजनाओं से हो सकेगा।

माध्यमिक शिक्षा

माध्यमिक शिक्षा के अन्तर्गत इस प्रदेश में इण्टर कालेज, हाई स्कूल तथा जूनियर हाई स्कूल माने जाते हैं। उपरोक्त अनुच्छेदों में यह बताया जा चुका है कि प्रथम पंचवर्षीय योजना के प्रारम्भीकरण के पूर्व जहां राज्य में १ इण्टर कालेज, १६ हाई स्कूल तथा १७१ जूनियर हाई स्कूल (मिडिल) थे, जिनमें क्रमशः ३९२, ६०१६ तथा २७८८६ छात्र-छात्रायें शिक्षा ग्रहण करते थे, वहां योजना की समाप्ति पर ४ इण्टर कालेज, ४४ हाई स्कूल और २३६ जूनियर हाई स्कूल थे, जिनमें क्रमशः ७३६, १३१२० तथा ४८५२४ छात्र-छात्रायें शिक्षा ग्रहण करते थे। योजना-काल में ३ इण्टर कालेज, ३० हाई स्कूल और ९३ जूनियर हाई स्कूल प्रारम्भ किये गये। द्वितीय योजना के अन्तर्गत इसी वर्ष जुलाई ५६ से २ इण्टर कालेज, ७ हाई स्कूल एवं २६ जूनियर हाई स्कूल प्रारम्भ किये गये हैं।

प्रदेश में ११ से १४ वर्ष की अवस्था के बालक-बालिकाओं को माध्यमिक स्तर की शिक्षा के लिये अधिकाधिक सुविधायें प्रदान करने के लिये जहां शिक्षण-संस्थाओं की संख्या में वृद्धि की गई, वहां अध्यापन के स्तर को भी उन्नत करने का पूरा-पूरा ध्यान रखा गया है। इसके निमित्त संस्थाओं में अध्यापन-सामग्री एवं साज-सज्जा की पूर्ति की गई, यथा-सम्भव प्रशिक्षित अध्यापक रखे गये, अध्यापकों के वेतन-स्तरों में सुधार किया गया, नवीन-नवीन विषयों का समावेश किया गया। हाई स्कूल तक शिक्षा प्रायः निःशुल्क है। ९वीं तथा १०वी कक्षा में केवल उन विद्यार्थियों से शुल्क लिया जाता है, जिनके अभिभावक आय-कर देते हैं। राज्य की ओर से छात्रवृत्तियों की भी व्यवस्था की जाती है।

माध्यमिक शिक्षा में गवेषण-कार्य को प्रोत्साहन देने
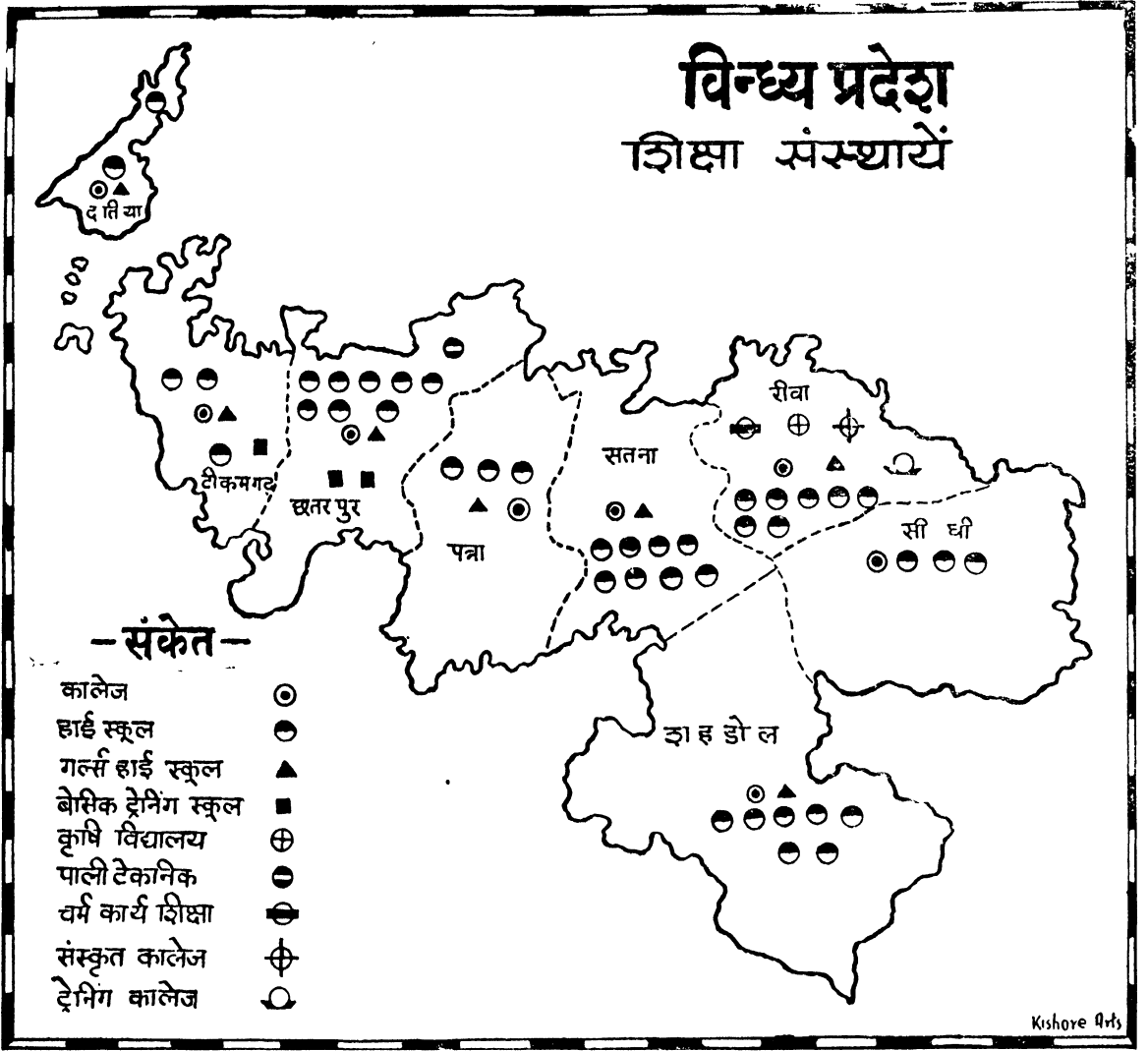
के लिये केन्द्रीय सरकार द्वारा प्रस्तावित एक योजना इस प्रदेश में भी १९५३-५४ से कार्यान्वित की गई। रामानुज ट्रेनिंग कालेज, रीवा में प्रधानाचार्य की देख-रेख में वहां के एक प्राध्यापक ने इस सम्बन्ध मे कार्य किया, जिसका विषय था (१) वर्तमान शिक्षा-पद्धति में सुधार कर आदिवासियों एवं पिछड़ी जातियों के अनुकूल एक नवीन पद्धति का प्रयोग तथा (२) विन्ध्य-प्रदेश की विशेष परिस्थितियों को दृष्टि में रखते हुए सामाजिक शिक्षा का उपयुक्त पाठ्य-क्रम-निर्माण।

माध्यमिक शिक्षा पुनर्गठन समिति की सिफारिशों के आधार पर केन्द्रीय शिक्षा-मंत्रालय द्वारा निर्मित माध्यमिक शिक्षा पुनर्गठन-सम्बन्धी कतिपय योजनाओं को इस प्रदेश में भी कार्यान्वित किया गया, जिसके अन्तर्गत मार्तण्ड हाई स्कूल, रीवा तथा महाराजा हाई स्कूल, छतरपुर को बहुधन्धी बनाया गया। हाई स्कूलों में अध्यापन और पुस्तकालय का विकास हुआ। जूनियर हाई स्कूलों में क्राफ्ट का अध्यापन प्रारम्भ किया गया। तात्पर्य यह कि माध्यमिक शिक्षा में संख्या और स्तर दोनों दिशाओं में उन्नति हुई।

अध्यापकी प्रशिक्षण

प्रथम योजना-काल में प्रत्येक स्तर की पाठशालाओं की वृद्धि के साथ ही सुयोग्य अध्यापकों की समस्या आ खड़ी हुई। प्रदेश मे योजना-प्रारम्भ के पूर्व केवल एक ट्रेनिंग कालेज इन्टरमीजियेट अध्यापकों को सी० टी० ट्रेनिंग देने के लिये रीवा में था तथा एक मिडिल-पास अध्यापकों के लिये छतरपुर में। चूंकि प्राथमिक शिक्षा का राष्ट्रीय आदर्श बेसिक को स्वीकार किया जा चुका है तथा उसी पद्धति को अपनाया

भी जा रहा है, अतः उसके लिये उपयुक्त अध्यापक तैयार करने हेतु प्रदेश में दो बेसिक प्रशिक्षण-विद्यालय—एक मैट्रिकुलेट्स के लिये तथा एक मिडिल-पास अध्यापकों के लिये खोले गये। माध्यमिक स्कूलों के लिये ग्रेजुएट्स को प्रशिक्षित करने के लिये महाराजा कालेज, छतरपुर में एक बी० टी० कक्षा गत वर्ष खोली गयी थी, जहां ५० अध्यापक प्रशिक्षित होते हैं। इस वर्ष दरबार कालेज, रीवा में भी ६० ग्रेजुएटों की बी० टी० ट्रेनिंग की व्यवस्था की गई है। द्वितीय योजना-काल में ८ नवीन बेसिक प्रशिक्षण विद्यालय खोले जायेंगे, जिनमें से ४ इस वर्ष खुल चुके हैं तथा दो वर्तमान प्रशिक्षण संस्थाओं को बेसिक मे परिवर्तित किया जा चुका है। ये सब संस्थायें मिलाकर १२०० बेसिक प्रशिक्षित अध्यापक तथा ११० ट्रेण्ड ग्रेजुएट प्रति वर्ष दिया करेंगे, जो शिक्षा के क्षेत्र से नवीन समाज के निर्माण में हाथ बटायेंगे।

प्रदेश मे एक डिग्री तथा एक पोस्ट डिग्री कालेज है, जिनमें पिछले शिक्षा-सत्र की समाप्ति पर लगभग ११५० विद्यार्थी पढते थे। पिछले पांच वर्षो मे इन कालेजो मे ३ नवीन विषयों के अध्यापन की व्यवस्था की गई। महाराजा कालेज में बी० टी० कक्षा तथा दरबार कालेज में स्नातक-स्तर की कृषि-विज्ञान की कक्षायें प्रारम्भ की गयी। इन संस्थाओ के लिये छात्रावास, एन० सी० सी०-कार्यालय आदि भवनों का निर्माण हुआ। द्वितीय योजना मे इस स्तर पर विकास की कई योजनायें हैं।

व्यावसायिक एवं औद्योगिक शिक्षा

प्रदेश के निर्माण के समय यहा औद्योगिक शिक्षा का अत्यन्त अभाव था। प्रथम योजना-काल में इसे दूर करने का प्रयत्न किया गया तथा इस उद्देश्य की पूर्ति हेतु जुलाई १९५२ में नौगाव में एक पुरु-औद्योगिक संस्था, रीवा में एक चर्म-कार्य-संस्था तथा एक कृषि-विद्यालय स्थापित किये गये। पुरु-औद्योगिक संस्था प्रदेश में अपने ढंग की एक निराली संस्था है। इसमे छात्र हाई स्कूल पास करने के पश्चात् प्रवेश पाते हैं, जहां दो वर्ष का केमिकल, मेकेनिकल तथा एलेक्ट्रीकल इंजीनियरिंग तथा आटोमोबाइल मे प्रशिक्षित किया जाता है। यहां पर सिविल ओवरसियर, मिस्त्री तथा शार्ट हैण्ड टाइपराइटिंग की भी ट्रेनिंग दी जाती है। इस वर्ष से यह संस्था नेशनल सर्टीफिकेट डिपलोमा कोर्स के स्तर पर लाई जा रही है।

समाज-शिक्षा

समाज-शिक्षा हर प्रकार के व्यक्तियों के ज्ञानवर्द्धन के लिये सर्वोत्तम माध्यम है, विशेष रूप से बच्चो और प्रौढ़ों के लिए। इस राज्य में समाज-शिक्षा का इतिहास केवल १९५२ से ही प्रारम्भ होता है। जुलाई १९५२ में शिक्षा-संचालक-कार्यालय से सम्बद्ध एक सोशल एजूकेशन यूनिट

स्थापित की गई, जिसने प्रदेश में समाज-शिक्षा के गठन की ओर ध्यान दिया। इस समय राज्य में २५० रात्रि-पाठशालायें ३४, समाज-शिक्षा-केन्द्र, १० कम्यूनटी सेन्टर, ६ स्कूल कम्यूनिटी सेन्टर हैं। इन केन्द्रों को शिक्षा के दृश्य एवं श्रव्य साधनों से सम्पन्न कर दिया गया है। शिक्षा-विभाग में दो सिनेमा-गाड़ियाँ है, जो प्रदेश में दौरा करके फिल्म-प्रदर्शन द्वारा शिक्षा-कार्य में सहायता पहुंचाती है। प्रदेश में राजधानी में एक केन्द्रीय पुस्तकालय तथा प्रत्येक जिले में एक-एक जिला पुस्तकालय है। अन्य नगर और ग्रामों में भी छोटे-बड़े लगभग ३० पुस्तकालय है, जिन्हें सरकार की ओर से सहायतार्थ अनुदान दिये जाते हैं।

इन पाठशालाओं, केन्द्रो और पुस्तकालयों ने मिलकर प्रदेश में साक्षरता को उन्नत करने में निश्चित रूप से बड़ा सहयोग प्रदान किया है।

नारी-शिक्षा

यह प्रदेश शिक्षा के क्षेत्र में वैसे ही पिछड़ा हुआ कहा जाता था, देशी नरेशों के शासन-काल में नारी-शिक्षा तो पूर्णरूपेण उपेक्षित रही। प्रथम योजना के पूर्व प्रदेश में २ गर्ल्स हाई स्कूल, १८ गर्ल्स मिडिल स्कूल तथा ६९ प्राइमरी स्कूल थे। पिछले पाँच वर्षों में जहाँ शासन की ओर से बालिकाओं की शिक्षा पर ध्यान दिया गया, वहाँ जनता में भी चेतना उत्पन्न हुई और उन्होंने राज्य द्वारा प्रदत्त सुविधाओं का उचित लाभ उठाने का प्रयत्न किया, जिसके फलस्वरूप योजना की समाप्ति पर प्रदेश में ७ हाई स्कूल, २४ मिडिल स्कूल तथा १४९ प्राइमरी स्कूल पृथक् बालिकाओं के लिये थे, जिनमे क्रमशः ९९१, ३९१९ तथा १२०७० लड़कियां शिक्षा ग्रहण करती थीं। इसके अतिरिक्त राज्य में सह-शिक्षा होने से लड़कों के हाई स्कूल, इन्टर कालेज और डिग्री कालेजों में भी लड़कियां प्रविष्ट होकर शिक्षा प्राप्त करती है। राज्य में कला-मन्दिर तथा महिला-समितियों की स्थापना ने भी नारी-समाज में शिक्षा और कला-कौशल के प्रसार की दिशा में सराहनीय कार्य किया है।

विविध

१. राज्य में एक नर्सरी स्कूल है, जहां मोन्टेसरी पद्धति पर बच्चों को शिक्षण दिया जाता है।

२. जन-जाति एवं अन्य पिछड़े वर्गों के बालक-बालिकाओं को शिक्षा के लिये विशेष सुविधायें प्रदान की जाती हैं। उनसे किसी प्रकार का शुल्क नहीं लिया जाता। इसके साथ ही छात्रवृत्तियां दी जाती है। पिछड़ी जाति-कल्याण-विभाग की ओर से निर्धन छात्रों के लिए मुफ्त पुस्तकें, स्टेशनरी आदि का प्रबन्ध किया जाता है। इस प्रकार विस्थापित छात्रों को भी अध्ययन के लिये आर्थिक सहायता प्रदान की जाती है।

३. शिक्षा-विभाग द्वारा सामान्य शिक्षा के लिये प्रदेश की शिक्षण-संस्थाओं में पढ़नेवाले छात्रों की यथासंभव संख्या को निम्न प्रकार की छात्रवृतिया दी जाती है:—

(१) योग्यता पर आधारित,
(२) निर्धनता पर आधारित,
(३) शरणार्थी छात्रों को,
(४) सैनिकों के बच्चों को।

इनके अतिरिक्त राज्य से बाहर अन्य प्रकार के शिक्षण-जैसे इंजीनियरिंग, मेडिकल, एग्रिकल्चर आदि के लिये भी राज्य की ओर से छात्रवृति दी जाती है। लोग प्रशिक्षण-विशेष प्राप्त करने के लिये विदेश में भी भेजे जाते है।

४. फिजीकल ट्रेनिंग तो पाठशालाओं के दैनिक विषयों का एक अंग है। विभिन्न प्रकार के खेल शिक्षा का एक अनिवार्य कार्यक्रम बने हुए हैं, जिन पर विशेष जोर दिया जाता है। प्रति वर्ष खेल की प्रतियोगिताओं की व्यवस्था की जाती है।

५. एन० सी० सी०, स्काउटिंग और गर्ल्स गाइड, युवक-शिविर, शारीरिक श्रम शिविर आदि पाठ्य-क्रम से इतर कार्य-कलाप प्रदेश में शिक्षा-विकास की व्यवस्था में अपना विशेष महत्व रखते हैं।

परिशिष्ट 'क'

क्रमांक विवरण	१९५०–५१	१९५१–५२	१९५२–५३	१९५३–५४	१९५४–५५	१९५५–५६
१. अ—बेसिक प्राइमरी पाठशालाओं सहित कुल प्राइमरी स्कूलों की संख्या	१६९६	१७२३	१८७६	२४२५	२८८६	३६०४
ब—छात्र-संख्या	६८०९४	६८००९	७१४५०	१०५११३	१२२२३६	१९६४५८
२. अ—संख्या मिडिल स्कूल	१७१	१६९	१७७	१८८	२०४	२३६
ब—छात्र-संख्या	२७८८६	२७६६४	२८८७९	३३५१५	४१६३८	४८५२४
३. अ—संख्या हाई स्कूल	१६	२१	२३	३३	३६	४४
ब—छात्र-संख्या	६०१६	४७०८	५९७८	७८९१	१०४८६	१३१२०
४. अ—संख्या इंटर कालेज	१	१	१	२	४	४
ब—छात्र-संख्या	३९३	१२२	१२८	१७७	५६९	७३६
५. अ—संख्या डिग्री कालेज	२	२	२	२	२	२
ब—छात्र-संख्या	६३५	६९६	८४३	८५२	९३५	—
६. अ—संख्या नर्सरी स्कूल	१	१	१	१	१	१
ब—छात्र-संख्या	२०६	२२१	२४८	२४७	२५२	२८५
७. अ—संख्या स्पेशल स्कूल्स	२६	२५	१४	१४३	१८१	३१५
ब—छात्र-संख्या	५८८	३९१	३२२	३२९९	८३७४	१०३०५
८. अ—संख्या प्रोफेशनल स्कूल	३	३	७	७	५	८
ब—छात्र-संख्या	९५	१४७	२५७	४३९	३९५	५५७
कुल शिक्षण-संस्थाएँ की	१९१६	१९४५	२१०६	२८०२	३३२९	४२१४
कुल छात्रों की संख्या	१०३९१३	१०२०१०	१९८१०५	१५१५३३	१८४८८५	२६९८८५

परिशिष्ट 'ख'

क्रम-संख्या	योजना	लक्ष्य	निर्धारित द्रव्य (लाख रु० में)	प्राप्त सफलता	द्रव्य (लाख रुपयों में)
१.	प्रशासन	—	.३०	—	.२५
२.	प्राथमिक शिक्षा	—	१५.१७	—	१६.२८
	१. माडल बेसिक स्कूल	८		८	
	२. प्राथमिक पाटशालाएं	७०३		७०३	
	३. रात्रि-पाटशालाएं	२५०		२५०	
	४. ट्रेनिंग में जानेवाले अध्यापकों के एवजदार अध्यापक	१००		१००	
	५. अनिवार्य शिक्षा के लिए अध्यापकों	५६२		५६२	
३.	माध्यमिक शिक्षा	—	३४.७८	—	३३.६९
	१. इंटर कालेज	३		३	
	२. मिडिल स्कूलों को ए० वी० एम० स्कूलों मे परिवर्तन	१३७		१३७	
	३. ए० वी० एम० स्कूल	९३		९३	
	४. हाई स्कूल	३०		३०	
	५. ट्रेनिग मे जानेवाले अध्यापको के एवजदार अध्यापक	१३८		१३८	
	६. संगीत-कक्षाएं	५		५	
	७. संस्कृत कालेज का उन्नयन	१		१	
	८. एन० सी० सी० का प्रसार	४		४	
४.	विश्वविद्यालय शिक्षा	—	१.२२	—	१.२३
	१. डिग्री कालेजों मे नवीन कक्षाएं	३		३	
	२. महाराजा कालेज, छतरपुर में बी० टी० कक्षाओं का खुलना	१		१	
५.	औद्योगिक एवं व्यावसायिक शिक्षा	—	७.२६	—	७.६०
	१. पुरु-औद्योगिक संस्था, नौगांव	१		१	
	२. चर्म-कार्य-संस्था	१		१	
	३. कृषि-विद्यालय	१		१	
६.	समाज-शिक्षा	१	.९६	१	.९०
७.	भवन	—	३९.७७	—	३३.००
८.	साज-सज्जा	—	२.६८	—	२.६८
९.	शारीरिक श्रम-योजना	१६८	१.१४	—	१.१३

परिशिष्ट 'ग'

क्रमांक	योजनाओं का विवरण	व्यय हुआ धन
१.	योजना संख्या १	७०९०३९)
	१. सामुदायिक केन्द्र	७२५९४)
	२. सम्बद्ध पुस्तकालय	६१८८८)
	३. प्राथमिक और बेसिक पाठशालाओं का उन्नयन	३६८५७७)
	४. बेसिक ट्रेनिंग कालेज, कुण्डेश्वर	११६८६६)
	५. बेसिक ट्रेनिंग स्कूल, राजगढ़	८९११४)
२.	शिक्षितों की बेकारी निवारण-योजना	२५६८६३९)
	१. ग्राम्य पाठशालाएं	२५२१६१६)
	२. समाज-शिक्षा-केन्द्र	४७०२३)
३.	योजना-संख्या ४	२३७१५७)
	१. ६ प्राइमरी पाठशालाओं का स्कूल व सामुदायिक केन्द्र में विकास	७७९६)
	२. ८ माध्यमिक पाठशालाओं का उन्नयन	१७१८१३)
	३. पुस्तकालयों का विकास	४२७०६)
	४. नगर बेसिक पाठशाला	१४८४२)
४.	योजना-संख्या २ ए	१६५७)
५.	बेसिक स्कीम	७४७२)
६.	यूथ वेलफेयर	५००)
७.	माध्यमिक शिक्षा का पुनर्गठन	६१०५४२)
	१. बहुधन्धी पाठशालाएं	३९९७७२)
	२. ५ हाई स्कूलों का विकास	५९९१९)
	३. हाई स्कूलों के ८ पुस्तकालयों का विकास	१९३३३)
	४. मिडिल स्कूलों में क्राफ्ट विषय का प्रवेश	१३१५१८)
	पूर्ण योग	४१३५००६)

परिशिष्ट 'घ'

क्रम सं०	विवरण	लक्ष्य	स्वीकृत धन (लाख रु० में)
१.	**प्राथमिक शिक्षा**		**२२५.००**
	अ– साधारण कक्षाओं का बेसिक कक्षाओं में परिवर्तन	२०००	२८.५१
	ब– नवीन बेसिक कक्षाएं	१७५०	५९.१०
	स– नवीन साधारण कक्षाएं	१७५०	५७.४२
	द– साधारण प्राइमरी स्कूलों में क्राफ्ट विषय का प्रवेश	१०००	४.००
	ई– साधारण प्रशिक्षण-विद्यालयों का बेसिक प्रशिक्षण विद्यालयों में परिवर्तन	४	४.००
	फ– नवीन बेसिक प्रशिक्षण-विद्यालय	८	१८.९७
	ग– प्रशिक्षण-विद्यालयों के लिए छात्रावास	१२	११.५०
	ह– अध्यापक सेमीनार	४०	१.००
	य– प्लानिंग यूनिट तथा अन्य इन्स्पेक्टोरियल स्टाफ	—	७.००
	ज– बाल-साहित्य	—	१.००
	क– अध्यापकों के लिए निवास-गृह	२००	७.५०
	ल– प्राथमिक अध्यापकों को उच्च वेतन-स्तर	—	१०.००
२.	**माध्यमिक शिक्षा**		**४८.५०**
	अ– बहुधन्धी पाठशालाएं	१	३.५०
	ब– वर्तमान माध्यमिक पाठशालाओं में अध्यापन और पुस्तकालयों का सुधार	—	१.५०
	स– जूनियर हाई स्कूलों में क्राफ्ट विषय का प्रवेश	२०	२.४५
	द– अध्यापक सेमीनार	५	.५०
	ई– हाई स्कूलों का हायर सेकण्डरी में परिवर्तन	५४	१०.००
	फ– माध्यमिक शिक्षा-प्रसार		
	१. जूनियर हाई स्कूलों को हाई स्कूल का रूप दिया जाना	१०	२०.००
	२. प्राथमिक पाठशालाओं को जूनियर हाई स्कूल का रूप दिया जाना	२२	
	ग– दरबार कालेज, रीवा में बी० टी० की कक्षाओं का खुलना	१	५.५५
	ह– संचालन तथा निरीक्षण के लिए द्रव्य	—	१.००
	इ– भवन-सुधार	—	४.००

*

३.	**औद्योगिक शिक्षा**		**४६.५०**
	अ– जूनियर टेकनिकल स्कूल	४	२४.००
	ब– पुरु-औद्योगिक संस्था, नौगांव का सुधार	१	१३.००
	स– पुरु-औद्योगिक संस्था, नौगांव के लिये छात्रावास	१	२.००
	द– स्टाफ क्वार्टर्स	१०	.५०
	ई– छात्रवृत्तियां	—	१.००
	फ– दरबार कालेज, रीवा में एम० एस-सी० कक्षाओं का खुलना	४	६.००
४	**विश्वविद्यालय शिक्षा**		**१४.५०**
	अ– दरबार कालेज, रीवा में नवीन स्नातक-कक्षाओं का प्रारम्भ	५	४.००
	ब– महाराजा कालेज, छतरपुर में नवीन स्नातक एवं स्नातकोत्तर कक्षाओं का प्रारम्भ	१८	६.००
	स– महाराजा कालेज, छतरपुर तथा दरबार कालेज, रीवा के पुस्तकालयों का विकास	२	२.००
	द– महाराजा कालेज, छतरपुर तथा दरबार कालेज, रीवा के लिये छात्रावास	२	१.५०
	ई– एन० सी० सी०	६	१.००
५.	**समाज-शिक्षा**		**४.५०**
	अ– जिला समाज-शिक्षा आर्गनाइजर्स	८	१.५०
	ब– बाल-पुस्तकालय	१	१.५०
	स– केन्द्रीय पुस्तकालय व्यंकट-विद्या-सदन का विकास	१	.५०
	द– आडो विजुअल एजूकेशन	—	१.००
६.	**विविध योजनाएँ**		**५.५०**
	अ– खेल	—	१.००
	ब– हाई स्कूल से ऊपर के छात्रों को छात्रवृत्ति	५८५	३.९०
	स– बहिरे छात्रों को छात्रवृत्ति	४०	.२०
	द– अंधे छात्रों को छात्रवृत्ति	४०	.२०
	ई– लूले-लंगड़ों को छात्रवृत्ति	४०	.२०
	पूर्ण योग		**३३२५०**

विन्ध्य-प्रदेश में कृषि-विकास

भारतवर्ष एक कृषि-प्रधान देश है और उसके हृदयस्थल में विन्ध्य-प्रदेश है, जिसकी अधिकांश जनता गांवों में रहती है। कहना न होगा कि इस प्रदेश का प्रमुख धन्धा कृषि ही है; अतः कृषि की उन्नति के बिना इस प्रदेश की उन्नति नहीं हो सकती। इसी उद्देश्य को सामने रख कर भारत सरकार ने देश की उन्नति के लिये मार्च सन् १९५० में पंचवर्षीय योजना आयोग की स्थापना की। आयोग के इस निश्चय के अनुसार सन् १९५१ में विन्ध्य-प्रदेश में भी यह योजना चालू की गई और कृषि की सर्वतोमुखी उन्नति के प्रयत्न किये गये।

वस्तुतः इस प्रदेश का क्षेत्रफल १४८४५७२१ एकड़ है, किन्तु कृषि-कार्य केवल ४४२९७२० एकड़ में ही होता है। इस प्रदेश में प्रमुख रूप से बोई जानेवाली फसलें धान, गेहूं, ज्वार और चना है। गौण रूप में प्रायः सभी अनाज बोये जाते है।

प्रदेश की अधिकांश भूमि बंजर या बिना जोती-बोई परती पड़ी हुई है। इस दृष्टि से भू-विकास-योजना के
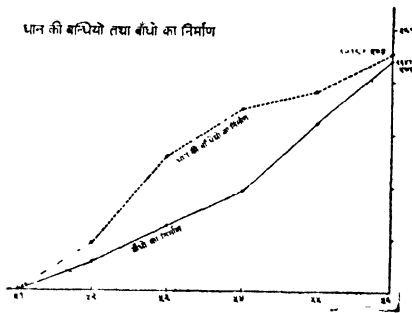
अन्तर्गत ६५.२४ लाख रुपये का प्रावधान रखा गया था; किन्तु मार्च सन् १९५६ तक ६३.७५ लाख रुपये व्यय किये गये। इस दिशा में प्रदेश के कृषि-विभाग द्वारा धान की बंधियों के निर्माण में ९.०६ लाख रुपये व्यय करके २७५९९ एकड़ भूमि में ६१३० टन अधिक उत्पादन किया गया। रबी बांध निर्माण-कार्य में २९.०९ लाख रुपये व्यय करके ३५९९६ एकड़ भू-भाग में ७९९५ टन अधिक अन्न उत्पादित किया गया। ट्रैक्टरों द्वारा २.४० लाख रुपये व्यय करके १६२२२ एकड़ भूमि सन् १९५३–५४ से १९५५–५६ तक में ३६०० टन अधिक उत्पादन किया गया। १३.३७ लाख रुपये ट्रैक्टरों की तकावी के लिए कृषकों को दिया गया और ११४ ट्रैक्टर प्राप्त करके ४२२० टन उत्पादन हुआ। ट्रैक्टर यूनिट में ८.९९ लाख रुपये व्यय करके १२७८२ एकड़ भूमि को तोड़कर ३१९५ टन अधिक उत्पादन हुआ। भूमि-संरक्षण का कार्य भी ५२–५३ तक कृषि-विभाग द्वारा ही होता रहा, जिसमें .८४ लाख रुपये व्यय करके ६५२ एकड भूमि का संरक्षण करके १४० टन अधिक उत्पादन किया गया। बाद मे यह कार्य वन-विभाग को हस्तान्तरित कर दिया गया।

सिचाई की छोटी योजनाओं के अन्तर्गत कृषि-विभाग द्वारा १४.१५ लाख रुपये व्यय किये गये और १८८६ टन अधिक अन्न उत्पादन किया गया। इस योजना के अन्तर्गत ७.८७ लाख रुपये व्यय करके ५९९ नवीन कुएं निर्मित हुए, तालाबों की मरम्मत में .२४ लाख रुपये व्यय किये गये, १.४५ लाख रुपये व्यय करके १२१ रहट लगवाये गये, ५.२६ लाख रुपये व्यय करके १९५ सेट पंम्पिग सेट खरीदे गये और पुराने कुओं की मरम्मत आदि में .३३ लाख रुपये व्यय किये गये; क्योंकि पहाड़ी भू-भाग होने के कारण इस प्रदेश में प्रायः सिंचाई की नितान्त आवश्यकता पड़ती है।

खाद-वितरण-योजना के अन्तर्गत सन् १९५१ से ५६ तक में ८.४८ लाख रुपये की १७८१ टन वैज्ञानिक खाद कृषकों को वितरित की गई। इससे ३९५५ टन अधिक अन्न उत्पादित हुआ। इसी तरह शहरी खाद के उत्पादन

और वितरण में १.७९ लाख रुपये व्यय करके ३१४३६ टन खाद कृषकों को वितरित करके १५७२ टन अधिक खाद्यान्न उत्पादन किया गया। हरी खाद उत्पादन मे .२८ लाख रुपये व्यय करके ११७ टन खाद प्राप्त करके वितरित की गई और २३४ टन अधिक अन्न उत्पादित किया गया। उन्नतिशील धान-बीज, गेहूं-बीज और आलू-बीज मे क्रमश: १.४४ लाख, १.३४ लाख और १.३६ लाख रुपये व्यय करके क्रमश: ८०३ टन, ५८४ टन और २३४ टन बीजों का वितरण किया गया; फलत: क्रमश: ११४७ टन, ८७५ टन और २६० टन अधिक उत्पादन हुआ।

अन्य योजनाओं के अन्तर्गत इस प्रदेश की कृषि की उन्नति के लिये किसानों को बैलों और बैलगाड़ियां प्राप्त करने के लिये १९.७१ लाख रुपये तकावी रूप में दिये गये, जिससे ३७६८ जोड़ी बैल और २६६ बैलगाड़ियां प्राप्त की गयी तथा ३३४५ टन अतिरिक्त उत्पादन किया गया। सन् ५३–५४ से फसल-प्रतियोगिता का काम .१३ लाख रुपये से आरम्भ किया गया। प्रदेश में आठ राजकीय कृषि-अनुसंधानशालाएँ १४.८९ लाख रुपये व्यय करके खोली गयी; साथ ही २२ राजकीय बीज-गोदाम १.१३ लाख रुपये व्यय से खोले गये। पौडी फार्म मे २.२२ लाख रुपये व्यय किये गये। इसके अतिरिक्त अमरकण्टक और टीकमगढ़ में ६ पुष्पोद्यान मे ४.२४ लाख रुपये व्यय किये गये। ०.७७ लाख रुपये व्यय करके हल-बैल से २६८९९ एकड़ परती भूमि तोड़ी गई। पौधों के संरक्षण में ०.३५ लाख रुपये व्यय किये गये। कृषि-संरक्षण-संबंधी दवाओ तथा काम में आनेवाली सामग्री मे १.३२ लाख रुपये व्यय किये गये। कृषि-प्रदर्शनी और कृषि-मेला में .१७ लाख रुपये फिल्म तथा चार्टों मे .१० लाख रुपये व्यय किये गये। ८ नवीन कृषि-फार्म खोलने के लिए स्थान का चुनाव करके सरकार के समक्ष निवेदन किया गया है। सिंचाई के सम्बन्ध में २४.५६ लाख रुपये अतिरिक्त व्यय किये गये। २०४.७० लाख रुपये के प्रावधान में से १६४.६२ लाख रुपये व्यय हुए और ३७८५४ टन अतिरिक्त उत्पादन में वृद्धि की गई।

द्वितीय पंचवर्षीय योजना पर १७७.०५ लाख रुपये व्यय करने का प्रावधान रखा गया है। छोटी सिंचाई-योजनाओं पर ८३.२० लाख, घी-परीक्षण प्रयोगशाला में .४८ लाख रुपये और कृषि-विकास-प्रशिक्षण में २.३५ लाख रुपये व्यय होंगे। अनिरिक्त छोटी सिंचाई-योजना मे ३८ लाख रुपये, बैलों की तकावी के लिये ४ लाख रुपये और ट्रैक्टरों की तकावी के लिये ८ लाख रुपयों की अतिरिक्त योजनाओं की स्वीकृति के लिये राज्य-सरकार से प्रार्थना की गई है।
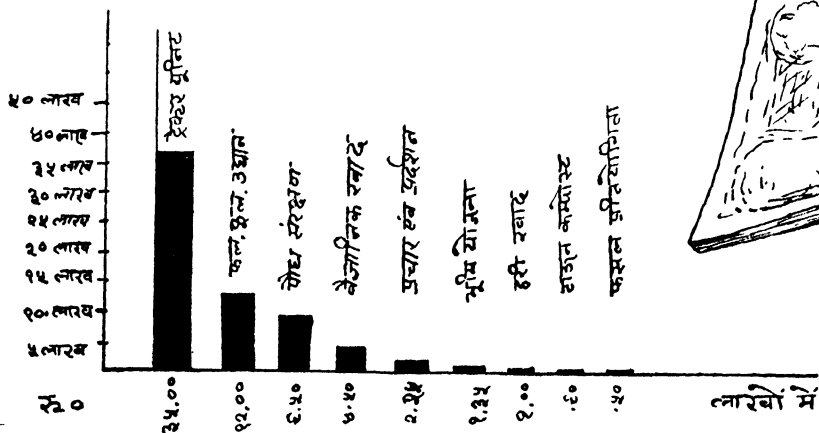
द्वितीय पंचवर्षीय योजना में मंझरी प्रकार के कृषि-स्कूलों की स्थापना के लिए ६.०० लाख रुपये का प्रावधान रखा गया है। ५६-५७ तक में इस तरह के दो स्कूलों की स्थापना एक लाख रुपये व्यय करके की जा चुकी है। इस प्रकार के स्कूलों के द्वारा अल्प व्यय से किसानों को आधुनिक खेती के तरीकों की शिक्षा दी जायगी।

पौध-संरक्षण पर ९.५० लाख रुपये व्यय किये जाने का प्रावधान है; जिसमें से सन् ५६-५७ में २.२७ लाख रुपये व्यय किये जा चुके हैं। सूचना एवं प्रचार-केन्द्र की स्थापना की योजना में २.२५ लाख रुपये व्यय किये जायँगे, जिसमें से सन् ५६-५७ तक में .१५ लाख रुपये व्यय किये जा चुके है। इसके द्वारा किसानों की कठिनाइयों का निराकरण, वर्गीकरण एवं संकलन किया जा सकेगा तथा सम्बन्धित संस्थाओं को कृषि-सम्बन्धी विषयों की जानकारी कराई जा सकेगी। अधिकाधिक भूमि को कृषि योग्य बनाने के लिए ६.३५ लाख रुपयों का प्रावधान है, जिसमे से १.०२ लाख रुपये व्यय किये जा चुके है। इन आंकड़ों मे से १.३५ लाख हल-बैल से और ५.०० लाख रुपये ट्रैक्टर द्वारा भू-सुधार में व्यय होंगे। .२७ लाख हल-बैलों में और .७५ लाख ट्रैक्टरों में सन् ५६-५७ में व्यय किये जायंगे। इसमे ८०५० टन उत्पादन अधिक हो सकेगा। अन्य योजनाओं मे किसानों को सुविधाएं प्रदान करने के बुनियादी सिद्धान्तों को ध्यान में रखा गया है, जिससे वे खेती के उन्नत तरीके का अवलम्बन करके अपने आपको समुन्नत कर सकें।
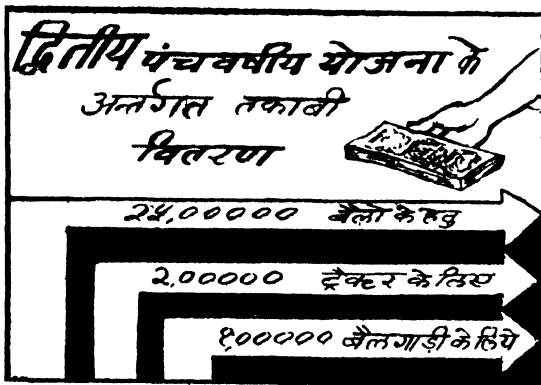
वस्तुतः द्वितीय पंचवर्षीय योजना में शासन, शहरी खाद-योजना, प्रचार-सूचना-केन्द्र-प्रदर्शनी तथा मेला आदि, पौध-संरक्षण, ट्रैक्टर यूनिट, फसल-प्रतियोगिता, बैलों द्वारा भूमि-पुनर्ग्रहण, शाक-फल तथा अन्य नवीन फसलों का समावेश, हार्टीकल्चर (बागवानी) विकास, बीजों का नियोजन, प्रदर्शन और बीज-गोदाम, हरी घास-उत्पादन, नवीन कुओं का निर्माण, रहट स्थापन, पम्पिंग सेट स्थापन, ट्रैक्टरों द्वारा भूमि-पुनर्ग्रहण, ट्रैक्टर-क्रय के लिए तकावी, धान बंधी-निर्माण, रबी बंधी-निर्माण, बैलों के लिए तकावी, बैलगाड़ियों के लिए तकावी, हरी खाद, उन्नत शाक-भाजी-बीज, उन्नत रबी-बीज, उन्नत आलू-बीज, आई० सी० ए० आर० आयोजन, मंझरी स्कूलों की स्थापना में १७७.०५ लाख रुपये व्यय किये जायेंगे और ५६-५७ में ३१.४३ लाख रुपये व्यय होंगे। अनुमानतः इस व्यय से १४७२४५ टन उत्पादन अतिरिक्त रूप में बढ़ जायगा।

अगस्त सन् १९५६ तक कृषि-विभाग के लिए स्वीकृत धन-राशि में से कूप-निर्माण में ८६०० रुपये, रहट-स्थापन में २००० रुपये, पम्पिंग सेट स्थापन मे ५०००० रुपये, धान बंधी मे ९६२० रुपये, रबी- क्षेत्रों के हेतु ४८७७८ रुपये, भूमि-पुनर्ग्रहण में १०५० रुपये, बैलों की तकावी में ६२०५० रुपये, हरी खाद में १२०५ रुपये, शहरी खाद में ४५४६ रुपये, पौध-संरक्षण में ६२३४ रुपये, ट्रैक्टर यूनिट में २३३१८ रुपये, शासन में ४७३ रुपये, प्रचार-सूचना-केन्द्र आदि में १५८९ रुपये व्यय हो चुके हैं।

अन्त में यह कहने में तनिक भी संकोच नहीं कि उपर्युक्त आंकड़े स्वयं इस प्रदेश में कृषि-उन्नति की कहानी कह देते हैं, जिससे यह कहा जा सकता है कि इस प्रदेश का कृषि-भविष्य उत्तमोत्तम होगा; साथ ही द्वितीय पंचवर्षीय योजना समाप्त होते-होते तक यह प्रदेश कृषि-कार्य में उन्नतपूर्ण स्थान प्राप्त कर लेगा।

रञ्जन श्रीवास्तव

विन्ध्य सामुदायिक विकास-योजना

हमारी जन-प्रिय सरकार ने ग्रामीण जीवन को समुन्नत बनाने का जो संकल्प किया है, 'पंचवर्षीय योजना' राष्ट्र-निर्माण-संबंधी इन्हीं संकल्पों का मूर्त रूप है। इसी योजना के अन्तर्गत आज समूचे देश में सामुदायिक विकास-योजनाओं और राष्ट्रीय विस्तार-सेवा-खण्डों के माध्यम से जन-जीवन को सर्वांगीण उन्नत बनाने का कार्य बड़े पैमाने में किया जा रहा है।

भारत-रत्न पंडित जवाहरलाल नेहरू के शब्दों में—'सामुदायिक विकास-योजनायें व राष्ट्रीय विस्तार-सेवायें इस देश में शान्तिपूर्ण क्रान्ति के लिये अद्वितीय अवसर उपस्थित करती है और विशेषकर उन ग्रामीण क्षेत्रों के लिये, जिनकी उपेक्षा हमने अतीत में की है........अतः ये योजनायें, जो ग्राम-सुधार की आधार-शिलायें हैं, इस बात में हमारी रहनुमाई करेंगी कि राष्ट्रीय विकास का यह प्रजातंत्रीय तरीका कैसे सफल हो।'

योजना का श्रीगणेश

श्री कस्तूरी सन्तानम् (भूतपूर्व उपराज्यपाल) ने, अपने हाथों से सोहावल विकास-केन्द्र का उद्‌घाटन २ अक्टूबर १९५२ को करते हुए इस वृहत् योजना का सूत्रपात विन्ध्य-प्रदेश में किया। सोहावल विकास-केन्द्र सतना से ५ मील दूर स्थित है और इसके अन्तर्गत १६४ गांव तथा १ लाख ३१ हजार १९४ एकड़ का भू-भाग आता है। सन् १९५३ में पन्ना और जतारा (जिला टीकमगढ़) में एक-एक विकास-योजना-केन्द्र और खोला गया तथा ३-१०-५३ को ३ राष्ट्रीय विस्तार सेवा-खंड देवसर (जिला सीधी), दतिया और कोतमा (जिला शहडोल) में खोले गये। सन् १९५३-५४ के राष्ट्रीय विस्तार-सेवा-खंड, कोतमा, देवसर और दतिया १-४-५५ को सामुदायिक विकास-केन्द्रों में परिवर्तित किये गये।

हमारा देश कृषि-प्रधान देश है। विन्ध्य सरकार ने कृषि के विकास की महत्ता को समझते हुए सर्वप्रथम सर्वाधिक महत्व कृषि एवं खाद की समस्या को पूर्णरूपेण हल करने में दिया है। इस महत्वपूर्ण योगदान में विन्ध्य के विकास-अधिकारी इस बात का ध्यान रखते है कि कृषकों की अधिक से अधिक समस्याओं का हल हो सके। इस योजना के कुछ कार्य वास्तव में विन्ध्य-प्रदेश को उन्नतिशील बनाने मे रीढ़ की हड्डी का कार्य करते हैं। सामुदायिक योजना खेतिहर किसानों की प्राण है। इसके कुछ कार्य ये हैं:—ऊसर भूमि को उर्वरा भूमि में परिणत करना, सिंचाई की नवीन व्यवस्था, कुयें, तालाबों, कूपों व बावलियों का निर्माण, पुराने कुओं की मरम्मत, किसानों में नये विकसित बीजों का उचित वितरण, रासायनिक खादों का उपयोग, सफाई की व्यवस्था आदि।

अभी तक २४६३९'३६ एकड़ ऊसर भूमि यंत्रों तथा हल द्वारा जोतकर उपजाऊ बनाई गई है। किसानों के उपयोग के लिये एक-एक ट्रैक्टर प्रत्येक विकास-केन्द्र में रखा गया है। किसानों को अभी तक कुल अच्छी किस्म के उन्नतिशील बीज ४४३७८ मन ४ सेर १२ छटाक वितरित किये गये। बीजों में अच्छी किस्म के धान के बीज तथा गेहूं के बीज (सी० ५९१) पसन्द आये। रासायनिक खादों का प्रयोग सिखाने के अतिरिक्त कुल १४८२७ मन १८ सेर उर्वरक बांटा गया। फसल में गन्धी मक्खी न लगने तथा अन्य कीड़ों को नष्ट करने के रचनात्मक उपाय भी बताये गये। अभी तक कुल १३९३८ कृषि-प्रदर्शन किये गये तथा १३४६'५८ तथा ३४२०'५६ एकड़

भू-भाग क्रमशः फल तथा तरकारी-भाजी उत्पन्न करने के योग्य बनाया गया।

साम्राज्यशाही के क्रूर शिकंजे में फंसे हुए इस छोटे-से प्रदेश में गाँवों की तो बिसात क्या, शहरों तक में स्कूल नहीं थे। किन्तु विन्ध्य-प्रदेश ० निर्माण और लोकतंत्रीय शासन के फलस्वरूप आशातीत प्रगति शिक्षा के प्रसार में हुई। विगत दो सालों में शिक्षा की उन्नति जादू तरह हुई है और अब विन्ध्व के एक छोद से दूसरे छोर तक शिक्षा संस्थाओं का जाव-सा बिछा हुआ है। अब अज्ञानता की घटाटोप अंधियारी हट गई है और ज्ञान की किरणें गांव-गांव मे फैल रही हें। विकास-योजना के अन्तर्गत अभी तक ७७ साधारण स्कूल बेसिक स्कूलों में परिणत किये गये, ३०२ नये स्कूल प्रारम्भ किये गये, १६२ नवीन स्कूलों का निर्माण किया गया और ५० पाठशालाओं का पुनः निर्माण किया गया। अनिवार्य शिक्षा-प्रणाली से ग्रामों में अधिक लाभ पहुंचा है। अनिवार्य शिक्षा की सार्थकता को ध्यान मे रखते हुए सामुदायिक योजना के अन्तर्गत ६३६ अनिवार्य शिक्षा-केन्द्र खोले गये।

गाँवों में प्रत्येक नर-नारी शिक्षित हो सके, इससे 'प्रौढ़-शिक्षा' का प्रबन्ध किया गया। समाज-शिक्षा के भीतर जो प्रौढ़ पाठशालायें अभी तक खुली है, उनकी संख्या ४८७ है, जिनमें १७१५४ नर-नारी ने शिक्षा प्राप्त की तथा ११५५६ प्रौढ़ अभी भी शिक्षा प्राप्त कर रहे हें। ५५७ सामूहिक मनोरंजन-गृह खोले गये। इनमें ११९१४ मनोरंजन-कार्य-क्रमों का विविध आयोजन हुआ। महिला-मंडल, बाल-मंडल, युवक-मंडल सब मिलकर अभी तक ५९४ की संख्या में खुल चुके हैं, जहां रामायण, गीता, कवि-सम्मेलन, अन्ता-क्षरी आदि आयोजित करके विविध तरीकों से बौद्धिक विकास करने की भी शिक्षा-दीक्षा दी जाती है। अभी तक २१८४ व्यक्तियों को 'ग्राम-नेता' का सफल शिक्षण प्राप्त हुआ। इस सम्बन्ध में नारी-समाज-विक्षा-संयोजकों का कार्य भी प्रशंसनीय रहा, जिन्होंनेंने अल्प समय ने ही नारी-जागरण करके दिखला दिया। ग्राम-सेविकाओं का कार्य भी अत्यन्त सफलतापूर्वक संपन्न हुआ।

जन-स्वास्थ्य और सफाई का विकास

स्वस्थ और नीरोग नागरिक ही देश के प्राण हैं। जनता का उत्तम स्वास्थ्य और अच्छी सफाई ही राष्ट्र को दीर्घ जीवन प्रदान करती है। इस सम्बन्ध में विन्ध्य-प्रदेश की हालत पहले अत्यन्त शोचनीय थी, किन्तु हमें यह बताते हुए गर्व होता है कि इतने अल्प काल में ही सामुदायिक योजना द्वारा ग्राम्य जीवन का कायापलट हो गया है। प्रत्येक ग्राम को आदर्श ग्राम बनाने की कोशिश की जा रही है। ग्रामीणों में स्वास्थ्य तथा सफाई के क्षेत्र में १ हजार ७ सौ ९० कूड़ा-करकट फेंकने के गढ़े बनाये गये, १९ आयुर्वेदिक औषधा-लय का निर्माण हुआ, ४ प्रसूति-गृह और शिशु-कल्याण-केन्द्र खोले गये, २३६ ग्रामीण पाखाने बनाये गये, १७५०७ सफाई की नालियां बनाई गयीं, ५८५ नवीन पीने के पानी के कुओं का निर्माण किया गया तथा ७११ पीने के पानी के कुओं की मरम्त की गयीं। बीमारियों के कीड़े नष्ट करने हेतु डी० डी० टी० पाउडर का प्रयोग किया गया, ९१२ कुओं में दवाई डाली गई और पानी को स्वच्छ तथा शुद्ध किया गया। १९३ तालाबों की मरम्मत की गई।

सिंचाई का विकास

विन्ध्य-प्रदेश-जैसे पर्वतीय प्रदेश में सिंचाई की समस्या अत्यन्त जटिल है। यहां नहरों का नितान्त अभाव है। प्रायः कृषकों को साल भर वर्षा पर ही निर्भर रहना पड़ता है। विन्ध्य सरकार ने किसानों की जीवन-मरण-संबंधी इस प्रधान समस्या का अत्यन्त कुशलतापूर्वक हल निकाला है। सिंचाई हेतु विकास-योजना के अन्तर्गत सिंचाई के कुओं का निर्माण हुआ है। अभी तक ४४५ कुओं का निर्माण और ४३३ कुओं की मरम्मत का कार्य सम्पन्न हुआ है। नहर के लिए पर्यवेक्षण किया गया, जिसके पूर्ण हो जाने पर ४५००० एकड़ भूमि में सिंचाई का कार्य बड़े पैमाने पर किया जायगा। किसानों को तालाब और कुओं से पानी खींचने हेतु नलों के वितरण की व्यवस्था की गई है। सरकार द्वारा नल खरीदने के हेतु ऋण देने का भी प्रबन्ध किया गया है। किसानों को रहट खरीदने के लिये प्रति रहट १ हजार प्रति किसान ऋण देने की व्यवस्था है तथा ४००) प्रति रहट कर्ज दिया जाता है। लास्टिग कुओं के लिये किसानों को ३०) प्रति घनफुट और २५ प्रति शत सहायता दी गई। निजी तालाबों के लिये निर्माण हेतु २४०००) रुपये व्यय हुए जिससे २०० एकड़ भूमि की सिंचाई दो वर्षों में हुई।

पशु-पालन में विकास

विन्ध्य-प्रदेश में पशु-पालन का अभाव तो है, किन्तु साथ ही साथ पशुओं की बीमारी का बाहुल्य है। अच्छे पशु खेती के प्राण हैं ; अतः सामुदायिक योजना-केन्द्रों में ६ पशु-चिकित्सालय खोले गये हैं। अभी तक ११९१ बैलों को बधिया किया गया तथा जानवरों की बीमारी की रोक-थाम के लिये १९३०६२ जानवरों को बीमारी का टीका लगवाया गया। नस्ल-सुधार के हेतु गांव-गांव उत्तम किस्म के सांड़ छोड़े गये। अभी तक ३३ सांड़ छोड़े जा चुके हैं। इन सबके अलावा १११५४६ जानवरों का इलाज किया गया।

उद्योग-धन्धों का विकास

विन्ध्य-प्रदेश सरकार ने विन्ध्य में बेकारी को समूल नष्ट करने का जो बीड़ा उठाया है, उसमें उसे आशातीत सफलता मिली है। विकास-योजना के अन्तर्गत हाथ करघा सम्बन्धी १३ केन्द्र खोले जा चुके हैं। उँचेहरा के दियसलाई बनाने के कारखाने को आठ हजार रुपया दिया गया। अन्य छोटे-बड़े उद्योग-धन्धों को भी सरकार चला रही है। जैसे—

(१) खिलौना-उद्योग।
(२) बांस से बनी चीजों का निर्माण।
(३) छपाई का कारखाना।
(४) बुनाई का कारखाना
(५) चमड़े का कारखाना
(६) ताड़ गुड़ बनाने का कारखाना।

राजधानी में तथा अन्य जगह की गृह-उद्योग-विभाग द्वारा प्रदर्शन और विक्री के कार्यालय स्थापित किये गये हैं।

यातायात

विन्ध्य में आवागवन का मुख्य साधन मोटर ही है, वैसे गाँवों में जहां-तहाँ सड़कों का निर्माण किया गया है तथा नवीन सड़कें बनाकर उन्हें गाँव तथा शहरों की सड़कों से जोड़ा गया है। इस संबंध में ग्रामीण श्रमदान ने असम्भव को संभव कर दिखाया है। अभी तक ४१ मील पक्की सड़कें बनाई जा चुकी हैं और ६२ मील ४ फर्लांग लम्बी कच्ची सड़कों का निर्माण केवल सामुदायिक विकास-योजना के अन्तर्गत हुआ है। कुछ सड़कों का विस्तार भी हुआ है, जिनकी लम्बाई २९३ मील है।

सहकारिता

सहकारिता का जहां तक संबंध है, इस ओर सन्तोषप्रद प्रगति हुई है। अभी तक कुल २५२ नवीन सहकारी समितियाँ चालू की गई हैं, जिनमें ७५२७ सदस्य नामजद हुए हैं। पंचायतों की संख्या ५७० है तथा विकास-मंडल आदि कुल मिलाकर १२२६ हो गये है। विकास-कार्यों से अभी तक कुल १३६८६० परिवार लाभान्वित किये जा सके हैं तथा प्रोजेक्ट एडवाइजरी की कुल मीटिंगें ८७ हुई हैं। अभी तक कुल १५०१ 'ग्राम-घर' बने तथा ५९० घरों का पुनः निर्माण किया गया। नये आदर्श घर में ४६७५ घरों का विस्तार किया गया।

जन-सहयोग तथा श्रमदान में द्रव्य, श्रम और वस्तु कुल मिलाकर अभी तक १५९३५९ रुपयों का सहयोग प्राप्त हुआ है, जो उज्ज्वल भविष्य का द्योतक है।

भविष्य में विकास

विन्ध्य-प्रदेश का भविष्य नवीन मध्य प्रदेश के विलयन के पश्चात् तो उन्नतिशील होगा, किन्तु प्रथम पंचवर्षीय योजना की सफलता और दूसरी पंचवर्षीय योजना का प्रारम्भ एक नये अध्याय की सुदृढ़ पृष्ठभूमि है। राष्ट्रीय-विकास-परिषद् ने ५ सितम्बर की बैठक में जो निश्चय किया है, उसके अनुसार समस्त भारतवर्ष मे ४० प्रति शत राष्ट्रीय विस्तार-सेवा-खंड सामुदायिक विकास-केन्द्रों में परिणत कर दिये जायंगे। सामुदायिक प्रशासन-विभाग, नई दिल्ली ने यह निर्णय किया है कि विन्ध्य-प्रदेश की ३५.७५ लाख आबादी पर ५४ राष्ट्रीय विस्तार-सेवा-खंड बनाये जायं। द्वितीय पंचवर्षीय योजना में ४० विकास-खंडों की स्थापना की जायगी, जो निम्न प्रकार होगी।

सन्	खंड-संख्या
१९५६-५७	५
१९५७-५८	७
१९५८-५९	८
१९५९-६०	१०
१९६०-६१	१०
	कुल ४०

यद्यपि यह सत्य है कि विन्ध्य के गांव काफी हद तक जाग गये हैं और अब किसानों के इस कार्य को बिना पूरा किये अधूरा नहीं छोड़ा जा सकता, फिर भी हमें सतक रहना है कि हमारे ये कदम रुकने न पायें। सामुदायिक योजना का विकास-कार्य, ग्रामों का यह नवजागरण, हमारी राष्ट्रीय चेतना के प्रतीक हैं। हिमगिरि-जैसा अटल विश्वास लिये हुए हमें राष्ट्र-निर्माण-कार्यों में तन-मन-धन से जुटे रहना है।

सामुदायिक विकास-योजना तथा राष्ट्रीय विस्तार-सेवाओं की अभी तक (१९५२ से जुलाई ५६ तक) की सफलता की झांकी एक दृष्टि में यों है :—

(१) उन्नत बीज-वितरण—४४३७८ मन ४ सेर १२ छ०।
(२) पुनरुपयोगीकरण—२४६३९.३६ एकड़ भूमि।
(३) सिचाई—१२१९४ एकड़ भू-भाग।
(४) आवागवन (अ) पक्का रास्ता—४१ मील।
(ब) कच्चा रास्ता—६३५ मील ४ फर्लांग।
(५) नवीन स्कूल जो प्रारम्भ किये गये— ३०२
(६) साधारण स्कूल, जो बेसिक में बदले— ७७
(७) प्रौढ़-शिक्षण-केन्द्र, जो चालू किये— ४८७
(८) शिक्षित प्रौढ़ (नर-नारी) — १७१५४
(९) सामूहिक केन्द्र (मनोरंजन-केन्द्रों सहित) ५५७
(१०) महिला, बाल तथा युवक-मंडल— ५९४
(११) ग्राम-नेता, जिन्हें प्रशिक्षित किया गया— २१८४
(१२) नवीन सहकारी समितियां, जो प्रारम्भ की गयीं २५२
(१३) सहकारी समितियों में नामजद सदस्यों की संख्या— ७५२७
(१४) पंचायतों की संख्या — ५७०
(१५) लोक-ग्राम-सभा-विकास-मंडल आदि — १२२६
(१६) ग्राम-घर निर्मित— १५०१
(१७) ग्राम-घर, जिनकी मरम्मत की गई तथा विस्तार किया गया— ४६७५
(१८) नवीन आदर्श गृह निर्मित— ५९०
(२०) जनता द्वारा श्रमदान में अर्जित धनराशि, तथा सामग्री का कुल मूल्य—१५९३५९ रुपये
(२१) रासायनिक खाद-वितरण—१४८२७ मन १८ सेर

पशु-पालन एवं मत्स्य-विभाग की प्रगति

विन्ध्य-प्रदेश में पशुओं की संख्या प्रायः ५३०००० है, किन्तु उनकी दशा अत्यन्त शोचनीय है। यह संख्या कृषि-व्यवसाय पर आधारित प्रदेश के लिए भूमि के दृष्टिकोण से बहुत ही अनुपयुक्त है। इस दृष्टिकोण को सामने रखकर विन्ध्य-प्रदेश सरकार इस दिशा में विशेष रूप से ध्यान दे रही है।

पशु-चिकित्सालयों एवं औषधालयों की स्थापना के सम्बन्ध में प्रथम पंचवर्षीय योजना में ७.८५ लाख रुपये का प्रावधान रखा गया था, किन्तु इस दिशा में ९.२१ लाख रुपये व्यय किये गये। द्वितीय पंचवर्षीय योजना के अन्तर्गत ३५.२४ लाख रुपये का प्रावधान रखा गया है, जिसमें से १५ अगस्त सन् ५६ तक ०.०१ लाख रुपयों के व्यय से ४ चिकित्सालय एवं ५३ औषधालय खोले गये और ७ पशु-पालन-विभाग के विस्तार-केन्द्रों की स्थापना की गई। आदर्श ग्रामों की स्थापना में १.२९ लाख रुपये का प्रावधान था, किन्तु १.०० लाख रुपये प्रथम पंचवर्षीय योजना में व्यय हुए। द्वितीय पंचवर्षीय योजना में १३.६३ लाख रुपयों का प्रावधान रखा गया है। इस निधि से कृत्रिम गर्भाधान-केन्द्र खोले जायँगे और आदर्श ग्राम निर्मित होंगे।

इसी तरह शिक्षण-व्यवस्था सहायक पशु-चिकित्सक-प्रशिक्षण, स्टाकमेन तथा कम्पाउन्डरों के प्रशिक्षण, पशु-सुधार-योजना, पुस्तकालय-संस्थापन-योजना, चल अस्पतालों की स्थापना, चिकित्सा-गृहों की सुसज्जा, रेन्डर पेस्ट (पशु-बीमारी) की रोक-थाम, भवन-निर्माण-योजना, पशु-सुधार-योजना, कुक्कुट-पालन-योजना, गोसदन की स्थापना, भेड़-पालन तथा सुधार-योजना, बकरी-पालन तथा सुधार-योजना, पशु-प्रदर्शनी-योजना, अनुसन्धान योजना, भारतीय दुग्धशाला विशेषज्ञ शिक्षण, राजकीय

बजट - प्रावधान, वास्तविक सरकारी व्यय तथा उसमें कमी
(१९५२-५३ सामुदायिक विकास खण्ड)
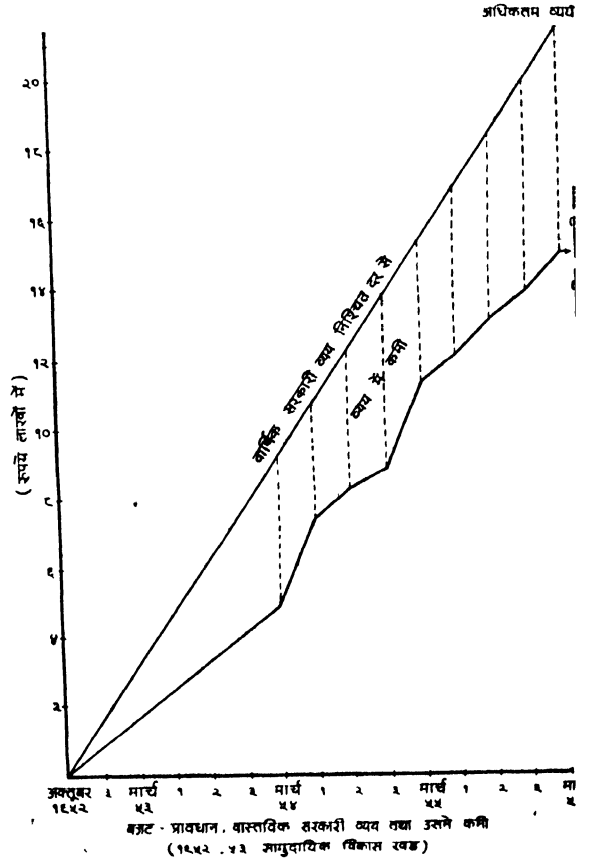
दुग्धशालाएँ और दुधारू तथा सुधरी नस्ल के पशु-वितरण की तकावी बनाकर योजना (१९ योजनाओं) के अन्तर्गत प्रथम पंचवर्षीय योजना में क्रमशः ०.४० लाख, १ हजार, ०.०१ लाख, १.३३ लाख रुपये का प्राधान था पशु-सुधार में ३.८३ लाख रुपये, कुक्कुट-पालन में ०.०८ लाख रुपये, गो-सदन में १.७५ लाख, दुग्धशाला
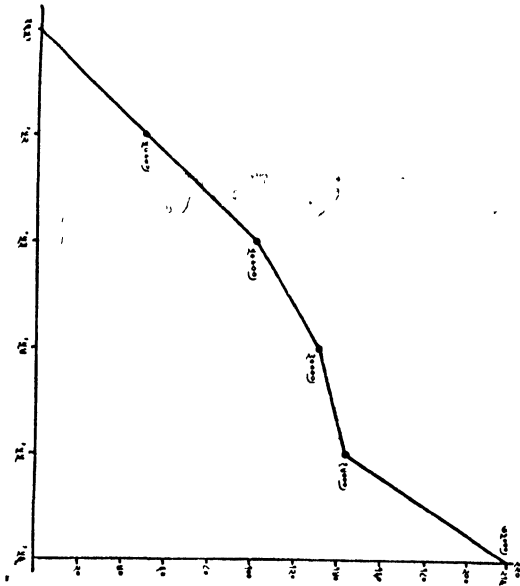
विशेषज्ञों के लिए ०.०६३ लाख तथा राजकीय दुग्धशाला के लिए १.०२ लाख रुपये का प्रावधान था, जिसमें से क्रमशः ०.८३ लाख, ०.००४ लाख, ०.००४ लाख, ०.४६ लाख, २.०१ लाख, ०.०३ लाख, ०.७४ लाख, ०.०३ लाख और १.६९ लाख रुपये व्यय हुए। तात्पर्य यह कि प्रथम पंचवर्षीय योजना में १७.६४३ लाख रुपयों का प्रावधान था, जिसमें से १६.०८ लाख रुपये व्यय हुए। द्वितीय पंचवर्षीय योजना में क्रमशः ६.३२ लाख, ०.१३ लाख, ०.०५ लाख, १.१४ लाख, ०.०९ लाख, १.३२ लाख, ०.४८ लाख, ३.८० लाख, ८.४५ लाख, २.१० लाख, २.६६ लाख, २.२३ लाख, ०.६५ लाख, ०.६८ लाख, १.५२ लाख, ०.५० लाख, ०.२२ लाख और २.४० लाख रुपयों का प्रावधान रखा गया। इसमें से राजकीय दुग्धशाला का कोई प्रावधान नहीं है। दूसरी योजना के अन्तर्गत ८३.६१ लाख रुपयों के प्रावधान में से १५ अगस्त सन् १९५६ तक शिक्षण-व्यवस्था में ०.३६ लाख तथा पशु-प्रदर्शनी-योजना में ०.०१ लाख रुपये व्यय किये गये हैं।

प्रशिक्षण के सम्बन्ध में जो लोग भेजे गये थे, उनका प्रशिक्षण-काल चल रहा है। पुस्तकालय-संस्थापन में पुस्तकें क्रय की जा रही हैं। चल-अस्पताल के लिए आवश्यक उपकरण मँगवाने की व्यवस्था की जा रही है। भवन-निर्माण-योजना के अन्तर्गत १९ पशु-अस्पताल तथा औषधालय के भवन निर्मित हो चुके हैं। दो भवनों का काम चालू है। पशु-सुधार के सम्बन्ध में ११६ हरियाना और ३६ मुर्रा भैंस, सांड़ आदि खरीदे जा चुके हैं। इसी तरह कुक्कुट-पालन के अन्तर्गत कुक्कुट क्रय किये गये हैं। शहडोल और नौगांव में कुक्कुट-केन्द्र स्थापित किये गये हैं। दो गोसदन खोले जा चुके हैं। नया गोसदन शहडोल जिला में खोला जायगा। टीकमगढ़ में भेड़-पालन-केन्द्र खोलने की योजना है। दुग्धशाला-विशेषज्ञों के सम्बन्ध में ६ विद्यार्थी आई० डी० डी० कोर्स के लिए भेजे गये हैं। राजकीय दुग्धशाला के सम्बन्ध में ५१ दुधारू जानवर, २ भैंसे और १ सांड खरीदे गये। साथ ही अन्य पशु भी क्रय किये गये। दुग्धशाला के निर्माण आदि का कार्य आरम्भ कर दिया गया है। तकावी-योजना स्वीकृत्यर्थ सरकार के समक्ष विचाराधीन है।

विन्ध्य-प्रदेश में वन-विकास

अधिकांश विन्ध्य-प्रदेश हरे-हरे वनों से आच्छादित है और वन विन्ध्य-प्रदेश के आर्थिक विकास के लिये उतने ही आवश्यक हैं, जितने कि वे यहां की ऐतिहासिक और सांस्कृतिक परम्पराओं से अविच्छिन्न रूप से सम्बद्ध हैं। वन न केवल इस राज्य के हरीतिमापूर्ण वैभव का आधार हैं, वरन् वे लाखों मजदूरों, आदिवासियों और जन-जातियों के लिये जीविका के स्रोत भी है ।

अतीत मे हमारे देश की संस्कृति वन-क्षेत्रों के अंचल में पल्लवित और पुष्पित हुई और वर्तमान मे राष्ट्रीय अर्थ-व्यवस्था के विकास के लिये वनों का उपयोग अपरिहार्य है ।

विन्ध्य-प्रदेश में वनों के ह्रास के दो प्रमुख कारण रहे हैं । एक यह कि लोगों ने अपनी दैनिक जरूरतों के लिये अदूरदर्शितापूर्ण ढंग से जंगलों को काट डाला और दूसरी बात यह कि सुनियोजित ढंग से जंगल लगाने का कार्य नही हुआ ।

इस राज्य मे उत्तरदायी जन-सरकार की स्थापना के बाद से सरकार का प्रमुख कार्य जन-जीवन का सर्वांगीण विकास करना हो गया और इसीलिये वनों के संरक्षण और उनके विकास की ओर ध्यान दिया गया । टीकमगढ़ और दतिया जिलों में जिस निर्दयता से जंगलों को काट डाला गया, उसका परिणाम वहां की जनता ने अनावृष्टि और जलाभाव आदि के रूप में भोगा । स्पष्ट है कि जन-जीवन के लिये कष्टकारक इन बातों की पुनरावृत्ति को रोकना सरकार का कर्तव्य है और इसीलिये प्रथम पंचवर्षीय योजना मे वनों के संरक्षण और विकास, वनोद्योगों के संस्थापन, भूमि-संरक्षण, वन-मार्गों के निर्माण, वन-विभागीय कर्मचारियों के प्रशिक्षण आदि के लिये धन-राशि का प्रावधान किया गया तथा इस दिशा में काफी कार्य भी सम्पन्न हुआ। द्वितीय पंचवर्षीय योजना में भी इसी प्रकार का कार्य किया जा रहा है ।

वन-विभाग के कार्य पर प्रथम पंचवर्षीय योजना मे ४३,००० रुपये की धनराशि का प्रावधान रखा गया और इसमे से ३०,१८८ रुपये उक्त कार्य पर व्यय हुए। ४१८ वर्गमील और ११५८ मील के क्षेत्र मे वनों की सीमा निर्धारित करने का काम भी किया गया और द्वितीय योजना के प्रारम्भ मे अभी तक १६ मील के क्षेत्र मे सीमा-निर्धारण का कार्य हो चुका है, जब कि पांच वर्ष की अवधि मे ५०० मील के क्षेत्र में सीमा-निर्धारण का कार्य किया जायगा । इस कार्य पर ३०,००० रुपये व्यय होंगे ।

वनोद्योगों के संस्थापन और विकास तथा वनोपज के निर्यात हेतु वन-मार्गों की आवश्यकता का अनुभव किया गया और इससे वनों के संरक्षण तथा सम्बन्धित निरीक्षण वं प्रशासन में भी सहायता मिली । प्रथम पंचवर्षीय योजना-काल मे १११४ मील लम्बे वन-मार्ग बनाये गये तथा इन पर ३,८०,८०७ रुपये व्यय हुए । द्वितीय योजना में इसी कार्य हेतु ४,७५,००० रुपये की धन-राशि रखी गई है और ६७० मील लम्बे वन-मार्ग बनाये जाना है । इसके अतिरिक्त ५,३५,९६९ रुपये की लागत से २०० भवन भी बनाये गये और दूसरी योजना में ३,१५,००० रुपये की लागत से १३७ भवन बनाने का प्रावधान है ।

प्रथम पंचवर्षीय योजना मे वनोद्योगों के लिये २,५०, ००० रुपये का प्रावधान था और दूसरी योजना मे इस हेतु ९५,००० रुपये की धन-राशि रखी गई है। बुन्देलखंड डिवीजन और शहडोल जिले के कुसुम क्षेत्र मे लाख के उद्योग का विस्तार किया गया और इस मद में ५०,८७८ रुपये व्यय किये गये ।

अधिकाधिक भूमि को कृषि के अन्तर्गत लाने के लिये

भूमि-क्षरण रोकना अत्यावश्यक है और इसलिये भूमि-संरक्षण का सुनियोजित कार्य प्रारम्भ किया गया । पहली योजना में २५ वर्गमील और ६५५० एकड क्षेत्र में भूमि-संरक्षण कार्य किया गया और इस काम पर २,५१,९१५ रुपये व्यय हुए। दूसरी पंचवर्षीय योजना में भूमि-संरक्षण-कार्य को और बड़े पैमाने पर रखा गया है और इस काम पर १४,२५,००० रुपये व्यय होंगे तथा २४,६६० एकड़ क्षेत्र में भूमि-संरक्षण कार्य होगा ।

नर्सरी रखने और वन लगाने का काम भी कम महत्त्व-पूर्ण नहीं है, क्योंकि दैनिक आवश्यकताओं की बढ़ती हुई मांग को पूरा करने के लिये वनों का विस्तार अत्यावश्यक है । राज्य के समस्त डिवीजनों मे इस दिशा में काम किया गया और इस काम पर १,५२,१६२ रुपये व्यय हुए । द्वितीय योजना-काल में १० हजार एकड़ क्षेत्र में यह काम किया जायगा और इसके लिये १,९०,००० रुपये की धन-राशि का प्रावधान किया गया है ।

वनों के संरक्षण-सम्बन्धी प्रचार-कार्य पर पहली योजना-में ४१,७९६ रुपये व्यय किये गये ।

वन्य जातियों के विकास का काम भी वन-विभाग ने प्रारम्भ किया और पहली योजना की अवधि में ९ आदर्श ग्राम बसाये गये । इस मद में ३२,५३७ रुपये खर्च हुए । वन-विभागीय कर्मचारियों के प्रशिक्षण-कार्य पर ४४,१८४ रुपये व्यय किये गये और द्वितीय योजना-अवधि में ५,०८,२०० रुपये की धन-राशि से ६६६ प्रशिक्षणार्थियों को प्रशिक्षित किया जायगा, जिनमें से ४५ व्यक्तियों को प्रशिक्षित किया जा रहा है ।

अमरकण्टक में एक राष्ट्रीय उद्यान बनाया गया और इस पर २२,८३९ रुपये व्यय हुए । द्वितीय योजना में ऐसेदो उद्यान बनाये जायंगे और इस पर १,८०,५०० रुप्य येयय होंगे । द्वितीय योजना में राज्य भर में खेती की जमीनों में भी भूमि-संरक्षण का कार्य होगा और इसके लिये १८,६९,३०० रुपये का प्रावधान किया गया है ।

वास्तव में वनों के संरक्षण और विकास के लिये विन्ध्य-प्रदेश सरकार अत्यधिक प्रयत्नशील है और इस दिशा में व्यापक कार्य किये जा रहे हैं । ये सुनियोजित कार्य निश्चय ही विन्ध्य के हरीतिमापूर्ण वैभव को समृद्ध बनाने में उप-योगी सिद्ध होंगे ।

परिगणित एवं जन-जातियों का कल्याण-कार्य

विन्ध्य-प्रदेश में परिगणित जाति तथा जन-जातियों के सुधार का कार्यक्रम सर्वप्रथम लोकप्रिय मंत्रिमंडल की स्थापना के समय बनाया गया था। १९५२–५३ में राज्य सरकार ने १५ लाख रुपये का एक चतुर्वर्षीय कार्यक्रम प्रस्तुत किया। उसी साल के लिये भारत सरकार द्वारा संविधान की धारा २७५ के अंतर्गत भूतपूर्व जरायमपेशा

जन-जातियों के उत्थान के लिये राज्य सरकार को अनुदना दिया गया। १९५३–५४ से अस्पृश्यता-निवारण की योजना भी भारत सरकार द्वारा स्वीकार कर ली गई। गत ५ वर्षों में आय-व्ययक में निम्नलिखित रकम विभिन्न योजनाओं के लिये स्वीकार कर ली गई। व्यय हुई रकम इस प्रकार है—

योजना	आय व्ययक (१९५२–५६) लाख रुपयों में	व्यय (१९५२ से अगस्त १९५६) लाख रुपयों में
परिगणित जाति-कल्याण	१३.३४	८.८७
परिगणित जन-जाति-कल्याण	३६.०८	२३.५४
भूतपूर्व जरायमपेशा जन-जाति-कल्याण	२.०३	१.८१
अस्पृश्यता-निवारण-योजना	६.७२	५.७२
कुल	५८.१७	३९.९४

७३
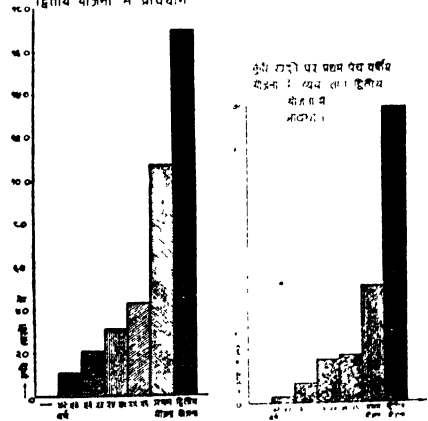
प्रथम योजना अत्यंत सफलतापूर्वक सम्पन्न हुई और ४ वर्षों की अवधि में ३९.९४ रुपये व्यय हुए। १९५२–५३ में योजना पर २.५२ लाख रुपये व्यय हुए। वर्ष के लिये जैसे-जैसे प्रावधान बढ़ा, वैसे-वैसे कल्याण-कार्यों में वृद्धि हुई और १९५५–५६ में व्यय बढ़कर १७.२९ लाख रुपये हो गया।

शिक्षा इस कल्याण-कार्य का आधारभूत कार्य था; क्योंकि दीर्घकाल में शिक्षा ही उत्तम तथा संगठित समाज के निर्माण में उपयोगी सिद्ध होगी। प्रत्येक स्तर पर शिक्षा लड़के, लड़कियों तथा प्रौढ़ों के लिये निःशुल्क कर दी गई। प्रौढ़ों को रात्रि-पाठशालाओं में शिक्षा प्राप्त करने की सुविधा दी गई। इस दिशा में एम० ए० तक की कक्षाओं में फीस माफ कर दी गई। प्राथमिक शिक्षा स्तर के विद्यार्थियों के लिये गैर-सरकारी फीसें १९५५–५६ तक कल्याण-विभाग द्वारा दी गयीं। ५वीं कक्षा के स्तर के विद्यार्थियों को ५ रुपये से ४० रुपये तक की छात्रवृत्तियां और मुफ्त में वर्दियां दी गईं। इस प्रकार ५वीं कक्षा तक के विद्यार्थियों को पुस्तकों, वर्दियों तथा फीस-माफी से क्रमशः ५५८८०, २८५५६ तथा २५३८६ विद्यार्थियों को लाभ हुआ। १८१९ विद्यार्थियों को छात्रवृत्तियां दी गईं। १.५० लाख रुपयों के व्यय से २० आश्रम चलाये गये, जिनमें प्रत्येक में २५ विद्यार्थी रखे गये थे, जिन्हें मुफ्त में भोजन, कपड़े तथा व्यावसायिक एवं विद्यालयी शिक्षा दी जाती थी। इसके अतिरिक्त ३७ विद्यार्थी राज्य की अन्य यांत्रिक संस्थाओं में शिक्षा प्राप्त करने हेतु भेजे गये। उन्हें २५ रुपये प्रति माह की छात्रवृत्ति प्रदान की गई। परिगणित जन-जातियों के लिये दो वन-पाठशालाएं खोली गई, जिन पर ८,०११ रुपये व्यय हुए। सीधी और शहडोल जिलों को छोड़कर अन्य जिलों में ४४,००० रुपये के व्यय से परिगणित जातियों के विद्यार्थियों के लिये छात्रावासों का निर्माण किया गया।

उत्साहवर्द्धक स्तर पर आर्थिक योजनाएं भी प्रारंभ की गईं। परिगणित जातियों तथा जन-जातियों के लिये ११५ सहकारी समितियां स्थापित की गयीं, जिनकी कुल सदस्य-संख्या ३,५२४ थी तथा कार्यशील पूंजी २,६३,३९२ रुपये थी, जिसमें प्रति समिति को ५०० रुपये का सरकारी अनुदान शामिल था। प्रत्येक समिति के लिये उसके लाभार्थ एक मैनेजर सरकारी व्यय पर दिया गया है।

परिगणित जाति तथा जन-जाति के भूमिहीन लोगों के लिये कृषि-संबंधी सुविधायें दी गईं। उन्हें १० एकड़ भूमि पर बसाया गया तथा सुधरे हुए बीजों, औजारों तथा एक जोड़ी बैल उन्हें दिये गये। कुल मिलाकर ६९१ परिगणित जाति, जन-जाति तथा भूतपूर्व जरायमपेशा जन-जाति के लोगों को इस योजना से लाभ हुआ और इस कार्य में ३,५१,३८५ रुपये व्यय हुए।

चिकित्सा-सुविधा के फलस्वरूप परिगणित जन-जाति के लोगों को अत्यधिक लाभ हुआ है। उनके क्षेत्रों में ३ अस्पताल तथा १८ औषधालय खोले गये। इसके अतिरिक्त साधारण रोगों की चिकित्सा के लिये दवा की पेटियां भी दी गयीं। दवाओं के वितरण का काम ग्राम के मुखियों या पड़ोसी स्कूल के हेडमास्टरों को दिया गया। निग्री निवास अस्पताल के साथ एक चलता-फिरता अस्पताल भी सम्बद्ध किया गया, जिसने आदिवासी-क्षेत्र में गांव-गाँव घूमकर बड़े भाग में दवाइयों का वितरण किया। प्रथम पंचवर्षीय योजना-काल में २,२०,४९८ रुपये इस कार्य में व्यय हुए।

पिछड़ी जाति - कल्याण विभाग का व्यय (द्वितीय पंचवर्षीय योजना)

भवन निर्माण .२५००० रु०

स्वास्थ्य चिकित्सा ३.३८००० रु०

७.६०००० जल

१०.१०००० कुटीर उद्योग

१६.१८००० शिक्षा

१७.३०००० कृषि

आदिवासी-क्षेत्र में यातायात की सुविधा दिलाने में ४,२३,३९२ रुपये के व्यय से उपगमन मार्गों का निर्माण किया गया। १९५३–५४ में इस दिशा में ३०५ मील सड़क बनी, दूसरे वर्ष में ३०० मील और सड़क बनी। १९५५–५६ में ११९ मील अतिरिक्त सड़क बनाई गई और गत वर्ष

बड़ी सड़कों की मरम्मत की गई। इनमें से ७२४ मील सड़कों में से ३४८ मील सड़कें केवल शहडोल जिले में ही बनी है।

पीने के स्वच्छ पानी की सुविधा के लिये परिगणित जाति तथा जन-जाति-क्षेत्र में नये कुएं खोदे गये तथा पुरानों की मरम्मत तथा सफाई की गई। ३४३ नये कुएं खोदने तथा ३३३ पुराने कुओं की मरम्मत में २,५२,४२२ रुपये व्यय हुए। उपर्युक्त कार्यों के अतिरिक्त प्रथम योजना-अवधि में १३ सामुदायिक योजना-केन्द्र, २१ औषधालय तथा २० आश्रम की इमारतें, २ हरिजन कोलोनी, ८ आदर्श ग्राम तथा १८३ आदर्श गृहों का निर्माण हुआ।

परिगणित जाति तथा जन-जातियों को अन्य सुविधायें देने के अतिरिक्त सरकार द्वारा गरीबों को दीवानी तथा राजस्व-संबंधी मुकदमों में नि:शुल्क कानूनी सहायता दी जाती है। राज्य की सरकारी नौकरियों में उनके लिये १० प्रति शत स्थान सुरक्षित रहता है।

सरकार द्वारा दी गई इन समस्त सुविधाओं और सहायता के फलस्वरूप परिगणित जातियों एवं जन-जातियों की दशा में बड़ा सुधार हुआ है। इन लोगों में एक स्थायो प्रगति होने के अतिरिक्त उनमें आत्मविश्वास एवं जाग्रति पैदा हो गई है। अब वे अपने अधिकारों के प्रति जागरूक तथा देश के अन्य वर्गों के साथ प्रगति करने के लिये उत्सुक है। उनके इस उत्साह के फलस्वरूप द्वितीय पंचवर्षीय योजना में वास्तविक सफलता मिल सकेगी।

रामायण प्रसाद

विन्ध्य-प्रदेश में नगरपालिका

कुछ समय पूर्व तक विन्ध्य-प्रदेश में स्वायत्त शासन के संबंध में कोई जानकारी नहीं थी। जिन राज्यों को मिलाकर विन्ध्य-प्रदेश बना है, उनमें स्थानीय स्वायत्त शासन के संबंध में कोई निश्चित नीति नहीं थी। यह संभवतः उनके विभिन्न आकार तथा साधनों के फलस्वरूप था। १९४६ के पूर्व विन्ध्य-प्रदेश में स्थानीय स्वायत्त शासन की एक भी संस्था नहीं थी। केवल कुछ प्रमुख रियासतों में ही स्थानीय संस्थाएं थीं और छोटे राज्यों में एकाध अशिक्षित दारोगा के अन्तर्गत सड़कें साफ करने के हेतु कुछ मेहतर थे; किन्तु निर्वाचित या नामजद कोई भी संस्था नहीं थी। इस प्रकार की नियमित या अनियमित नगरपालिकाएं कई जगह थीं। रीवा राज्य के सिवाय दतिया, टीकमगढ़ तथा छतरपुर में नगरपालिकाओं के मुद्रित विधान थे। कुछ रियासतों की स्थानीय संस्थाओं को कई प्रजातांत्रिक अधिकार थे और कुछ राज्यों में नाम-मात्र के ही कुछ अधिकार दिये गये थे। राज्यों के विलीनीकरण के पूर्व इन समस्त संस्थाओं में एक समानता इस बात की थी कि उनका सामान्य निरीक्षण तथा नियंत्रण राजा के हाथों में रहता था। शिक्षा, चिकित्सा-सहायता आदि कार्य कभी भी स्थानीय संस्थाओं को नहीं दिये गये और वे रियासती शासन के अन्तर्गत ही रहते थे। वित्तीय मामलों में रीवा, छतरपुर, दतिया और टीकमगढ़-सरीखी प्रगतिशील रियासतों में नगरपालिकाओं को कुछ शुल्क तथा कर उगाहने के अधिकार थे। अन्य मामलों में नगरपालिकाओं को राज्य द्वारा कुछ धन-राशि, सहायता तथा अनुदान भी दिये जाते थे। शेष राज्यों में नगरपालिका को सामान्य आगम में से धन-राशि दी जाती थी। इस प्रकार विन्ध्य-प्रदेश के एकीकरण के उपरांत बड़ा विषम स्वायत्त शासन विरासत में प्राप्त हुआ।

विन्ध्य-प्रदेश-निर्माण से पूर्व १९४८ मे नगरपालिकाओं की स्थिति इस प्रकार थी—

क्रमांक	नगरपालिका का नाम तथा वर्ग	जनसंख्या	संक्षिप्त विधान	अन्तिम गठन	किस नियम के अन्तर्गत गठित हुई
१.	दतिया (म्यु० बोर्ड)	२२,०००	११ निर्वाचित १ सरकारी	१९४५	दतिया राज्य नगरपालिका अधिनियम १९२२
२.	सेंवढ़ा (म्यु० बोर्ड)	५,०००	५ सदस्य	१९४५	,, ,,
३.	समथर (म्यु० बोर्ड)	८,०००	६ निर्वाचित ३ नामजद	१९४५	समथर राजनगर सभा विधान, १९४०
४.	बावनी (टाउन एरिया कमेटी)	२८६६	५ नामजद	१९४५	—
५.	खनियाधाना (टाउन एरिया कमेटी)	३५००	—	—	—
६.	नौगांव (म्यु० बोर्ड)	५९९९	६ नामजद	१९४८	छतरपुर राज म्युनिसिपल ऐक्ट, १९३५
७.	छतरपुर (म्यु० बोर्ड)	१३,२१०	१० निर्वाचित २ नामजद	,,	,,
८.	मलहरा (म्यु० बोर्ड)	५२३२	—	,,	,,
९.	महाराजपुर (म्यु० बोर्ड)	५१९५	—	,,	,,
१०.	राजनगर (म्यु० बोर्ड)	३५४७	—	,,	,,
११.	हरपालपुर (म्यु० बोर्ड)	३६००	६ नामजद	१९४७	—
१२.	चरखारी (म्यु० बोर्ड)	—	७ निर्वाचित ३ नामजद	१९४६	चरखारी म्युनिसिपल ऐक्ट, १९३८

१३.	जिगनी (टा०एरिया कमेटी)	—	—	—	—
१४.	लौंड़ी (म्यु०बोर्ड)	—	—	—	—
१५.	बिजावर (म्यु० बोर्ड)	१०,०००	६ निर्वाचित ३ नामजद	१९४२	बिजावर म्युनिसिपल ऐक्ट
१६.	पन्ना (म्यु०बोर्ड)	१२,०००	समस्त नामजद	१९२२	पन्ना राज्य म्युनिसिपल रूल, १९४६
१७.	मैहर (म्यु०बोर्ड)	—	५ निर्वाचित ५ नामजद	१९४६	मैहर नगर सभा ऐक्ट, १९४६
१८.	टीकमगढ़ (म्यु०बोर्ड)	१६,०००	मुअत्तल	१९४६	ओरछा राज्य म्युनिसिपल ऐक्ट, १९४६
१९.	रीवा (म्यु०बोर्ड)	२६,०००	१८ निर्वाचित	१९४७	रीवा राज्य म्युनिसिपल ऐक्ट, १९४६
२०.	गोविंदगढ़ (म्यु०बोर्ड)	३७८७	६ निर्वाचित ३ नामजद	—	"
२१.	सतना (म्यु०बोर्ड)	११,५७५	१३ निर्वाचित	१९४६	"
२२.	शहडोल (म्यु०बोर्ड)	६१२५	—	१९४७	"
२३.	उमरिया (म्यु०बोर्ड)	६५३२	—	"	"
२४.	सीधी (नोटीफाइड एरिया कमेटी)	२५५२	५ सरकारी ३ गैर-सरकारी	१९४६	ओल्ड सेनिटरी ला, १९२२

इन समस्त विधानों में रीवा राज्य म्युनिसिपल ऐक्ट १९४६, आधुनिक जनराज्य के लोक-सिद्धान्तों की दृष्टि से सबसे अधिक उदार था। बुन्देलखंड और बघेलखंड के सम्मिलन के उपरांत रीवा राज्य के स्थानीय स्वायत्त शासन-विभाग की संगठित सेवाएं सम्पूर्ण राज्य में स्थानीय संस्थाओं के संगठन-कार्य में उपयोग में लाई गई। यह रीवा राज्य कानून, १९४६ के अनुसार किया गया। यह कानून सारे विन्ध्य-प्रदेश में आर्डिनेंस नं० ४ (१९४८), जो वि० प्र० गजट दिनांक ७।८।१९४८ में प्रकाशित किया गया, के अनुसार लागू किया गया। नगरपालिकाओं के शासन को पुनर्संगठित करने तथा नियमित बनाने का कार्य प्रारम्भ किया गया। अब उनका कार्य सुचारु रूप से चल रहा है।

इस समय विन्ध्य-प्रदेश में ११ नगरपालिकाएं तथा एक नोटीफाइड एरिया कमेटी है।

प्रथम श्रेणी की नगरपालिकाएं (जिनकी जन-संख्या १०,००० या अधिक हैं) निम्न हैं :—(१) रीवा, (२) सतना, (३) पन्ना, (४) टीकमगढ़, (५) छतरपुर, (६) दतिया।

द्वितीय श्रेणी की नगरपालिकाएं (जिनकी-जनसंख्या १०,००० से कम है) निम्न हैं—(१) मैहर, (२) शहडोल, (३) उमरिया, (४) नौगांव, (५) महाराजपुर।

नोटीफाइड एरिया समिति केवल सीधी में है।

इन श्रेणियों के स्थानीय अधिकारियों का विभेद इस प्रकार है—

(अ) कुछ नगरपालिकाओं में सरकार द्वारा अनुसूचित समस्त निर्वाचित सदस्य रहते हैं। इस प्रकार की केवल तीन नगरपालिकाएं हैं—(१) रीवा, (२) सतना, तथा (३) पन्ना। इस प्रकार के बोर्डों की सदस्य-संख्या १२ से १८ तक रहती है।

(ब) अन्य म्युनिसिपल बोर्डों में सरकार द्वारा निर्धारित संख्या में निर्वाचित सदस्य रहते हैं और उसी प्रकार निर्वाचित संख्या में नामजद सदस्य रहते हैं। नामजद सदस्यों की संख्या निर्वाचित सदस्यों की संख्या से अर्द्धांश से अधिक न होगी। इस प्रकार के ८ म्युनिसिपल बोर्ड हैं—टीकमगढ़, छतरपुर, दतिया, शहडोल, उमरिया, मैहर, नौगांव तथा महाराजपुर। इनकी सदस्य-संख्या १० से १४ तक थी, जिनमें ३ सदस्य नामजद थे।

(स) नोटीफाइड एरिया कमेटी में या तो एक नियुक्त अफसर रहता है या सरकार द्वारा निर्धारित निश्चित संख्या में सदस्य रहते हैं। पर किसी भी दशा में ऐसे सदस्य ३ से कम नहीं रहते।

ऐसे किसी भी स्थानीय क्षेत्र को, जिसकी संख्या ५,०००

या अधिक हो, सरकार अनुसूचना द्वारा नगरपालिका-क्षेत्र घोषित कर सकती है। निर्वाचित सदस्य-संख्या क्षेत्र की जन-संख्या के अनुसार निर्धारित होती है। किसी भी बोर्ड में सदस्य की संख्या ५ से कम नहीं होगी। साधारणतः १००० से १५०० व्यक्तियों पीछे एक व्यक्ति निर्वाचित होता है।

राज्य की नगरपालिकाओं में सदस्यों की संख्या इस प्रकार थी :—

क्रमांक	नगरपालिका का नाम	जन-संख्या	निर्वाचित सदस्यों की संख्या	नामजद सदस्यों की संख्या	कुल सदस्य
१	रीवा	३०,०००	१९	—	१९
२	सतना	१९,९६६	१२	—	१२
३	पन्ना	१२,२३०	१४	—	१४
४	नौगांव	५५५३	९	३	१२
५	दतिया	२६,४००	११	२	१३
६	टीकमगढ़	१३,४०६	११	३	१४
७	मैहर	९३९७	१०	२	१२
८	शहडोल	९२८१	१०	२	१२
९	उमरिया	८१७८	१०	२	१२
१०	छतरपुर	१६,०००	१०	३	१३
११	महाराजपुर	९९५०	७	—	७
१२	सीधी (नोटीफाइड एरिया कमेटी)	३५००	७	३	१०

सदस्यों के कार्य-काल की अवधि ३ वर्ष है। निर्वाचन प्रौढ़ मताधिकार के अनुसार होता है। इसमें किसी के लिये कोई भी सीट सुरक्षित नही रखी जाती। कानून के अनुसार सरकार द्वारा सदस्य को नामजद किया जा सकता है। इस प्रकार निर्वाचित तथा नामजद हुए सदस्य म्युनिसिपल बोर्ड के अध्यक्ष का निर्वाचन करते है। उसके कार्य-काल की अवधि ३ वर्ष की है। अध्यक्ष द्वारा उपाध्यक्ष का निर्वाचन एक वर्ष के लिये किया जाता है। बोर्ड का सेक्रेटरी सरकार की स्वीकृति द्वारा नियुक्त वैतनिक कर्मचारी रहता है।

नगरपालिका के कर्तव्य तथा कार्य

(अ) अनिवार्य कर्तव्य तथा कार्य

म्युनिसिपल बोर्ड द्वारा मुख्यतः निम्नलिखित कार्य किये जाते हैं :—

(१) जन-मार्ग, बाजार, कसाईखानों, टट्टियों, नालियों आदि की मरम्मत, निर्माण तथा देख-भाल

(२) आम रास्तों पर प्रकाश की व्यवस्था

(३) आम रास्तों तथा स्थानों में जल-छिड़काव

(४) आम सड़कों, स्थानों तथा नालियों की सफाई

(६) व्यापार-कार्य का नियंत्रण

(६) आम सड़कों पर सुरक्षा, स्वास्थ्य तथा सहूलियत के लिये व्यवस्था करना

(७) खतरनाक इमारतों को गिराना

(८) शुद्ध जल के हेतु तालाबों तथा कुओं की सफाई

(९) म्युनिसिपल बोर्ड के प्रबंध के अन्तर्गत आयी इमारतों या सम्पत्ति की सुरक्षा तथा व्यवस्था करना।

(ब) अन्य कार्य तथा कर्तव्य

समय-समय पर नगरपालिका-क्षेत्र मे बोर्ड द्वारा निम्नलिखित का प्रावधान किया जाता है—

(१) नई या पुरानी बस्तियों में सड़कों का निर्माण तथा इमारतों के निर्माण के लिये भूमि की खरीद।

(२) आम पार्क, बगीचे, आफिस, धर्मशाला, स्नानगृह, स्नानघाट, धोबी घाट, तालाब तथा कुएँ आदि का निर्माण तथा व्यवस्था।

(३) गन्दे स्थानों की सफाई।

(४) पर्यवेक्षण-कार्य ।

(५) मेले तथा प्रदर्शनी का आयोजन ।

(स) टैक्स तथा फीस-निर्धारण का तरीका

जब भी बोर्ड टैक्स लगाने का आयोजन करता है, तब वह विशेष प्रस्ताव द्वारा प्रस्ताव प्रस्तुत करता है और इस संबंध में सरकार द्वारा जो नियम बनवाना चाहता है, उसका प्रारूप प्रस्तुत करता है। उन्हें जनता में प्रसारित कर नगर-पालिका क्षेत्र में रहनेवाले व्यक्तियों से १ माह के भीतर आपत्तियां तथा दावे आमंत्रित किये जाते हैं। यदि कोई भी आपत्ति तथा दावे नहीं आते, तो बोर्ड द्वारा सरकार की स्वीकृति के लिये प्रस्ताव तथा नियम के प्रारूप प्रस्तुत करती है। यदि कोई आपत्ति तथा दावे किये जाते है, तो बोर्ड उन पर पुनर्विचार करता है और यदि वे उचित है, तो प्रस्तावों में संशोधन करता है और वह फिर प्रकाशित किया जाता है तथा उस पर आपत्ति एवं दावे पुनःआमंत्रित किये जाते हैं। जब तक प्रस्ताव संतोषजनक नही बन जाते, तब तक यही तरीका अपनाया जाता है। अंतिम रूप से प्रस्ताव बन जाने के उपरांत बोर्ड उन्हें सरकार को प्रस्तुत करता है। सरकार या तो उन्हें अस्वीकार कर देती है या उन्हें बोर्ड के पुनर्विचार के लिये वापिस भेज देती है या फिर उन्हें जैसा का तैसा या समुचित संशोधन के रूप में स्वीकार कर लेती है।

नगरपालिका के हेतु वित्त

नगरपालिकाओं की आमदनी के मुख्य जरिये उनके द्वारा रीवा राज्य नगरपालिका अधिनियम के अंतर्गत लगाये गये टैक्स तथा शुल्क हैं। उन्हें निम्नलिखित शुल्क तथा टैक्स लगाने का अधिकार है---

(१) इमारतों या भूमि या दोनों के वार्षिक मूल्य पर टैक्स ।

(२) नगरपालिका की सीमा में व्यापार या ठेलों पर टैक्स ।

(३) नगरपालिका की सीमा में चलनेवाली गाड़ियों या अन्य सवारियों पर टैक्स।

(४) नगरपालिका की सीमा के भीतर आनेवाली गाडियो तथा अन्य सवारियों, जानवरो या माल पर टैक्स।

(५) नगरपालिका की सीमा में उपयोगार्थ लायी जाने वाली वस्तुओं और सामानों पर टैक्स ।

(६) खदानों पर टैक्स ।

(७) सफाई पर टैक्स।

(८) सरकार की स्वीकृति के अनुसार अन्य टैक्स।

यह दुःख की बात है कि अभी तक नगरपालिकाओ ने इस सीमा तक टैक्स नही लगाये है कि वे स्वावलंबी हो सकें। इसका फल यह है कि समस्त वर्तमान नगरपालिकाएं अपने दैनिक व्यय के लिए सरकार द्वारा दिये गये अनुदानों तथा सहायता पर निर्भर रहती है विशेष कार्यों के लिये विशेष अनुदान की आवश्यकता होती है।

१९५५–५६ में समस्त नगरपालिकाओं तथा नोटीफाइड एरिया कमेटी की कुल आमदनी ७,४९,५७१ रुपये ७ आने थी, जिसमें से १,२४,००६ रुपये २ आने टैक्स द्वारा तथा २, ६२,१५९ रुपये १३ आने ३ पाई अन्य साधनों (व्यापार, शुल्क आदि) से प्राप्त हुए थे। शेष ३,६३,४०५ रुपये उन्हें अनुदानों से प्राप्त हुए थे।

इसके विरुद्ध १९५५–५६ में म्युनिसिपल बोर्डों का कुल व्यय ८,६०,५५३ रुपये ७ आने था। नगरपालिकाओं द्वारा प्राप्त आमदनी में से, जिसमें सरकारी अनुदान शामिल है, टैक्सों द्वारा प्राप्त कुल आमदनी १५ प्रति शत है और अन्य साधनों से प्राप्त आमदनी कुल आमदनी का ३३ प्रति शत है। मध्य प्रदेश तथा उत्तर प्रदेश की तुलना में यह अत्यंत न्यून है, जहां उनकी अन्य साधनों से प्राप्त आमदनी क्रमशः २३.३ प्रति शत तथा २४.६ प्रति शत है।

१९५२–५३, १९५३–५४ तथा १९५४–५५ में नगरपालिकाओं की आमदनी तथा व्यय आगे की तालिका के अनुसार रहे है :--

आमदनी

क्रमांक	नगरपालिका का नाम	सरकारी अनुदान	करों तथा अन्य साधनों से प्राप्त आय	कुल	व्यय
१	रीवा	८१२३३)	६५४७४)	१,४६,७०७)	१,५१,३४४)
२	सतना	४८२७७)	७१७८३)	१,२०,०१०)	१,०५,३७६)
३	पन्ना	३८५६७)	२५२४८)	६३,८१५)	५२,१४७)
४	छतरपुर	३३९६५)	१३०३५)	४७०००)	४६२३४)
५	दतिया	७०,८४०)	४८३७७)	१,१९,२१७)	१,०६,३७५)
६	टीकमगढ़	४३,१३४)	२१,९०२)	६५,०४६)	६८,०७०)
७	मैहर	२०६८३)	१६९१२)	३७५९५)	३८११०)
८	नौगांव	२८,४६७)	२८,१३६)	५६,६०३)	४६,९९७)
९	महाराजपुर	१३,४६७)	६३१४)	१९७८१)	१५,४५७)
१०	शहडोल	२०८५०)	३०७८०)	५१६३०)	३१०२९)
११	उमरिया	१६५९१)	१३८६७)	३०,४५८)	२६,८३६)
१२	सीधी	४,९००)	९,०१६)	१३,९१६)	१५,७४३)
	कुल	४,२०,९२४)	३,५०,८४४)	७,७१,७६८)	७,०३,५१८)

गत ३ सालों की आमदनी से ज्ञात होता है कि सरकारी सहायता कुल आमदनी का ५४ प्रतिशत थी, जब कि पड़ोस के मध्य प्रदेश तथा उत्तर प्रदेश मे यह मद क्रमशः ९ प्रति शत तथा १५ प्रति शत थी। अभी तक नगरपालिकाएं वे टैक्स लगाने की इच्छुक नहीं रहीं, जिनका उन्हें अधिकार था। उनके लिये संपत्ति-कर तथा चुगी-कर ही आमदनी के प्रमुख साधन थे। किन्तु बहुत ही कम ने इस दिशा में कदम उठाया है। टैक्स के अतिरिक्त वे अन्य मदों से भी आमदनी प्राप्त करने का प्रयत्न नहीं करतीं। अभी तक उन्होंने ४५ उपनियम ही बनाकर लागू किये हैं।

आवर्तक व्यय के मामले में देखा गया है कि अधिकांश नगरपालिकाएं अपनी आमदनी का प्रमुख भाग कर्मचारियों पर व्यय करती हैं। रीवा में कुल आमदनी १७,६०,०००) है तथा कर्मचारियों के वेतन तथा भत्ते पर १,०६,००) व्यय होते हैं। सतना में कुल आमदनी ९४,०००) है, जब कि कर्मचारियों के वेतन तथा भत्ते पर ४७,०००) व्यय होते हैं। पन्ना में कुल आमदनी ८९,०००) है, जब कि वेतन-भत्ते पर ३,०००) व्यय होते हैं। छतरपुर में कुल आमदनी ६०,०००) है और कर्मचारियों पर ३२,०००) व्यय होते हैं। दतिया में कुल आमदनी १,२२,०००) है और कर्मचारियों पर व्यय ५४,०००) है। टीकमगढ़ में कुल आमदनी ६९,०००) है और कर्मचारियों पर व्यय ३३,०००) है। इस प्रकार कुल आमदनी का ५० प्रति शत से भी अधिक भाग कर्मचारियों पर व्यय हो जाता है तथा नगर-विकास, संवहन-विकास, जल-निकासी तथा जनहित कार्यों के लिये बहुत ही कम धन-राशि बच रहती है।

संक्षेप में इस समय विन्ध्य-प्रदेश की नगरपालिकाएँ सरकारी अनुदान के सहारे चल रही हैं। अब समय आ गया है कि वे अपने पैरों पर खड़ा होना सीखें।

सरकारी निरीक्षण तथा नियंत्रण

सरकार ने स्थानीय संस्थाओं, उनके अध्यक्ष तथा सदस्यों पर नियंत्रण तथा निरीक्षण का अधिकार अपने पास सुरक्षित

रखा है। ये अधिकार नगरपालिका अधिनियम २८२ से २९० तक में दिये गये हैं। जब भी बोर्ड अपने कर्त्तव्यों में नियमों के अन्तर्गत कोई भी कर्त्तव्य नहीं करता, या अपने अधिकारों का दुरुपयोग करता है, तब सरकार बोर्ड को तोड़ सकती है या कुछ निश्चित समय के लिये उसे मुअत्तल कर सकती है। कोई भी व्यक्ति, जो बोर्ड के सदस्य या अध्यक्ष की हैसियत से अपनी स्थिति का नाजायज फायदा उठाता है या अपने कर्त्तव्यों का पालन नहीं करता, बोर्ड से हटाया जा सकता है। सरकार जनहित के किसी भी काम को अपने विशेषाधिकारों द्वारा पूरा कर सकती है और उसका व्यय भी वसूल कर सकती है। नगरपालिकाओं को आयव्ययको के लिये सरकारी स्वीकृति की आवश्यकता नही है; पर जिन बोर्डों पर कर्ज है, उनका आय-व्ययक सरकार द्वारा स्वीकृत होना तब तक आवश्यक है, जब तक उन पर कर्ज रहेगा।

सरकार बोर्ड या उसके किसी भी कर्मचारी के ऐसे आदेश को रोक सकती है, जिसके फलस्वरूप जनहित को हानि पहुंचने की संभावना हो।

सरकारी नियंत्रण तथा निरीक्षण का कार्य विन्ध्य-प्रदेश में जिला मजिस्ट्रेट तथा स्थानीय संस्थाओं के संचालक के हाथों मे है। विशेष मामलों में सरकार को सलाह देना स्थानीय संस्थाओं के संचालक का काम है। गृह-सचिव तथा स्थानीय स्वायत्त शासन-विभाग के अवर सचिव के जरिये स्थानीय स्वायत्त शासन के मंत्री इनके काम का निरीक्षण तथा अधीक्षण करते है। इस प्रकार राज्य-सरकार तथा उसके कर्मचारियों द्वारा नगरपालिकाओं का प्रशासनिक नियंत्रण तथा निरीक्षण किया जाता है।

सामान्य निरीक्षण

वर्तमान परिस्थितियों में नगरपालिकाओं का कार्य संतोषजनक नही कहा जा सकता और इसमें सुधार की बड़ी आवश्यकता है। १६ जुलाई १९५६ को नगरपालिका के अध्यक्ष तथा कलेक्टरों के एक सम्मेलन में भाषण करते हुए उपराज्यपाल श्री एम० तिरुमल राव ने कहा था—"नगरपालिकाओं ने देशी राजाओं के समय की जो कमियां विरासत में पाई हैं, उन पर काबू पाना होगा या उन्हें पूर्णतः समाप्त कर देना होगा। इसके लिये सरकार में साहस तथा नगरपालिका चलानेवालों में कमी के प्रति विरोध तथा उसे दूर करने की इच्छा की आवश्यकता है, ताकि कड़े कदम उठाकर उनकी दशा में सुधार किया जा सके और उनकी नीव मजबूत की जा सके। इन संस्थाओं में सामाजिक जन-तंत्रीय भावना कार्य करती है, किन्तु गत कुछ माहों से मेरा यह दुखद अनुभव रहा है कि बोर्ड के सदस्य केवल चुनाव लड़ने तथा समारोह-कार्यक्रमों मे ही दिलचस्पी लेते है। अपने अधिकार छुड़ा लिये जाने के भय से अपरिवर्तनशील भी होते है। इस कमी के फलस्वरूप ऊपर से नीचे तक स्थानीय संस्थाओं की प्रशासन-व्यवस्था पर प्रभाव पड़ता है और वर्तमान परिस्थितियों में बहुत कम सुधार की आशा है। उन्हें अपना कर्त्तव्य बिना भय या पक्षपात के करना चाहिये तथा नगर-पालिकाओं की दशा सुधारने का प्रयत्न करना चाहिये, ताकि वे अपने क्षेत्र में रहनेवाले नागरिकों के लिये अच्छे स्वास्थ्य तथा उत्तम निवास-स्थिति की व्यवस्था करें। सरकार उनके इस उद्देश्य मे सहायता देगी; परन्तु जब तक नगरपालिकाएं स्वयं अपनी सहायता आप नहीं करतीं, तब तक कुछ भी विशेष प्रगति नही हो सकती।"

स्थानीय संस्थाएं राष्ट्र-पुनर्निर्माण के कार्य में महत्वपूर्ण भाग ले सकती है और यदि उनका उचित विकास हुआ, तो वे देश में जनतंत्र की सबसे बडी संस्था हो सकती हैं। इस लक्ष्य को ध्यान में रखते हुए राज्य की समस्त नगरपालिकाओं से कहा गया है कि वे टैक्स आदि लगाकर २० लाख रुपयों की अतिरिक्त आय बढ़ायें, ताकि द्वितीय पंचवर्षीय योजना मे नगरपालिकाओं के विकास के लिये निर्धारित ३९ लाख रुपयों का उपयोग किया जा सके। नगरपालिकाओं को यह स्पष्ट बल दिया गया था कि विकास के लिये समस्त अनुदान केवल एक तिहाई-दो तिहाई आधार पर ही उन्हें प्राप्त हो सकेगा। नगरपालिकाओं द्वारा दी जानेवाली रकम उनके बजट की उनकी आवश्यकताओं के लिये आवश्यक रकम के अतिरिक्त होना चाहिये।

अतएव हमारे नेताओं द्वारा अपेक्षित लोक-कल्याणकारी राज्य हमारी स्थानीय संस्थाओं के सफलतापूर्ण कार्य तथा सहयोग पर ही निर्भर है। राजकुमारी अमृतकौर के शब्दों में 'स्थानीय संस्थाएं ही वास्तव में लोक-हितकारी संस्थाएं हैं और उनके सफलतापूर्वक कार्य करने पर ही लोक-कल्याण-कारी राज्य की सफलता निर्भर करती है।'

विन्ध्य-प्रदेश में ग्रामीण शासन

वास्तविक प्रजातंत्र केवल सच्चाई एवं अहिंसा के माध्यम से ही स्थापित किया जा सकता है। संतुष्ट, सम्पन्न एवं आत्म-निर्भर गांव तथा ग्रामीण प्रजा ही इनके प्रमुख अंग हैं।

—महात्मा गांधी

विन्ध्य-प्रदेश अप्रैल सन् १९४८ तक मध्य भारतीय राज्य अधिकरण (सेन्ट्रल इण्डिया एजेंसी आफ स्टेट्स) के पूर्वी भाग के रूप में विख्यात था और इसमें बघेलखण्ड एवं बुंदेलखण्ड के ३५ छोटे-बड़े राज्य सम्मिलित थे। यह भाग 'ग' राज्य है। विन्ध्य-प्रदेश के सम्बन्ध मे हम कह सकते हैं कि देश के इस भाग के लिए ग्राम-पंचायतें नयी संस्थाएं नहीं थीं, लेकिन ये सुसंगठित नही थी, जिसके परिणामस्वरूप समय बीतने पर इनका महत्व घट गया। स्वतंत्रता-प्राप्ति के बाद राज्य के प्रजातांत्रिक ढांचे मे ग्राम-पंचायतों की स्थापना प्रमुख प्रयोगों में से एक था। भारतीय संविधान के अनुच्छेद ४० में राज्यों को पंचायतें संगठित करने का निर्देशन है—

"राज्यों को ग्रामीण पंचायतों को संगठित करने तथा उन्हें ऐसे अधिकारों से युक्त करने की ओर कदम उठाना चाहिए, जो उन्हें स्वायत्त शासन की इकाई के रूप में कार्य करने योग्य बनाने के लिये आवश्यक हों।"

उत्तरदायी सरकार सर्व प्रथम मार्च १९५२ में चालू की गयी। राज्यों के इतिहास में इसका महत्वपूर्ण स्थान है और तब से सरकार जन-जीवन में नए उत्साह, नयी शक्ति का संचार करने तथा जन-साधारण का भाग्य सुधारने का उत्तमोत्तम प्रयास कर रही है। सरकार प्राचीन समय के उन वैभवशाली दिनों को वापस लाने के उद्देश्य से कल्याणकारी राज्य के स्वप्न को साकार करने का भी प्रयत्न कर रही है, जब प्रत्येक क्षेत्र में शांति, संपन्नता एवं ऐश्वर्य था, जब व्यक्ति, परिवार के लिए जीवित रहता था और परिवार सम्पूर्ण गांव के लिए और इसी प्रकार. . . । इस कार्य को किस प्रकार से सम्पन्न किया जाय, इस प्रक्रिया को कहां से और किस प्रकार प्रारंभ किया जाय? इस प्रश्न का केवल एक ही उत्तर हो सकता है। कल्याणकारी राज्य का केन्द्र गांव ही होना चाहिए; इसलिए कल्याणकारी राज्य की स्थापना का कार्य गांवों से प्रारम्भ होना चाहिए। इस बात का अनुभव किया गया है कि पंचायतों की स्थापना से एक नए ग्रामीण जीवन के निर्माण में योग मिलेगा। ग्रामीण पंचायतों को केवल राज्य की सामाजिक, नैतिक, शैक्षणिक एवं आर्थिक विकास को प्रश्रय देने मे महत्वपूर्ण योग देना ही नही है, बल्कि वे प्रजातांत्रिक आदर्शो एवं परम्पराओ के स्वस्थ विकास के लिए भी अनिवार्य है। इतना ही नहीं, यह सामान्य धारणा है कि आज का प्रत्येक राज्य अधिकाधिक केन्द्रीकरण की ओर उन्मुख है और इनकी संतुलित व्यवस्था स्वायत्त शासित संस्थाओं के विकास से ही की जानी है, ताकि जन-साधारण स्वयं ही प्रशासन तथा सार्वजनिक जीवन के सामाजिक, आर्थिक एवं नैय्याधिक-जैसे अन्य क्षेत्रों में भी हाथ बटा सके। यह देश मे ग्रामीण पंचायतों के विकास से ही उत्तम ढग से हो सकता है।

विन्ध्य-प्रदेश-पंचायत आर्डिनेंस

उक्त आदर्शों एवं गांधीजी के ग्रामीण स्वराज्य के आदर्श को दृष्टि में रखते हुए १९४९ में विन्ध्य-प्रदेश-पंचायत आर्डिनेंस बनाया गया। इस आर्डिनेन्स से राज्य के ग्रामीण जन-जीवन में एक नये युग का सूत्रपात हुआ। राज्य सरकार सदा शासन के विकेन्द्रीकरण पर बल देती रही है और इस सिद्धान्त को कार्यान्वित करने की दृष्टि से विन्ध्य-प्रदेश-पंचायत आर्डिनेंस का बनाना विन्ध्य-प्रदेश सरकार की एक महत्वपूर्ण सफलता है। विन्ध्य-प्रदेश का समस्त ग्रामीण

क्षेत्र अब भली भांति सचेत है और एक नवीन ग्रामीण जीवन के निर्माण में रत है। ग्राम-पंचायत अधिनियम अल्प-कालीन प्रजातंत्र एवं स्वायत्त शासन के इतिहास में एक अभूतपूर्व कदम तथा महात्मा गांधी के राम-राज्य की स्थापना में एक प्रगति-स्तम्भ है। गाँवों के पुनर्निर्माण एवं विकास की दिशा में ग्रामीण पंचायतें ही धुरी-स्वरूप हैं।

पंचायतों का संगठन

इस प्रदेश में कुल १२७७६ गांव हैं, जिन्होंने १८०६ ग्राम-पंचायतों एवं ५८५ न्याय-पंचायतों का निर्वाचन किया है। ग्राम-पंचायतों की कुल संख्या १७७३९ और न्याय-पंचायतों की ९०३० है। निम्न तालिका मे जिलेवार स्थिति का पता चल सकता है--

क्रम सं०	जिले का नाम	जन-संख्या	गाँवों की संख्या	पटवारी हल्कों की संख्या	स्थापित पंचायतों की संख्या
१	रीवा	६०४०८३	२७९८	२४०	२८०
२	सतना	५५५६०३	२१४५	२५६	२५७
३	शहडोल	६५०७५०	२१७८	२४०	२४०
४	सीधी	४६४३०२	१९११	१३५	१३५
५	पन्ना	२५८७०३	१०९४	२१०	२०९
६	छतरपुर	४८११४०	१२१४	३३१	३२६
७	दतिया	१६४३१४	४५१	१३५	१३४
८	टीकमगढ़	३६६१६५	९८५	२६५	२६३

सरकार, सरकारी गजट में सूचना प्रकाशित कर पटवारी हल्का-विशेष के किसी गांव अथवा अनेक गावों के लिए एक ग्राम-पंचायत स्थापित करती है। आम तौर से प्रत्येक पटवारी-हल्कों में एक पंचायत (ग्राम-सभा) है। ग्राम-पंचायत की स्थापना गांववालों की स्वेच्छा से होती है। इसे गांव वालों पर लादा नही जाता। गांव का प्रत्येक प्रौढ़ पंचायत का सदस्य होता है। इस प्रकार गांव का प्रत्येक प्रौढ़ व्यक्ति, चाहे वह निरक्षर हो या साक्षर, अमीर हो या गरीब, ऊंची जाति का हो या निम्न जाति का, अपने भाग्य का स्वयं निर्माण करता तथा गांव के प्रशासन पर नियन्त्रण रखता है।

कार्यकारिणी

सरकार द्वारा ग्राम-सभा स्थापित हो जाने के बाद प्रत्येक ग्राम-सभा को अपने सदस्यों में से एक कार्य-समिति चुननी होती है, जिसे ग्राम-पंचायत कहते है। निर्वाचित सदस्यों की संख्या ५ से १५ के बीच भिन्न-भिन्न रहती है और इसे जन-संख्या के अनुपात में निम्नलिखित क्रम से नियमित बनाया जाता है :—

१—१,००० की जन-संख्या तक ६ सदस्य।

२—२,००० की जन-संख्या तक ९ सदस्य।

३—३,००० की जन-संख्या तक १२ सदस्य।

४—३,००० की जन-संख्या से अधिक पर १५ सदस्य।

क्षेत्र-विशेष में जन-संख्या के अनुसार परिगणित जाति, जन-जाति आदि के लिए स्थान सुरक्षित रहता है। पंचायतों का चुनाव संयुक्त मतदाता एवं प्रौढ़ मताधिकार के आधार पर होता है। पंचायतो का चुनाव दलगत सम्बद्धता के आधार पर नही होता। सदस्यों का चुनाव यथासंभव या करीब-करीब निर्विरोध होता है।

प्रशासनिक अधिकार एवं कर्तव्य

ग्राम-सभा गांव की 'विधान-समिति' के रूप में कार्य करती है और सभी कार्यों में अंतिम निर्णय देती है। पंचायत, कार्य-कारिणी होती तथा ग्राम-सभा के प्रति उत्तरदायी होती है। इस पर गांव के योग्य प्रशासन की जिम्मेदारी होती है और इसका मुख्य उद्देश्य क्षेत्र-विशेष में रहनेवाले लोगों का नैतिक, आध्यात्मिक, सामाजिक, आर्थिक एवं राजनीतिक स्तर का उन्नयन करना होता है। ग्राम-पंचायतों के जिम्मे अनेक कार्य सौंपे गए हैं। उसके आवश्यक कार्यों में सार्वजनिक गलियों का निर्माण, उनकी मरम्मत, व्यवस्था, स्वास्थ्य-कारी सहायता, सफाई, छुआछूत की बीमारियों के विरुद्ध

औपचारिक एवं निरोधात्मक साधनों का प्रयोग, कुओं एवं तालाबों का निर्माण, मरम्मत एवं व्यवस्था, पीने योग्य पानी की सप्लाई, कृषि, व्यवसाय एवं उद्योग के विकास में सहायता, आग बुझाने में सहायता, संतति-लाभ एवं शिशु-कल्याण-संबंधी सुविधाएं प्रदान करना आदि सम्मिलित है। इनके अतिरिक्त ग्राम-सभाओं के कुछ स्वेच्छा-संचालित कार्य भी होते है, जिनमे पेड़ रोपना, पशुओं का नस्ल-सुधार करना, अस्वास्थ्यकर गड्ढों को पाटना, ग्रामीण स्वयंसेवक दल संगठित करना, सहकारी समितियों की स्थापना करना, अकाल-पीड़ितों की सहायता करना, ग्रामीण खेल-कूद में उन्नति करना, वाचनालयों की स्थापना एवं उनकी व्यवस्था करना, तथा इस प्रकार के अन्य जनोपयोगी कार्य सम्मिलित हैं।

इस राज्य में सरकारी मालगुजारी वसूल करने का कार्य इन ग्राम-पंचायतों को नहीं सौंपा गया है। पंचायतों को पुलिस रखने का भी अधिकार नही दिया गया है। इसी प्रकार पंचायतों को व्यावसायिक एवं बैंक के हिसाब-किताब का अधिकार भी नही सौंपा गया है। पंचायत आर्डिनेंस के अनुसार दातव्य एवं धार्मिक संस्थाओं का प्रबन्ध भी पंचायतों का काम नहीं है।

न्याय-व्यवस्था के लिये ३ से लेकर ५ ग्राम-सभाओं की एक न्याय-पंचायत होती है, जिसमे प्रत्येक ग्राम-सभा से ५ सदस्य चुनकर आते है और इस प्रकार २०–२५ सदस्यों की एक न्याय-समिति बनती है। इस न्याय-पंचायत में दीवानी, फौजदारी एवं माल के छोटे-छोटे मामलों का निपटारा किया जाता है। राज्य के अन्तर्गत जिलेवार स्थापित न्याय-पंचायतों की संख्या इस प्रकार है :—

जिले का नाम	न्याय-पंचायतों की संख्या
रीवा	८५
सतना	८२
शहडोल	७३
सीधी	४२
पन्ना	६३
छतरपुर	१०४
टीकमगढ़	९२
दतिया	४४
कुल	५८५

न्याय-पंचायतों का कार्य-काल ३ वर्ष होता है। न्याय-पंचायतों को बहुत सीमित अधिकार दिये गये है। दीवानी मुकदमों में रुपयों की सीमा १०० रुपये तक निर्धारित है। ये पंचायतें भारतीय दंड-विधान की धारा १४०, १६९, १७९, २५५, २७९, ३३४, ३५२, ३५६, ४०३, ४११, ४२६ आदि के अन्तर्गत के मामलों का भी निपटारा कर सकती है। न्याय-पंचायत का सरपंच, शांति कायम रखने के उद्देश्य से, ऐसे किसी भी व्यक्ति से जमानत रखवा सकता है, जिससे सार्वजनिक शांति भंग होने की संभावना हो। कोई भी न्याय-पंचायत कैद की सजा नहीं दे सकती। पंचायती अदालत में कोई भी वकील पेश नहीं हो सकता।

निम्नलिखित विवरण से यह ज्ञात होता है कि विभिन्न वर्षों में न्याय-पंचायतों द्वारा कितने मुकदमों एवं आवेदन-पत्रों पर विचार किया गया तथा कितनों का निपटारा किया गया :—

वर्ष	विचारार्थ मुकदमों की संख्या	निपटाए मामलों की संख्या	जुर्माने के रूप में वसूल रकम
१९५२–५३	––	––	३,४८५)
१९५४–५५	१२०८२	१०१७१	१३,१३१)
१९५५–५६	१२९२०	९७३१	१५,८८५)

उपर्युक्त आंकड़े से यह स्पष्ट है कि यह आम धारणा गलत है कि ग्रामीण जनता स्वभाव से ही मुकदमेबाज होती है। वे लोग आम तौर पर शांतिपूर्वक रहना चाहते हैं और इस प्रकार न्याय-पंचायतों में मामलों का निपटारा शीघ्र हो जाता है।

ग्राम-पंचायतों का आर्थिक स्रोत

ग्राम-पंचायत अधिनियम के अनुसार ग्राम-पंचायतों का कार्य-क्षेत्र बहुत व्यापक है; किन्तु कार्यों की कुशलता एवं सफलता उनके लिए निर्धारित धन-राशि पर ही आश्रित है। उनके द्वारा मालगुजारी के अनुसार व्यापार तथा आजीविका, रोजगार तथा इमारतों पर कर लगाया जा सकता है। इसके अतिरिक्त उन्हें बाजारों तथा मेलों के सम्बन्ध में लगाये गये करों को भी वसूल करने का अधिकार होता है। उन्हें तौलनेवालों, अन्न एवं

कपड़े के व्यापारियों तथा किराये पर गाड़ियां चलाने वालों को लाइसेंस देने का अधिकार होता है। पंचायतों को व्यापार से होनेवाली वार्षिक आय पर भी कर लगाने का अधिकार होता है।

आय के उपर्युक्त साधन पंचायतों के अपेक्षित कार्यों को सम्पन्न करने के लिए पर्याप्त नहीं समझे जाते। आवश्यकता इस बात की है कि ग्राम-पंचायतों की आर्थिक स्थिति को अपेक्षाकृत सुदृढ़ करने के लिए नए आर्थिक स्रोतों को उत्पन्न किया जाय। प्रत्येक ग्राम के पास एक पंचायत-कोष होता है। इस कोष में कर, जुर्माना, अनुदान एवं दान के रूप में प्राप्त की गई धन-राशि संचित रहती है। इस कोष में सार्वजनिक संपत्ति से प्राप्त आय भी सम्मिलित की जाती है।

पिछले कुछ वर्षों में पंचायतों की आय एवं व्यय का विवरण इस प्रकार है :—

वर्ष	आय	व्यय
१९५२–५३	४४,५२४)	७२,१७१)
१९५३–५४	३९,९६३)	अप्राप्य
१९५४–५५	अप्राप्य	अप्राप्य
१९५५–५६	२,४६,७६८)	२,२७,०३४)

पिछले कुछ वर्षों में राज्य की पंचायतों को निम्न अनुदान दिये गये :—

वर्ष	अनुदान
१९५२–५३	३९,८०० रु०
१९५३–५४	६५,५२० रु०
१९५४–५५	१,५०,६९० रु०
१९५५–५६	१,२५,०५८ रु०

पंचायतों को निम्नलिखित रूप में भी सहायता दी जाती है :—

(अ) ३ से लेकर ५ पंचायतों के लिए एक पंचायत-सेक्रेटरी की निःशुल्क सेवाएं अर्पित की जाती हैं।

(ब) पंचायतों की स्थापना के बाद उन्हें तत्काल १२० रुपये का एक प्रारम्भिक अनुदान दिया जाता है।

(स) पंचायतों के स्थापित होने पर उन्हें निर्धारित फार्मों का रजिस्टर निःशुल्क दिया जाता है।

(द) प्रमुख पंचायतों को सामान्य कार्यों के लिए अनुदान दिया जाता है।

(इ) विशेष कार्यों एवं विकास-कार्यों के लिए अनुदान दिया जाता है।

पंचायतें सरकार से कर्ज भी ले सकती हैं। पंचायतों की आय के साधनों में वृद्धि करने के लिये विन्ध्य-प्रदेश सरकार को प्राप्त होनेवाले कुल राजस्व का कुछ भाग पंचायतों को स्थानान्तरित करने की योजना है। वर्तमान समय में पंचायतों की आय का अधिकांश सार्वजनिक गलियों एवं सड़कों के निर्माण, उनकी मरम्मत, देख-रेख, सफाई एवं उनमें प्रकाश का प्रबन्ध करने में व्यय होता है।

राष्ट्र-निर्माण-कार्य

राष्ट्र के पुनर्निर्माण में ग्राम-पंचायतों का बहुत महत्वपूर्ण स्थान है। पंचायतें चूंकि प्रशासन की बुनियादी इकाई है, इसलिये ग्रामीण-कल्याण के कार्यों मे ये महत्वपूर्ण योगदान करती है। पंचायतों के शिक्षण, जन-स्वास्थ्य एवं इस प्रकार के अन्य कार्य सरकार के सम्बन्धित विभागों से सम्बद्ध होते हैं। राज्य में जमींदारी-उन्मूलन के बाद ग्राम-पंचायतों की जिम्मेदारी बढ़ गई है। विकास-कार्यों में जन-शक्ति का अधिकाधिक उपयोग करने के लिए भी पचायते सचेत है। भूतपूर्व उपराज्यपाल श्री कस्तूरी संतानम् द्वारा संचालित एक तिहाई—दो तिहाई योजना के कार्यान्वियन मे इन ग्राम-पंचायतों द्वारा यथोचित प्रश्रय मिला है। इस योजना के अनुसार किसी भी विकास-कार्य के लिये ग्रामीण जनता श्रम, नकद अथवा किसी अन्य रूप में एक तिहाई व्यय-भार वहन करती है और उसका दो तिहाई व्यय-भार सरकार वहन करती है। पंचायतें आचार्य विनोबा भावे द्वारा संचालित भूदान-आंदोलन को सफल बनाने में भी योगदान करती है, जिसके अन्तर्गत भूमिहीन कृषकों को भूमि दी जाती है। इसके अतिरिक्त ग्राम-पंचायतें सामुदायिक योजना, साक्षरता-अभियान, अधिक अन्न उपजाओ अभियान, वन-महोत्सव, श्रमदान आदि-जैसे राष्ट्र-निर्माण-संबंधी अन्य कार्यक्रमों में भी भाग लेती हैं।

प्रशिक्षण-शिविर

विन्ध्य-प्रदेश में, पंचायतों की, प्रशिक्षित कर्मचारी रखने के सम्बन्ध में अपेक्षाकृत कम सहायता की जाती है। यह बहुत आवश्यक है कि पंचायतों के सदस्यों एवं सेक्रेटरियों को प्रशिक्षित करने के लिये प्रशिक्षण-केन्द्र खोले जायं। राज्य सरकार इस उद्देश्य से जिलों के

मुख्य नगरों में समय-समय पर अनेक प्रशिक्षण-शिविरों का आयोजन करती है। इस प्रकार के शिविरों की अवधि ७ दिन से १४ दिन तक की होती है।

प्रशासनिक ढाँचा तथा सरकारी नियंत्रण

मार्च १९५५ तक स्वायत्त शासन-विभाग सहकारिता विभाग के साथ सम्बद्ध रहा और संचालक, खाद्य एवं नागरिक पूर्ति विभाग तथा रजिस्ट्रार, सहकारी समिति क्रमशः उसके संचालक एवं उपसंचालक रहे। जिलों में सहकारिता एवं पंचायत के काम ८ जिला आर्गनाइजरों के निरीक्षण में चलते रहे। अप्रैल, १९५५ से उपर्युक्त दोनों विभाग अलग-अलग कर दिए गए और स्वायत्त शासन-विभाग का कार्य एक स्वतंत्र विभाग के रूप में प्रारम्भ हो गया। इसके एक स्वतंत्र संचालक तथा ग्राम-पंचायतों के एक सहायक संचालक तैनात किये गए। इस विभाग के लिए निम्नलिखित निरीक्षक एवं क्षेत्रीय कर्मचारियों की भी नियुक्ति की गई :—

१—जिला पंचायत इंस्पेक्टर—६

२—सहायक ग्राम पंचायत इंस्पेक्टर—२६

३—न्याय-पंचायत सेक्रेट्री—६००

४—सुपरवाइजर ग्राम-पंचायत—६००

ग्राम-पंचायतें राज्य सरकार के निरीक्षण एवं नियंत्रण में ही कार्य कर रही हैं। ग्राम-पंचायत अधिनियम की धारा ९५ के अनुसार सरकार पंचायतों के किसी भी कार्य की जांच कर सकती है, किसी भी प्रकार के विवरण एवं रेकार्ड की मांग कर सकती है और किसी भी पंचायत को भंग कर सकती है। आर्डिनेंस में निर्धारित कार्यों को न करने पर ग्रामीण अधिकारियों को भी पदच्युत किया जा सकता है। इसके अतिरिक्त अन्य अनेक मामलों में पंचायतों के कार्यों को वैध रूप प्रदान करने के लिए सरकार की मंजूरी लेनी आवश्यक है। किन्तु, यदि हम चाहते हैं कि पंचायतें अपेक्षाकृत अधिक प्रजातांत्रिक बनें, तो हमें सरकारी नियंत्रण को कम करना होगा। फिर भी, सरकारी नियंत्रण का उद्देश्य पंचायतों के कार्यों की कार्य-कुशलता को बनाये रखना है और इस प्रकार का नियंत्रण तब तक नहीं हटाया जा सकता, जब तक कि जनता, सही अर्थों में, सामाजिक उत्तरदायित्व की दृष्टि से जाग्रत न हो जाय।

उपसंहार

यद्यपि विन्ध्य-प्रदेश राज्य शैशवावस्था में है, फिर भी इसने पं० शम्भूनाथ शुक्ल के नेतृत्व में निर्मित लोकप्रिय मंत्रिमंडल के शासन-काल में पर्याप्त प्रगति की है। पंचायतों की योजना १९४९ में कार्यान्वित की गई थी और आज हम देखते हैं कि ग्राम-पंचायतों ने न्यूनतम संभव समय में अत्यधिक कार्य किया है। ग्राम पंचायतों ने प्रथम पंचवर्षीय योजना के कार्यान्वयन में महत्वपूर्ण योग दिया है और यह कहने की आवश्यकता नहीं कि द्वितीय पंच-वर्षीय योजना में भी इनका महत्वपूर्ण योग रहेगा। यद्यपि पंचायतों का कार्य कठिनाई से अग्रसर होता रहा है, फिर भी इसे पूर्ण रूप से संतोषजनक कहा जा सकता है। शिक्षा के अभाव, अधिकारियों के निहित स्वार्थ एवं निजी उद्देश्य, आर्थिक कठिनाई एवं आवश्यक सरकारी हस्तक्षेप के कारण इस दिशा में कठिनाइयां उपस्थित होती रही हैं। फिर भी, चूंकि यह प्रदेश देश का बहुत पिछडा हुआ इलाका है, इसलिये यहां समाज-सेवा के लिए नागरिक चेतना फैलने में समय लगेगा। कुछ व्यावहारिक कठिनाइयों एवं त्रुटियों के कारण विन्ध्य-प्रदेश सरकार को विधान-सभा द्वारा पंचायत संशोधन विधेयक, १९५५ पारित करना पड़ा, जिसकी स्वीकृति अभी हाल में भारतीय गणतंत्र के राष्ट्रपति ने दी है। आशा है कि हमारी पंचायतें राज्य के प्रशासन में उपयोगी योगदान कर सकेंगी। इतना ही नहीं, हमारी पंचायतें, यथासंभव, प्रकाश-स्तम्भ का कार्य कर रही है, जिससे हमारी संस्कृति, ज्ञान एवं सम्पन्नता में अभिवृद्धि हो सकेगी।

मादक द्रव्य एवं बिक्री-कर

इस प्रदेश में मादक द्रव्य-विभाग व बिक्री-कर-विभाग का पुनः निर्माण १–४–१९५० को हुआ।

प्रारम्भ में बिक्री-कर विन्ध्य-प्रदेश अध्यादेश १९४९ द्वारा १–४–१९५० से लगाया गया, परन्तु भारतीय संविधान की धारा २८६ को व्यवहृत करने की दृष्टि से मध्य प्रदेश बिक्री-कर अधिनियम १९४७ कतिपय संशोधनों के पश्चात् १–४–१९५१ से लागू किया गया है। इस प्रकार बिक्री-कर अधिनियम 'क' श्रेणी के राज्यों के स्तर पर ला दिया गया है।

इस अधिनियम के प्रचलन के पश्चात् जो कठिनाइया व्यापारियों को अवगत हुई, उनके निवारणार्थ इसमें कतिपय संशोधन किये गये, जो २–१–१९५४ को राष्ट्रपति की स्वीकृति प्राप्त होने पर लागू किये गये हैं।

संशोधन में मुख्यतः छोटे व्यापारियों को बिक्री-कर-सम्बन्धी कठिनाइयों को हटाने का प्रयत्न किया गया है। हलवाइयों, शर्राफो, दवाई बेचनेवाले व्यापारियों के लिये बिक्री-कर के स्थान पर वार्षिक अनुज्ञप्ति शुल्क की व्यवस्था की गई है। साथ ही उत्पादक व्यापारियों को पुनः बिक्री हेतु खरीदे माल पर छूट देने व विक्रेता के विप्लावित-कर-निर्धारण के पुनः निर्धारण की उचित व्यवस्था की गई है।

समीपवर्ती राज्यों के बिक्री-कर की अनुसूची को ध्यान में रखते हुए राज्य में भी उचित अनुसूची १–९–१९५४ से चालू की गई है। राज्य मे प्रचलित बिक्री-कर नियम मे भी १ली जनवरी, सन् १९५५ मे व्यापारियों की सुविधा हेतु कतिपय संशोधन किये गये है।

मादक-द्रव्य—राज्य मे मद्य-निषेध नहीं है। परन्तु मादक द्रव्यों की खपत कम करने के विचार से मादक द्रव्यों पर लगाये गये शुल्क की दरों में उत्तरोत्तर वृद्धि करना सरकार की नीति रही है।

राज्य की सीधी व ब्योहारी तहसीलों में मद्रास-पद्धति की व्यवस्था की गई है, जिससे भविष्य में मद्य-निषेध लागू करने में कठिनाई न हो। शराब की दुकानों का क्रमशः ह्रास किया जा रहा है।

राज्य मे १९५९ से अफीम की खपत बन्द कर देने की नीति को सफल बनाने की दृष्टि से विन्ध्य-प्रदेश में २९ मार्च सन् १९५२ से कुछ मामूली संशोधनों के सहित उत्तर प्रदेश मादक अधिनियम लागू किया गया है तथा इसके अन्तर्गत नियम बनाये गये है। मदक पीने के आदी व्यक्तियों की सूची तैयार की गई है और उन्हें पंजीकृत किया गया है तथा ३० सितम्बर १९५४ के बाद मदक पीनेवालों का पंजीयन करना बन्द कर दिया गया है। क्रमशः इन पीनेवालों की संख्या मे ह्रास होगा और अफीम केवल दवाई मे प्रयोग हेतु मगाई जायगी। साथ ही अफीम सेवन करनेवालों के हित के लिए नियम विचाराधीन है।

राज्य मे प्रचलित रीवा राज्य आबकारी अधिनियम, १९२१ को 'क' श्रेणी के राज्यों के समान बनाने हेतु कतिपय संशोधन किये गये है और वे संशोधन १७ फरवरी १९५५ से लागू किये गये है। इन संशोधनों से जिलाधीश भी अधिकारी शासन से सम्बद्ध हो गये हैं।

कृषि-आय-कर—२९ सितम्बर, १९५१ से उत्तर प्रदेश कृषि-आय-कर अधिनियम कतिपय संशोधनों के पश्चात् लागू किया गया है और उत्तर प्रदेश के ढर्रे पर बनाये गये नियम भी फरवरी, सन् १९५२ से स्वीकृत किये गये

हैं। इस संबंध में कर-निर्धारण हेतु सम्पत्ति का मूल्य-निर्धारण-कार्य डिप्टी कलेक्टरों द्वारा किया जा रहा है।

स्टाम्प—'ग' राज्य अधिनियम १९५० के द्वारा-भारतीय स्टाम्प ऐक्ट १८९९ विन्ध्य-प्रदेश में लागू किया गया है। इस अधिनियम के प्रचलन से विन्ध्य-प्रदेश में जो रीवा स्टेट स्टाम्प ऐक्ट लागू रहा, उसकी स्टाम्प की दर में कमी आ गई है।

समीपवर्ती राज्यों में प्रचलित भारतीय स्टाम्प ऐक्ट १८९९ के स्टाम्प की शरह में समयानुसार सुधार किया जा चुका था। भारतीय स्टाम्प अधिनियम में कतिपय सुधार किये गये, जिससे भारतीय स्टाम्प ऐक्ट के प्रचलन के पूर्व स्टाम्प की दर कायम रह सके। संशोधन राष्ट्रपति द्वारा स्वीकृत किये जाकर १५–६–५३ से लागू किये गये है।

जन्म-मरण एवं विवाहों का पंजीयन—जन्म-मरण एवं विवाहों का पंजीयन जन्म-मरण एवं विवाह अधिनियम १८८६ की धारा ६ के अन्तर्गत महापंजीयक तथा पंजीयक का कार्य-संपादन बिक्री-कर तथा आबकारी-आयुक्त और जिलाधीश करते रहे।

१९५५ में विशेष विवाह अधिनियम १९५४ लागू होने से जिलाधीश अपने-अपने जिले के लिए अधिनियम के अन्तर्गत विवाह-अधिकारी नियुक्त किये गये है।

बिक्री-कर व मादक द्रव्य-विभाग एक सामूहिक विभाग है। इनकी आय की मदें अलग-अलग हैं।

विद्युत् एवं यांत्रिक विभाग

सामाजिक विकास और औद्योगिक विकास का अन्योन्याश्रित सम्बन्ध है। इनके विकास के लिए विद्युत्-शक्ति का प्रयोग भी नितान्त आवश्यक है। फलतः विन्ध्य-प्रदेश सरकार ने प्रथम पंचवर्षीय योजना के अन्तर्गत उमरिया के विद्युतीकरण में ९९ लाख, पन्ना-छतरपुर के लिए अल्पकालीन प्रस्ताव के लि: २.८६ लाख, पन्ना, छतरपुर, टीकमगढ़ तथा दतिया के लिए दीर्घकालीन प्रस्ताव में २३.४७ लाख, रीवा, सतना, मैहर के लिए अल्पकालीन प्रस्ताव में १०.९८ लाख, नौगांव, शहडोल, सीधी के विद्युतीकरण के लिए १२ लाख और सतना थर्मल स्टेशन-योजना के लिए ५२.२० लाख रुपयों का अर्थात् १०२.५० लाख रुपयों के प्रावधान की स्वीकृति प्रदान की। १ अप्रैल सन् ५३ से ३१ मार्च सन् १९५६ तक ५१.१७ लाख रुपये तत्सम्बन्धी कार्यों में व्यय किये गये। बाकी रुपये आगामी पंचवर्षीय योजना में व्यय करने का निश्चय किया गया।

अप्रैल सन् १९५६ से १५ अगस्त सन् १९५६ तक निम्न व्यय विद्युत्-योजनाओं में किया गया। उमरिया के विद्युतीकरण, पन्ना, छतरपुर, टीकमगढ़ तथा दतिया के दीर्घकालीन और पन्ना, छतरपुर के अल्पकालीन प्रस्ताव में सतना, रीवा और मैहर के विद्युत्-गृहों के लिए, शहडोल, सीधी और नौगांव में विद्युतीकरण तथा नागौद में विद्युत-प्रसार के लिए और सतना में थर्मल स्टेशन के लिए ११ किलोवाट ट्रांसमीटर लाइन की स्थापना पनागर से बिजावर तक करने के लिए, वाष्प-शक्ति-स्थानकबुढ़ार (१००,०० किलोवाट) तथा सतना के विद्युत्-स्थानक की उत्पादन-क्षमता को बढ़ाने के निमित्त (१०,००० किलोवाट)
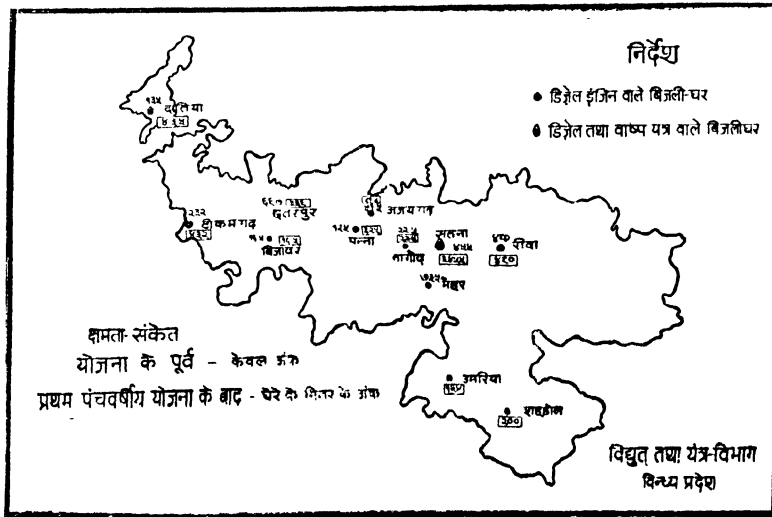
उत्पादन-यन्त्र लगाने अथवा पड़ोसी राज्यों की अन्य विद्युत्-योजनाओं से प्रचुर मात्रा में शक्ति प्राप्त करने के हेतु विद्युत्-प्रसार-उपस्थानकों तथा ग्रामीण विद्युतीकरण योजना एवं परिगणित तथा नवीन योजनाओं के अन्वेषण और तत्सम्बन्धी अन्य व्यय-भार आदि के लिए ३४.२५ लाख रुपयों का प्रावधान स्वीकृत था, जिसमें से एक अप्रैल सन् ५६ से १५ अगस्त ५६ तक में १९.७१ लाख रुपये व्यय हुए। अब तक उमरिया का विद्युतीकरण सम्पन्न हो चुका है। शहडोल में विद्युतीकरण के लिए खम्भे गड़ चुके हैं। विद्युत्-गृह के निर्माण का कार्य आरम्भ कर दिया गया है। १०० किलोवाट के विद्युत्-उत्पादन-यन्त्र के दो सेट, जो शहडोल में स्थापित होंगे, आ चुके हैं।

अल्पकालीन प्रस्ताव—सतना-रीवा में विद्युत्-प्रदाय उपस्थानक पूर्ण हो गये हैं। एक दो सौ किलोवाट सेट और दो दो सौ किलोवाट सेट क्रमशः रीवा, सतना के लिए प्राप्त हो चुके हैं। लाइनें बिछाने और राजकीय भवनों के लिए अण्डर-ग्राउण्ड सर्विस आदि के कार्य रीवा नगर के लिए पूर्ण हो चुके हैं। सतना और मैहर मे एल० टी० लाइनों का काम ९० प्रति शत हो चुका है।

दीर्घकालीन प्रस्ताव—थर्मल स्टेशन, सतना का आरम्भिक कार्य सम्पन्न हो चुका है। दो अल्ट्रावेटर सेट आ चुके हैं। एक सेट अब तक पंजाब सरकार से नहीं प्राप्त हुआ है। सतना से रीवा के लिए २० मील तक तार लगा दिये गये हैं। सतना-उँचेहरा का कार्य पूर्ण हो चुका है। सतना-जैतवारा में भी १२ मील तक कार्य हो चुका है। सतना नगर में लाइन का काम चालू है।

विद्युत्-पुनर्गठन-योजना के अन्तर्गत पन्ना में १०० किलोवाट के दो, छतरपुर में १०० किलोवाट के तीन, दतिया में २०० किलोवाट का एक तथा टीकमगढ़ में १०० किलोवाट के एक डीजल जनरेटिंग सेट की स्थापना का काम चालू है। इन स्थानों में लाइनों के काम के हेतु खम्भे गाड़े जा चुके हैं तथा आवश्यक उपादानों से उन्हें सज्जित कर दिया गया है। तार लगाने का काम भी किया जा रहा है।

दतिया के अतिरिक्त अन्य स्थानों में लाइनों की स्थापना का कार्य भी उन्नति-पथ पर है।

शहडोल, सीधी में ७५ प्रति शत लाइनें लगा दी गयी हैं।

डीजेल सेटों की स्थापना के हेतु नीवें तैयार की जा चुकी हैं। डीजल आयल स्टोरेज टैंक बनवाने के लिए आदेश दिया जा चुका है। वाटर टैंक बनवाने के लिए टेण्डर प्राप्त हो चुके हैं।

नौगांव के विद्युतीकरण के लिए राज्य सरकार ने ५.९४ लाख रुपये व्यय करने की स्वीकृति दे दी है। नौगांव से छतरपुर तक लाइनों की स्थापना के लिए टेण्डर मांगे गये हैं; किन्तु राज्य-सरकार ने आदेश दिया कि उक्त कार्य २.७२ लाख रुपयों में पूर्ण किया जाय; अतः तत्सम्बन्धी नवीन योजना विचाराधीन है।

सीधी में विद्युत्-प्रदाय-स्थानक के निर्माण का कार्य आरम्भ कर दिया गया है।

जन-स्वास्थ्य-इंजीनियरिंग की प्रगति

विन्ध्य-प्रदेश में देहाती और शहरी क्षेत्रों में जल-पूर्ति-योजनाओं को कार्यान्वित करने के दृष्टिकोण से जून १९५४ में जन-स्वास्थ्य-इंजीनियरिंग विभाग की स्थापना की गई। योजनायें तैयार की गयीं और सितम्बर १९५४ तक भारत सरकार की स्वीकृति प्राप्त हुई। प्रथम पंचवर्षीय योजना में इसकी प्रगति निम्नलिखित हैं :—

नगर-जल-पूर्ति-योजना	अनुमानित व्यय
रीवा जल-पूर्ति-योजना	२६,३८,०७० रुपये
रीवा नाली-योजना	३०,००,००० रुपये
सतना जल-पूर्ति-योजना	१५,२७,४०० रुपये
छतरपुर जल-पूर्ति-योजना	१८,२६,००० रुपये
टीकमगढ़ जल-पूर्ति-योजना	८,७०,००० रुपये
पन्ना जल-पूर्ति-योजना	१२,७२,००० रुपये

देहाती जल-पूर्ति-और सफाई-योजना	अनुमानित व्यय
त्योंथर तथा बिजावर क्षेत्र	२४,००,००० रुपये

देहाती जल-पूर्ति-योजना पर कुल ६,३१,१६४ रुपये व्यय हुए।

द्वितीय पंचवर्षीय योजना के अन्तर्गत १ अप्रैल
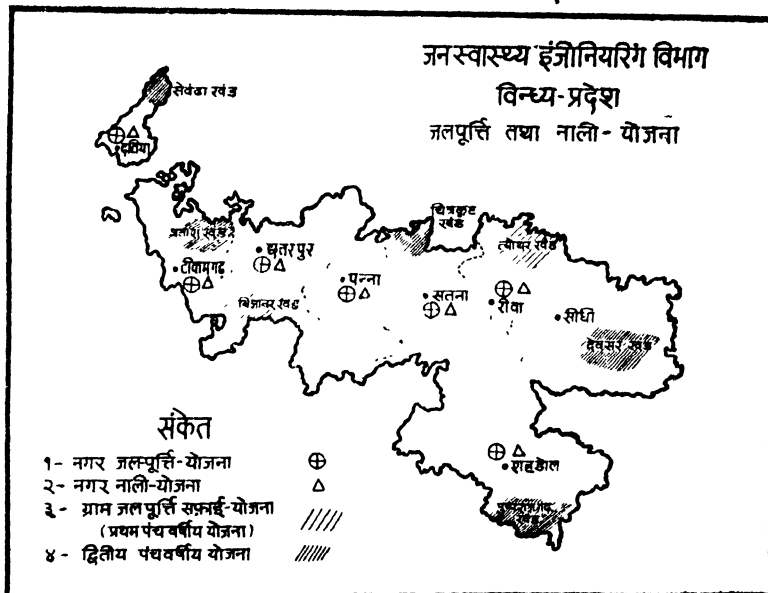
१९५६ से अगस्त १९५६ के अन्त तक इन योजनाओं की प्रगति इस प्रकार है :—

नगर जल-पूर्ति और सफाई-योजना	अनुमानित व्यय (लाख रुपये में)	व्यय
रीवा जल-पूर्ति-योजना	२६.३८	५३,६१८ रु०
रीवा नाली-योजना	३०.००	६७०४ रु०
सतना जल-पूर्ति-योजना	१५.२७४	२८०४३ रु०
छतरपुर जल-पूर्ति-योजना	१८.२०	१०२२५ रु०
टीकमगढ़ जल-पूर्ति-योजना	८.७०	१३३६ रु०
पन्ना जल-पूर्ति-योजना	१२.७२	३१७८५ रु०

शहडोल जल-पूर्ति और नाली-योजना (योजना बनाई जा रही है) दतिया जल-पूर्ति-योजना (योजना बन चुकी है)

राजगढ़ जलपूर्ति-योजना (संतोषजनक ढंग से हो रहा है) हरपालपुर नाली-योजना (पर्यवेक्षण-कार्य हो रहा है) सतना थर्मल स्टेशन को अस्थायी जल-पूर्ति २९,०००) देहाती जल-पूर्ति और सफाई योजना के अंतर्गत त्योंथर क्षेत्र और बिजावर क्षेत्र का काम संतोषजनक ढंग से चल रहा है। जतारा, सेंवढ़ा, पुष्पराजगढ़, देवसर और चित्रकूट क्षेत्र की योजना तैयार करने हेतु पर्यवेक्षण-कार्य किया जा रहा है।

सहकारिता की ओर अग्रसर विन्ध्य-प्रदेश

विन्ध्य-प्रदेश में सहकारिता की दिशा मे गत वर्षों में बहुत ठोस कदम उठाए गए हैं। प्रथम पंचवर्षीय योजना में विन्ध्य-प्रदेश कोआपरेटिव बैंक लिमिटेड, रीवा के शेयर कैपिटल के रूप में सरकार की ओर से ३ लाख रुपये प्राप्य थे। राज्य भर में सहकारी आन्दोलन को सफल बनाने में इस रकम का पूरा-पूरा उपयोग किया गया, जिसके परिणाम-स्वरूप उपर्युक्त बैंक की सदस्यता, शेयर कैपिटल एवं वर्किंग कैपिटल में कई गुनी वृद्धि हो गयी। प्रथम पंचवर्षीय योजना के प्रारम्भ में जहां इस बैंक की सदस्यता ६० थी, जहां उसका शेयर कैपिटल एवं वर्किंग कैपिटल क्रमशः ५,००० एवं १०,३९१ रुपये थे, वहां योजना की परिसमाप्ति के समय उसकी सदस्यता ३३४ हो गयी और शेयर कैपिटल तथा वर्किंग कैपिटल क्रमशः ४,४४,५६५ एवं ६,२७,३४८ रुपये हो गया।

विन्ध्य-प्रदेश कोआपरेटिव बैंक की आर्थिक स्थिति अपेक्षाकृत सबल हो जाने से राज्य में सहकारी समितियों के विकास पर भी अनुकूल प्रभाव पड़ा। ये समितियाँ प्रथम पंचवर्षीय योजना के प्रारम्भ में जहां ४६४ थी, वहां उनकी संख्या योजना के अन्त तक ७३२ हो गयी। इसी प्रकार इन समितियों की सदस्यता एवं वर्किंग कैपिटल में भी पर्याप्त वृद्धि हुई। उनकी सदस्यता प्रारम्भ मे १०,३३८ थी, जो बाद में बढ़कर २०,७०० हो गयी। वर्किंग कैपिटल में तो कई गुनी वृद्धि हो गयी। प्रारम्भ में वर्किंग कैपिटल केवल ३,९३,७११ रुपये था, जो योजना के अन्त में बढ़कर १३,७७,५६६ रुपये हो गया।

राज्य में सहकारी संस्थाओं के सुचारु रूप से संचालन के लिए कुशल एवं प्रशिक्षित कर्मचारियों के अभाव को दूर करने के लिए केन्द्रीय सरकार की सहायता से १९५५ से एक प्रशिक्षण विद्यालय चालू किया गया। इस संस्था के संचालन के लिए ३७,६०० रुपये की स्वीकृति दी गयी और इसमे से ३७,५१९ रुपये वास्तव में व्यय भी किए गए। प्रथम बार इस विद्यालय से ७० व्यक्तियो का दल प्रशिक्षित किया गया, जब कि द्वितीय बार के लिए ६० व्यक्तियों के एक अन्य दल का प्रशिक्षण १-३-५६ से प्रारम्भ किया गया।

इसी प्रकार गांवो मे सहकारिता-आन्दोलन को प्रश्रय देने के लिए सोहावल सामुदायिक योजना-क्षेत्र में एक ग्रामीण साख योजना चालू की गयी, जिसका नाम रूरल क्रेडिट पाइलट प्रोजेक्ट रखा गया। इस योजना के कार्यान्वियन के लिए ६६,२०० रुपये की स्वीकृति दी गई, जिसमे से योजना के अन्त तक ६३,५८८ रुपये व्यय किए गए। इस योजना के अनुसार एक क्रय-विक्रय समिति तथा १० बड़ी बहुद्देशीय समितियां स्थापित की गयी। वित्तीय वर्ष के अन्त तक बहुद्देशीय समितियों की सदस्यता ८८६ हो गयी थी और उनके शेयर कैपिटल एवं वर्किंग कैपिटल क्रमशः ६६,७५८ एवं १,४३,८०८ रुपये हो गये। इसी प्रकार उक्त अवधि में क्रय-विक्रय समिति की सदस्यता २६ हो गयी थी और उसका शेयर कैपिटल १२,७१० रुपये हो गया था।

प्रथम पंचवर्षीय योजना में राज्य के अन्तर्गत सहकारिता के क्षेत्र में प्राप्त सफलताओं से प्रोत्साहित होकर द्वितीय पंचवर्षीय योजना में, इस दिशा में, कई गुना अधिक प्रावधान रखा गया है। आगामी पांच वर्षों में कुल ९२.८५ लाख रुपयों के अनुमान से सहकारिता के विकास-सम्बन्धी १० योजनाएं कार्यान्वित की जानी हैं, जिनका अन्तिम उद्देश्य सम्पूर्ण प्रदेश की जनता को सहकारिता के सूत्र में बांध देना है।

जन-कार्य-विभाग की प्रगति

व्यापार, उद्योग तथा देश को समृद्धशाली बनाने के लिए यातायात का विकास नितान्त आवश्यक है। इसी दृष्टि से विन्ध्य-प्रदेश में प्रथम पंचवर्षीय योजना मे यातायात के सम्बन्ध में, जिसके अन्तर्गत बड़े पुलों का निर्माण, छोटे पुलों का निर्माण, विद्यमान पक्की सड़कों का पुलियों-सहित निर्माण, मौसमी सड़कों का निर्माण, पुलियों का निर्माण, सड़कों पर डामर की व्यवस्था थे, १२५.८६ लाख रुपयों का प्रावधान रखा गया था। सन् १९५५-५६ तक इस सम्बंध में ११२.११ लाख रुपये व्यय हुए। द्वितीय पंचवर्षीय योजना में ३१३.५० लाख रुपयों का प्रावधान रखा गया, जिसमें से १९५६-५७ के वित्तीय वर्ष में अगस्त सन् ५६ तक ११.८२ लाख रुपये व्यय हुए। इस प्रकार कुल १२३.९३ लाख रुपये व्यय हुए। इसी प्रकार अधिक अन्न उपजाओ योजना और बड़ी सिंचाई योजना-कार्यों के लिए ३०.६६ लाख रुपये का प्रावधान था, जिसमें से सन् १९५५-५६ तक २७.४५ लाख रुपये व्यय हुए। द्वितीय पंचवर्षीय योजना में ३०६.६८ लाख रुपये का प्रावधान था। इस प्रावधान में से ४.९५ लाख रुपये अगस्त ५६ तक व्यय हुए। इस प्रकार इन दोनों योजनाओं में ३२.४० लाख रुपये व्यय हुए। भवनों आदि के निर्माण में ५१.०६ लाख रुपये सन् १९५५-५६ मे और अगस्त सन् १९५६ तक १६.३४ लाख रुपये व्यय हुए। इस तरह इमारतों में ६७.४० लाख रुपये व्यय किये गये।

ोपालप्रसाद खरे

विन्ध्य-प्रदेश की द्वितीय पंच-वर्षीय योजना

भारतवर्ष के मध्य में २३ हजार वर्गमील विस्तृत विन्ध्य-देश ३६ लाख मनुष्यों का निवास-स्थान है। प्रायः ३३ ाख लोग ग्रामों में रहते है व ३ लाख नगरों में। अतः वन्ध्य-प्रदेश की उन्नति १३ हजार ग्रामों की उन्नति पर नर्भर है। इसी दृष्टिकोण के आधार पर यहां की प्रथम ंचवर्षीय योजना, जिसमें ६९१ लाख रुपये का प्रावधान ा, कृषि-प्रधान थी। २४६ लाख रुपये कृषि तथा ग्राम-वकास पर व्यय करने की योजना थी। विद्युत्-योजना, उद्योग, यानायात तथा सामाजिक सेवाओं पर क्रमशः ७३ लाख, ६ लाख, १२६ लाख व १०० लाख रुपये व्यय होने का अनुमान था।

द्वितीय पचवर्षीय योजना में, जो कि १ अप्रैल १९५६ मे लागू हुई है, २४९० लाख रुपयों के व्यय का अनुमान है। विभिन्न विभागों के लिये प्रावधान निम्नलिखित अनुमार है :–

द्वितीय	(लाख रुपयो मे)	(कुल का प्रति शत)	प्रथम	(लाख रुपयों मे)	(कुल का प्रतिशत)
कृषि कार्य-क्रम	४९५.८४	१९.९	कृषि तथा ग्राम विकास	२४५.८	३५.६
राष्ट्रीय विस्तार एवं सामुदायिक योजना	१९०.००	७.८			
सिंचाई एवं विद्युत्-शक्ति	५५२.३५	२२.२	विद्युत्-योजना	७२.५	१०.४
उद्योग एवं खनिज	१५८.८९	६.३	उद्योग	६.०	.८
यातायात	३१३ ५०	१२.५	यातायान	१२५.९	१८.३
सामाजिक सेवाये	७१८.७६	२८.८	सामाजिक सेवाये	२४०.८	३४.९
विविध	६०.२३	२.५			
योजनाओं का योग	२४९०.००	१००.००		६९१.०	१००.००

द्वितीय योजना में भी कृषि के विकास पर ध्यान दिया गया है। इस बात को ध्यान मे रखते हुए कि राष्ट्रीय विस्तार एवं सामुदायिक योजनाओं का मुख्य ध्येय कृषि की उन्नति करना है, इस योजना में भी कुल अनुमानित व्यय का २८ प्रति शत खेती की उन्नति मे लगना है। सिंचाई एवं विद्युत्-शक्ति में कुल व्यय का २२ प्रति शत खर्च होना है। इस २२ प्रति शत में से ९ प्रति शत सिचाई में व शेष १३ प्रति शत विद्युत्-शक्ति की उन्नति में लगाया जायगा। अस्तु, कुल मिलाकर द्वितीय योजना में भी कृषि-कार्यों में व्यय होनेवाली धनराशि कुल व्यय की वही प्रति शत होगी, जो कि प्रथम पंचवर्षीय योजना में थी। उद्योग एवं खनिज पर कुल का ६ प्रति शत व्यय होना है, जब कि प्रथम योजना में अनुमानित व्यय १ प्रति शत था। यातायात एवं सामाजिक सेवाओं से सम्बन्धित योज-

नाओं पर प्रथम व द्वितीय पंचवर्षीय योजनाओं के बीच विशेष अन्तर नहीं है। जो थोड़ा-सा अन्तर है, वह इस कारण है कि द्वितीय योजना में उद्योग एवं खनिज पर होनेवाला व्यय प्रथम योजना की अपेक्षा अधिक है। इसी प्रकार विद्युत्-शक्ति में भी अधिक व्यय होने का अनुमान किया जाता है। संपूर्ण भारत की द्वितीय योजना में औद्योगीकरण पर विशेष जोर दिया गया है। इसी के अनुसार यद्यपि हमारी योजना कृषि-प्रधान है, तथापि उद्योगों की उन्नति में व्यय होनेवाली धन-राशि अपेक्षाकृत ६ गुनी कर दी गई है। कृषि-कार्यक्रम के अन्तर्गत एक सर्वतोमुखी योजना बनाई गई है, जिसमें नई भूमि की जुताई, खाद-वितरण, तकावी-वितरण, बांध-बंधियों का निर्माण, सिचाई के साधनों का प्रसार, पशुओं की उन्नति, भूमि-संरक्षण सहकारी समितियों एवं ग्राम-पंचायतो का निर्माण आदि महत्वपूर्ण साधनों को स्थान दिया गया है। इस समय विन्ध्य-प्रदेश में केवल ३५ प्रति शत क्षेत्र जोते-बोये जाते हे व लगभग १० प्रतिशत क्षेत्र ऐसा है, जिसमें इस समय कोई कृषि-कार्य नही होता, परन्तु वह जोतने-बोने योग्य है।

ऐसी भूमि के विकास के लिये ३५ लाख रुपये के व्यय से एक ट्रैक्टर यूनिट बनाने की योजना है, जिसके द्वारा प्रायः १ लाख २० हजार एकड़ क्षेत्र जोता-बोया जा सकेगा और ऐसा अनुमान है कि इस क्षेत्र में अनाज की पैदावार २२ हजार टन के लगभग होगी।

विन्ध्य की खेती अधितकर वर्षा पर निर्भर है। इसका परिणाम यह है कि यदि समय से पर्याप्त वर्षा न हुई, तो खेती चौपट हो जाती है और किसानों तथा अन्य लोगों को भी कठिनाई का सामना करना पड़ता है। इस कठिनाई को दूर करने के लिये सिचाई की योजना बनाई गई है, जिसका विवरण नीचे की तालिका में दिया गया है:—

योजना	अनुमानित व्यय (रुपया लाखों में)	लक्ष्य योग	लाभान्वित क्षेत्रफल (एकड़ में)	अतिरिक्त उत्पादन (टन में)
नये कुओं का निर्माण	४	४०० कुएं	१२०००	२६५
रहट	२	४०० रहट	१२०००	२६५
पम्पिंग सेटों का वितरण	४	१३५ पम्प	२१७५	४२५
धान की बन्धियों का निर्माण	११	५६०००	५६०००	१२४३०
रबी की बन्धियों का निर्माण	१७	५००००	५००००	१०५५०
छोटी सिंचाई-योजना	८३	—	—	—

विन्ध्य-प्रदेश में प्राकृतिक असुविधाओं के कारण बड़ी-बड़ी नहरें बनाना सम्भव नहीं है। बहुत ही थोड़ी नहरें अब तक बन पाई है और इसीलिये द्वितीय पंचवर्षीय योजना में सिचाई के अन्य साधनों पर अधिक जोर दिया गया है।

भारतवर्ष की औसत प्रति एकड़ पैदावार अन्य देशों की अपेक्षा बहुत कम है। विन्ध्य-प्रदेश की परिस्थिति भारत से भिन्न नहीं, अतः भूमि की उर्वरा-शक्ति बढ़ाना किसी भी कृषि-योजना का मुख्य अंग होना चाहिये। द्वितीय योजना में शहरी खाद-योजना पर ९० हजार रुपये, खाद-वितरण पर ४ लाख ५० हजार रुपये व हरी खाद पर १ लाख रुपये व्यय करने का अनुमान है; साथ ही उन्नत बीज-वितरण का भी प्रबन्ध किया गया है, जिस पर प्रायः १ लाख ५० हजार रुपये व्यय होने का अनुमान है।

विन्ध्य-प्रदेश मे फल व दुग्ध की कमी होने से हम लोगों का भोजन आटा, दाल व चावल प्रधान है। उसमें साग-सब्जियां, फल, दूध इत्यादि पोषक पदार्थों की कमी रहती है। जितनी केलोरी एक मनुष्य के लिये आवश्यक होती है, उतनी हम को नहीं मिल पातीं। द्वितीय योजना में साग, फल तथा अन्य कई फसलों के विकास के लिये ७ लाख रुपये व हार्टीकल्चर बागवानी के विकास के लिये १२ लाख रुपये के व्यय का अनुमान है।

विन्ध्य-प्रदेश के खेतों का औसत क्षेत्रफल १.५ एकड़ के करीब है। इस प्रकार के छोटे खेतों में ट्रैक्टर चलना अस-

म्भव है। दूसरी ओर कृषि के यंत्रीकरण से बेरोजगारी फैलने का भय है। अतः हमें अपने कृषि-कार्य के लिये बैलों पर ही निर्भर रहना पड़ेगा। हमारे बैलो एवं गायों की दशा अत्यन्त शोचनीय है। उनके सुधार के लिये इस योजना मे ८४ लाख रुपये का प्रावधान है। इसके अन्तर्गत २७ पशु-चिकित्सालय और १०७ औषधालय खोलने का विचार है। नस्ल की सुधार के लिये ५ कृत्रिम गर्भाधान-केन्द्रों की स्थापना तथा २० ग्राम-पशु-सुधार-केन्द्र व १ नगर-पशु-सुधार-केन्द्र स्थापित करने की व्यवस्था है। अच्छी नस्ल के पशु बाहर से लाकर यहां की नस्ल सुधारने की भी योजना तैयार की गई है। मत्स्य-पालन व कुक्कुट-पालन के लिये विशेष सुविधा प्रदान करने की योजना है।

सीमित आय के कारण किसानो के सामने आर्थिक समस्या सदैव ही कठिनाई उत्पन्न करती है। वे अकेले उन्नति के साधन जुटाने मे असमर्थ रहते है। इसीलिये यदि सहकारी समितियों का निर्माण किया जाय, तो यह कठिनाई हल की जा सकती है। इस दृष्टिकोण से द्वितीय योजना मे कुल मिलाकर ९६ लाख रुपये सहकारी समितियो के विकास में व्यय करने का प्रबन्ध किया गया है। इसमे से ३३ लाख रुपये रिजर्व बैंक आफ इंडिया से प्राप्त किये जायंगे और शेष ६३ लाख का प्रबन्ध विन्ध्य-सरकार अपने बजट से करेगी। इस धन-राशि की सहायता से २०० बहुउद्देश्यीय सहकारी समितियों का संगठन किया जायगा, कोआपरेटिव बैंक की एक शाखा प्रत्येक जिले में खोली जायगी, एक भूमि-बन्धक बैंक की स्थापना की जायगी, २६ क्रय-विक्रय समितियां खोली जायँगी तथा इसी प्रकार की अन्य योजनाओं को स्थान दिया जायगा। भूमिहीन किसानों की सहायता के लिये ८ खेती-बारी की समितियां खोली जायँगी, जो २८०० एकड़ भूमि को खेती के योग्य बनायेंगी।

राष्ट्रीय विस्तार सेवा तथा सामुदायिक विकास-योजना से देश में एक नई जागृति पैदा हो गई है। इस कार्य-क्रम को आगे बढ़ाने के लिये १९० लाख रुपये की धन-राशि अलग कर दी गई है। ऐसा अनुमान किया जाता है कि द्वितीय पंचवर्षीय योजना के अन्त तक प्रदेश में २४ सामुदायिक विकास-क्षेत्र व ३० राष्ट्रीय विस्तार-सेवा-खण्ड हो जायंगे। कृषि एवं पशु-पालन के कार्यों में योग देने के अतिरिक्त ये विकास-योजनायें जन-साधारण के स्वास्थ्य-सुधार, उनमें शिक्षा-प्रसार तथा यातायात-विस्तार एवं भवन-निर्माण और कुटीर-उद्योगों के विकास का भी प्रबन्ध करेंगी।

विन्ध्य-प्रदेश की ३२ प्रति शत भूमि वनाच्छादित है और राज्य की ३० प्रति शत आय वन-विभाग से आती है। अभी तक वनों की उन्नति के लिये कोई विशेष प्रयत्न नहीं होता था। परिणाम यह हुआ कि वन्य सम्पत्ति का ह्रास होने लगा। इसे रोकने के लिये ७४ लाख रुपये की योजना तैयार की गई है, जिसमें से १४ लाख रुपये भूमि-संरक्षण के लिये जायंगे और शेष धन वन्य-उत्पत्ति की वृद्धि में लगाया जायगा। इस योजना के अन्तर्गत वनरोपण, वन-सीमा-निर्धारण, सड़क-निर्माण, कृषि-भूमि-संरक्षण, राष्ट्रीय-उपवन-निर्माण तथा लाह-फैक्टरी व अन्य वन्य उद्योगों का विकास मुख्य स्थान रखते है।

औद्योगिक विकास—विन्ध्य-प्रदेश मे उद्योग-धन्धों के विकास के लिये प्राकृतिक साधन प्रचुर मात्रा मे उपलब्ध हैं, परन्तु अभी तक इन साधनों का पूर्ण उपयोग नही किया गया है, जिससे यहां का औद्योगिक विकास रुका पड़ा है। प्रथम कठिनाई तो पूंजी की है व दूसरी यातायात के सुविधा की। शहडोल जिले मे रेलवे-लाइन बन जाने से कोयले की खाने एक के बाद दूसरी खुलती चली गई; परन्तु सिंगरौली क्षेत्र में यातायात की असुविधा के कारण वहां का कोयला भूगर्भ में ही पडा है। द्वितीय पंचवर्षीय योजना में उद्योग एवं खनिज के विकास के लिये १५९ लाख रुपये व सड़के बनाने के लिये ३१४ लाख रुपये का प्रावधान है। औद्योगिक विकास के लिये निर्धारित धन-राशि में से १४३ लाख रुपये छोटे पैमानों के धन्धे एवं कुटीर उद्योगों में व १४ लाख सहकारी चीनी मिल में व्यय करने की व्यवस्था है। २ लाख रुपये की धन-राशि खनिज-विकास के लिये

निर्धारित है। नये उद्योगों की स्थापना एवं मध्यम श्रेणी के चालू उद्योगों को प्रोत्साहन देने के लिये २५ लाख रुपये की लागत से एक राज्य वित्त-निगम की स्थापना करने की एक योजना है। बड़े-बड़े उद्योगों के विकास का कार्य पूजीवाली प्राइवेट कम्पनियों एवं व्यक्तियों के हाथों में छोड़ दिया गया है। अभी हाल ही में सतना में एक सीमेन्ट व बुढ़ार में एक कागज। का कारखाना बनाने की अनुमति बिड़ला को दी गई है।

विद्युत्-शक्ति के विकास के लिये ३२९ लाख रुपये का प्रावधान है। इस योजना के अन्तर्गत उन शक्ति-विकास-योजनाओं का सूत्रपात होगा, जो औद्योगिक एवं कृषि-सम्बन्धी तथा घरेलू आवश्यकताओं की पूर्ति करेंगी। वाष्प-शक्ति-स्थानक, बुढ़ार (१०००० किलोवाट) तथा सतना के विद्युत्-स्थानक की उत्पादन-क्षमता को बढ़ाने के निमित्त

(१०००० किलोवाट) उत्पादन-यन्त्र पर २२० लाख रुपये के व्यय का अनुमान है और विद्युत प्रदाय उप-स्थानकों तथा ग्रामीण विद्युतीकरण योजना एवं परिमापन तथा नवीन योजनाओ के अन्वेषण पर ५३ लाख रुपये व्यय होने का अनुमान है। इन योजनाओं के अतिरिक्त विन्ध्य-प्रदेश के शहरों एवं ग्रामों को कटनी-कोरवा पावर स्टेशन, रिहन्द जल-विद्युत् तथा माताटिला जल-विद्युत् से शक्ति प्राप्त हो सकेगी। निःसन्देह इन सब योजनाओं से छोटे पैमाने के उद्योग-धन्धों के विकास में विशेष सहायता मिलेगी।

यातायात के साधनों के लिये द्वितीय योजना में ३१४ लाख रुपये का प्रावधान है। इस धन-राशि से ६४ मील लम्बी सड़कों पर डामर किया जा सकेगा, ३६८ मील पक्की सड़कों व ७८४ मील मौसमी सड़कों का निर्माण हो सकेगा। १७ बड़े पुलों, ४२ छोटे पुलों, ३ विश्राम-गृहों तथा आदि-वासी क्षेत्रों में ६०० मील मौसमी सड़कों के निर्माण की व्यवस्था है। कहने की आवश्यकता नहीं कि प्रदेश की आव-श्यकताओं को देखते हुए व इस बात को विचार में रखते हुए कि प्रदेश का औद्योगीकरण तथा व्यापार यातायात की सुविधाओं पर ही निर्भर है, सड़कों के निर्माण के लिये जिस धन-राशि की व्यवस्था की गई है, वह बहुत कम है।

सामाजिक सेवायें—सामाजिक सेवाओं से सम्बन्धित योजनाओं पर ७१९ लाख रुपये व्यय करने का अनुमान है। इन योजनाओं के अन्तर्गत शिक्षा पर ३३३ लाख, स्वास्थ्य पर ३२८ लाख व पिछड़ी जाति-कल्याण पर १६ लाख रुपये व्यय होने का अनुमान है।

शिक्षा-सम्बन्धी योजनाओं में प्राथमिक शिक्षा को विशेष महत्त्व दिया गया है। इसके लिये २२५ लाख रुपये निर्दिष्ट किये गये हैं। इस धन-राशि से यह प्रयत्न किया जायगा कि प्राथमिक शिक्षा अनिवार्य कर दी जाय। शिक्षा-लयों के लिये प्रशिक्षित अध्यापकों की आवश्यकता है। इस आवश्यकता की पूर्ति के लिये यह प्रस्तावित है कि मौजूदा बेसिक कक्षाओं की तरक्की की जाय, मौजूदा दो सामान्य ट्रेनिंग संस्थाओं को बेसिक बनाया जाय व बेसिक ट्रेनिंग की ८ संस्थायें खोली जायं। द्वितीय पंचवर्षीय योजना-काल में माध्यमिक शिक्षा के विस्तार के लिये ५० लाख रुपये की लागत से १० उच्च विद्यालय और २२ माध्यमिक विद्यालयों के खोलने का विचार है। शिक्षा-सम्बन्धी योजना

के अन्तर्गत विश्वविद्यालय से सम्बन्धित शिक्षा तथा समाज-शिक्षा को भी स्थान दिया गया है। इन सब पर कुल मिला कर ७५ लाख रुपये व्यय करने की व्यवस्था है। इनके अन्तर्गत वर्तमान पोलीटेकनिक इन्स्टीच्यूट, नौगांव को भारत के अन्य सर्वोद्योगिक विद्यालय के समान बनाने की योजना है तथा यह भी प्रस्ताव है कि इसके अन्तर्गत ४ जूनियर टेक्निकल स्कूल खोले जायँ। वर्तमान दरबार कालेज, रीवा व महाराजा कालेज, छतरपूर में भूगर्भ-शास्त्र, सांख्यकी-शास्त्र, समाज-शास्त्र, मनोविज्ञान इत्यादि उपयोगी विषयों की कक्षाओं के खोलने की व्यवस्था की गई है। समाज-शिक्षा के अन्तर्गत प्रौढ़-शिक्षा, रात्रि-पाठशाला, बाल-पुस्तकालय एवं केन्द्रीय पुस्तकालय को स्थान दिया गया है।
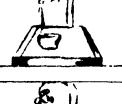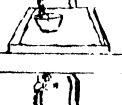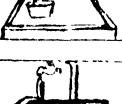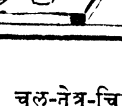
स्वास्थ्य योजना के अन्तर्गत चिकित्सा, जल-पूर्ति तथा जन-स्वास्थ्य-सम्बन्धी योजनायें सम्मिलित हैं। २३८ लाख रुपये की धन-राशि इन योजनाओं के निमित्त रखी गई है। मौजूदा अस्पतालों की तरक्की करते हुए कुछ नवीन औषधालयों के खोलने की व्यवस्था है। ३० नये 'ए' ग्रेड के औषधालय खोले जायंगे, २८ 'सी' ग्रेड के औषधालयों का स्तर उच्च किया जायगा व १० चिकित्सालय माध्यमिक इकाइयों में परिवर्तित किये जायंगे। जन-स्वास्थ्य-सम्बन्धी योज-

नाओं के अन्तर्गत १८.५ लाख रुपये मलेरिया-नियंत्रण, ३.५ लाख रुपये फाइलेरिया-नियंत्रण, ७.५ लाख रुपये बी० सी० जी० के टीके के लिये और ४७ हजार रुपये फेमिली प्लानिंग पर व्यय किये जायंगे। इसमें स्वास्थ्य-

जन-स्वास्थ्य इन्जिनीयरिंग विभाग

रीवा जल सम्पूर्ति योजना २६,३८०००
रीवा जलोत्सारण ३०.००००
सतना जल सम्पूर्ति १५.२७०००
पन्ना जल सम्पूर्ति १३.७२०००
छतरपुर जल सम्पूर्ति १५.४३०००
टीकमगढ़ जल सम्पूर्ति ८.७००००

रक्षा, चल-नेत्र-चिकित्सालय, प्रशिक्षण-केन्द्र, जल-विकास-सम्बन्धी योजना व जल-प्रदायक योजनायें भी सम्मिलित हैं। प्रायः प्रत्येक जिले के हेड क्वार्टर में वाटर वर्क्स बनाने की योजना है।

विन्ध्य-प्रदेश में पिछड़ी जातियों की आबादी ९ लाख के करीब है, जो कुल जन-संख्या का २५ प्रति शत होता है। इन पिछड़ी जातियों का आर्थिक स्तर दूसरों की अपेक्षा बहुत नीचा है। इनमें शिक्षा की कमी है। इनके सुधार का भार सरकार पर है। इस बात को ध्यान में रखते हुए पिछड़ी जाति-कल्याण-कार्य के लिये ७० लाख रुपये की धन-राशि निर्दिष्ट की गई है। इसके लिये शैक्षिक सुविधाओं का संगठन एवं इनके स्वास्थ्य-सुधार की व्यवस्था तथा इनके बीच कुटीर-उद्योग का प्रचार, इन योजनाओं के मुख्य अंग हैं। १७५ प्रौढ़-रात्रि-पाठशालाओं के खोलने की व्यवस्था है, जो गांव-गांव में ६ माह कार्य करके प्रौढ़ लोगों को शिक्षित बनायेंगी। चमड़े व जंगल के काम के लिये सहकारी समितयों का संगठन किया जायगा। साथ ही साथ विभिन्न उद्योगों की ट्रेनिंग दी जायगी तथा उनके काम शुरू करने के लिये उचित धन-राशि अनुदान के रूप में दी जायगी। १२०० नये घर बनाने, ४०० नये कुएँ खोदने व ७२४ मील संयोजक सड़क के सुधार की व्यवस्था है।

विविध—विविध योजनाओं के अन्तर्गत गृह-निर्माण, समाज कल्याण, मजदूर एवं मजदूर-कल्याण, सूचना एवं प्रचार-कार्य व नगर-सभाओं की योजना मुख्य है। गृह-निर्माण-योजना के अन्तर्गत न्यून आयवालों को अपने मकान बनवाने के लिये कर्ज दिया जायगा। ऐसा अनुमान किया जाता है कि इस योजना के अन्तर्गत ३७० मकान बनाये जायंगे। मजदूर एवं मजदूर-कल्याण-योजना के अन्तर्गत शरण-स्थलों व मनोरंजन-गृहों के निर्माण, कल्याण-अधिकारियों एवं कारीगरों का प्रशिक्षण, काम-दिलाऊ विभाग का विस्तार इत्यादि सम्मिलित है। समस्त योजना के प्रचार-कार्य हेतु तथा जन-साधारण मे सुधार की प्रेरणा उत्पन्न करने के लिये सूचना एवं प्रचार-कार्य के लिये १८ लाख रुपये का प्रावधान है। डाक्युमेण्टरी फिलम, सूचना-केन्द्रों, समाचार-पत्रों, प्रदर्शनियों एवं प्रचार-साहित्य द्वारा योजना को लोगों तक पहुंचाने का प्रबन्ध किया गया है। इस प्रदेश में १२ म्युनिसिपल्टियां है। विन्ध्य सरकार ने निश्चय किया है कि नगर-सभाओं के सारे कार्य दो तिहाई-एक तिहाई के आधार पर किये जायँ। इस प्रकार इस कार्य के लिये सरकार द्वारा स्वीकृत ३७ लाख रुपये की धन-राशि के साथ नगर-सभाओं को १८.५ लाख रुपये का प्रबन्ध करना पड़ेगा और दोनों राशियों को मिलाकर प्रायः ५५.६ लाख रुपये का कार्य सम्पन्न हो सकेगा।

यह है हमारी द्वितीय पंचवर्षीय योजना की रूप-रेखा। निःसन्देह प्रथम योजना में अनेक जन-कल्याणकारी कार्य हुए है; परन्तु उसमें कुछ असावधानी व गल्तियां भी हुई हैं। योजना अविरल रूप से चलनेवाली व्यवस्था होनी चाहिये। हमें पिछले अनुभवों का उपयोग करना चाहिये, जिससे वे त्रुटियाँ जो पहले हुई हों, दुहराई न जायं व हमारी प्रगति द्रुततर हो।

कौन क्या है ?

भूतपूर्व उपराज्यपाल श्री के० सन्तानम्
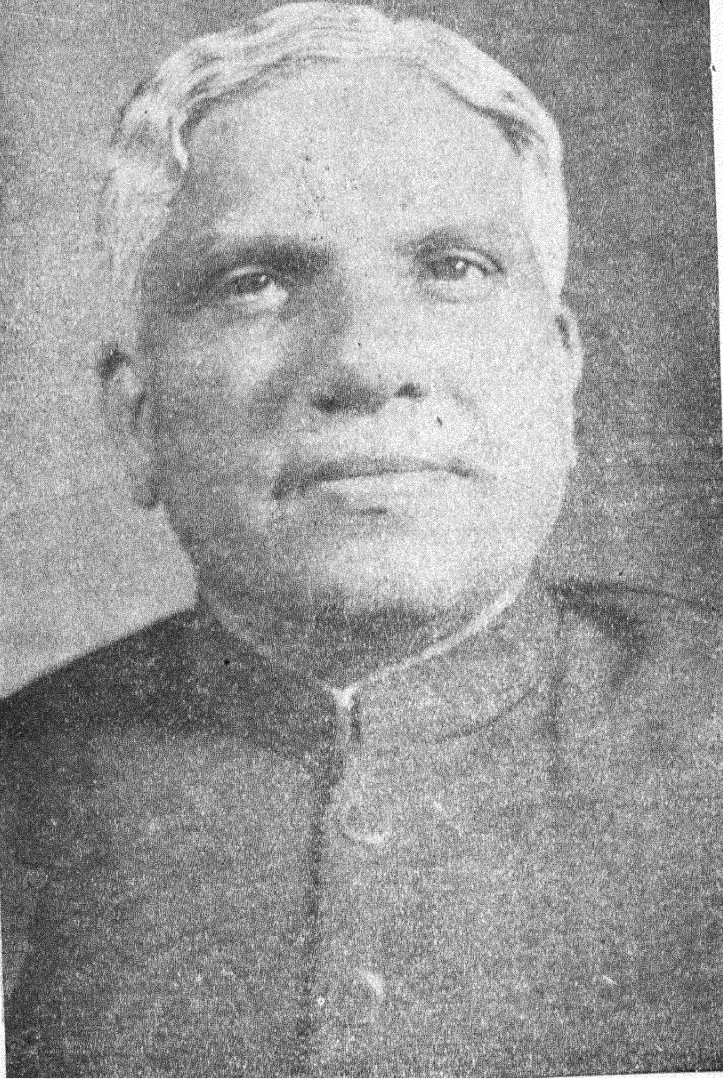
माननीय उपराज्यपाल श्री एम० तिरुमल राव

हमारे उपराज्यपाल

हमारे उपराज्यपाल श्री मोसालिकान्त तिरुमल राव आन्ध्र-निवासी हैं। आपका जन्म २९ जनवरी १९०१ को हुआ था। आपके पिता का नाम श्री बायन्नापांतुल तथा माता का नाम श्रीमती रामानम्मा है। आपके एक पुत्र तथा दो पुत्रियां हैं। श्री राव की शिक्षा कोकनाडा के कालेज में हुई। आपने सन् १९२१ में ही असहयोग-आन्दोलन में भाग लेने के कारण कालेज छोड़ दिया। उस समय आप बी० ए० में पढ रहे थे। उसी समय से आप जन-सेवा करते रहे तथा कुछ समय के लिये अखिल भारतीय कांग्रेस कमेटी के सह-सचिव रहे। उस समय स्वर्गीय श्री रंगस्वामी अ० भा० कांग्रेस कमेटी के प्रधान मंत्री थे। श्री राव सर्वप्रथम सन् १९३७ में संविधान सभा और १९४५ में तत्कालीन राज्य-परिषद् के सदस्य चुने गये। आप संविधान सभा के सदस्य भी चुने गये। सन् १९४८ में राष्ट्रमंडलीय सम्मेलन में एक संसदीय प्रतिनिधि के रूप में भाग लेने गये तथा इंग्लैण्ड और यूरोप गये। आपकी पत्रकारिता में भी काफी रुचि है। आपने मद्रास के एक अंग्रेजी पत्र में सम्पादक रूप में काम भी किया है।

श्री राव वैदेशिक मामलों एवं रेलवे के लिये संसद् की स्थायी समिति के सदस्य तथा केन्द्रीय सरकार की अन्न-संग्रह जांच-समिति के अध्यक्ष रहे हैं। आप विधान-सभा तथा साहित्य-सम्बन्धी कार्यवाहियों में काफी रुचि लेते हैं। आप अगस्त सन् १९५० से फरवरी सन् १९५२ तक केन्द्रीय सरकार में उप कृषि-मंत्री रहे और सन् १९५४ में संयुक्त राष्ट्र संघ के भारतीय प्रतिनिधिमंडल के सदस्य थे। अपने नये पद का भार ग्रहण करते समय तक आप गोदावरी कांग्रेस-कमेटी के सभापति रहे। १६ जनवरी ५६ को आपने विन्ध्य-प्रदेश के उपराज्यपाल की शपथ ग्रहण की।

विधान-मंडल

श्री शिवानन्द, अध्यक्ष, विधान-सभा

३ जनवरी १९२२ ई० को सतना नगर में आपका जन्म हुआ। सन् १९४० में व्यंकट हाई स्कूल, सतना से मैट्रिक तथा सन् १९४२ में दरबार कालेज, रीवा से एफ० ए० पास किया। सन् १९४५ में प्रयाग विश्व-विद्यालय से बी० ए० और सन् १९५२ में ला कालेज, जबलपुर से एल-एल० बी० की परीक्षा पास की।

बचपन से ही जन-सेवा तथा सामाजिक सेवा की ओर विशेष रुचि रही। विद्यार्थी-जीवन में ही बघेल-खण्ड-विद्यार्थी-परिषद् की स्थापना की और बघेलखण्ड आर्य-समाज के प्रधान मंत्री रहे। इण्टर की परीक्षा के बाद रीवा पुलिस फोर्स में नौ महीने नौकरी की। विकट आर्थिक समस्या के होते हुए भी उच्च शिक्षा प्राप्त की एवं राष्ट्रीय तथा सामाजिक रचनात्मक कार्यों को भी साथ ही साथ सफलतापूर्वक सम्पादित करते रहे।

सन् १९४६ में प्रजा-मंडल की स्थापना की और उसके प्रथम अध्यक्ष रहे। तत्कालीन रीवा तथा बुन्देल-खण्ड की अनेक रियासतों से कई बार निकाले गये और विभिन्न राज्यों से पांच बार जेल भेजे गये। सन् १९४८ में 'महाकोशल ट्रेड यूनियन-कांग्रेस' के प्रधान मंत्री हुए और कोयला-खान के मजदूरों का संगठन किया। विन्ध्य प्रान्तीय कांग्रेस कमेटी तथा मध्य प्रदेश देशी राज्य लोक-परिषद् की कार्यकारिणी समिति के भी सदस्य रहे।

सन् १९५१-५२ के आम चुनाव में सतना निर्वा-चन-क्षेत्र (जिला सतना) से विन्ध्य-प्रदेश विधान-सभा

के सदस्य निर्वाचित हुए और दिनांक २२-४-५२ को विधान-सभा के अध्यक्ष चुने गये। नवम्बर सन् १९५२ में माननीय श्री नेहरू ने विन्ध्य-प्रदेश में भारत-सेवक-समाज को संगठित करने के लिए आपको संयोजक बनाया।

मार्च सन् १९५६ में श्री आचार्य विनोबा भावे ने आपको प्रान्तीय भूदान-यज्ञ बोर्ड का अध्यक्ष मनोनीत किया।

विद्यार्थियों में राष्ट्रीय एकता और हरिजन काय की ओर अधिकाधिक रुचि लाने हेतु आप निर्बाध रूप से काम करते रहे। साथ ही साहित्यिक गोष्ठियों तथा समारोहों में भाग लेते हुए आप साहित्यिक प्रगति को उन्नतिपूर्ण बनाने की शिक्षा समय-समय पर देते रहते हैं।

आपका स्वभाव सीधा, सरल, दंभ-रहित, मिलनसार और नम्र है।

विधान-सभा-सदस्य

जिला रीवा

क्रमांक नाम सदस्य	निर्वाचन-क्षेत्र
१—श्री शत्रुसूदन सिंह	रायपुर
२—श्री बृजराज सिंह	गुढ़
३—श्री श्रीनिवास तिवारी	मनगवा
४—श्री यादवेन्द्र सिंह	रीवा
५—श्री सरदार नर्मदा प्रसाद सिंह	सिरमौर
६—श्री बैकुण्ठ प्रसाद पांडेय	सेमरिया
७—श्री राजेश्वर प्रसाद मिश्र	त्योंथर
८—श्री राणा शमशेर सिंह	गढ़ी
९—श्री कुवर सोमेश्वर सिंह	मऊगंज-नयी गढ़ी
१०—श्री सहदेइया	मऊगंज-नयी गढ़ी
११—श्री भुवनेश्वर प्रसाद उर्फ ईश्वराचार्य	हनुमना

जिला सतना

१२—श्री कौशलेन्द्र प्रताप बहादुर सिंह	कोठी
१३—श्री रामाधार पांडेय	अमदरा
१४—श्री शिवानन्द	सतना
१५—श्री चन्डीदीन	नागौद
१६—श्री गोपालशरण सिंह	नागौद
१७—श्री कर्नल बलवन्त सिंह	रामनगर
१८—श्री केशव प्रसाद	मुकुन्दपुर
१९—श्री लालबिहारी सिंह	अमरपाटन
२०—श्री गोविन्द नारायण सिंह	रामपुर बघेलान
२१—श्री रामसजीवन गौतम	सभापुर

जिला सीधी

२२—श्री भाईलाल मिश्र	कनपुरा
२३—श्री जगत बहादुर सिंह	चुरहट
२४—श्री चन्द्र प्रताप तिवारी	सीधी-मड़वास
२५—श्री दाढ़ी सिंह	सीधी
२६—श्री श्याम कार्तिक	सिंगरौली निवास
२७—श्रीमती सुमित्री	सिंगरौली निवास
२८—श्री जगदीश प्रसाद खरे	देवसर

जिला शहडोल

२९—श्री शम्भूनाथ शुक्ल	अमरपुर
३०—श्री दानबहादुर सिंह	पुष्पराजगढ़
३१—श्री रामप्रसाद सिंह	पुष्पराजगढ़
३२—श्री बाबूलाल उदानिया	जैतपुर-कोतमा
३३—श्री रतन सिंह	जैतपुर-कोतमा
३४—श्री लाल राजेन्द्र बहादुर सिंह	सोहागपुर
३५—श्री सरस्वती प्रसाद पटेल	बुढ़ार
३६—श्री लाल आदित्यनाथ सिंह	देवरिया
३७—श्री रामकिशोर शुक्ल	ब्योहारी
३८—श्री बाबादीन	ब्योहारी

जिला पन्ना

३९—श्री नरेन्द्र सिंह	पवई
४०—श्री भूरा	पवई
४१—श्री लाल मुहम्मद	अजयगढ़
४२—श्री सरजू प्रसाद चन्दपुरिया	पन्ना

जिला छतरपुर

४३—श्री रघुनाथ सिंह	चन्दला
४४—श्री महेन्द्र कुमार 'मानव'	लौंड़ी
४५—श्री गोकुल प्रसाद	राजनगर
४६—श्री दशरथ जैन	छतरपुर

श्री शिवानन्द, अध्यक्ष, विधान-सभा

४७—श्री पिरुवा छतरपुर
४८—श्री दीवान प्रताप सिंह बिजावर
४९—श्री प्यारेलाल बिजावर
५०—श्री नरेन्द्र कुमार मलहरा

जिला दतिया

५१—श्री सूर्यदेव शर्मा सेंवढा
५२—श्री श्यामसुन्दर दास दतिया
५३—श्री ज्वाला प्रसाद अहेरवार सेंवढ़ा

जिला टीकमगढ़

५४—श्री कृष्णकान्त राय टीकमगढ़
५५—श्री रिल्ली टीकमगढ़
५६—श्री ठाकुरदास मिश्र चन्दपुरा
५७—श्री सेठ नारायण दास जतारा
५८—श्री लालाराम बाजपेयी निवारी
५९—श्री रघुराज सिंह लिधौरा
६०—श्री श्यामलाल साहू पृथ्वीपुर

लोक-सभा सदस्य

१—छतरपुर-दतिया-टीकमगढ़ श्री रामसहाय तिवारी (कांग्रेस)
२—छतरपुर-दतिया-टीकमगढ़ (संरक्षित) श्री मोतीलाल मालवीय (कांग्रेस)
३—रीवा श्री राजभानु सिंह (कांग्रेस)
४—सतना श्री शिवदत्त उपाध्यय (कांग्रेस)
५—शहडोल-सीधी श्री आनन्दचन्द्र जोशी (कांग्रेस)
६—शहडोल-सीधी (संरक्षित) श्री रणदमन सिंह

राज-सभा-सदस्य

१—श्री अवधेश प्रताप सिंह
२—श्री बनारसीदास चतुर्वेदी
३—श्री मुहम्मद अली
४—सुश्री कृष्णा कुमारी

न्याय-पालिका

श्री जगतनारायण, आई० सी० एस० न्याय-आयुक्त
श्री छतरसिंह पंचोली अतिरिक्त न्याय-आयुक्त

मन्त्रि-परिषद्

मुख्य मंत्री श्री शम्भूनाथ शुक्ल

जन्म—दिसम्बर सन् १९०३, शहडोल।

प्रारम्भिक शिक्षा शहडोल में। इसके पश्चात् संपूर्ण शिक्षा प्रयाग में सम्पन्न हुई। सन् १९२८ में एल-एल० बी० किया। सन् १९२९ तक इलाहाबाद जिला कोर्ट में वकालत करते रहे। सन् १९३० से शहडोल में वकालत आरम्भ की।

सन् १९३१ से कांग्रेस आंदोलन में भाग लेना आरम्भ किया। अप्रैल सन् १९३२ ई० में रीवा सरकार द्वारा आपको गिरफ्तार कर के राजबन्दी बनाकर दो वर्षों तक माधोगढ़ दुर्ग में रखा गया। सन् १९३४ में मुक्त होने पर पुनः कांग्रेस का काम और वकालत करते रहे। सन् १९३५ में बघेलखंड जिला कांग्रेस कमेटी के मंत्री रहे। सन् १९३९ में बघेलखंड जिला कांग्रेस कमेटी के सभापति निर्वाचित हुए। सन् १९४० में अखिल भारतीय कांग्रेस कमेटी के सदस्य निर्वाचित हुए।

अप्रैल सन् १९४२ में युद्ध और युद्ध-सम्बन्धी चन्दा के विरोध में अपनी आवाज ऊंची करने पर रीवा सरकार द्वारा गिरफ्तार किए गए। डिफेन्स आफ इंडिया ऐक्ट की धाराओं के मुताबिक मुकदमा चलाकर आपको एक वर्ष की सख्त कैद और ५००) जुर्माना की सजा दी गई। सन् १९४४ में जेल से मुक्त होकर आपने रीवा हाई कोर्ट में वकालत करने की अर्जी दी; किन्तु उस पर यह शर्त लगाई गई कि जब तक आप माफी न मांगें, तब तक वकालत करने की इजाजत न दी जायगी। आपने माफी मांगने से इनकार कर दिया। हाई कोर्ट द्वारा ४ माह की अवधि के बाद आपको पुनः वकालत करने की आज्ञा दे दी गई। आप शहडोल से रीवा आकर वकालत करने लगे। आपकी वकालत का काम बहुत अच्छा चला। आप १०००) माहवार से भी अधिक वकालत में प्राप्त करने लगे। इसी समय स्वर्गीय महाराज गुलाब सिंहजूदेव के निजी हिसाब की जांच तत्कालीन वाइसराय महोदय के आज्ञानुसार आरम्भ हुई, जिसमें स्वर्गीय महाराजा साहब ने पैरवी के लिए आपको अपना कानूनी प्रतिनिधि नियत किया। १५००) माहवार आपको उस काम का पारिश्रमिक दिया जाता था। ग्यारह माह तक आप काम को सुचारुरूपेण सफलतापूर्वक करते रहे।

इसी समय रीवा राज्य में म्युनिसिपल सुधार कमेटी रीवा सरकार द्वारा बनाई गयी, जिसमें आपको सदस्य बनाया गया। म्युनिसिपल सुधार कमेटी के काम के समाप्त हो जाने पर उत्तरदायित्वपूर्ण शासन की स्थापना के लिए एक कमेटी निर्मित की गई, जिसके अध्यक्ष स्वर्गीय श्री पी० सी० मोंघा साहब थे। उस कमेटी में भी आपको सदस्य बनाया गया। उस कमेटी का कार्य समाप्त नहीं हो पाया था कि इसी समय स्वर्गीय महाराजा गुलाबसिंह जूदेव को गद्दी से उतार दिया गया व उनके स्थान पर महाराज मार्तण्ड सिंह जू देव रीवा-राज्य के महाराज हुए। उन्होंने मोंघा कमेटी के स्थान पर उत्तरदायित्वपूर्ण शासन की स्थापना के सम्बन्ध में दूसरी कमेटी का निर्माण किया। इस कमेटी के अध्यक्ष स्वर्गीय सर हरी सिंह जी गौड़ थे। आपको पुनः उस कमेटी का भी सदस्य नियुक्त किया गया।
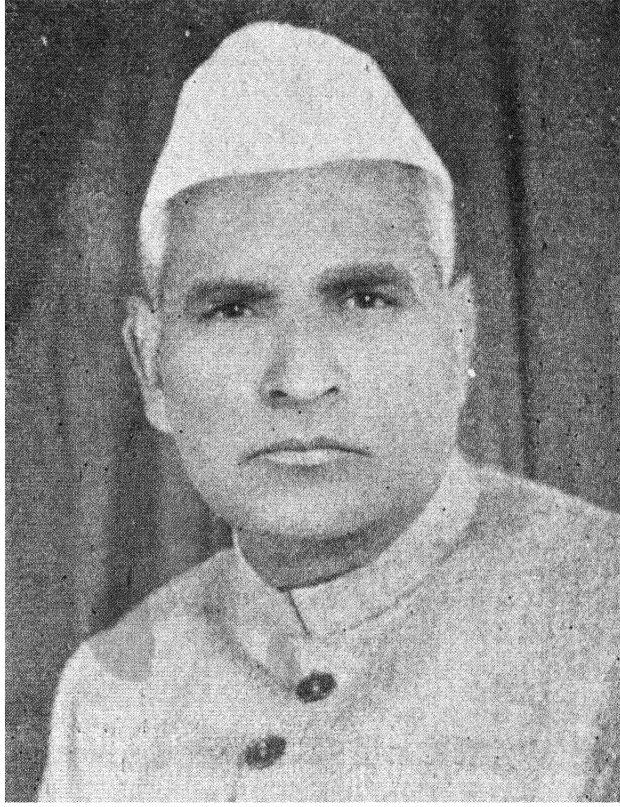
मुख्य मंत्री श्री शम्भूनाथ शुक्ल

गृह-मंत्री श्री दशरथ जैन

स्व० महाराज गुलाब सिंह जू देव के गद्दी से उतारे जाने के बाद ३० जनवरी १९४६ से आपने पुनः हाई कोर्ट में वकालत आरम्भ की। इसी समय रीवा सरकार की ओर से लगान के एवज में चावल वसूल करने की एक योजना बनाई गई। इस योजना के अनुसार जो चावल वसूल किया जाता था, उसमें काफी धांधली मुलाजिमों की ओर से की जाती थी। आपने इसका विरोध किया; किन्तु सरकार ने इस विरोध पर ध्यान नहीं दिया। जनता में क्रमशः असंतोष बढ़ता गया। अन्त में रीवा सरकार को विवश होकर फरवरी १९४७ में बदवार और शिव• राजपुर में गोली चलानी पड़ी, जिसमें दो व्यक्तियों को आत्म-बलिदान करना पड़ा और ५० व्यक्ति बुरी तरह से घायल हुए, लगभग १५० व्यक्तियों को गिरफ्तार किया गया। जो लोग गिरफ्तार किये गये थे, उनकी पैरवी निःशुल्क रूप से आपने अदालतों में की। ठीक इसी समय आपने प्रतिज्ञा की कि इस मुकदमे के पश्चात् आप वकालत न करेंगे।

इस कांड के दो माह बाद रीवा सरकार ने आपको अपने मंत्रिमंडल में स्थान देते हुए खाद्य मंत्री नियुक्त किया। आप १५ माह तक रीवा मंत्रिमंडल में रहे। इस बीच में चार बार मंत्रिमंडल भंग होकर बनता रहा, किन्तु प्रत्येक मंत्रिमंडल में आप बराबर बने रहे। सन् १९४८ में बघेलखंड और बुन्देलखंड को मिलाकर विन्ध्य-प्रदेश बनाया गया। उसमें भी आप वित्त मंत्री के पद पर बने रहकर सुचारुरूपेण कार्य करते रहे, किन्तु दो माह बाद उससे पृथक् हो गये।

आपने पुनः कांग्रेस का कार्य आरम्भ कर दिया। उस समय विन्ध्य-प्रदेश सरकार की अनुचित कार्रवाइयों के विरुद्ध आपने जनता के बीच अपनी आवाज उठाई। फलस्वरूप अप्रैल सन् १९४९ में विन्ध्य-प्रदेश सरकार का तत्कालीन मंत्रिमंडल भंग कर दिया गया। इसी वर्ष आप विन्ध्य-प्रदेश कांग्रेस कमेटी के प्रधान मंत्री चुने गये और नवम्बर सन् १९४९ को सरकार द्वारा आप कन्स्टीटुएन्ट असेम्बली के सदस्य मनोनीत हुए। कार्य समाप्त हो जाने के बाद फरवरी सन् १९५२ तक आप अस्थायी संसद् के सदस्य रहे। सन् १९५० में आप सर्वसम्मति से विन्ध्य-प्रदेश कांग्रेस कमेटी के अध्यक्ष निर्वाचित हुए।

सन् १९५२ के आम चुनाव में शहडोल जिले के अमरपुर क्षेत्र से विन्ध्य-प्रदेश विधान-सभा के लिए आप सदस्य मनोनीत हुए। इस चुनाव के फलस्वरूप विन्ध्य-प्रदेश में कांग्रेस का बहुमत हुआ; फलतः आप कांग्रेस पार्टी के लीडर चुने गए और मार्च सन् १९५२ से विन्ध्य-प्रदेश सरकार के मुख्य मंत्री पद पर नियुक्त हुए।

आर्थिक स्थिति अच्छी न होते हुए भी आप सतत राष्ट्रीय एवं सामाजिक कार्यों में संलग्न रहे। विद्यार्थी-आन्दोलन, किसान-आन्दोलन तथा उनके संगठन और जागीरदारी-प्रथा के अन्त करने में भी आप सतत-प्रयत्नशील रहे। स्वार्थ एवं प्रलोभनों से कभी भी आप अपने सेवा-व्रत और लगन से विचलित नहीं हुए।

आपके चेहरे में गम्भीरता, विचारशील भावनाओं एवं नम्रता का अपूर्व सामंजस्य दीखता है। रहन-सहन बिल्कुल ही सीधा-सादा तथा ग्रामीणों-जैसा है, जिससे भारतीयता टपकती है। विन्ध्य-प्रदेश की उन्नति के लिए आपकी सेवाएं चिरस्मरणीय रहेंगी। उन सेवाओं में जमींदारी-उन्मूलन विधेयक प्रस्ताव, शिक्षा-प्रसार के हेतु अनेकानेक योजनायें आदि हैं।

आपकी देख-रेख में निम्न विभाग हैं:—

१—सामान्य प्रशासन विभाग
२—नियुक्ति विभाग
३—मंत्रि-परिषद् तथा संयोजन-विभाग
४—पूर्व नरेशों से सम्बन्धित राजनैतिक विषय
५—राजस्व

(अ) भूमि-लेखा
(ब) भूमि-मापन तथा व्यवस्था
(स) प्रतिपालन-अधिकरण
(द) अभाव और अकाल
(त) मेला, घाट तथा पशु-पालन
(थ) धर्मार्थ

६—शिक्षा
७—आयोजन (सामुदायिक योजना तथा राष्ट्रीय प्रसार-खंड)
८—वित्त तथा कर
९—विद्युत् तथा यांत्रिक
१०—स्थानीय स्वायत्त शासन
११—सूचना एवं प्रचार
१२—परिगणित जाति तथा जन-जाति
१३—पुरातत्व
१४—पंजीयन तथा स्टाम्प
१५—सहकारिता तथा ग्राम-विकास

गृह-मंत्री श्री दशरथ जैन

प्रारंभिक शिक्षा छतरपुर में इंटरमीडियेट तक, बी० काम० इलाहाबाद यूनिवर्सिटी से और एम० ए० तथा एल-एल० बी० लखनऊ यूनिवर्सिटी से।

सन् १९४७ में उत्तरदायित्वपूर्ण शासन प्रदान करने का आंदोलन छतरपुर राज्य में हुआ। उसमें आपने सक्रिय रूप से भाग लिया। विद्यार्थी-जीवन से ही आपका झुकाव स्वतंत्रता-आंदोलन के प्रति था, अतः आप पर्चेबाजी और जत्थों के संगठन में उत्साह से भाग लेते रहे। जब छतरपुर में गिरफ्तारियों की धूम मची, तब आप मित्रों तथा प्रमुख नेताओं की सलाह पर राजनगर चले आये और अज्ञात रूप से ग्रामीणों में जागृति तथा संगठन का मंत्र फूंकते रहे। पर्चेबाजी का काम अविरल गति से होता रहा।

अध्ययन समाप्त करने के पश्चात् सन् १९४९–५० में आप कुछ समय तक झांसी में रहकर वकालत का काम सीखते रहे। इसके पश्चात् छतरपुर में ही वकालत आरम्भ कर दी। आप जिला कांग्रेस कमेटी और प्रांतीय कांग्रेस कमेटी के मंत्री रहे। सार्वजनिक कामों में आप सदैव भाग लेते रहे। जब आप विन्ध्य-प्रदेश विधान-सभा के सदस्य निर्वाचित हुए, तब से आपका झुकाव सार्वजनिक कामों की ओर और भी अधिक हो गया। आप जिला हरिजन सेवक-संघ के प्रतिनिधि और सदस्य थे। गांधी-समिति के सदस्य होने के साथ-साथ वहां के अधिकांश कार्यों की देख-भाल भी आप ही करते रहे। साहित्य-सेवा की रुचि आप में निरन्तर बनी रही। आपने दो पुस्तकें लिखी हैं, जो अभी अप्रकाशित हैं। समाज-शास्त्र और मानव-विज्ञान आपके प्रमुख विषय हैं। इन दो के अतिरिक्त आप समय-समय पर आर्थिक, सामाजिक और राजनीतिक लेख भी पत्र-पत्रिकाओं में लिखते रहे हैं। साप्ताहिक पत्र 'विन्ध्याचल' के संपादन का कार्य आप गृह-मंत्री पद के भार संभालने तक करते रहे।

आपका स्वभाव बहुत ही कोमल, सीधा, सरल और आकर्षक है। आप बहुत ही मिलनसार तथा भावुक हैं।

आपके अन्तर्गत निम्न विभाग हैं, जिनकी सर्वांगीण उन्नति में आप सदैव दत्तचित्त रहते हैं:—

१—पुलिस
२—चिकित्सा तथा जन-स्वास्थ्य
३—जल-पूर्ति
४—भूतपूर्व सैनिक व्यवस्था
५—पशु-चिकित्सा तथा मत्स्य-पालन
६—सहायता तथा विस्थापित पुनर्वास
७—चलचित्र
८—यातायात।

न्याय-मंत्री श्री गोपालशरण सिंह

१० नवम्बर सन् १९२२, ग्राम पतौरा, जिला सतना में आपका जन्म हुआ।

हाई स्कूल सतना से मैट्रिक, गवर्नमेंट इन्टर कालेज, प्रयाग से इंटर, प्रयाग विश्वविद्यालय से बी० ए० तथा वहीं से सन् १९४५ में एल-एल० बी० परीक्षा उत्तीर्ण की।

सन् १९४२ के प्रसिद्ध आन्दोलन से राजनैतिक जीवन का श्रीगणेश हुआ। विद्यार्थी-जीवन में ही बुंदेलखण्ड की अनेक रियासतों में अखिल भारतीय राज्य-लोक-परिषद् की नींव डाली। सन् १९४६ में इसी के संगठन के सिलसिले में तीन बार जेल गये। विन्ध्य-प्रान्तीय कांग्रेस-कमेटी के सदस्य एवं प्रधान मंत्री रहे। सन् १९४८ में विन्ध्य-प्रदेश (बुंदेलखण्ड) के शिक्षा-मंत्री तथा उसके बाद संयुक्त मन्त्रिमण्डल में न्याय एवं नियोजन-मंत्री रहे, किन्तु आपसी मतभेद के कारण मंत्रिमण्डल से त्याग-पत्र दे दिया।

सन् १९५२ में विधान-सभा के सदस्य निर्वाचित हुए तथा १३-३-५२ से प्रदेश के योजना एवं कार्य-मंत्री बने ।

आप त्यागी, उत्साही एवं पक्के सिद्धान्तवादी जन-सेवक हैं । अपने मंत्रित्व-काल में वैज्ञानिक ढंग से रीवा के पास ही एक प्रयोगात्मक कृषि-क्षेत्र का निर्माण किया है तथा अमरकण्टक में नगर-विकास की एक महत्वपूर्ण योजना प्रस्तुत की है ।

आपके अन्तर्गत निम्न विभाग है :—

(१) जन-कार्य-विभाग, जिसमें यातायात (सड़क, रेल तथा वायुपथ) सम्मिलित है ।
(२) कृषि
(३) न्याय तथा विधान
(४) सरकारी मुद्रणालय ।

वाणिज्य एवं उद्योग मंत्री श्री दानबहादुर सिंह

ज्येष्ठ कृष्ण ९, संवत् १९६० वि० (२१ मार्च १९०३) खैरहा ग्राम, शहडोल जिला में आपका जन्म हुआ ।

प्राथमिक अध्ययन मिशन स्कूल, प्रयाग तथा काशी विद्यापीठ से बी० ए० पास किया । कृषि-विद्यालय, नैनी से 'कृषि-विशेष-योग्यता' तथा कला-भवन, बड़ौदा से एक साल तक व्यावसायिक प्रशिक्षण प्राप्त किया ।

प्रयाग में सन् १९२० के असहयोग-आन्दोलन में भाग लिया । नमक-सत्याग्रह में भाग लेने के कारण सन् १९३९ में २ वर्ष के लिए रीवा-जेल गये । सन् १९४२ के प्रसिद्ध आन्दोलन के समय रीवा-सरकार द्वारा अपने ही गांव में नजरबन्द रहे । वन-जातियों की शिक्षा-दीक्षा तथा विकास के लिए सदैव प्रयत्नशील रहे । सन् १९४४-४५ में बघेल-खण्ड-कांग्रेस कमेटी के अध्यक्ष रहे । विन्ध्य-प्रदेश-कांग्रेस-कमेटी के उप-सभापति भी रहे ।

आदिवासी एवं हरिजनों से विशेष प्रेम है तथा उनके विकास के लिए सतत प्रयत्नशील है । आपकी धारणा है कि ग्रामोत्थान से ही भारत की स्वतंत्रता अक्षुण्ण रह सकती है और देश की गरीबी का भी निराकरण हो सकता है ।

पुष्पराजगढ़ (शहडोल) निर्वाचन-क्षेत्र से विधान-सभा के सदस्य निर्वाचित हुए । मार्च १३ सन् १९५२ से विन्ध्य-प्रदेश के वाणिज्य तथा उद्योग-मंत्री हैं । कुटीर-उद्योगों के प्रोत्साहन तथा विकास की योजना तथा व्यवस्था विशेष उल्लेखनीय है ।

आपके जिम्मे निम्नलिखित विभाग हैं :—

(१) वाणिज्य तथा उद्योग-विभाग ।
(२) खनिज-विभाग ।
(३) श्रम ।
(४) खाद्य तथा पूर्ति ।
(५) आंकड़ा-विभाग ।
(६) वन ।

सचिवालय

सचिव

(१) श्री महावीर प्रसाद श्रीवास्तव —मुख्य सचिव
(२) श्री कालीचरण तिवारी —वित्त सचिव
(३) श्री के० पी० सिन्हा —न्याय सचिव
(४) श्री प्रसाद दास चटर्जी —विकास सचिव
(५) श्री आर० सी० राय पोद्दार —गृह सचिव
(६) श्री महेश प्रसाद श्रीवास्तव— शिक्षा सचिव
(७) श्री रामनारायण वैद्य —सचिव, विधान सभा-सचिवालय

उप-सचिव

१—श्री आर० एन० मिश्र—सामान्य प्रशासन सचिवालय (विजिलेन्स अफसर)
२—श्री रामदयाल सिंह —सामान्य प्रशासन सचिवालय
३—श्री एम० पी० गोस्वामी—राजस्व-सचिवालय
४—श्री देवी प्रसाद —वित्त-सचिवालय
५—श्री गौरी प्रसाद —न्याय सचिवालय
६—श्री गिरिवर सिंह —न्याय-सचिवालय
७—श्री रामकिशोर शर्मा विकास-सचिवालय

प्रवर सचिव

१—श्री किशन लाल —राजस्व सचिवालय
२—श्री हरिहर गोपाल —राजस्व-सचिवालय
३—श्री रामप्रसाद श्रीवास्तव —गृह-सचिवालय
४—श्री नाथूराम द्विवेदी —वित्त-सचिवालय
५—श्री नाथूराम पांडेय —वित्त-सचिवालय
६—श्री सरस्वती प्रसाद खरे —वित्त-सचिवालय
७—श्री मुसर्रफ हुसेन —न्याय-सचिवालय
८—श्री आर० बी० जौहरी —योजना-सचिवालय
९—श्री के० एल० मुकर्जी कृषि-सचिवालय
१०—श्री केशव प्रसाद —शिक्षा-सचिवालय
११—श्री महेश्वरी प्रसाद श्रीवास्तव —सामान्य प्रशासन सचिवालय (अ)
१२—श्री के० सी० सी० राजा —सामान्य प्रशासन सचिवालय (ब)
१३—श्री सुखदेव बिहारी खरे —संयोजन-सचिवालय
१४—श्री जगमोहन लाल —जन-कार्य-सचिवालय
१५—श्री नवलकिशोर मिश्र —चिकित्सा-सचिवालय
१६—श्री रामेश्वर दयाल खरे—उप-राज्यपाल-सचिवालय
१७—श्री शीतल प्रसाद श्रीवास्तव—स्वायत्त-शासन-सचिवालय

विशेषाधिकारी, शिक्षा-सचिवालय

श्री रामायण प्रसाद

रजिस्ट्रार (सामान्य प्रशासन विभाग)

श्री सुखचन्द लाल मिश्र

विभागीय अध्यक्ष-उपाध्यक्ष

अध्यक्ष

१—श्री सरदार सिंह—इंस्पेक्टर जनरल आफ पुलिस
२—श्री डा० आर० सुब्रह्मण्यम् —संचालक, स्वास्थ्य-चिकित्सा-विभाग एवं इंस्पेक्टर जनरल आफ प्रिजन्स
३—श्री जी० जी० फड़के—संचालक, कृषि-विभाग
४—श्री गंगा प्रसाद जैन—संचालक, उद्योग-विभाग
५—श्री जितेन्द्रनाथ मित्र—प्रिंसिपल इंजीनियरिंग आफीसर
६—श्री राघवेन्द्र प्रसाद तिवारी—आबकारी एवं बिक्री-कर-आयुक्त
७—श्री त्रिलोकनाथ बहेल—विकास-आयुक्त
८—श्री नरेन्द्रनाथ चतुर्वेदी—भूमि-सुधार-आयुक्त
९—डा० एन० जी० आयंगर—मुख्य अधिकारी, पशु-पालन तथा मत्स्य-विभाग

१०—श्री निर्भयनाथ शर्मा—संचालक, स्वायत्त-विभाग

११—श्री कन्हैयालाल पंचोली—सीनियर मेम्बर, बोर्ड आफ रेवेन्यू

१२—श्री अरुण कुमार बनर्जी—चीफ इंजीनियर, पब्लिक हेल्थ इंजीनियरिंग विभाग

१३—श्री फतहबीर बहादुर—अधिकारी, पिछड़ी-जाति-कल्याण-विभाग

१४—श्री अम्बा प्रसाद श्रीवास्तव—सूचना एवं प्रचार-पदाधिकारी

१५—श्री केदारनाथ दुबे—रजिस्ट्रार, सहकारी-समितियां

१६—श्री जयकृष्ण चौधरी—सेकण्ड मेम्बर, बोर्ड आफ रेवेन्यू

१७—श्री महेश्वरी प्रसाद श्रीवास्तव—गवर्नमेंट एडवोकेट

१८—श्री अलोपी प्रसाद शुक्ल—संचालक, भूमि-लेखा-विभाग

१९—श्री गोपाल प्रसाद खरे—संचालक, सांख्यिकी एवं अर्थ-विभाग

उपाध्यक्ष

१—श्री कुंवर गोविंद सिंह—सहायक इंस्पेक्टर जनरल आफ पुलिस

२—श्री ओंकार प्रसाद द्विवेदी—कंजरवेटर आफ फारेस्ट

३—श्री गिरिराज किशोर—सहायक कृषि-संचालक

४—श्री ब्रजमोहन तिवारी—उप-संचालक, उद्योग-विभाग

५—श्री राममित्र चतुर्वेदी—सहायक शिक्षा-संचालक

६—श्री महेन्द्र प्रताप सिंह—सहायक विकास-आयुक्त

९ श्री के० सी० चतुर्वेदी—सहायक अधिकरी, पिछड़ी जाति-कल्याण-विभाग

१० श्री कृपाशंकर—सहायक संचालक, भूलेखा-विभाग

जिलाधीश

१—श्री एम० के० सेन	रीवा
.२—श्री वेंकटेशाचार्य शर्मा	सीधी
३—श्री राम बिहारी लाल	पन्ना
४—श्री शंखधर सिंह	सतना
५—श्री के० एल० अग्रवाल	शहडोल
६—श्री मनकामेश्वर नाथ जुत्शी	दतिया
७—श्री रामनाथ सिंह	टीकमगढ़
८—श्री रमेशचन्द्र श्रीवास्तव	छतरपुर